[कप्पिया-कप्पवडिंसिया-पुप्फिया-पुप्फचूलिया-वण्हिदसा]

संस्कृतच्छाया-पदार्थ-भावार्थोपेत-हिन्दी भाषा टीकासहितञ्च

टीकाकार

जैन धर्म दिवाकर, जैनागम रत्नाकर, श्रमण संघ के प्रथम पट्टधर

आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज

सम्पादक

जैन धर्म दिवाकर, ध्यानयोगी श्रमण संघ के चतुर्थ पट्टधर

आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी महाराज

प्रकाशक

भगवान महावीर मेडिटेशन एण्ड रिसर्च सेंटर ट्रस्ट, नई दिल्ली

आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति, लुधियाना

आगम	श्री निरयावलिका सूत्रम्
व्याख्याकार	आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज
दिशा निर्देश	राष्ट्रसन्त बहुश्रुत गुरुदेव श्री ज्ञानमुनि जी महाराज
सपादक	आचार्य सम्राट् डॉ श्री शिवमुनि जी महाराज
सहयोग	श्रमण-श्रेष्ठ कर्मठ योगी, मत्री, श्री शिरीष मुनि जी महाराज
प्रकाशक	आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति, लुधियाना भगवान महावीर रिसर्च एड मेडीटेशन सेंटर ट्रस्ट, नई दिल्ली
अवतरण	जुलाई, 2004
प्रतिया	1100
सहयोग राशि	तीन सौ रुपए मात्र
प्राप्ति स्थान	1 भगवान महावीर मेडिटेशन एड रिसर्च सैंटर ट्रस्ट श्री आर.के. जैन, एस-ई 62-63 , मिघलपुर विलेज, शालीमार बाग, नई दिल्ली दूरभाष 32030139, (ऑ) 27473279 2 श्री चन्द्रकान्त एम मेहता, ए-7, मोन्टवर्ट-2, सर्वे न 128/2ए, पाषाण सुस रोड, पूना-411021 दूरभाष 020-5862045 3 श्री विनोद कोठारी 3, श्री जी कृपा, प्रभात कॉलोनी, 6वा मार्ग, शान्ताक्रूज (वैस्ट) मुम्बई (महाराष्ट्र)
मुद्रण व्यवस्था .	कोमल प्रकाशन C/o विनोद शर्मा, म.नं 2088 / 5, गली न. 19, प्रेम नगर (निकट बलजीत नगर), नई दिल्ली-110008 दूरभाष . 9810765003, 011-25873841,

प्रकाशकीय

यह जीवात्मा अनादि काल से चतु:गति रूप चौरासी लाख जीव योनियों मे भटक रही है। यह कभी नरक गति मे जाती है तो कभी तिर्यंच गति (पशु) में जाती है, कभी देवगति मे जाती है तो कभी मनुष्य गति मे जाती है। आत्मा को जब तक धर्मतत्व का बोध नही होता तब तक उसका भटकाव अनवरत रूप से चलता रहता है। धर्म के बोध के बिना आत्मा मे संसार और स्व को जानने और समझने की योग्यता ही उत्पन्न नही होती है। वह मनोज्ञ विषयो की प्राप्ति को ही अपना ध्येय मानती है। उन्ही की प्राप्ति के लिए वह अहर्निश प्रयत्नशील रहती है और जन्म-मरण के महासागर में डूबती-तैरती रहती है।

आत्मबोध का अभाव ही व्यक्ति / आत्मा की समस्त भ्रमणाओ और दुखों का मूलकेन्द्र है। आत्मबोध का सद्भाव ही व्यक्ति के समस्त सुखो का उद्गम स्रोत है। भगवान महावीर ने फरमाया– प्रथम ज्ञान है, उसके बाद धर्म है। जिस व्यक्ति को ज्ञान ही नहीं है, आत्मबोध ही नहीं है, वह धर्म कर ही कैसे सकता है ? आत्मबोध के अभाव मे उस द्वारा किया गया धर्म उसके ससार को बढाने वाला ही सिद्ध होगा।

जैनागम ज्ञान के अक्षय स्रोत है। उनमे विशुद्ध आत्मतत्व की विशद व्याख्याए हुई है। उनकी सम्यक् स्वाध्याय से व्यक्ति की चेतना मे आत्मज्ञान का दीप प्रज्ज्वलित होता है। **"अप्प दीवो भव"** व्यक्ति अपना दीपक स्वय बन जाता है। भ्रम-भ्रमणाओं और दुख-द्वन्द्वो से वह सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है। मुक्ति का यही स्वरूप मोक्ष का स्वरूप भी है।

श्रमण सघ साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका वर्ग मे आगमो के स्वाध्याय की रुचि का निरतर विकास हो रहा है जो अत्यत शुभ है। आगम प्रकाशन का प्रस्तुत प्रयास उसी दिशा मे एक कदम है। इस प्रकाशन के प्रेरणा स्रोत है ध्यान योगी आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी महाराज। आप की मगल प्रेरणा से आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा व्याख्यायित और आप द्वारा सपादित आगमो के दशाधिक सस्करण अद्यतन हम प्रकाशित कर चुके है। इन आगमों को साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओ द्वारा हाथो-हाथ लिया जाता है।

आप श्री के निर्देशन में तथा कर्मठ पुरुषार्थी श्रमण संघीय मत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज के व्यवस्थापन से यह गुरुतर कार्य सरलता से प्रगतिमान है। इस कार्य मे हमे सभी श्रमणो-श्रमणियो, श्रावको और श्राविकाओ का पूर्ण सहयोग मिल रहा है जिसके लिए हम समग्र सघ के हार्दिक धन्यवादी है।

प्रकाशक

–आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति, लुधियाना

–भगवान महावीर मेडिटेशन एण्ड रिसर्च सेंटर ट्रस्ट नई दिल्ली

दो शब्द

'श्री निरयावलिका सूत्रम्' के प्रकाशन पर्व पर मै हार्दिक हर्ष का अनुभव कर रहा हू। आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव प्रकाशन समिति' के तत्वावधान मे प्रकाशित होने वाला यह 'नवम आगम तथा शृखला का बारहवा सस्करण है। दो वर्षो की अल्पावधि मे आगम शृखला के बारह सस्करणो का सपादित रूप मे प्रकाशन अपने-आप मे एक बड़ा कार्य माना जा सकता है। पर इस बड़े कार्य को करने में हम सफल रहे है। यही तथ्य मेरी प्रसन्नता का कारण है।

'श्री निरयावलिका सूत्रम्' की गणना आठवे से बारहवें उपाग के रूप मे होती है। अर्थात् श्री निरयावलिका सूत्रम् पाच आगमो का सम्मिलित सकलन है। श्री निरयावलिका के स्वाध्याय से पाठक एक साथ पांच आगमो के स्वाध्याय का पुण्य लाभ अर्जित कर सकते हैं।

आचार्य सम्राट् ध्यानयोगी श्री शिवमुनि जी महाराज जैन परम्परा के ही नही अपितु विश्व की सत परम्परा के एक महान मुनि है। आशुप्रज्ञ पण्डित मुनि के रूप मे वे विश्वकल्याण के लिए अहर्निश अप्रमत्त साधनाशील है। मानव समाज के लिए उन्होने स्वाध्याय, ध्यान और तप की ऐसी त्रिवेणी प्रवाहित की है जिसमे गोता लगाकर लाखों मुमुक्षुओ ने आत्मलाभ प्राप्त किया है और भविष्य मे भी यह उपक्रम सतत प्रवाहशील बना रहेगा। परार्थ और परमार्थ के महापथ पर ऐसे अप्रमत्त पुरुषार्थी महापुरुष विश्व समाज के मस्तक के तिलक स्वरूप है।

तिरेसठ वर्ष की अवस्था मे भी नवयुवको जैसा अदम्य उत्साह और अक्षय कार्यक्षमता आचार्य प्रवर की निरन्तर तप और ध्यान रूप आत्मसाधना का एक ज्वलत उदाहरण है। लगभग तीन वर्ष पूर्व आचार्य श्री ने श्रीसघ की प्रवल प्रार्थना पर पूज्य आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा व्याख्यायित आगमो के सपादन और प्रकाशन का महासकल्प सजोया। दो वर्ष पूर्व लुधियाना वर्षावास मे आगम सपादन / प्रकाशन का यह कार्य सुचारू रूप से प्रारभ हुआ और दो वर्ष की इस अवधि मे आगमो के द्वादश सपादित सस्करणो का प्रकाशन पूर्ण हो चुका है जो आचार्य श्री के अप्रमत्त कठोर पुरुषार्थ का परिणाम है।

आगम प्रकाशन के इस महाभियान पर समग्र श्री सघ आचार्य श्री का अनुगामी है। श्रमणो, श्रमणियो, श्रावकों और श्राविकाओ मे इस दिशा मे भारी उत्साह देखने को मिल रहा है जो आचार्य देव श्री आत्माराम जी महाराज के अदृष्ट आशीर्वाद तथा आचार्य श्री के कुशल दिशा-निर्देशन का ही प्रतिफल है।

भगवतद्वय के मगलमय आशीष को सबल बनाकर हम निरतर इस मगल / कल्याण रूप परम पथ पर आगे बढते रहेगे ऐसा हमारा सकल्प है।

–शिरीष मुनि

संपादकीय

प्रस्तुत आगम श्री निरयावलिका सूत्रम् को स्वाध्यायशील श्रमणों-श्रमणियो, श्रावको और श्राविकाओ के हाथों मे अर्पित करते हुए मै अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रहा हू। श्री निरयावलिका सूत्र पाच उपांग सूत्रो का एकीकरण रूप उपाग है। इसमे जिन पाच उपागों का सकलन है, उनके नाम हैं–१ निरयावलिका, २ कल्पावतसिका, ३ पुष्पिता, ४ पुष्पचूलिका और ५ वृष्णिदशा। इन पाचो उपागो को स्वतत्र आगम अथवा पांच वर्गों के रूप में प्रारभ से ही मान्यता प्राप्त है। उक्त पांच वर्गो / उपागो के कुल बावन अध्ययन है जिनमें बावन ही स्त्री-पुरुषो के चरित्र सकलित हुए है। इन बावन चरित-नायको मे प्रथम वर्ग निरयावलिका के दस अध्ययनों मे दस ऐसे पुरुष पात्रो का वर्णन है जो नरक गति को प्राप्त हुए। शेष चार वर्गों के स्त्री-पुरुष पात्र देवलोक मे गए। पाचो ही वर्गो मे जिस समरूप बिन्दु का दर्शन उपलब्ध है, वह यह है कि कालान्तर मे ये बावन ही स्त्री-पुरुष पात्र मोक्ष गमन करेगे।

जैन दृष्टि से मोक्ष आत्मा का सर्वोच्च लक्ष्य है। समग्र जैन वाङ्गमय मे मोक्ष के साधनभूत तत्वो और मोक्षगमन की योग्यता को संपादित / जागृत करने वाली आत्माओं का ही प्रधानत वर्णन हुआ है। इतर विषयो का किंचितमात्र जो वर्णन उपलब्ध है वह भी परिणाम रूप में मोक्ष की सिद्धि और उसकी प्राप्ति के हेतुओ को ही प्रकाशित करने वाला है।

मोक्ष आत्मा का आत्यन्तिक अधिकार है। आत्मा जब तक उस अधिकार मे रिक्त है तब तक वह अधूरा है, अपूर्ण है, अतृप्त और अशान्त है। अत: प्रत्येक आत्मा को–व्यक्ति को मोक्ष को सिद्ध करने का उपाय / उद्योग करना चाहिए।

आत्मा मोक्ष को कैसे साधे ? उसे साधने के सरल सूत्र जैनागमो मे प्रभूत रूप से विद्यमान हैं। जैनागमो के निरन्तर स्वाध्याय से आत्मा मोक्ष के साधनो को प्राप्त कर शीघ्र ही उसे साध सकता है। अत· मोक्ष के अभिप्सुओ को अधिक से अधिक आगमों के स्वाध्याय मे अपना समय सयोजित करना चाहिए।

भगवान महावीर से प्रश्न किया किया गया–

सज्झाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

भगवन् ! स्वाध्याय से इस जीव को क्या प्राप्त होता है ? भगवान ने समाधान दिया–

सज्झाएण नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय कर देता है।

स्पष्ट है कि निरतर स्वाध्याय से अज्ञान गल जाता है। आत्मा पर जमी हुई धूल दूर हो जाती है। अज्ञान की धूल के दूर होते ही आत्मा से परमात्मा का प्रगटीकरण हो जाता है। आत्मा मे परमात्मा

का प्रगटीकरण ही मोक्ष है।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में स्वाध्याय के साधनभूत ग्रन्थ सहज उपलब्ध है। इस दृष्टि से वर्तमान युग पूर्वापेक्षया सौभाग्यशाली है। मै मगल कामना करता हू कि जन-जन मे स्वाध्याय की रुचि जगे। उससे व्यक्ति के जीवन में सुख और शान्ति का सचार होगा और अन्तत: वह मोक्षरूप अपनी मजिल को भी पा सकेगा।

निरयावलिका सूत्र मे बावन स्त्री-पुरुषो के जीवन वृत्त है। इन वृत्तो के अध्ययन से आत्मा के उत्थान और पतन के क्रम को सरलता से समझा जा सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के व्याख्याकार जैन धर्म दिवाकर जैनागम रत्नाकर आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज है। स्वनाम धन्य आचार्य देव का सृजनधर्मी व्यक्तित्त्व किसी परिचय की अपेक्षा नही रखता। उनके विराट व्यक्तित्व और महान कृतित्व से जैन जगत सहज रूप से परिचित है। अठारह आगमो पर उन द्वारा लिखी गई विशाल टीकाएं अनुपम, विलक्षण और अद्‌भुत है। जैन जगत की चारो परम्पराओ मे आचार्य देव के टीकाकृत आगम सर्वाधिक प्रामाणिक माने जाते है और सर्वाधिक रुचि से पढे-पढाये जाते हैं।

आचार्य देव के टीकाकृत आगमो का सपादन-प्रकाशन कार्य द्रुत गति से चल रहा है। निश्चित ही यह कार्य अत्यन्त श्रम साध्य और समयसाध्य है। परन्तु आचार्य देव के अदृष्ट आशीर्वाद के फलस्वरूप दो वर्ष की अवधि मे ही दशाधिक आगम-सस्करणो का प्रकाशित होना सभव हो पाया है।

इस कार्य मे सघ के सभी श्रमण-श्रमणियों, श्रावक और श्राविकाओ का मगलमय सहयोग निरन्तर मुझे मिल रहा है। मेरे शिष्य मुनिवर श्री शिरीष जी आगम सपादन / प्रकाशन के इस कार्य मे अहर्निश श्रमशील है। इनके अप्रमत्त श्रम का योग इन आगमो के सपादन-प्रकाशन मे केन्द्रिय बिन्दु रहा है। इनका यह श्रम सदैव स्तुत्य और श्लाघनीय रूप से अर्चित रहेगा।

जैन दर्शन के अधिकारी विद्वान श्रीयुत ज प त्रिपाठी तथा श्री विनोद शर्मा का समर्पित सहयोग भी इस श्रुतयज्ञ के साथ निरन्तर जुडा रहा है जिन्होने मूलपाठ पठन, प्रूफ पठन तथा मुद्रणादि दायित्वो का सफल सवहन किया है। तदर्थ विद्वान-द्वय शत-शत साधुवाद के पात्र है।

अन्त मे इसी मगल मनीषा के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हू कि शासनपति तीर्थकर महावीर और श्रद्धेय चरण आचार्य देव की आगम रूप इस अहैतुकी कृपा के अनवरत वर्षण मे जन-जन स्नान करे, जन-जन मे स्वाध्याय की रुचि वर्धमान हो। जन-जन कल्याण का, आनन्द का, मगल का और मोक्ष का अधिकारी बने।

–शिव मुनि

(आचार्य श्रमण संघ)

टीकाकार की लेखनी से

आत्मा के विकास के लिए श्रुत ज्ञान अत्यन्त उपयोगी है। श्रुत-ज्ञान के द्वारा ही आत्मा स्व-पर कल्याण करने मे समर्थ हो सकता है, यदि श्रुत-ज्ञान का अभाव हो तो आत्मा अपने कर्तव्य से पतित हो जाता है।

श्रुत-ज्ञान के दो रूप है–द्रव्य-श्रुत और भाव-श्रुत। आज दोनो ही श्रुत विद्यमान है। अनुयोग द्वार सूत्र में पत्र और पुस्तको के अक्षर-विन्यास को द्रव्य-श्रुत कहा गया है और आत्म ज्ञान के रूप मे श्रुत को भाव-श्रुत कहा जाता है। ये दोनों श्रुत लौकिक और लोकोत्तर धर्म-मार्ग के साधन है।

प्रस्तुत प्रकरण मे भाव-श्रुत ही अभीष्ट है। भाव श्रुत के भी दो रूप है–अंग-प्रविष्ट और अनग-प्रविष्ट (अग बाह्य)। गणधर देवो द्वारा रचित श्रुत अग-प्रविष्ट कहलाता है और शेष श्रुत अंग-बाह्य के रूप मे प्रसिद्ध है। अंग शास्त्रों के आधार पर निर्मित श्रुत को उपाग भी कहते हैं। उपाग सख्या मे बारह है, जिनके नाम इस प्रकार हैं–१. उववाइय (औपपातिक), २ रायपसेणियं (राजप्रश्नीयम्), ३ जीवाभिगम, ४ पण्णवणा (प्रज्ञापना), ५ सूरपण्णत्ति (सूर्य-प्रज्ञप्ति), ६ जम्बू दीवपण्णत्ति (जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति), ७ चद पण्णत्ति (चन्द्र-प्रज्ञप्ति), ८. निरयावलियाओ (निरयावलिका), ९ कप्पवडिंसियाओ (कल्पावतसिका, १०. पुप्फियाओ (पुष्पिका), ११ पुप्फ चूलाओ (पुष्प चूलिका) और १२ वण्हिदसाओ (वृष्णिदशा)।

नन्दी सूत्र में अंग प्रविष्ट और अनग-प्रविष्ट श्रुत का वर्णन करते हुए वृत्तिकार ने समस्त आगमो का श्रुत-पुरुष के रूप में वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखा है–

यत्पुनरेतस्यैव द्वादशाङ्गात्मकस्य श्रुतपुरुषस्य व्यतिरेकेण स्थितमङ्गबाह्यत्वेन व्यवस्थितं तदनङ्ग-प्रविष्टम्। अथवा यद्गणधरदेव कृतं तदङ्ग प्रविष्टम्, मूलभूतमित्यर्थः।

गणधरदेवा हि मूलभूतमाचारादिकं श्रुतमुपचयन्ति तेषामेव सर्वोत्कृष्ट श्रुतत्व-विध-सम्पन्नतया तद्रचयितुमीशत्वात्। ....य पुनः श्रुतस्थविरैस्तदेकदेशमुपजीव्य विरचितं तदनङ्ग-प्रविष्टं।

उपर्युक्त समस्त विवरण का भाव यही है कि गणधर देवो द्वारा सूत्रबद्ध किया गया आगम साहित्य अंग प्रविष्ट है और अन्य श्रुत-स्थविरो द्वारा आगमो के आधार पर विरचित समस्त शास्त्रीय साहित्य अंग-बाह्य अथवा अनग-प्रविष्ट साहित्य कहलाता है।

(आचार्य श्री जी को आगमो की शोध करते हुए सवत् १८८० के माघ मास के कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि को रायकोट (पंजाब) मे किसी विद्वान् मुनीश्वर द्वारा निर्मित श्रुत-पुरुष का चित्र भी प्राप्त हुआ था जो इस विषय को बहुत ही सहजरीति से स्पष्ट कर देता है) इनके अतिरिक्त कालिक और उत्कालिक श्रुत के रूप मे भी आगम साहित्य का वर्गीकरण किया जाता है।

निरयावलिका सूत्र एक उपांग है यह जानने के अनन्तर यह परिज्ञान भी आवश्यक है कि इस सूत्र के पाचों वर्ग भी उपाग नाम से अलग-अलग प्रसिद्ध हैं, जैसे कि स्वयं सूत्रकार लिखते है-''**उवंगाणं पंच वग्गा पण्णत्ता**''-इस उपांग के पाच वर्ग भी उपागो के नाम से प्रसिद्ध है। अत: इस सूत्र में पाच उपाग संकलित किए गए हैं।

इस स्थान पर यह शका भी उत्पन्न हो सकती है कि कौन-कौन-सा आगम उपाग है? इस प्रश्न का समाधान सूत्र में न होने के कारण पूर्वाचार्यों ने जो कल्पना की है उसे ही विचारार्थ ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि औपपातिक आदि सूत्रो में किसी भी उपांग का उल्लेख नही है।

कुछ विद्वानों की यह मान्यता भी गम्भीरता से विचारणीय है कि निरयावलिका सूत्र का विषय दृष्टिवाद नामक पूर्व से उद्धृत किया गया है, किन्तु सभी आगम-वेत्ता इस विषय से सहमत हो यह नही कहा जा सकता।

निरयावलिका सूत्र को पाच वर्गो मे गठित किया गया है, किन्तु यदि निरयावलिका को पृथक् उपाग माना जाए तब ये छ: शास्त्र सिद्ध होते हैं। नन्दी-सूत्र मे कालिक सूत्रो के नामो के प्रकरण मे निम्नलिखित पाठ है-

निरयवलियाओ, कप्पियाओ, कप्पवडिसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, बह्निदसाओ। किन्तु यह विषय विद्वद्-वर्ग के लिए सर्वथा विचारणीय है, क्योंकि यदि षट् शास्त्र माने जाए तब 'निरयावलिका के पाच वर्ग हैं' यह कथन व्यर्थ सिद्ध हो जाता है।

पांच वर्गो के विषय

निरयावलिका मे राजा श्रेणिक के दस पुत्रो का अधिकार दिया गया है। ''कल्पावतंसिका'' मे महाराज श्रेणिक के दस कुमारो के पद्म आदि पुत्रो का अधिकार है जो दीक्षित होकर देव विमानो में उत्पन्न हुए थे। तृतीय वर्ग पुष्पिका मे चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बहुपुत्रिका आदि दस अध्ययनो का विस्तृत वर्णन किया गया है। चतुर्थ वर्ग पुष्पचूला में श्री, ह्री, धृति, कीर्ति आदि दस देवियो का वर्णन है। पंचम वर्ग वृष्णि-दशा में निषध कुमार आदि बारह कुमारो का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार पाच वर्गो मे विभिन्न विषयों का वर्णन है। जैन-धर्म-प्रसारक सभा'' भाव

नगर से जो निरयावलिका सूत्र प्रकाशित हुआ है उसकी प्रस्तावना मे उपर्युक्त वर्णन के ही सकेत प्राप्त होते है जो विषयानुकूल हैं।

इस सूत्र के अध्ययन अति प्राचीन और शिक्षाप्रद है, प्रत्येक धर्म-प्रिय व्यक्ति को इनका विधि-पूर्वक अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि इस सूत्र का विषय विरक्ति-प्रधान आध्यात्मिक ज्ञान करते हुए भी गृहस्थोपयोगी ज्ञान भी प्रदान करता है।

मैंने इस सूत्र के हिन्दी अनुवाद मे निम्नलिखित कृतियो की सहायता ली है—हस्तलिखित तीन प्रतिया जो टब्बे के रूप मे मेरे पास ही थी, इनके अतिरिक्त जैन-धर्म-प्रसारक सभा, भाव नगर की ओर से इंग्लिश मे मुद्रित एक प्रति भी मेरे लेखन का आधार रही है। अहमदाबाद से श्री आगमोदय समिति द्वारा मुद्रित श्री चन्द्र सूरि विरचित वृत्तियुक्त निरयावलिका सूत्र की प्रति भी मूल-सूत्र लिखने में सहायक रही है।

उपर्युक्त विवरण तो केवल नाममात्र ही है। सस्कृत-छाया अन्य सूत्रों की टीकाओ तथा व्याकरण के आधार पर की गई है, यदि इसमे कोई अशुद्धि रह गई हो तो विद्वद्-वर्ग इसको सुधार कर पढे। इस सूत्र के मूल पाठ का आधार श्री आगमोदय समिति की प्रति ही रही है। श्री अमोलक ऋषि जी महाराज द्वारा लिखित प्रति से सूत्रो के अंक लगाते हुए भी कही-कही पर आवश्यकता के अनुसार सूत्राको में परिवर्तन भी किया गया है। मकसूदाबाद से प्रकाशित प्रति भी मूल पाठ मिलाने के लिए प्रयोग मे लाई गई है। इन समस्त प्रतियों के लेखको के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए आशा करता हूं कि पाठक वर्ग इस सूत्र के स्वाध्याय से अपनी आत्मा को अलंकृत कर निर्वाण के अधिकारी बनेगे।

भवदीय

– आचार्य आत्माराम

लुधियाना

सम्वत् २००३, ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी

जैन धर्म दिवाकर, जैनागमरत्नाकर
आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज का

संक्षिप्त जीवन परिचय

संयम जीवन और समाज सेवा

जिनका जीवन सयम की दृष्टि से और सघ सेवा की दृष्टि से आदर्शमय हो, वे ही अग्रगण्य नेता होते है। जैसे रेलवे-इजन स्वय लाइन पर चलता हुआ अपने पीछे डिब्बो को साथ ही खीच कर ले जाता है, वैसे ही आचार्य भी समाज और मुमुक्षुओ के लिए रेलइंजन सदृश हैं। अत: हमारे आराध्य पूज्य गुरुदेव आचार्य प्रवर जी जैन समाज के सफल शास्ता थे, उनका संयममय जीवन कितना ऊचा था, उन्होने समाज सेवाए कितनी माधुर्य तथा शान्ति पूर्ण शैली से की हैं, इसका अधिक अनुभव वे ही कर सकते है, जिन्हे उनके निकटतम रहने का अवसर प्राप्त हुआ है।

स्वाध्याय, तप और सघसेवा इन सबका महत्व संयम के साथ ही है, संयम का साम्राज्य सर्व गुणो पर है। यम की साधना तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकते हैं, किन्तु सयम की साधना विवेकशील ही कर सकते हैं। सयम का अर्थ है–सम्यक् प्रकार से आत्मा को नियत्रित करना, जिससे आत्मा मे किसी भी प्रकार की विकृति न होने पाए। आचार्य देव जी संयम में सदा सतत जागरूक रहते थे। वे श्रुतधर्म की सतुलित रूप से आराधना करते थे।

श्रुतज्ञान से आत्मा प्रकाशित होती है और सयम से कर्मक्षय करने के लिए आत्मा को वेग मिलता है। जिसके जीवन मे उक्त दोनो धर्मों का अवतरण हो जाए, फिर जीवन आदर्शमय क्यों न बने ? अवश्यमेव बनता है। आचार्य देव का शरीर जहा सौन्दर्यपूर्ण था, वहा सयम का सौरभ्य भी कुछ कम न था। सयम-सौरभ्य सब ओर जन-जन के मानस को सुरभित कर रहा था। आपके दर्शन करते ही महानिर्ग्रन्थ अनाथी मुनि जी की पुनीत-स्मृति जग उठती थी, ऐसा प्रतीत होता था, मानो बाह्य वैभव-शरीर और आन्तरिक वैभव-संयम दोनो की होड लग रही हो, कोई भी व्यक्ति एक बार आपके देवदुर्लभ दर्शन करता, वह सदा के लिए अवश्य प्रभावित हो जाता था।

पूज्यवर बाह्य तप की अपेक्षा अन्तरग तप में अधिक संलग्न रहते थे। समाज सेवा ने आपको लोकप्रिय बना दिया। आपकी वाणी मे इतना माधुर्य था कि शत्रु की शत्रुता ही नष्ट हो जाती थी। पुण्य प्रताप इतना प्रबल था कि अनिच्छा होते हुए भी वह आपको सर्वोपरि बनाने में तत्पर रहता था।

जैन धर्म दिवाकर जैनागम रत्नाकर ज्ञान महोदधि
आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज

"**पुव्वकम्मक्खयट्ठाए इमं देहं समुद्धरे**" इस आगम उक्ति पर उनका विशेष लक्ष्य बना हुआ था।

गम्भीर और दीर्घदर्शी

आचार्यवर्य जी गम्भीरता में महासमुद्र के समान थे। जिस समय शास्त्रों का मनन करते थे, उस समय गहरी डुबकी लगाकर अनुप्रेक्षा करते-करते आगमधरो के आशय को स्पर्श कर लेते थे। आप अपने विचारों को स्वतन्त्र नही, बल्कि आगमो के अनुकूल मिलाकर ही चलते थे। गुणो में पूर्णता का होना ही गम्भीरता का लक्षण है। प्रत्येक कार्य के अन्तिम परिणाम को पहले देखकर फिर उसे प्रारम्भ करते थे। उक्त दोनों महान गुण आपके सहचारी थे।

नम्रता और सहिष्णुता

ये दोनो गुण उस व्यक्ति मे हो सकते है जिसमे अभिमान और ममत्व न हो। आचार्य प्रवर जी के जीवन मे मैने कभी अभिमान नही देखा और न शरीर पर अधिक ममत्व ही। आपका जब जन्म हुआ, तब मालूम पडता है कि विनय और नम्रता को साथ लिए हुए ही उत्पन्न हुए है। आप नवदीक्षित मुनि को भी जब सम्बोधित करते तब नाम के पीछे 'जी' कहकर ही बुलाते थे। नम्रता मे आपने स्वर्ण को भी जीत रखा था। नम्रता आत्मा का गुण है। अहकार आत्मा मे कठोरता पैदा करता है। नम्रता से ही आत्मा सद्‌गुणो का भाजन बनता है। जहा पूज्यवर मे नम्रता की विशेषता थी, वहा सहिष्णुता मे भी वे पीछे नही थे। परीषह-उपसर्ग सहन करने मे मेरु के समान अडोल थे। अनेकों बार मारणान्तिक कष्ट भी आए, फिर भी मुख से हाय, उफ तक नही निकली। उस समय वेदना में भी जो उनकी दिनचर्या और रात्रिचर्या का कार्यक्रम होता था, उसमे कभी अन्तर नही पडने देते-"[१]**अवि अप्पणोवि देहम्मि नायरन्ति ममाइय**" 'महानिर्ग्रन्थ अपने देह पर भी ममत्व नही करते' मानो इस पाठ को आपने अपने जीवन मे चरितार्थ कर रखा हो, सहनशीलता मे आप अग्रणी नेता थे।

शक्ति और तेजस्विता

उक्त दोनों गुण परस्पर विरोधी होते हुए भी आचार्य श्री जी में ऐसे मिल-जुल के रहते, जैसे कि तीर्थंकर के समवसरण मे सहज वैरी भी वैरभाव छोड़कर शेर और मृग एक स्थान मे बैठे हुए धर्मोपदेश सुनते है। शेर को यह ध्यान नही आता कि मेरे पास मेरा भोज्य बैठा है और मृग को यह ध्यान नहीं आता कि मेरे पास मुझे ही खाने वाला पंचानन बैठा है। इसी प्रकार शान्तता वहीं हो सकती है, जहा क्रोध न हो, वैर, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष जहा हों, वहा शान्तता कहा ? आप सचमुच शान्ति के महान सरोवर थे। दु:खदावानल से सतप्त व्यक्ति जब आपकी चरण-शरण मे बैठता तो वह शान्तरस का अनुभव करने लग जाता। इस गुण ने आपके जीवन मे एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर रखा था। जहा शान्ति होती है, वहा तेजस्विता नहीं होती, जैसे कि चन्द्रमा। किन्तु आपमें तेजस्विता भी थी। यदि कोई वादी अभिमानी दुर्विदग्ध कट्टरपथी भी आपके पास आता, तो वह प्रभावित हुए बिना नही रहता। विद्वत्ता, सहनशीलता, नम्रता, सयम एवं गम्भीरता, इत्यादि अनेक गुणों ने आपको दिव्य तेजस्विता से देदीप्यमान बना रखा था।

---

१ दशवैकालिक सूत्र अ छठा गा २२ ॥

दयालुता और सेवाभावित्व

साधुता सुकोमलता के साथ पलती है, शरीर मे नही, हृदय मे दया होनी चाहिए। वह साधु ही क्या है जिसमे दयालुता न हो। ये दो गुण आपमे विशिष्ट थे। जहा आचार्यश्री जी अपने दु:ख को सहन करने मे दृढतर थे, धैर्यवान थे, वहा दूसरो पर दयालुता की भी कुछ न्यूनता नहीं थी। आपने अपने जीवन मे जैनाचार्य श्री मोतीराम जी महाराज, तपस्वी श्री गणपतिरायजी महाराज, श्रद्धेय जयरामदासजी महाराज, गुरुवर्य श्री शालिग्राम जी महाराज की बहुत वर्षो तक निरन्तर सेवा की। ग्लान, स्थविर, तपस्वी, नवदीक्षित की सेवा करने मे आपने कभी भी मन नही चुराया। आगमो के अध्ययन एव लेखन कार्य मे सलग्न होने पर भी जब सेवा की आवश्यकता पडी, तब तुरन्त ही सेवा में उपस्थित हो जाते, सेवा से निवृत्त होकर पुन. चालू कार्य को पूरा करने मे तत्पर हो जाते। छोटे से छोटे साधुओ की सेवा करने मे भी उन्हे कोई सकोच नही था। औषधोपचार, अनुपान, आहारादि लाते हुए आचार्य श्री जी को मैने स्वय देखा। जो दयालु होते है, वे सेवाभावी भी होते है, जो सेवाभावी होते है वे दयालु भी होते है, यह एक निश्चित सिद्धान्त है।

प्रसन्नमुख और मधुरभाषी

आचार्यवर्य जी का मुखकमल सदा विकसित रहता था। आप स्वय प्रसन्न रहते थे, सन्निकट रहने वालो को भी सदा प्रसन्न रखते थे, आपकी वाणी माधुर्य एवं प्रसादगुण युक्त थी। जब किसी को शिक्षा उपदेश देते थे, तब ऐसा प्रतीत होता था मानो मुखारविन्द से मकरन्द टपक रहा हो, पीयूष की बूदें कर्णेन्द्रिय से होती हुई हृदयघट मे पड रही हों। कटुता कुटिलता, कठोरता न मन में थी, न वचन मे और न व्यवहार मे। आपकी वाणी सत्यपूत तथा शास्त्रपूत होने से सविशेष मधुर थी।

साहित्य सृजन और आगमों का हिन्दी अनुवाद

पजाब प्रान्त मे जितने मुनिसत्तम, पट्टधर एव प्रसिद्ध वक्ता हुए है, उनमे साहित्य सृजन का और आगमो के हिन्दी अनुवाद करने का सबसे पहला श्रेय आपको प्राप्त हुआ है। आपने छोटी-बडी लगभग ६० पुस्तके लिखी है। जैन न्याय सग्रह, जैनागमों मे स्याद्वाद, जैनागमो मे परमात्मवाद, जीवकर्म सवाद, वीरत्थुई, जैनागमो मे अष्टागयोग, विभक्ति सवाद विशेष पठनीय है। आवश्यक सूत्र दोनो भाग, अनुयोगद्वार सूत्र, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचाराग, उपासकदशांग, स्थानांग, अन्तगड, अनुत्तरोपपातिक, दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, निरयावलिका आदि ५ सूत्र, प्रश्नव्याकरण इनकी व्याख्या हिन्दी मे की है। नन्दीसूत्र आपके हाथों मे ही है। समवायाग को सम्पूर्ण नहीं करने पाए।

स्वाध्याय और स्मृति की प्रबलता

आवश्यकीय कार्य के अतिरिक्त जब कभी उन्हे देखा, तब आगमो के अध्ययन-अध्यापन करते ही देखा है। स्वाध्याय उनके जीवन का एक विशेष अग बना हुआ था। इसी कारण आप आडम्बरों तथा अधिक जन सम्पर्ग से दूर ही रहते थे। स्वाध्याय, ध्यान, समाधि, योगाभ्यास में अभिरुचि अधिक थी। आपका बाह्य तप की अपेक्षा आभ्यन्तर तप की ओर अधिक झुकाव रहा।

आपकी स्मृति बड़ी प्रबल थी। जो ग्रन्थ, दर्शन, आगम, टीका, चूर्णि, भाष्य, वेद, पुराण, बौद्धग्रन्थ एक बार देख लिया, उसका मनन पूर्वक अध्ययन किया और उसकी स्मृति बनी। जब कभी अवसर आता तब तुरन्त स्मृति जग उठती थी। सूत्रो और ग्रन्थों पर तो ऐसी दृढ धारणा बन गई थी कि अन्तिम अवस्था मे नेत्रज्योति मन्द होने पर भी, वही पृष्ठ निकाल देते, जिस स्थल मे वह विषय लिखा हुआ है। इससे जान पड़ता है कि आचार्य प्रवर जी आगम चक्षुष्मान थे। 'तत्वार्थसूत्र जैनागमसमन्वय' की रचना आपके आगमाभ्यास और स्मृति का अद्भुत एव अनुपम परिणाम है।

तत्वार्थसूत्र-जैनागमसमन्वय

आचार्यप्रवरजी अपने युग के प्रकाड विद्वान हुए है। उनका आगमो का अध्ययन-मनन-चिन्तन-अनुप्रेक्षा-निदिध्यासन अनुपम ही था। वि स १९८९ के वर्ष आप ने दस ही दिनों मे दिगम्बर मान्य तत्त्वार्थ सूत्र का समन्वय ३२ आगमो से पाठो का उद्धरण करके यह सिद्ध किया है कि यह तत्त्वार्थसूत्र उमास्वति जी ने आगमों से उद्धृत किया है। उन सूत्रो का मूलाधार क्या है यह रहस्य सदियो से अप्रकाशित रहा, उसी रहस्य का उद्घाटन जब आप पजाब संप्रदाय के उपाध्याय पद को सुशोभित करते हुए अजमेर मे होने वाले बृहत्साधु-सम्मेलन मे भाग लेने के लिए पंजाब से देहली पधारे, तब वहीं समन्वय का कार्य सम्पन्न किया। इस महान कार्य की प्रशस्ति महामनीषी पण्डित प्रवर सुखलालजी ने मुक्त कण्ठ से की है। उन्होने तत्वार्थ सूत्र की भूमिका मे लिखा है–'तत्वार्थ सूत्र जैनागमसमन्वय' नामक जो ग्रन्थ स्थानकवासी मुनि उपाध्याय श्री आत्माराम जी की लिखी प्रसिद्ध हुई है, वह अनेक दृष्टियों से महत्व रखती है। जहां तक मैं जानता हूं स्थानकवासी परम्परा मे तत्वार्थ सूत्र की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण उपस्थित करने वाला उपाध्याय जी का प्रयास प्रथम ही है। यद्यपि स्थानकवासी परम्परा को तत्वार्थ सूत्र और उसके समग्र व्याख्याग्रन्थो मे किसी भी प्रकार की विप्रतिपत्ति या विमति कभी नहीं रही है तदपि वह परम्परा उसके विषय में कभी इतना रस या इतना आदर बतलाती नही थी, जितना अन्तिम कुछ वर्षो से बतलाने लगी है। स्थानकवासी परम्परा का मुख्य आधार एक मात्र बत्तीस आगमो पर ही केन्द्रित रहा है। इसलिए उपाध्याय जी ने उन्हीं आगमों के पाठो को तत्वार्थसूत्र का मूलाधार बताकर यह दिखाने का बुद्धिशुद्ध प्रयत्न किया है कि स्थानकवासी परम्परा के लिए तत्वार्थ सूत्र का वही स्थान हो सकता है, जो उसके लिए आगमो का है। अगर स्थानकवासी परम्परा उपाध्याय जी के वास्तविक सूचन से अब भी सभल जाए, तो वह तत्वार्थसूत्र और उसके समग्र व्याख्या ग्रन्थों को अपना कर अर्थात् गृहस्थ और साधुओ मे उन्हे अधिक प्रचारित करके शताब्दियो के अविचार मल का थोडे ही समय में प्रक्षालन कर सकती है। उपाध्याय जी का "समन्वय" जहां तक एक ओर स्थानकवासी परम्परा के वास्ते मार्गदीपिका का काम कर सकता है, वहां दूसरी ओर वह ऐतिहासिकों व संशोधको के वास्ते भी बहुत उपयोगी है। श्वेताम्बर हो या जैनेतर हो जो भी तत्वार्थ सूत्र के मूल स्थानो को आगमो मे से देखना चाहे और इस पर ऐतिहासिक या तुलनात्मक विचार करना चाहे, उसके वास्ते वह समन्वय बहुत ही कीमती है।"

यह है समन्वय के विषय मे महामनीषी पण्डित जी के हार्दिक उद्गार। पूज्यवर जी ने यह सिद्ध किया है कि जिन आगमो का आधार लेकर वाचक उमास्वाति जी ने जिस तत्वार्थसूत्र का

निर्माण किया है, वह श्वेताम्बर मान्य आगमो के आधार पर ही किया है। यद्यपि कतिपय ऐसे सूत्र भी तत्त्वार्थसूत्र मे है जिनका समन्वय वर्तमान मे उपलब्ध आगमो से नही हो सका, किन्तु ऐसे सूत्र इने गिने ही है।

तत्त्वार्थसूत्र और जैनागम समन्वय नामक यह पुस्तक दिगबराम्नाय के धुरन्धर पण्डितो के हाथ को जब सुशोभित करने लगी, तब उन्होंने उमास्वाति जी से पूर्व प्रणीत दिगम्बरमान्य षट्खण्डागम और कुन्दकुन्द आचार्य प्रणीत ग्रन्थो के आधार पर समन्वय करने का श्रीगणेश किया। वे समन्वय करने मे वर्षो यावत् अनथक परिश्रम करते रहे। निरन्तर परिश्रम अनेक पण्डितो के द्वारा करने पर भी कुछ ही सूत्रो का समन्वय करने पाए, अन्ततोगत्वा हताश हो कर इस ओर उपेक्षा ही कर ली। जब कि आचार्य प्रवर जी ने दस दिनों मे ही समन्वय कार्य सम्पन्न कर लिया था। यह है उनकी स्मृति और आगमाभ्यास का अद्‌भुत चमत्कार।

दिगम्बरमान्य तत्त्वार्थ सूत्र मे कुछ ऐसे सूत्र भी है जो मतभेद जनक नही है, उनसे न किसी का खण्डन होता है और न किसी सप्रदाय की पुष्टि ही होती है, फिर भी पूर्णतया समन्वय नही हो सका, शेष सभी सूत्रो का समन्वय आगमो से 'रेख मे मेख' जैसी उक्ति पूज्य श्री जी ने चरितार्थ कर दी। उन्होने श्वेताम्बर मान्य तत्वार्थसूत्र का समन्वय नही किया, क्योकि वह तो आगमो से सर्वथा मिलता ही है। किन्तु दिगम्बर मान्य तत्त्वार्थसूत्र से श्वेताम्बर मान्य आगम अधिक प्राचीन है।

उमास्वाति जी के युग मे दिगम्बर जैन साहित्य स्वल्पमात्रा मे ही था, जब कि श्वेताम्बर मान्य आगम प्रचुर मात्रा मे थे तथा अन्य साहित्य भी। इससे यह सिद्ध होता है कि श्वेताम्बर आगम प्राचीन है, जबकि दिगम्बर मान्य षट्खण्डागम आदि आगम अर्वाचीन है।

उमास्वाति जी का समय वीर निर्वाण स ५वी शती का होना विद्वान् मानते है और कुछ एक विद्वान् विक्रम स ५वी-छठी शती को स्वीकार करते है, वास्तव मे वे किस शती मे हुए है यह अभी रिसर्च का विषय है, ऐसी तरग एक बार सिद्धसेन दिवाकर जी के मन मे भी उठी थी कि सभी आगमो को तत्वार्थसूत्र की तरह सस्कृत भाषा में सूत्र रूप में निर्माण करूं, किन्तु इसके लिए समाज और उनके गुरु सहमत नही हुए, प्रत्युत उन्हे ऐसी भावना लाने का प्रायश्चित्त करना पडा।

नन्दीसूत्र की हिन्दी व्याख्या का आचार्य प्रवर जी ने उपाध्याय के युग मे ही लेखन कार्य प्रारभ करके उसकी इति श्री की है। आप का शरीर वार्द्धक्य के कारण अस्वस्थ एव दुर्बल अवश्य हो गया था, फिर भी धारणा शक्ति और स्मृति सदा सरस ही रही है। उनमे वार्द्धक्य का कोई विशेष प्रभाव नही पडा। नेत्रो की ज्योति कम होने से आगमो का स्वाध्याय कण्ठस्थ और श्रवण से करते रहे है। आपकी आगमो पर अगाध श्रद्धा एवं रुचि थी। इन दृष्टियो से आचार्य प्रवर जी श्रुतज्ञान के आराधक ही रहे है।

कब ? कहां ? क्या लाभ हुआ ?

जन्म—पजाब प्रान्त जिला जालधर के अन्तर्गत ''राहों'' नगरी मे क्षत्रिय कुल मुकुट, चोपडा वंशज सेठ मनसाराम जी की धर्मपत्नी परमेश्वरी देवी की कुक्षि से वि स १९३९ भाद्रपद मास के

शुक्लपक्ष, द्वादशी तिथि, शुभ मुहूर्त मे एक होनहार पुण्य आत्मा का जन्म हुआ। नवजात शिशु का माता-पिता ने जन्मोत्सव मनाया। अन्य किसी दिन नवजात कुलदीपक का नाम आत्माराम रखा गया। शरीर सपदा से जनता को ऐसा प्रतीत होता था, मानो कि देवलोक से च्यव कर कोई देव आए है।

दैवयोग से शैशवकाल मे ही क्रमश. माता-पिता का साया सिर से उठ गया। कुछ वर्षो तक आप की दादी ने आप का भरण-पोषण किया, तत्पश्चात् वृद्धावस्था होने से उनका भी निधन हो गया। कुछ महीने इधर-उधर रिश्तेदारो के यहा कालक्षेप किया। मन कही न लगने से लुधियाना मे निकटतर सम्बन्धियो के यहा पहुचे। किन्तु वहा भी मन न लगने से कुछ सोच ही रहे थे कि अकस्मात् वकील सोहनलाल जी उपाश्रय मे विराजित मुनिवरो के दर्शनार्थ जाते हुए मिल गए, उनसे पूछा-"आप कहा जा रहे है ?" वकील जी ने कहा-"मै पूज्यवर श्री मोतीराम जी महाराज के दर्शनार्थ जा रहा हू, क्या तुम्हे भी साथ चलना है ?" आत्माराम जी ने कहा "यदि मुझे भी उनके दर्शन कराओ तो आपकी बडी मेहरबानी होगी" इतना कहकर दोनो चल पडे।

उपाश्रय मे मुनिवरो के दर्शन किए। दर्शन करते ही मन आनन्द से भर गया। पूज्य श्री जी ने धर्मोपदेश सीधी-सादी भाषा मे सुनाया। शिक्षा के अमृत कण पाकर बालक ने अपने मन मे दृढसकल्प किया कि मै भी इन्हीं जैसा बनू। यहीं स्थान मेरे लिए सर्वथोचित है, अब अन्य कही पर जाने की आवश्यकता ही नही रही, यही मार्ग मेरे लिए श्रेयस्कर है। वकील जी चले गए, उन्हे कुछ जल्दी भी थी जाने की। बालक की अन्तरात्मा की भूख एकदम भडक उठी, पूज्य आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज से बातचीत की और अपने हृदय के भाव मुनिसत्तम के समक्ष रखे।

पूज्य श्री जी ने होनहार बालक के शुभलक्षण देखकर अपने साथ रखने के लिए स्वीकृति प्रदान की। कुछ ही महीनों मे कुशाग्रबुद्धि होने से बहुत कुछ सीख लिया। इससे आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज को बहुत सन्तुष्टि हुई। प्रत्येक दृष्टि से परख कर दीक्षा के लिए शुभमुहूर्त निश्चित किया।

दीक्षा—पटियाला शहर से २४ मील उत्तर दिशा की ओर 'छत्तबनूड' नगर में मुनिवर पहुचे। वहा वि स १९५१ आषाढ मास शुक्ल पचमी को श्रीसंघ ने बडे समारोह से दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न किया। दीक्षागुरु श्रद्धेय श्री शालिग्राम जी बने और विद्यागुरु आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज ही रहे है। दीक्षा के समय नवदीक्षित श्री आत्माराम जी की आयु कुछ महीने कम बारह वर्ष की थी, किन्तु बुद्धि महान थी।

ज्येष्ठ-श्रेष्ठ शिष्यरत्न—रावलपिण्डी के ओसवाल विशति वर्षीय वैराग्य एव सौन्दर्य की साक्षात् मूर्ति श्री खजानचन्द जी की दीक्षा का कार्यक्रम वि स. १९६० फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन गुजरावाला नगर मे श्रीसघ ने बडे उत्साह और हर्ष से सम्पन्न किया। उनके दीक्षागुरु और विद्यागुरु मुनिसत्तम परमयोगी श्री आत्माराम जी महाराज बने। गुरु और शिष्य दोनो के शरीर तथा मन पर सौन्दर्य की अपूर्व छटा दृष्टिगोचर हो रही थी। जब दोनो व्याख्यान मे बैठते थे, तब जनता को ऐसा प्रतीत होता था मानो सूर्य और चन्द्र एक स्थान मे विराजित हो। जब अध्ययन और अध्यापन होता था तब ऐसा प्रतीत होता था मानो सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी जी विराज रहे हो, क्योकि दोनों ही घोरब्रह्मचारी, महामनीषी, निर्भीक प्रवक्ता, शुद्धसयमी, स्वाध्यायपरायण, दृढनिष्ठावान, लोकप्रिय एव संघसेवी थे।

उपाध्यायपद—अमृतसर नगर मे पूज्य श्री सोहनलाल ही महाराज ने तथा पजाब प्रान्तीय श्रीसघ ने वि स १९६८ मे मुनिवर श्री आत्माराम जी महाराज को उपाध्याय पद से विभूषित किया, क्योकि उस समय सस्कृत-प्राकृत भाषा के तथा आगमों के और दर्शनशास्त्रो के उद्भट् विद्वान मुनिवर श्री आत्माराम जी महाराज ही थे। अत· इस पद से अधिक सुशोभायमान होने लगे। स्थानकवासी परम्परा मे उस काल की अपेक्षा से सर्वप्रथम उपाध्याय बनने का सौभाग्य श्री आत्माराम जी महाराज को ही प्राप्त हुआ।

जैनधर्मदिवाकर—अजमेर मे एक बृहत्साधुसम्मलेन स १९९० मे हुआ। वहा उपाध्याय श्री जी की विद्वता से श्रीसंघ मे धाक जम गई। चातुर्मास के पश्चात् जोधपुर से लौटते हुए देहली चांदनी चौक, महावीर भवन मे वि स १९९१ मे उपाध्याय जी का चातुर्मास हुआ। वहा के श्रीसघ ने आपकी विद्वता से प्रभावित होकर कृतज्ञता के रूप में आप को **"जैन-धर्मदिवाकर"** के पद से सम्मानित किया।

साहित्यरत्न—स्यालकोट शहर मे स्वामी श्री लालचन्द जी महाराज बहुत वर्षों से स्थविर होने के कारण विराजित थे। वहा की जनता ने कृतज्ञता के परिणाम स्वरूप उनकी स्वर्ण जयन्ती बडे समारोह से मनाई। उस समय उपाध्याय श्री जी भी अपने शिष्यो सहित वहां विराजमान थे। वि स १९९३ मे स्वर्णजयन्ती के अवसर पर श्रीसघ न एकमत से उपाध्याय श्री जी को-**साहित्यरत्न'** की उपाधि से सम्मानित कर कृतज्ञता प्रकट की।

नन्दीसूत्र का लेखन—वि स. २००१ वैशाख शुक्ला तृतीया, मगलवार को नन्दीसूत्र की हिन्दी व्याख्या लिखना प्रारभ किया। इस कार्य की पूर्णता वि स २००२ वैशाख शुक्ला त्रयोदशी तिथि का हुई।

आचार्यपद— वि स २००३, चैत्रशुक्ला त्रयोदशी महावरी जयन्ती के शुभ अवसर पर पजाब प्रान्तीय श्रीसघ ने एकमत होकर एव प्रतिष्ठित मुनिवरों ने सहर्ष बडे समारोह से जनता के समक्ष उपाध्याय श्री जी को पजाब सघ के आचार्य पद की प्रतीक चादर महती श्रद्धा से ओढाई। जनता के जयनाद से आकाश गूज उठा। वह देवदुर्लभ दृश्य आज भी स्मृति पट मे निहित है जो कि वर्णन शक्ति से बाहर है।

श्रमण सघीय आचार्यपद—वि स २००९ मे अक्षय तृतीया के दिन सादडी नगर में बृहत्साधु सम्मेलन हुआ। वहा सभी आचार्य तथा अन्य पदाधिकारियो ने सघैक्यहित एक मन से पदवियो का विलीनीकरण करके श्रमणसघ को सुसगठित किया और नई व्यवस्था बनाई। जब आचार्य पद के निर्वाचन का समय आया, तब आचार्य पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज का नाम अग्रगण्य रहा। आप उस समय शरीर की अस्वस्थता के कारण लुधियाना मे विराजित थे। सम्मलेन में अनुपस्थित होने पर भी आप को ही आचार्यपद प्रदान किया गया। जनगण-मानस मे आचार्य प्रवर जी के व्यक्तित्व की छाप चिरकाल से पडी हुई थी। इसी कारण दूर रहते हुए भी श्रमणसघ आप को ही श्रमणसघ का आचार्य बनाकर अपने आप को धन्य मानने लगा। लगभग दस वर्ष आपने श्रमणसघ की दृढ़ता से अनुशास्ता के रूप में सेवा की और अपना उत्तरदायित्व यथाशक्य पूर्णतया निभाया।

बहुश्रुत, पंजाब केसरी, गुरुदेव
श्री ज्ञान मुनि जी महाराज

पण्डितमरण–वि स २०१८ मे आप श्री जी के शरीर को लगभग तीन महीने कैंसर महारोग ने घेरे रखा था। महावेदना होते हुए भी आप शान्त रहते थे। दूसरे को यह भी पता नही चलता था कि आपका शरीर कैंसर रोग से ग्रस्त है। आपकी नित्य क्रिया वैसे ही चलती रही, जैसे कि पहले चलती थी। सन् १९६२ जनवरी का महीना चल रहा था। आस-पास विचरने वाले तथा दूर दूर मे भी साधु-साध्वियां अपने प्रियशास्ता के दर्शनार्थ आए। दर्शनार्थ आए हुए साधुओ की सख्या ७१ थी और साध्वियो की सख्या ४० के करीब हो गई थी।

कैसर का रोग प्रतिदिन उपचार होने पर भी बढता ही गया। जिससे आप श्री जी के भौतिक वपुरत्न मे शिथिलता अधिक से अधिक बढती चली गयी। अन्ततोगत्वा आप श्री जी ने दिनाक ३०-१-१९६२ को प्रात. दस बजे अपच्छिममारणन्तिय सलेखना करके अनशन कर दिया। दिन भर दर्शनार्थियों का तांता लगा रहा, आचार्य प्रवर जी शान्तावस्था मे पूर्ण होश के साथ अन्तर्ध्यान मे मग्न रहे। रात के दस बजे के समीप डा श्याममिह जी आए और पूज्यश्री से पूछा–'अब आप का क्या हाल है ?' पूज्य श्री जी ने शान्तचित्त से उत्तर दिया–"अच्छा हाल है," इतना कहकर पुन: अन्तर्ध्यान में संलग्न हो गए। ज्वर १०४ डिग्री चढा हुआ था, किन्तु देखने वालो को ऐसा प्रतीत होता था कि उन्हे कोई भी पीडा नही है। इतनी महावेदना होने पर भी परम शान्ति झलक रही थी। रात के १२ बजे तारीख बदली और ३१ जनवरी प्रारभ हुई। रात के दो बजे का समय हुआ, मै भी उस समय सेवा मे उपस्थित था। ठीक दो बजकर २० मिनट पर पूज्य श्री आत्माराम जी म अमर हो गए। माघवदी नवमी और दसमी की मध्यरात्रि को नश्वर शरीर का परित्याग किया। संयमशीलता, सहिष्णुता, गम्भीरता, विद्वत्ता, दीर्घदर्शिता, सरलता, नम्रता आदि पुण्यपुज से वे महान थे। उन के प्रत्येक गुण मुमुक्षुओ के लिए अनुकरणीय है। यह है नन्दीसूत्र के हिन्दी व्याख्याकार की अनुभूत और सक्षिप्त दिव्य कहानी।
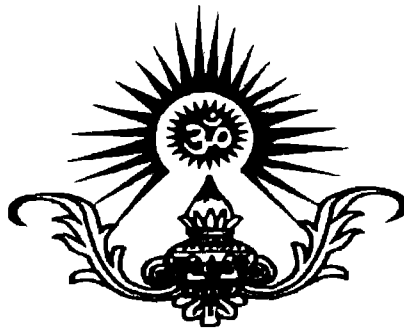
निर्भीक आत्मार्थी एवं पंचाचार की प्रतिमूर्तिः

आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि जी म.

व्यक्ति यह समझता है कि मेरी जाति का बल, धन बल, मित्र बल यही मेरा बल है। वह यह भूल जाता है कि यह वास्तविक बल नही है, वास्तव में तो आत्मबल ही मेरा बल है। लेकिन भ्राति के कारण वह उन सारे बलो को बढाने के लिए अनेक पाप-कर्मों का उपार्जन करता है, अनत-अशुभ कर्म-वर्गणाओ को एकत्रित करता है, जिससे कि उसका वास्तविक आत्मबल क्षीण होता है। जाति, मित्र, शरीर, धन इन सभी बलो को बढा करके भी वह चिंतित और भयभीत रहता है कि कही मेरा यह बढाया हुआ बल क्षीण न हो जाए, उसका यह डर इस बात का सूचक है कि जिस बल को उसने बढ़ाया है वह उसका वास्तविक बल नही है।

सर्वश्रेष्ठ बल–वास्तविक बल तो अपने साथ अभय लेकर आता है। आत्मबल जितना बढता है उतना ही अभय का विकास होता है। अन्य सारे बल भय बढाते हैं। व्यक्ति जितना भयभीत होता है उतना ही वह सुरक्षा चाहता है। बाहर का बल जितना ही बढता है उतना ही भय भी बढता है और भय के पीछे सुरक्षा की आवश्यकता भी उसे महसूस होती है। इस प्रकार जितना वह बाह्य-रूप से बलवान बनता है उतना ही भयभीत और उतनी ही सुरक्षा की आवश्यकता अनुभव करता है। भगवान अभय मे जीवन को जीए, उन्होने आत्मबल की साधना की। वह चाहते तो किसी का सहारा ले सकते थे लेकिन उन्होने किसी का सहारा, किसी की सुरक्षा क्यो नही ली, क्योकि वे जानते थे कि बाह्य-बल बढाने से आत्मबल के ज्ञान का जागरण नही होता। इसलिए वे सारे सहारे छोडकर आत्मबल-आश्रित और आत्मनिर्भर बन गए। जैसे कहा जाता है कि श्रमण स्वावलम्बी होता है, अर्थात् वह किसी दूसरे के बल पर, व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति के बल पर नहीं खडा अपितु स्वयं अपने बल पर खड़ा हुआ है। जो दूसरे के बल पर खडा हुआ है वह सदैव दूसरो को खुश रखने के लिए प्रयत्नरत रहता है। जिस हेतु पापकर्म या माया का सेवन भी वह कर लेता है। आत्मबल बढ़ाने के लिए सत्य, अहिसा और साधना का मार्ग है। भगवान का मार्ग वीरो का मार्ग है। वीर वह है जो अपने आत्मबल पर आश्रित रहता है। यह भ्रान्ति अधिकांश लोगो की है कि बाह्यबल बढ़ने से ही

जैन धर्म दिवाकर ध्यान योगी
आचार्य सम्राट् डा० श्री शिवमुनि जी महाराज

मेरा बल बढेगा। इसलिए अनेक बार साधुजन भी ऐसा कहते है कि मेरा श्रावक बल बढेगा तो मेरा बल बढ़ेगा, मेरे प्रति मान, सम्मान एवं भक्ति रखने वालो की वृद्धि होगी तो मेरा बल बढेगा। फिर इस हेतु से अनेक प्रपच भी बढेंगे। यही अज्ञान है। वास्तविकता यह है कि बाह्य बल बढाने से, उस पर आश्रित रहने से आत्मबल नही बढ़ता अपितु क्षीण होता है। लेकिन आत्मबल का विकास करने से सारे बल अपने आप बढ़ते है।

साधु कौन ?—साधु वही है जो बाह्यबल का आश्रय छोडकर आत्मबल पर ही आश्रित रहता है। अत: आत्मबल का विकास करो। उसके लिए भगवान के मार्ग पर चलो। चित्त में जितनी स्थिरता और समाधि होगी उतना ही आत्मबल का विकास होगा और उसी से समाज-श्रावक इत्यादि बल आपके साथ चलेगे। बिना आत्मबल के दूसरा कोई बल साथ नही देगा।

असंयम किसे कहते हैं ?—इन्द्रियो के विषयो के प्रति जितनी आसक्ति होगी उतनी ही उन विषयो की पूर्ति करने वाले साधनो के प्रति (धन, स्त्री, पद, प्रतिष्ठा आदि) आसक्ति होगी। साधनो के प्रति रही हुई इस आसक्ति के कारण वह निरन्तर उसी और पुरुषार्थ करता है, उनको पाने के लिए पुरुषार्थ करता है, इस पुरुषार्थ का नाम ही असयम है।

संयम क्या है ?—इन्द्रिय निग्रह के लिए जो पुरुपार्थ किया जाता है वह संयम है और विषयो को जुटाने के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है वह असंयम है।

साधु पद में गरिमायुक्त आचार्य पद—साधुजन स्वय की साधना करते हैं और आवश्यकता पडने पर सहयोग भी करते है। लेकिन आचार्य स्वय की साधना करने के साथ-साथ (अपने लिए उपयुक्त साधना ढूंढने के साथ-साथ) यह भी जानते हैं और सोचते है कि सघ के अन्य सदस्यो को कौन-सी और कैसी साधना उपयुक्त होगी। उनके लिए साधना का कौन-सा और कैसा मार्ग उपयुक्त है। जैसे मां स्वय ही खाना नहीं खाती अपितु किस को क्या अच्छा लगता है, किसके लिए क्या योग्य है यह जान-देखकर वह सबके लिए खाना बनाती भी है। इसी प्रकार आचार्यदेव जानते हैं कि शुभ आलम्बन में एकाग्रता के लिए किसके लिए क्या योग्य है और उससे वैसी ही साधना करवाते हैं। इस प्रकार आचार्य पद की एक विशेष गरिमा है।

पंचाचार की प्रतिमूर्ति—हमारे आराध्य स्वरूप पूज्य गुरुदेव श्री शिवमुनि जी म दीक्षा लेने के प्रथम क्षण से ही तप-जप एवं ध्यान योग की साधना मे सलग्न रहे हैं। आपकी श्रेष्ठता, ज्येष्ठता और सुपात्रता को देखकर ही हमारे पूर्वाचार्यों ने आपको श्रमण सघ के पाट पर आसीन कर जिन-शासन की महती प्रभावना करने का संकल्प किया। जिनशासन की महती कृपा आप पर हुई।

यह संक्रमण काल है, जब जिनशासन मे सकारात्मक परिवर्तन हो रहे है। भगवान महावीर के २६००वे जन्म कल्याणक महोत्सव पर हम सभी को एकता, संगठन एवं आत्मीयता-पूर्ण

वातावरण मे आत्मार्थ की ओर अग्रसर होना है। आचार्य संघ का पिता होता है। आचार्य जो स्वय करता है वही चतुर्विध सघ करता है। वह स्वय पचाचार का पालक होता है तथा सघ को उस पथ पर ले जाने मे कुशल भी होता है। आचार्य पूरे संघ को एक दृष्टि देते है जो प्रत्येक साधक के लिए निर्माण एव आत्मशुद्धि का पथ खोल देती है। हमारे आचार्य देव पचाचार की प्रतिमूर्ति है। पचाचार का सक्षिप्त विवरण निम्नोक्त है–

ज्ञानाचार–आज ससार में जितना भी दुख है उसका मूल कारण अज्ञान है। अज्ञान के परिहार हेतु जिनवाणी का अनुभवगम्य ज्ञान अति आवश्यक है। आज ज्ञान का सामान्य अर्थ कुछ पढ लेना, सुन लेना एव उस पर चर्चा कर लेना या किसी और को उपदेश देना मात्र समझ लिया गया है। लेकिन जिनशासन में ज्ञान के साथ सम्यक् शब्द जुडा है। सम्यक् ज्ञान अर्थात् जिनवाणी के सार को अपने अनुभव से जानकर, जन-जन को अनुभव हेतु प्रेरित करना। द्रव्य श्रुत के साथ भावश्रुत को आत्मसात् करना। हमारे आराध्यदेव ने वर्षो तक बहुश्रुत गुरुदेव श्री ज्ञानमुनि जी म सा , उपाध्याय प्रवर्तक श्री फूलचंद जी म.सा. 'श्रमण' एवं अनेक उच्चकोटि के सतों से द्रव्य श्रुत का ज्ञान ग्रहण कर अध्यात्म साधना के द्वारा भाव श्रुत मे परिणत किया एव उसका सार रूप ज्ञान चतुर्विध सघ को प्रतिपादित कर रहे है एव अनेक आगमो के रहस्य जो बिना गुरुकृपा से प्राप्त नही हो सकते थे, वे आपको जिनशासनदेवों एव प्रथम आचार्य भगवत श्री आत्माराम जी म. की कृपा से प्राप्त हुए है। वही अब आप चतुर्विध सघ को प्रदान कर रहे हैं। आपने भाषाज्ञान की दृष्टि से गृहस्थ मे ही डबल एम ए, किया एव सभी धर्मो मे मोक्ष के मार्ग की खोज हेतु शोध ग्रन्थ लिखा और जैन धर्म से विशेष तुलना कर जैन धर्म के राजमार्ग का परिचय दिया। आज आपके शोध ग्रन्थ, साहित्य एव प्रवचनो द्वारा ज्ञानाचार का प्रसार हो रहा है। आप नियमित सामूहिक स्वाध्याय करते हैं एवं सभी को प्रेरणा देते है। अत: प्रत्येक साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका ज्ञानाचारी बनकर ही आचार्यश्री की सेवा कर सकते है।

दर्शनाचार–दर्शन अर्थात् श्रद्धा, निष्ठा एव दृष्टि। आचार्य स्वयं सत्य के प्रति निष्ठावान होते हुए पूरे समाज को सत्य की दृष्टि देते हैं। जैन दर्शन में सम्यक् दृष्टि के पांच लक्षण बताए है–१ सम अर्थात् जो समभाव मे रहता है। २ सवेग–अर्थात् जिसके भीतर मोक्ष की रुचि है उसी ओर जो पुरुषार्थ करता है, जो उद्वेग में नही जाता। ३ निर्वेद–जो समाज-संघ मे रहते हुए भी विरक्त है, किसी में आसक्त नहीं है। ४ आस्था–जिसकी देव, गुरु, धर्म के प्रति दृढ श्रद्धा है, जो स्व मे खोज करता है, पर मे सुख की खोज नही करता है तथा जिसकी आत्मदृष्टि है, पर्यायदृष्टि नही है। पर्याय-दृष्टि राग एवं द्वेष उत्पन्न करती है। आत्म-दृष्टि सदैव शुद्धात्मा के प्रति जागरूक करती है। ऐसे दर्शनाचार से सपन्न है हमारे आचार्य प्रवर। चतुर्विध संघ उस दृष्टि को प्राप्त करने के लिए ऐसे आत्मार्थी सद्गुरु की शरण में पहुंचे और जीवन का दिव्य आनन्द अनुभव करे।

चारित्राचार–आचार्य भगवन् श्री आत्माराम जी म. चारित्र की परिभाषा करते हुए कहते है कि चयन किए हुए कर्मो को जो रिक्त कर दे उसे चारित्र कहते हैं। जो सदैव समता एव समाधि की ओर हमे अग्रसर करे वह चारित्र है। चारित्र से जीवन रूपान्तरण होता है। जीवन की जितनी भी समस्याए है सभी चारित्र से समाप्त हो जाती है। इसीलिए कहा है **'एकान्त सुही मुणी वियरागी'**। वीतरागी मुनि एकान्त रूप से सुखी हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष रूपी शत्रुओं को दूर करने के लिए आप वर्षो से साधनारत है। आप अनुभव गम्य, साध ना जन्य ज्ञान देने हेतु ध्यान शिविरो द्वारा द्रव्य एवं भाव चारित्र की ओर समग्र समाज को एक नयी दिशा दे रहे हैं। आप सत्य के उत्कृष्ट साधक है एव प्राणी मात्र के प्रति मगल भावना रखते है एव प्रकृति से भद्र एव ऋजु है। इसलिए प्रत्येक वर्ग आपके प्रति समर्पित है।

तपाचार–गौतम स्वामी गुप्त तपस्या करते थे एव गुप्त ब्रह्मचारी थे। इसी प्रकार हमारे आचार्य प्रवर भी गुप्त तपस्वी हैं। वे कभी अपने मुख से अपने तप एवं साधना की चर्चा नहीं करते है। वर्षो से एकान्तर तप उपवास के साथ एवं आभ्यतर तप के रूप में सतत स्वाध्याय एव ध्यान तप कर रहे है। इसी ओर पूरे चतुर्विध सघ को प्रेरणा दे रहे हैं। संघ मे गुणात्मक परिवर्तन हो, अवगुण की चर्चा नही हो, इसी संकल्प को लेकर चल रहे है। ऐसे उत्कृष्ट तपस्वी आचार्य देव को पाकर जिनशासन गौरव का अनुभव कर रहा है।

वीर्याचार–सतत अप्रमत्त होकर पुरुषार्थ करना वीर्याचार है। आत्मशुद्धि एवं संयम में स्वय पुरुषार्थ करना एव करवाना वीर्याचार है।

ऐसे पचाचार की प्रतिमूर्ति है हमारे श्रमण सघ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि जी म। इनके निर्देशन में सम्पूर्ण जैन समाज को एक दृष्टि की प्राप्ति होगी। अत. हृदय की विशालता के साथ, समान विचारो के साथ, एक धरातल पर, एक ही संकल्प के साथ हम आगे बढें और शासन प्रभावना करें।

निर्भीक आचार्य–हमारे आचार्य भगवन् आत्मबल के आधार पर साधना के क्षेत्र मे आगे बढ़ रहे है। सघ का सचालन करते हुए अनेक अवसर ऐसे आये जहा पर आपको कठिन परीक्षण के दौर से गुजरना पड़ा। किन्तु आप निर्भीक होकर धैर्य से आगे बढते गए। आपश्री जी श्रमण संघ के द्वारा पूरे देश को एक दृष्टि देना चाहते है। आपके पास अनेक कार्यक्रम है। आप चतुर्विध सघ मे प्रत्येक वर्ग के विकास हेतु योजनाबद्ध रूप से कार्य कर रहे है।

पूज्य आचार्य भगवन् ने प्रत्येक वर्ग के विकास हेतु निम्न योजनाए समाज के समक्ष रखी है–

१ बाल सस्कार एव धार्मिक प्रशिक्षण के लिए गुरुकुल पद्धति के विकास हेतु प्रेरणा।

२ साधु-साध्वी, श्रावक एवं श्राविकाओं के जीवन के प्रत्येक क्षण मे आनन्द पूर्ण वातावरण हो, इस हेतु सेवा का विशेष प्रशिक्षण एवं सेवा केन्द्रों की प्रेरणा।

३ देश-विदेश मे जैन-धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु स्वाध्याय एव ध्यान साधना के प्रशिक्षक वर्ग को विशेष प्रशिक्षण।

४ व्यसन-मुक्त जीवन जीने एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आनद एव सुखी होकर जीने हेतु शुद्ध धर्म-ध्यान एव स्वाध्याय शिविरों का आयोजन।

इन सभी कार्यों को रचनात्मक रूप देने हेतु आपश्री जी के आशीर्वाद से नासिक में **'श्री सरस्वती विद्या केन्द्र'** एवं दिल्ली मे **'भगवान महावीर मेडीटेशन एड रिसर्च सेंटर ट्रस्ट'** की स्थापना की गई है। इस केन्द्रीय सस्था के दिशा निर्देशन मे देश भर में त्रिदिवसीय ध्यान योग साधना शिविर लगाए जाते है। उक्त शिविरों के माध्यम से हजारों-हजार व्यक्तियो ने स्वस्थ जीवन जीने की कला सीखी है। अनेक लोगो को असाध्य रोगो से मुक्ति मिली है। मैत्री, प्रेम, क्षमा और सच्चे सुख को जीवन मे विकसित करने के ये शिविर अमोघ उपाय सिद्ध हो रहे है।

इक्कीसवीं सदी के प्रारभ मे ऐसे महान विद्वान् और ध्यान-योगी आचार्यश्री को प्राप्त कर जैन सघ गौरवान्वित हुआ है।

-शिरीष मुनि

अनध्यायकाल

स्वाध्याय के लिए आगमो में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए, अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रथो का भी अनध्यायकाल माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या-संयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि–

दसविहे अंतलिक्खिए असज्झाइए पण्णत्ते, तजहा-उक्कावाए, दिसिदाहे, गज्जिए, विज्जुए, निग्घाए, जूयए, जक्खालित्ते, धूमिया, महिया, रतउग्घाए । दसविहे ओरालिए, असज्झाइए पण्णत्ते, तंजहा-अट्ठि-मंसं, सोणिए, असुइसामते, सुसाणसामंते, चंदोवराए, सूरोवराए, पडणे, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

स्थानागसूत्र स्थान १०।

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहिं महापडिवएहि सज्झायं करित्तए, तंजहा-आसाढ पाडिवए, इंद महापाडिवाते, कतिएपाडिवए, सुगिम्ह पाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा-पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा-पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चुसे।

स्थानागसूत्र स्थान ४, उद्देश २ ।

उपरोक्त सूत्र पाठ के अनुसार दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदाओ की पूर्णिमा और चार संध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए है, जिनका सक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे कि–

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात (तारापतन)–यदि महत् तारा पतन हुआ हो तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्त वर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलों के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

किन्तु गर्जन और विद्युत का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह गर्जन और विद्युत् प्राय: ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अत. आर्द्रा में स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया को सध्या और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७ यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है, वह यक्षादीप्त होता है। अत: आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे, तब तक शास्त्र स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भ मास होता है, इसमे धूम्रवर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुध पडती है, वह धूमिका कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. महिका श्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुध महिका कहलाती है, जब तक वह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज उद्घात—वायु के कारण आकाश मे जो चारो ओर धूली छा जाती है, जब तक वह धूली फैली रहे, तब तक स्वाध्याय वर्जित है।

उपरोक्त १० कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी, मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहा से उक्त वस्तुएं उठाई न जाए, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार ६० हाथ के आस-पास इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बंधी अस्थि, मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय तीन दिन तक का होता है। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश: सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि–मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान–श्मशान भूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना गया है।

१६. चन्द्रग्रहण–चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण–सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश: आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्याय काल माना गया है।

१८. पतन–किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र-पुरुष के निधन होने पर जब तक उसका दाह-संस्कार न हो तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ़ न हो तब तक शनै:-शनै: स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह–समीपस्थ राजाओं के परस्पर युद्ध होने पर जब तक शाति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि तक स्वाध्याय नही करे।

२० औदारिक शरीर–उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक वह कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सबधी कहे गए हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा–आषाढ पूर्णिमा, आश्विन पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा और चैत्र पूर्णिमा, ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रात:, सांय, मध्याह्न और अर्धरात्रि–प्रात: सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घडी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि मे भी एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव
आगम प्रकाशन समिति के सहयोगी-सदस्य

1 श्री महेन्द्र कुमार जी जैन, मिनी किग, लुधियाना, पजाब

2 श्री शोभनलाल जी जैन, लुधियाना, पजाब

3 आर एन ओसवाल परिवार, लुधियाना, पजाब

4 सुश्राविका लीला बहन, मोगा, पजाब

5 सुश्राविका सुशीला बहन लोहटिया, लुधियाना, पजाब

6. उमेश बहन, लुधियाना, पजाब

7 स्व श्री सुशील कुमार जी जैन, लुधियाना, पजाब

8 श्री नवरग लाल जी जैन, सगरिया मण्डी, पजाब

9 श्रीमती शकुन्तला जैन धर्मपत्नी श्री राजकुमार जैन, सिरसा, हरियाणा

10 श्री रवीन्द्र कुमार जैन, भठिण्डा, पजाब

11 लाला श्रीराम जी जैन सर्राफ, मालेरकोटला, पजाब

12 श्री चमनलाल जी जैन सुपुत्र श्री नन्द किशोर जी जैन, मालेरकोटला, पजाब

13 श्रीमती मूर्ति देवी जैन धर्मपत्नी श्री रतनलाल जी जैन (अध्यक्ष), मालेरकोटला, पजाब

14 श्रीमती माला जैन धर्मपत्नी श्री राममूर्ति जैन लोहटिया, मालेरकोटला, पजाब

15 श्रीमती एव श्री रत्नचद जी जैन एड सस, मालेरकोटला, पजाब

16 श्री बचनलाल जी जैन सुपुत्र स्व श्री डोगरमल जी जैन, मालेर कोटला, पजाब

17 श्री अनिल कुमार जैन, श्री कुलभूषण जैन सुपुत्र श्री केसरीदास जैन, मालेरकोटला, पजाब

18 श्रीमती काता जैन धर्मपत्नी श्री गोकुलचन्द जी जैन, शिरडी, महाराष्ट्र

19 किरण बहन, रमेश कुमार जैन बोकडिया, सूरत, गुजरात

20 श्री श्रीपत सिह गोखरू, जुहू स्कीम मुम्बई, महाराष्ट्र

21 प्रेमचन्द जैन सुपुत्र श्री बनारसी दास जैन, मालेरकोटला, पजाब

22 प्रमोद जैन, मन्त्री एस एस जैन सभा, मालेरकोटला, पंजाब

23 श्री सुदर्शन कुमार जैन, सेक्रेटरी एस एस जैन सभा, मालेरकोटला, पंजाब

24 श्री जगदीश चन्द्र जैन हवेली वाले, मालेरकोटला, पजाब

25 श्री सतोष जैन, खन्ना मण्डी, पजाब

26 श्री पार्वती जैन महिला मण्डल, मालेरकोटला, पजाब

प्रस्तुत आगम श्री निरयावलिका सूत्रम् का प्रकाशन श्रावकरत्न श्री लोकनाथ जी जैन (सुपुत्र सुश्रावक श्री लद्धामल जी एवं धर्मप्राण श्राविका श्रीमती लब्भा देवी जैन) के उदार सौजन्य से सम्पन्न हो रहा है।

श्रीमान् लोकनाथ जी जैन दिल्ली महानगर के सुप्रसिद्ध व्यवसायी हैं। आप साबुन व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। "नौलखा साबुन" इस नाम के आपके उत्पादन गुणवत्ता के लिए भारत-भर में अपनी एक विशेष पहचान रखते हैं।

व्यवसाय में प्रामाणिकता और विश्वसनीयता में श्रीमान लोकनाथ जहां अपनी विशेष पहचान रखते हैं वहीं सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी अपनी सहृदयता, उदारता और दानवीरता के कारण सुख्यात हैं।

प्रस्तुत आगम के प्रकाशन पर्व पर प्राप्त उदार सौजन्य के लिए आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति, लुधियाना एवं भगवान महावीर रिसर्च एण्ड मेडिटेशन सेंटर ट्रस्ट संस्था, नई दिल्ली श्रावकरत्न श्री लोकनाथ जी का हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करती हैं।

–प्रकाशक

सम्पर्क सूत्र :
29 पार्क एरिया, करोल बाग, नई दिल्ली-5
फोन : 23632071 (नि०), 23944174 (ऑ)

27 श्री आनन्द प्रकाश जैन, अध्यक्ष जैन महासघ, दिल्ली प्रदेश

28 श्री चान्दमल जी, मण्डोत, सूरत

29 श्री शील कुमार जैन, दिल्ली

30 श्री राजेन्द्र कुमार जी लुकड, पूना

31 श्री गोविन्द जी परमार, सूरत

32 श्री शान्तिलाल जी, मण्डोत, सूरत

33 श्री चान्दमल जी माद्रेचा, सूरत

34 श्री आर डी जैन, विवेक विहार, दिल्ली

35 श्री एस एस जैन, प्रीत विहार, दिल्ली

36 श्री राजकुमार जैन, सुनाम, पजाब

37 श्री लोकनाथ जी जैन, नोलखा साबुन वाले, दिल्ली

38 श्री नेमचन्द जी जैन, सरदूलगढ, पजाब

39 श्री स्नेहलता जैन धर्मपत्नी श्री किशनलाल जैन, सफीदो मण्डी (हरियाणा)

40 श्री सूर्यकान्त टी भटेवरा, पुणे, (महाराष्ट्र)

41 श्रीमती किरण जैन, करनाल (हरियाणा)

42 स्त्री सभा, रूपा मिस्त्री गली, लुधियाना, पजाब

43 वर्धमान शिक्षण सस्थान, फरीदकोट, पजाब

44 एस एस जैन सभा, जगराओ, पजाब

45 एस एस जैन सभा, गीदडबाहा, पजाब

46 एस एस जैन सभा, केसरी-सिहपुर, पजाब

47 एस एस जैन सभा, हनुमानगढ, (राजस्थान)

48 एस एस जैन सभा, रत्नपुरा, पजाब

49 एस एस जेन सभा, रानिया, पजाब

50 एस एस जैन सभा, सगरिया, पजाब

51 एस एस जैन सभा, सरदूलगढ, पजाब

52 एस. एस जैन सभा, बरनाला, पजाब

53 श्री एस एस जैन सभा, मलौट मण्डी, पजाब

54 श्री एस एस जैन सभा, सिरसा, हरियाणा

55 एस एस जैन बिरादरी, तपावाली, मालेरकोटला, पजाब

56 श्री एस एस जैन सभा, सगरूर, पजाब

57 श्री एस एस जैन सभा, गाधी मण्डी, पानीपत (हरियाणा)

अपने संघ, संस्था एवं घर में अपना पुस्तकालय

"भगवान महावीर मेडीटेशन एण्ड रिसर्च सेन्टर ट्रस्ट" के अन्तर्गत "आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति" द्वारा आचार्य सम्राट् पूज्य श्री शिवमुनि जी म सा के निर्देशन मे श्रमण सघीय प्रथम पट्टधर आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी म सा द्वारा व्याख्यायित जैन आगमों की टीकाओ का पुनर्मुद्रण एव सपादन कार्य द्रुतगति से चल रहा है। श्री उपासकदशाग सूत्रम् , श्री अनुत्तरौपपातिक सूत्रम् , श्री उत्तराध्ययन सूत्रम् भाग 1-2-3, अतकृद्दशाग सूत्रम्, श्री आचाराड्ग सूत्रम् (प्रथम तथा द्वितीय श्रुतस्कध), श्री दशवैकालिक सूत्रम्, श्री नन्दीसूत्रम्, श्री विपाकसूत्रम्, श्री निरयावलिका सूत्रम् प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रकाशन योजना के अन्तर्गत जो भी श्रावक सघ अथवा सस्था या कोई भी स्वाध्यायी बन्धु आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी म सा. के आगमो के प्रकाशन मे सहयोग देना चाहते है एवं स्वाध्याय हेतु आगम प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए एक योजना बनाई गई है। 11,000/- (ग्यारह हजार रुपय मात्र) भेजकर जो भी इस प्रकाशन कार्य मे सहयोग देगे उनको प्रकाशित समस्त आगम एव आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि जी म सा द्वारा लिखित समस्त साहित्य तथा "आत्म दीप" मासिक पत्रिका दीर्घकाल तक प्रेषित की जाएगी। इच्छुक व्यक्ति निम्न पतो पर सम्पर्क करे:-

(1) भगवान महावीर मेडीटेशन एण्ड रिसर्च सेन्टर ट्रस्ट
द्वारा श्री आर के जैन, सी-55, शक्ति नगर एक्सटेशन
नई दिल्ली-110052
फोन 011-27473279, 32030139

(2) श्री प्रमोद जैन
द्वारा श्री श्रीपाल जैन पुराना लोहा बाजार
पो : मालेर कोटला, जिला · संगरूर, (पजाब)
फोन . 0167-5258944

(3) श्री अनिल जैन
बी-24-4716, सुन्दर नगर
नियर जैन स्थानक लुधियाना-141008 (पजाब)
फोन . 0161-2601725

अनुक्रम

नमन

वीर प्रभु महाप्राण, सुधर्मा जी गुणखान।
अमर जी युगभान, महिमा अपार है।
मोतीराम प्रज्ञावन्त, गणपत गुणवन्त।
जयराम जयवन्त, सदा जयकार है।।
ज्ञानी—ध्यानी शालीग्राम, जैनाचार्य आत्माराम।
ज्ञान गुरु गुणधाम, नमन हजार है।
ध्यान योगी शिवमुनि, मुनियो के शिरोमणि।
पूज्यवर प्रज्ञाधनी शिरीष नैया पार है।।

(प्रथम-वर्ग)

नमोऽत्थुण समणस्स भगवओ महावीरस्स
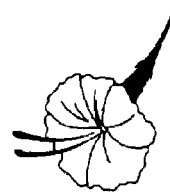
निरयावलियाओ

श्री निरयावलिका सूत्रम्

राजगृह नगर वर्णन

मूल–तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहेणामं णयरे होत्था, रिद्ध० (उत्तर-पुरच्छिमे दिसीभाए) गुणसिलए चेइए, वण्णओ०। असोगवरपायवे पुढविसिलापट्टए, वण्णओ० ॥ १॥

छाया–तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमभवत्, ऋद्ध० (उत्तरपौरस्त्ये) दिग्भागे गुणशैलकः चैत्यम् (वर्णकः), अशोकवरपादपः, पृथ्वी-शिलापट्टकः ॥ १॥

पदार्थान्वयः–तेणं कालेणं–अवसर्पिणी काल के चतुर्थ भाग में, **तेणं समएणं**–उस विशेष समय में, **रायगिहे णामं**– राजगृह नाम वाला, **णयरे**–नगर, **होत्था**–था, **रिद्ध०**–ऋद्धि आदि से युक्त, **(उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए)**–उत्तर और पूर्व दिशा के विभाग में, **गुणसिलए**–गुणशीलक नाम वाला, **चेइए**–चैत्य व्यन्तरायतन, **वण्णओ०**–उसका विशेष वर्णन समझना, **असोगवरपायवे**–अशोक नाम वाला एक (औपपातिकवत्) वृक्ष, **पुढवीसिला-पट्टए**–उसके नीचे पृथ्वी शिला का सिंहासन रूप पट्टक था, **वण्णओ**–जैसा कि वर्णन किया गया है।

मूलार्थ–उस काल तथा उस समय में राजगृह नामक एक नगर था जो ऋद्धि आदि से युक्त था, उसके ईशान कोण में, गुणशील नाम वाला चैत्य था, (उसका

औपपातिक-सूत्र जैसा वर्णन समझना) उस चैत्य में एक अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिला का पट्टक था।

टीका–इस सूत्र में राजगृह नगरी का संक्षेप में वर्णन किया गया है। जिस प्रकार औपपातिक सूत्र में चम्पा नाम की नगरी का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, ठीक वैसा ही वर्णन राजगृह नगर का जानना चाहिए, किन्तु सूत्रकार ने नगर के स्वरूप का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया है।

काल शब्द से अवसर्पिणी काल के चतुर्थ भाग को समझना चाहिए और "**तस्मिन् समये**" शब्द से वह विशेष समय जानना चाहिए, जैसे कि उस समय मगध प्रान्त में राजगृह नाम का एक प्रसिद्ध नगर था, जिस पर श्रेणिक नाम के राजा का राज्य था, वहां श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, इत्यादि विषय जानने चाहिएं।

मूल पाठ मे '**रिद्ध**' पद देकर विषय को पूर्ण किया गया है, किन्तु कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे "**रिद्धित्थिमिय- समिद्धे**" इस प्रकार का पाठ प्राप्त होता है, जिसका भाव यह है कि वह नगर भवनादि से युक्त, भय-रहित और धन-धान्यादि से परिपूर्ण था। कुछ हस्तलिखित प्रतियो में गुणशैलक पद से पूर्व "**तत्थणं**" पद दिया गया है और कुछ हस्तलिखित प्रतियों मे यह समग्र पाठ निम्न प्रकार से प्राप्त होता है–**तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं णयरे होत्था, रिद्धित्थिमिय-समिद्धे, तस्स णं रायगिहस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, गुणसिलए नामं चेइए होत्था।**" इसका भाव यह है कि उस समय राजगृह नाम का एक नगर था, वह नगर अत्यन्त समृद्ध था, उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पश्चिम भाग में एक गुणशीलक नाम का चैत्य था।

'**वण्णओ०**' पद से औपपातिक सूत्र में जो नगरी का वर्णन किया गया है वह सब यहां पर समझ लेना चाहिए और साथ ही गुणशील नामक चैत्य का वर्णन भी जान लेना चाहिए। जैसे कि–"**वण्णओ' त्ति चैत्यवर्णको वाच्यः**"।

राजगृह नगर– यह नगर भवनादि वैभव से सम्पन्न सुशासित, सुरक्षित एव धन-धान्य से समृद्ध था। वहां नगर-जन और जानपद प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रमुदित रहते थे। निकटवर्ती कृषि-भूमि अतीव रमणीय थी। उसके चारो ओर आस-पास ग्राम बसे हुए थे। सुन्दर स्थापत्य-कला से सुशोभित चैत्यो और पण्य-तरुणियों के सन्निवेशों का वहा बाहुल्य था। तस्करो आदि का अभाव होने से वह नगर क्षेम रूप सुख-शांतिमय था। सुभिक्ष होने से भिक्षुओ को वहां सुगमता से भिक्षा मिल जाती थी। वह नट-नर्तक आदि मनोरंजन करने वालो से व्याप्त-सेवित था और उद्यानों आदि की अधिकता से नन्दन वन सा प्रतीत होता था। सुरक्षा की दृष्टि से वह नगर खात, परिखा एवं प्राकार से परिवेष्टित था। नगर में

शृंगाटक–सिंघाड़े जैसे आकार वाले त्रिकोणाकार, चौराहे तथा राजमार्ग बने हुए थे। वह नगर अपनी सुन्दरता से दर्शनीय, मनोरम और मनोहर था।

गुणशिलक चैत्य–वह चैत्य नगर के बाहर ईशान कोण में था। वह चैत्य अत्यन्त प्राचीन एवं विख्यात था। भेट के रूप में प्रचुर धन-सम्पत्ति उसे प्राप्त होती थी। वह जनसमूह द्वारा प्रशंसित था। छत्र, ध्वजा, घंटा, पताका आदि से परिमंडित था। उसका आगन लिपा-पुता था और दीवालो पर लम्बी-लम्बी मालाएं लटकी रहती थीं। वहां स्थान-स्थान पर गोरोचन चदन आदि के थापे लगे हुए थे। काले अगर आदि की धूप की मघमघाती महक से वहां का वातावरण गंध-वर्तिका जैसा प्रतीत होता था और नट, नर्तक, भोजक मागध-चारण आदि यशोगायको से व्याप्त रहता था। दूर-दूर तक के देशवासियों में उसकी कीर्ति बखानी जाती थी और बहुत से लोग वहां मनौती पूर्ण होने पर मनोतिया देने आया करते थे। वे उसे अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, कल्याणकारक, मंगलरूप एवं दिव्य मान कर विशेष रूप से उपासनीय मानते थे। विशेष पर्व-त्यौहारों पर हजारों प्रकार की पूजा-उपासना वहा की जाती थी। बहुत से लोग वहा आकर जय-जयकार करते हुए उसकी पूजा-अर्चना करते थे।

वनखण्ड–वह गुणशिलक चैत्य चारो ओर से एक वनखण्ड से घिरा हुआ था। वृक्षों की सघनता से वह काली आभा वाला, शीतल आभा वाला, एवं सलौनी आभा वाला दिखता था। वहां के सघन एवं विशाल वृक्षो की शाखाओ-प्रशाखाओं के परस्पर गुथ जाने से ऐसा रमणीक दिखता था मानो सघन मेघ घटाएं घिरी हुई हों।

अशोक वृक्ष–उस वनखण्ड के बीचों-बीच एक विशाल एव रमणीय अशोक वृक्ष था। वह उत्तम मूल, कंद, स्कन्ध, शाखाओ, प्रशाखाओ, प्रवालों, पत्तो, पुष्पो और फलो से सम्पन्न था। उसका सुघड और विशाल तना इतना विशाल था कि अनेक मनुष्यों द्वारा भुजाएं फैलाए जाने पर भी धरा नहीं जा सकता था। उसके पत्ते एक दूसरे से सटे हुए, अधोमुख और निर्दोष थे। नवीन पत्तों, कोमल किसलयों आदि से उसका शिखर भाग सुशोभित था। तोता, मैना, तीतर, बटेर, कोयल, मयूर आदि पक्षियो के कलरव से गूंजता रहता था। वहां मधु-लोलुप भ्रमर-समूह मस्ती मे गुनगुनाते रहते थे। उसके आस-पास में अन्यान्य वृक्ष, लताकुंज, मंडप आदि शोभायमान थे। वह अतीव तृप्तिप्रद विपुल सुगंध को फैला रहा था। अति विशाल परिधि वाला होने से उस के नीचे अनेक रथ, डोलियां, पालकियां आदि ठहर सकती थीं।

पृथ्वीशिलापट्टक–उस अशोक वृक्ष के नीचे स्कन्ध से सटा हुआ एक पृथ्वीशिला-पट्टक रखा था। उसका वर्ण काला था और उसकी प्रभा अंजन, मेघमाला, नील कमल,

केश-राशि, खंजन पक्षी, भैंसे के सीग के गर्भभाग, जामुन के फल अथवा अलसी के फूल जैसी थी। वह अत्यन्त चिकना था। वह अष्टकोण था और दर्पण के समान सम, सुरम्य एवं चमकदार था। उस पर ईहामृग, भेडिया, वृषभ, अश्व, मगर, विहग (पक्षी), व्याल (सर्प), किन्नर, रुरु (हिरण विशेष), शरभ, कुंजर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र उकेरे हुए थे। उसका स्पर्श मृगछाला, रुई, मक्खन और अर्कतूल (आक की रुई) आदि के समान सुकोमल था। इस प्रकार का वह शिलापट्टक मनोरम, दर्शनीय, मोहक और अतीव मनोहर था।

"**तेणं कालेणं तेणं समएणं**" ये दोनो ही पद सप्तमी के अर्थ में तृतीयान्त दिए गए हैं। यदि '**ण**' वाक्यालकार अर्थ में लिया जाए और मागधी का एकारान्त शब्द माना जाए तो फिर उस एकारान्त को छेद कर केवल "**ते**" शब्द का सप्तमी के अर्थ में प्रयोग होता है, अर्थात् "**तस्मिन् काले तस्मिन् समये**" इन शब्दो के द्वारा वह विशेष समय ग्रहण करना चाहिये।

आर्य सुधर्मा का आगमन

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे नामं अणगारे जाइसंपन्ने जहा केसी (जाव०) पंचहिं अणगार-सएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जेणेव रायगिहे णयरे (जाव) जहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं (तवसा अप्पाणं भावे- माणे) जाव विहरइ। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया ॥ २ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अंतेवासी आर्यसुधर्मः नाम अनगारः जातिसम्पन्नः यथा केशी यावत् पंचभिः अनगारशतैः सार्द्ध सह संपरिवृतः पूर्वानुपूर्व्या चरमाणे यस्मिन्नेव देशे राजगृहं नगरं यावत् यथा-प्रतिरूपं अवग्रहं अवगृह्य संयमेन यावत् विहरति। परिषद् निर्गता, धर्मः कथितः। परिषत् प्रतिगता ॥ २ ॥

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं—उस काल, **तेण समएणं**—उस समय में, **समणस्स**—श्रमण, **भगवओ**—भगवान, **महावीरस्स**—महावीर का, **अंतेवासी**—शिष्य, **अज्जसुहम्मे**—आर्य सुधर्मा, **नाम**—नाम वाला, **अणगारे**—अनगार, **जाइसंपन्ने**—जाति-सम्पन्न, **जहा**—जैसे, **केसी**—केशीकुमार श्रमण थे, **जाव**—यावत्, **पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं**—पांच सौ अणगारों के साथ, **संपरिवुडे**—संपरिवृत अर्थात् संयुक्त, **पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे**— पूर्वानुपूर्वी—अनुक्रम पूर्वक विचरते हुए, **जेणेव**—जहा पर, **रायगिहे णयरे**—राजगृह नगर, **जाव**—यावत्, **जहापडिरूवं**—यथा प्रतिरूप मुनिजन के यथोचित, **उग्गहं**—निवास, **ओगिण्हित्ता**—आज्ञा

लेकर, **संजमेणं**—संयम से, **जाव**—यावत्, **विहरइ**—विचरते हैं। **परिसा**—परिषद्, **निग्गया**—नगर से निकली, **धम्मो कहिओ**—श्री भगवान् ने धर्म-कथा की। **परिसा पडिगया**—परिषद् नगर की ओर चली गई।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के शिष्य आर्य सुधर्मा नाम वाले अनगार थे जो कि केशीकुमार की भांति जाति-सम्पन्न थे, वे पाच सौ अनगारो के साथ, सपरिवृत होकर अनुक्रम पूर्वक चलते हुए जहां पर राजगृह नगर था। (वहां पधारे) यावत् यथाप्रतिरूप मुनिजनों के उचित आवास की आज्ञा लेकर संयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। वन्दनादि के लिए परिषद् आई, श्री भगवान ने धर्म-कथा वर्णन की। परिषद् धर्म-कथा सुनकर नगर की ओर चली गई।

टीका—उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी के शिष्य जाति-सम्पन्न आर्य सुधर्मा स्वामी वहां आए, उनका वर्णन जिस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र मे श्रमण केशी कुमार जी का किया गया है ठीक उसी प्रकार जान लेना चाहिए। वे गुणो से युक्त ५०० मुनियो के साथ अनुक्रम पूर्वक विचरते हुए राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक चैत्य में साधु के योग्य उपकरणों की आज्ञा लेकर सयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा की विशुद्धि करते हुए विचरने लगे।

कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे "**चरमाणे**" के अनन्तर "**गामाणुगामं दूइज्जमाणे**" पाठ भी प्राप्त होता है जिसकी आचार्य श्री चन्द्र सूरि विरचित निरयावलिया सूत्रवृत्ति में इस प्रकार व्याख्या की गई है। जैसे कि—

"गामाणुगामं दुइज्जमाणे" त्ति ग्रामानुग्रामश्च विवक्षितग्रामादनन्तरं ग्रामो ग्रामानुग्रामं तत् द्रवन् - गच्छन् एकस्माद् ग्रामादनन्तरं ग्राममनुल्लंघ्यन्नित्यर्थ·, अनेनाप्रतिबद्धं विहारमाह। तत्राप्यौत्सुक्याभावमाह-सुहंसुहेणं विहरमाणे' सुखं सुखेन—शरीरखेदाभावेन संयमाऽऽबाधाभावेन च विहरन् ग्रामादिषु वा तिष्ठन्।" इसका अभिप्राय यह है कि जिस ग्राम से वे चलते थे उस ग्राम से दूसरे अभीष्ट ग्राम तक जो बीच मे छोटे ग्राम पडते थे उनमे भी वे उपदेश देते हुए बढ़ते थे, और वह भी बिना थकावट के सुखपूर्वक।

इस कथन से यह भली-भांति सिद्ध हो जाता है कि विहार-क्रिया में प्रवृत्त होते हुए, विनय पूर्वक चलना चाहिए और प्रत्येक ग्राम में उपदेश करते हुए सफल विहार-चर्या करनी चाहिए। **'सुहंसुहेणं'** इस पद से यह सिद्ध किया गया है कि जिस प्रकार शरीर और संयम में कोई बाधा न हो उस प्रकार विचरना चाहिए।

सूत्र-कर्त्ता ने यहां सुधर्मा जी की केशी कुमार श्रमण से उपमा दी है जिसका भाव

यह है कि आर्य सुधर्मा में समग्र साध्वोचित गुण तो थे ही, इसके साथ वे चतुर्दश पूर्वों के पाठी और चार ज्ञान से युक्त भी थे। जैसे कि वृत्तिकार का कथन है–

"'चोद्दसपुव्वी-चउनाणोवगए' चतुर्ज्ञानोपयोगत. केवलवर्जज्ञानयुक्त:। (श्रमण श्रेष्ठ केशी कुमार का विस्तृत वर्णन राज प्रश्नीय सूत्र मे विस्तार से किया गया है)

एक हस्तलिखित प्रति में निम्नलिखित पाठ भी प्राप्त हुआ है–

जेणेव रायगिहे नयरे जेणेव गुणसिलए नामं चेइए जेणेव असोगवरपायवे पुढविसिला-पट्टए तेणेव उवागए, अहापडिरूव उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे जाव विहरइ।

इस पाठ का भाव भी उपर्युक्त पंक्तियो से मिलता-जुलता होने से हम उसकी पुन: व्याख्या नही कर रहे।

तत्पश्चात् नगर की परिषद् श्रद्धालु जनता धर्म-कथा सुनने के लिए उस उद्यान मे आई, फिर धर्म-कथा सुनकर अपने-अपने स्थानो पर चली गई।

इस विषय का विशद वर्णन विस्तार पूर्वक जानने के लिए जिज्ञासुओ को औपपातिक सूत्र का स्वाध्याय करना चाहिए।

आर्य जंबू वर्णन

उत्थानिका–तत्पश्चात् क्या हुआ ? अब सूत्रकार इसी विषय मे कहते है–

मूल–तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी जम्बूणामं अणगारे समचउरंससंठाणसंठिए, जाव० संखित्त-विउलतेयलेस्से अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू जाव विहरइ ॥ ३ ॥

छाया–तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्यसुधर्मानगारस्य अन्तेवासी जम्बूनामाऽ-नगार. समचतुरस्रसंस्थान-संस्थित: यावत् संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्य: आर्यसुधर्मस्य अनगारस्य अदूरसामन्तम् ऊर्ध्वजानु: यावत् विहरति ॥ ३ ॥

पदार्थान्वय:–तेणं कालेणं–उस काल–अवसर्पिणी काल के चतुर्थ विभाग में, **तेणं समएणं**–उस समय–जिस समय श्री सुधर्मा स्वामी विराजमान थे, **अज्जसुहम्मस्स**– आर्य-सुधर्मा स्वामी, **अणगारस्स**–अनगार के, **अन्तेवासी**–शिष्य, **जम्बूनामं अणगारे**–जम्बू नामक अनगार, (जो) **समचउरंस**–सम चतुरस्र (चौरस), **संठाणसंठिए**– सस्थान से संस्थित थे, **जाव**–यावत्, **संखित्तविउलतेउलेस्से**–संक्षिप्त की हुई विपुल तेजोलेश्या युक्त, **अज्ज-सुहम्मस्स**–आर्य सुधर्मा, **अणगारस्स**–अनगार के, **अदूरसामन्ते**–न अति दूर न अति समीप, मर्यादा-पूर्वक भूमि पर, **उड्ढंजाणू**–ऊर्ध्व जानु, **जाव**–यावत्, **विहरइ**–विचरते हैं।

मूलार्थ—उस काल उस समय मे आर्य सुधर्मा अनगार के शिष्य जम्बू नाम के अनगार जो समचतुरस्र-संस्थान से युक्त (और) यावत् संक्षिप्त की हुई विपुल तेजोलेश्या से युक्त थे, आर्य सुधर्मा अनगार के समक्ष मर्यादा-पूर्वक भूमि पर स्थित हो, ऊंचे जानु कर यावत् जैसे कि विधान है वैसे विचरते अर्थात् आचरण करते हैं।

टीका—इस सूत्र में आर्य सुधर्मा स्वामी के शिष्य जम्बू स्वामी का वर्णन किया गया है जैसे कि आर्य सुधर्मा स्वामी के सुशिष्य अनगार आर्य जम्बू जो समचतुरस्र-संस्थान से संस्थित थे जो **''वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलगनिगसपम्हगोरे''** अर्थात वज्र-ऋषभनाराच संहनन से युक्त तथा कनक-पट्ट रेखा लक्षण वाले थे, जैसे कि वृत्तिकार का कथन है—

कनकस्य-सुवर्णस्य 'पुलग' इति यः पुलको—लवः तस्य यो निकषः—कणगपट्टरेखा लक्षणः तथा 'पम्हेति' पद्मगर्भ. तद्वत् यो गौरः स तथा, वृद्धव्याख्या तु कनकस्य न लोहादेर्यः पुलकः—सारो वर्णातिशयः तत्प्रधानो यो निकषो—रेखा तस्य यत् पक्ष्म—बहुलत्वं तद्वद्यो गौरः स कनकपुलकनिकषपक्ष्मगौरः।

अर्थात् जिस प्रकार कनकपट्ट (काली कसौटी) पर रेखा होती है, जिस प्रकार पद्मगर्भ होता है, तद्वत् उनका शरीर था तथा उग्र तप, तप्त तप, दीप्त तप प्रधान परीषहो के जीतने वाले कठिन व्रतो को धारण करने वाले, इतना ही नही किन्तु वे घोर तप के करने वाले थे, अत: उनके शरीर में विपुल तेजोलेश्या उत्पन्न हो रही थी, किन्तु उस लेश्या को संक्षिप्त किया हुआ था। इसलिए वृत्तिकार ने निम्नलिखित पद दिया है—

''संखित्तविउलतेउलेस्से'' संक्षिप्ता—शरीरान्तर्विलीना विपुला—अनेकयोजनप्रमाण-क्षेत्राश्रितवस्तुदहनसमर्था तेजोलेश्या—विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्रभावा तेजोलेश्या (यस्य सः)।

अर्थात् अनेक कोसों तक रहने वाली वस्तु को भी भस्म कर देने की शक्ति वाली तेजोलेश्या को उन्होंने तपोबल से अपने अन्तर में ही आत्मसात् कर रखा था।

इस कथन से यह भलीभाति सिद्ध हो जाता है कि साधु मे तपोजन्य शक्ति होने पर भी उस शक्ति का प्रयोग करने से बचते रहना चाहिए। वह जम्बू अनगार आर्य सुधर्मा अनगार के समीप ऊचे जानु कर अर्थात् उत्तान आसन पर बैठकर मुख को नीचे झुकाए हुए ध्यान रूपी कोष्ठक में प्रविष्ट होकर आत्म-ध्यान में लीन रहते थे, इसलिए वृत्तिकार ने कहा है कि—**''झाणकोट्ठोवगए'—ध्यानमेव कोष्ठो ध्यानकोष्ठस्तमुपगतो ध्यानकोष्ठोपगतो यथा हि कोष्ठकधान्यं प्रक्षिप्तमविप्रकीर्णं भवति एवं स भगवान् धर्मध्यानकोष्ठ-मनुप्रविश्य इन्द्रियमनांस्यधिकृत्य संवृतात्मा भवतीति भावः।**

इस कथन का अभिप्राय यह है कि जैसे कोठे में डाला गया अन्न इधर-उधर फैलता नहीं है इसी प्रकार आर्य जम्बू स्वामी ने ध्यान रूपी कोठे में समस्त वृत्तियों को एकाग्र कर दिया था, अत: वे स्थिर-ध्यान थे।

इस कथन से यही भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि साधु-वृत्ति का मुख्य उद्देश्य ध्यानस्थ होना ही है। सूत्रकर्ता ने "**अदूर-सामंते**" पद दिया है। इसका भाव यह है कि गुरु की आशातना न हो इस बात को ध्यान में रखकर शिष्य गुरु के पास उचित स्थान पर बैठे। जैसे कि वृत्तिकार लिखते है–"**अदूरसामंते" त्ति दूरं–विप्रकर्षः सामन्तं समीपम्, उभयोरभावोऽदूरसामन्तं (तस्मिन्) नातिदूरे नातिसमीपे उचिते देशे स्थित इत्यर्थः।**

अर्थात् अति दूरी और अति समीपता न रखकर यथोचित स्थान पर वे आकर बैठते थे। इस प्रकार गुणों से पूर्ण युक्त होते हुए श्री जम्बू अनगार विचरण किया करते थे। सूत्रकर्ता ने '**जाव**' अर्थात् यावत् शब्द से उनमे सभी साध्वोचित गुणों की विद्यमानता प्रदर्शित की है।

साधु के योग्य समस्त गुणों का विस्तृत वर्णन "व्याख्याप्रज्ञप्ति" आदि सूत्रों में किया गया है।

जब आर्य सुधर्मा गुणशील चैत्य के उद्यान मे पधारे तो परिषद् दर्शन करने आई। सभी पांच अभिगमपूर्वक आए। पांच अभिगम इस प्रकार हैं–

१ धर्म-स्थान में न पहिनने योग्य पुष्प-माला आदि सचित द्रव्यो का त्याग। २ वस्त्र-आभूषण आदि अचित द्रव्यों का त्याग, ३ एक बिना सिला वस्त्र, ४ गुरु पर दृष्टि पड़ते ही दोनो हाथ जोड़ कर चलना, ५ मन को एकाग्र करना।

जंबू की जिज्ञासा

उत्थानिका–अब सूत्रकार आगामी घटनाओ का वर्णन करते है–

मूल–तए णं से भगवं जंबू जायसड्ढे जाव० पज्जुवासमाणे एवं वयासी, उवंगाणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं एवं उवंगाणं पंच वग्गा पण्णत्ता, तं जहा–१. निरयावलियाओ, २. कप्पवडिंसियाओ, ३. पुप्फियाओ, ४. पुप्फचूलियाओ, ५. वण्हिदसाओ ॥ ४॥

छाया–ततः सो भगवान् जम्बू जातश्रद्धः यावत् पर्युपासनां विदधान एवमवादीत्–उपाङ्गानां भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत्सम्प्राप्तेन एवमुपाङ्गानां पञ्च वर्गा प्रज्ञप्ताः तद्यथा—१. निरयावलिका, २. कल्पावतंसिका, ३. पुष्पिका, ४. पुष्पचूलिका, ५. वृष्णिदशा ॥ ४ ॥

पदार्थान्वयः—तए—इसके अनन्तर, **णं**—वाक्यालंकारार्थ में, **से**—वह, **भगवं**—भगवान, **जंबू**—जम्बू नामक, **जायसड्ढे**— प्रश्न पूछने की श्रद्धा वाले, **जाव**—यावत्, **पज्जुवासमाणे**—पर्युपासना करते हुए, **एव वयासी**—इस प्रकार बोले, **उवंगाणं भंते**—हे भगवन् उपांगों का, **समणेणं**—श्रमण भगवान महावीर ने, **जाव**—यावत्, **संपत्तेणं**—मोक्ष को सम्प्राप्त हुए उन्होने, **के अट्ठे पण्णत्ते**—क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

एवं खलु जंबू—इस प्रकार हे जम्बू ! **समणेणं**—श्रमण, **भगवया**—भगवान महावीर ने, **जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए उन्होंने, **एवं उवंगाणं**—इस प्रकार उपांगो के, **पच**—पांच, **वग्गा**—वर्ग, **पण्णत्ता**—कथन किए हैं, **तं जहा**—जैसे, **१. निरयावलियाओ**—निरयावलिका, **२. कप्पवडिंसियाओ**— कल्पावतंसिका, **३. पुप्फियाओ**— पुष्पिका, **४. पुप्फ-चूलियाओ**—पुष्पचूलिका, **५. वण्हिदसाओ**—वृष्णिदशा।

मूलार्थ—उसके पश्चात् जिनके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी है, यावत् वे जम्बू स्वामी आर्य श्री सुधर्मा स्वामी की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे भगवन् ! उपांगों का श्रमण भगवान् महावीर ने जो कि अब मोक्ष मे पधार चुके हैं क्या अर्थ कथन किया है ?

तब श्री सुधर्मा स्वामी जी इस प्रकार बोले—हे जम्बू ! उन श्रमण भगवान महावीर ने जो अब मोक्ष मे पधार चुके हैं उपागों के पांच वर्ग इस प्रकार कहे हैं—जैसे कि—१. निरयावलिका, २. कल्पावतंसिका, ३. पुष्पिका, ४. पुष्पचूलिका, ५. वृष्णिदशा।

टीका—इस सूत्र में उपर्युक्त सूत्र के विषय का ही वर्णन किया गया है, जैसे कि जब आर्य जम्बू स्वामी के मन में श्रद्धा-पूर्वक कुछ पूछने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई, तब वे उठकर आर्य सुधर्मा स्वामी के पास जाकर विनय और भक्ति पूर्वक पर्युपासना करते हुए हाथ जोडकर पूछने लगे कि—"भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी जो कि अब निर्वाण पद को प्राप्त कर चुके हैं, उन्होनें उपागो के विषय में क्या वर्णन किया है ?"

इसके उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—"हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी जो मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने उपांगों के पांच वर्ग कथन किए हैं, जैसे कि—१ निरयावलिका, २ कल्पावतंसिका, ३ पुष्पिका, ४ पुष्पचूलिका, ५ वृष्णिदशा।

ये पांच वर्ग उपांगों के कथन किए गए हैं, किन्तु इस स्थान पर यह उल्लेख नहीं

किया गया कि प्रत्येक अंग के भिन्न-भिन्न उपांग है। यद्यपि चूर्णी आदि ग्रन्थों में प्रत्येक अग के साथ प्रत्येक उपांग का वर्णन किया गया है, जैसे कि आचारांग का उपांग औपपातिक सूत्र है इत्यादि। किन्तु अग नामक उत्कालिक सूत्रो के सकेत नन्दी आदि आगमो में भी उपलब्ध होते हैं। छेद और मूल सूत्र आदि संज्ञाए आगमो मे नही हैं, इससे प्रतीत होता है कि ये दोनों संज्ञाए अर्वाचीन हैं।

प्रस्तुत सूत्र के अतिरिक्त उपांग संज्ञा का कहीं पर भी उल्लेख देखने को प्राप्त नहीं हुआ। यह तो भली-भांति सिद्ध होता है कि अगों के उपांग होते ही हैं, अतः श्रुत रूपी पुरुष के १२ अंग और १२ ही उपाग युक्ति सिद्ध हैं। ये उपांग पांच वर्गों के नामों से सुप्रसिद्ध हैं। आचार्य हेमचन्द्र जी भी अपने अभिधानचिन्तामणि कोष में लिखते है, जैसे कि–

आचाराङ्गं सूत्रकृतं स्थानाङ्गं समवाययुक् ।
पञ्चमं भगवत्यङ्गं ज्ञाताधर्मकथाऽपि च ॥ १५७ ॥
उपासकान्तकृदनुत्तरोपपातिकास्तथा ।
प्रश्नव्याकरणं चैव विपाकश्रुतमेव च ॥ १५८ ॥
इत्येकादश सोपाङ्गान्यङ्गानि । (देवकाण्ड, द्वितीय वर्ग)

इत्येकादश प्रवचनपुरुषस्य अङ्गानीवाऽङ्गानि सहोपाङ्गैरौपपातिकादिभिर्वर्त्तन्ते सोपाङ्गानि ॥

उक्त सूत्र मे जो सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, यह समग्र पाठ "व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र" के प्रथम उद्देशक मे प्राप्त होता है, उस सूत्र के प्रथम शतक के प्रथम उद्देशक मे गौतम स्वामी विषयक वर्णन किया गया है। वह समग्र पाठ उक्त पाठ से सम्बन्ध रखता है, केवल नाम मात्र का ही अन्तर है।

प्रथम वर्गीय दस अध्ययनो की नामावली

उत्थानिका–अब सूत्रकार फिर उक्त विषय में ही कहते हैं–

मूल–जइ णं भन्ते ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवंगाणं पंच वग्गा पण्णत्ता तं जहा– निरयावलियाओ जाव वण्हिदसाओ, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स उवंगाणं निरयावलियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

काले सुकाले महाकाले कण्हे सुकण्हे ।
तहा महाकण्हे वीरकण्हे य बोद्धव्वे ।
रामकण्हे, तहेव य पिउसेणकण्हे नवमे ।
दसमे महासेणकण्हे उ ॥ ५ ॥

छाया—यदि णं भदन्त ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन उपाङ्गानां पञ्चवर्गाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा निरयावलिकाः यावत् वृष्णिदशा, प्रथमस्य णं भदन्त ! वर्गस्य उपाङ्गानां निरयावलिकानां श्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन कति अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि।

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन उपाङ्गानां प्रथमस्य वर्गस्य निरयावलिकानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—

कालः सुकालः महाकाल कृष्णः सुकृष्णस्तथा ।
महाकृष्ण· वीरकृष्णश्च बोधव्या ।
रामकृष्णः स्तथैव च पितृसेनकृष्णः नवम· ।
दशमः महासेन - कृष्णास्तु ॥ ५ ॥

पदार्थान्वय·—ण—वाक्यालंकार अर्थ में है, **भन्ते**—हे भगवन्, **जइ**—यदि, **समणेणं**—श्रमण, **भगवया**—भगवान, **महावीरेणं**—महावीर स्वामी ने, **जाव**—यावत्, **संपत्तेण**—मोक्ष प्राप्त करने वाले, **उवङ्गाणं**—उपागो के, **पंचवग्गा**—पांच वर्ग, **पण्णत्ता**—प्रतिपादित किए है, **तं जहा**—जैसे कि, **निरयावलियाओ**—निरयावलिका, **जाव**—यावत्, **वण्हिदसाओ**—वृष्णिदशा, **ण**—वाक्यालकार अर्थ में है, **भन्ते**—तो हे भदन्त, **पढमस्स**—प्रथम, **वग्गस्स**—वर्ग के, **उवंगाणं**—उपांग, **निरयावलियाणं**—निरयावलिका सूत्र का, **समणेण**—श्रमण, **भगवया**—भगवान्, **जाव**—यावत्, **संपत्तेणं**—मोक्ष को प्राप्त हुए ने, **कइ अज्झयणा**—कितने अध्ययन, **पण्णत्ता**—प्रतिपादित किए है। **एवं खलु जंबू**—इस प्रकार हे जम्बू । निश्चय से, **समणेण**—श्रमण, **जाव**—यावत्, **सपत्तेणं**—मोक्ष सम्प्राप्त ने, **उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स**—उपांगो के प्रथम वर्ग के, **निरयावलियाण**—निरयावलिका सूत्र के, **दस अज्झयणा पण्णत्ता**—दश अध्ययन प्रतिपादित किए हैं, **तं जहा**—जैसे कि, **काले**—काल कुमार का, **सुकाले**—सुकाल कुमार का, **महाकाले**—महाकाल कुमार का, **कण्हे**—कृष्ण कुमार का, **सुकण्हे**—सुकृष्ण कुमार का, **तहा**—तथा, **महाकण्हे**—महाकृष्ण कुमार का, **य**—और, **वीरकण्हे बोद्धव्वे**—वीर कृष्ण कुमार का जानना चाहिए, **य**—पुनः, **तहेव**—उसी प्रकार, **रामकण्हे**—रामकृष्ण का, **नवमे**—नवमा, **पिउसेणकण्हे**—पितृसेनकृष्ण कुमार का और, **दसमे**—दशवें, **महासेण कण्हे**—महासेनकृष्ण का, **उ**—वितर्क अर्थ में है।

मूलार्थ–हे भदन्त ! यदि यावत् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उपागों के पांच वर्ग कथन किए हैं, जैसे कि निरयावलिका यावत् वृष्णिदशा तो हे भदन्त! प्रथम वर्ग के उपांग निरयावलिका के यावत् मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने कितने अध्ययन प्रतिपादित किए हैं।

इसके उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी कहने लगे–इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर यावत् मोक्ष प्राप्त ने उपागों के प्रथम वर्ग निरयावलिका के दस अध्ययन प्रतिपादित किए है। जैसे कि–१. काल, २. सुकाल, ३. महाकाल, ४. कृष्ण, ५ सुकृष्ण, ६. महाकृष्ण, ७. वीरकृष्ण, ८. रामकृष्ण, ९. पितृसेनकृष्ण और १०. महासेनकृष्ण। प्रत्येक अध्ययन प्रत्येक कुमार के नाम पर कथन किया गया है।

टीका–इस सूत्र मे प्रथम वर्ग के अध्ययनों के विषय का वर्णन किया गया है। यहां पर ''वर्ग'' शब्द अध्ययनों के समूह का नाम है। प्रथम वर्ग मे दस अध्ययनो का विषय वर्णन किया गया है। इस विषय मे वृत्तिकार निम्न प्रकार से लिखते है–

प्रथमवर्गो दशाध्ययनात्मकः प्रज्ञप्तः अध्ययनदशकमेवाह–'काले-सुकाले' इत्यादि। मातृनामभिस्तदपत्यानां–पुत्राणा नामानि, यथा काल्याः अयमिति कालः कुमारः, एवं सुकाल्याः महाकाल्याः कृष्णायाः सुकृष्णाया. महाकृष्णाया. वीरकृष्णायाः रामकृष्णायाः पितृसेनकृष्णायाः महासेनकृष्णायाः अयमित्येवं पुत्रनाम वाच्यम्। इह काल्या अपत्यमित्याद्यर्थे प्रत्ययो नोत्पाद्यः, काल्यादिशब्देष्वपत्येऽर्थे एयण प्राप्त्या कालसुकालादिनामसिद्धेः, एवं चाद्यः १ कालः, २. तदनुसुकालः, ३. महाकालः, ४. कृष्णः, ५. सुकृष्ण·, ६. महाकृष्णः ७. वीरकृष्णः, ८. रामकृष्णः, ९. पितृसेनकृष्णः, १० महासेनकृष्णः दशमः। इत्येवं दशाध्ययनानि निरयावलिकानामके प्रथमवर्गे इति ॥

इस पाठ का भाव यह है कि महाराज श्रेणिक की काली आदि दस रानियां थी। उनके काल कुमार आदि १० पुत्र हुए। प्रत्येक अध्ययन प्रत्येक पुत्र के नाम पर इस वर्ग मे कथन किया गया है। ये १० कुमार नरक मे गए थे, अतः इस वर्ग का नाम निरयावलिका है। किस प्रकार वे नरक मे गए, इस विषय का विस्तृत वर्णन इस अध्ययन में किया गया है। यह कथानक ऐतिहासिक व्यक्तियो के लिए अत्यन्त उपयोगी है। सूत्रकर्ता ने '**समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं**' आदि जो पद दिए है इनका भाव यह है कि यह कथन श्रमण भगवान महावीर स्वामी का है, न कि अन्य किसी द्वारा यह विषय प्रतिपादित किया गया है। इस घटना के भगवान महावीर के सन्मुख होने से उस समय की परिस्थितियों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिए इस विषय का ध्यानपूर्वक पठन करना चाहिए।

प्रथम अध्ययन सम्बन्धि पृच्छा

उत्थानिका–अब सूत्रकार प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन के विषय का वर्णन करते हैं–

मूल–जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स निरयावलियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपा नामं नयरी होत्था, रिद्ध०। पुन्नभद्दे चेइए ॥ ६ ॥

छाया–यदि णं भदन्त ! **श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन** उपाङ्गानां **प्रथमस्य** निरया-वलिकाणा दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य णं भदन्त ! अध्ययनस्य निरयावलिकाणां श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारतवर्षे चम्पा नाम्नी नगरी अभूत्। ऋद्ध० पूर्णभद्रं चैत्यं ॥ ६ ॥

पदार्थान्वय:–ण–वाक्यालकार अर्थ मे, **भते**–हे भदन्त, **जइ**–यदि, **समणेणं**–श्रमण, **जाव**–यावत्, **सम्पत्तेणं**–मोक्ष प्राप्त ने, **उवंगाणं**–उपागों के, **पढमस्स वग्गस्स**–प्रथम वर्ग के, **निरयावलियाणं**–निरयावलिका सूत्र के, **समणेणं**–श्रमण भगवान महावीर ने, **जाव**–जो यावत्, **संपत्तेणं**–मोक्ष को प्राप्त हो गए हैं, **के अट्ठे पण्णत्ते**–क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? **एवं खलु जम्बू**–इस प्रकार निश्चय से हे जम्बू, **तेणं कालेण तेणं समएणं**–उस काल और उस समय मे, **इहेव**–इसी, **जंबुद्दीवे दीवे**–जम्बूद्वीप नाम के द्वीप मे, **भारहे वासे**–भारतवर्ष में, **चंपा नामं नयरी होत्था**–चम्पा नाम की नगरी थी, **रिद्ध०**–ऋद्धि यावत् धन-धान्य से युक्त थी, **पुन्नभद्दे चेइए**–और उसके पूर्व और उत्तर दिशा के मध्य भाग मे अर्थात् ईशान कोण मे पूर्णभद्र नाम का चैत्य उद्यान था।

मूलार्थ–(आर्य जम्बू अपने गुरु गणधर गौतम से प्रश्न करते है) हे भगवन् ! यदि यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उपागों के प्रथम वर्ग निरयावलिका सूत्र के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं, तो हे भगवन् ! निरयावलिका सूत्र के प्रथम अध्ययन का मोक्ष संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

इसके उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के प्रति कहने लगे–हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में इसी जम्बू द्वीप नाम के द्वीप मे स्थित भारतवर्ष में चम्पा नाम

की नगरी थी जो भवनादि से युक्त, भय से रहित तथा धन-धान्य से पूर्ण थी। इस नगरी के बाहर ईशान कोण में पूर्णभद्र नाम का एक उद्यान था, उस उद्यान मे पूर्णभद्र यक्ष का एक आयतन था अर्थात् पूर्णभद्र यक्ष का मन्दिर था।

टीका–इस सूत्र में पूर्णभद्र आदि स्थानों का वर्णन किया गया है। आर्य जम्बू ने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी जो मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं उन्होने उपांगो के प्रथम वर्ग निरयावलिका नामक सूत्र के दस अध्ययन प्रतिपादन किए हैं, तो हे भगवन । प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कथन किया है ?

उत्तर–"हे शिष्य । हे जम्बू । वह काल जो अवसर्पिणी काल का चतुर्थ विभाग रूप था, उस समय मे अर्थात् जिस समय श्री भगवान महावीर विद्यमान थे, इसी जम्बू द्वीप नामक द्वीप मे स्थित भारतवर्ष में चम्पा नाम की नगरी थी जो ऋद्धि आदि गुणो से युक्त तथा परम रमणीय थी और उसके बाहर ईशान कोण में पूर्णभद्र नाम का उद्यान था, उसमें पूर्णभद्र नामक यक्ष का एक मन्दिर था।

वह व्यन्तरायतन जनता की अभीष्ट इच्छाओं की पूर्ति करने मे समर्थ था–उस का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिए। चम्पा नाम की नगरी का वर्णन भी उसी सूत्र में विस्तार पूर्वक किया गया है, अत: जिज्ञासुओं को उक्त सूत्र का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

चम्पा नगरी का वर्णन

उत्थानिका–अब सूत्रकार चम्पा नगरी का वर्णन करते हुए फरमाते हैं–

मूल–तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कूणिए नामं राया होत्था, महया० ॥ ७ ॥

छाया–तत्र णं चंपायाम् नगर्याम् श्रेणिकस्य राज्ञ: पुत्र. चेलनाया: देव्या: आत्मज: कूणिक: नाम राजा अभवत्। महान्०।

पदार्थान्वय:–णं–वाक्यालंकार में, **तत्थ**–उस, **चंपाए**–चम्पा नाम वाली, **नयरीए**–नगरी में, **सेणियस्स रण्णो**–राजा श्रेणिक का, **पुत्ते**–पुत्र, **चेल्लणाए**–चेलना, **देवीए अत्तए**–देवी का आत्मज, **कूणिए णामं**–कूणिक नाम का, **महया**–महान, **राया होत्था**–राजा था।

मूलार्थ–उस चम्पा नाम की नगरी मे राजा श्रेणिक का पुत्र तथा चेलना देवी का आत्मज कोणिक नाम का एक महान राजा था।

टीका–इस सूत्र में सक्षेप से कूणिक राजा का वर्णन किया गया है, जैसे कि उस

चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक का पुत्र और चेलना देवी का आत्मज कोणिक नाम का राजा राज्य करता था। इसका सम्पूर्ण वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है। यह राजा महा हिमवान् पर्वत के समान अन्य राजाओं की अपेक्षा से महान था। उस का राज्य निष्कण्टक था। उस राजा ने बहुत से राजाओ पर विजय प्राप्त की थी और अनेक शत्रुओ का मान मर्दन किया था तथा वह न्यायशील था, उसके पुण्य के प्रभाव से राज्य मे विघ्न, ज्वर, मरी, दुर्भिक्ष तथा सग्राम आदि का सर्वथा अभाव था। प्रजा प्रसन्नता-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी। नगरी धन-धान्य से परिपूर्ण थी। चारो ओर सर्व प्रकार से लक्ष्मी की वृद्धि हो रही थी। सर्वत्र लक्ष्मी का बोल-बाला था। नए से नए आविष्कारों का प्रादुर्भाव हो रहा था। राज्य में सर्वत्र शान्ति एव उन्नति का साम्राज्य था।

महारानी पद्मावती का वर्णन

उत्थानिका–अब सूत्रकार राजा की रानी के विषय मे कहते है–

मूल–तस्स णं कूणियस्स रन्नो पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाल जाव विहरइ ॥ ८ ॥

छाया–तस्य णं कूणिकस्य राज्ञः पद्मावती नाम्नी देवी अभवत् सुकुमाल यावत् विहरति।

पदार्थान्वयः–**णं**–प्राग्वत्, **तस्स**–उस, **कूणियस्स रन्नो**–राजा कोणिक की, **पउमावई**–पद्मावती, **नामं**–नाम वाली, **देवी**–देवी (महारानी), **होत्था**–थी। **सोमाल**–सुकुमार, **जाव**–यावत्, **विहरइ**–विचरती है।

मूलार्थ–उस राजा कोणिक की पद्मावती नाम की देवी (महारानी) थी जो सुकुमार यावत् सुख भोगती हुई विचरती थी।

टीका–इस सूत्र मे रानी पद्मावती देवी का वर्णन किया गया है। राजा कोणिक की पद्मावती नाम वाली एक रानी थी जिसके हस्त और पाद सुकोमल थे, वह पाचों इन्द्रियो से पूर्ण, शरीर-लक्षणों व्यंजनो और गुणो से युक्त थी। स्वस्तिक चक्रादि लक्षण होते है और मस्सा तिलकादि व्यंजन होते है। वह स्त्रियोचित सभी गुणों से पूर्ण थी। मान और उन्मान से युक्त थी। इतना ही नहीं, उसका शरीर प्रतिपूर्ण था और वह सर्वाग सुन्दर थी। वृत्तिकार मान और उन्मान का वर्णन निम्न प्रकार से करते हैं–

तत्र मानं–जलद्रोणप्रमाणता कथं ? जलस्यातिभृते कुण्डे पुरुषे निवेशिते यज्जलं निःसरति तत्तर्हि द्रोणमानं भवति, तदा स पुरुषो मानप्राप्त उच्यते, तथा उन्मानम् अर्धभार-प्रमाणता, कथं ? तुलारोपितः पुरुषो यद्यर्धभारं तुलयति तदा स उन्मानप्राप्त उच्यते। प्रमाणं

तु स्वागुलेनाष्टोत्तरशतोच्छ्रायिता, ततश्च मानोन्मानप्रमाणैः प्रतिपूर्णानि अन्यूनानि सुजातानि सर्वाणि अङ्गानि–शिरः प्रभृतीनि यस्मिंस्तत् तथाविधं सुन्दरम् अगं०–शरीरं यस्या सा तथा।

इस का भाव यह है कि किसी जल-कुण्ड मे पुरुष के बैठने पर यदि एक द्रोण प्रमाण जल बाहर निकल जाता है तब वह पुरुष द्रोणमान प्रमाण कहा जाता है। तुला मे आरोपण किया हुआ पुरुष यदि अर्ध भाग के तुल्य होता है तब उसको उन्मान-प्राप्त कहते हैं। अपनी अंगुली से १०८ अंगुल ऊंचा हो तो उसे प्रमाण-युक्त कहते हैं। वह देवी उक्त गुणों से पूर्ण थी। उसका मुख चन्द्रवत् सौम्याकार था। इतना ही नहीं वह सुरूपा थी–शरद पूर्णिमा के चन्द्र सदृश उसका मुख-मण्डल था।

रानी के कर्ण-कुण्डलो की आभा से कपोलों की छवि द्विगुणित हो रही थी, मानो श्रृगार रस स्वयं अपना रूप धारण कर मुख पर आ बैठा हो। वह महाराजा कूणिक की हृदय-वल्लभा थी तथा उत्कृष्ट सुखो का अनुभव करती हुई विचर रही थी।

इसका विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र मे देखें।

काली रानी का वर्णन

उत्थानिका–अब सूत्रकार काली देवी का वर्णन करते हुए कहते हैं–

मूल–तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था, सोमाल जाव सुरूवा। तीसे णं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था, सोमाल जाव सुरूवे ॥ ९ ॥

छाया–तत्र णं चम्पायां नगर्याम् श्रेणिकस्य राज्ञः भार्या कूणिकस्य राज्ञ· लघु माता (चुल्लमाउया) काली नाम्नी देवी अभवत्, सुकुमाल यावत् सुरूपा। तस्या· णं काल्याः देव्याः पुत्रः कालः नामा कुमारः अभवत्, सुकुमाल यावत् सुरूपः।

पदार्थान्वयः–तत्थ–उस, **णं**–वाक्यालंकार में, **चंपाए नयरीए**–चम्पा नगरी में, **सेणियस्स**–श्रेणिक, **रन्नो**–राजा की, **भज्जा**–भार्या, **कूणियस्स**–कोणिक, **रन्नो**–राजा की, **चुल्लमाउया**–लघु माता, **काली नामं**–काली नाम वाली, **देवी होत्था**–देवी थी, **सोमाल**–सुकुमाल, **जाव सुरूवा**–यावत् सुरूपा थी, **तीसे णं कालीए देवीए**–उस काली देवी का, **पुत्ते**–पुत्र, **काले नामं कुमारे होत्था**–काल नाम वाला कुमार था। **सोमाल जाव सुरूवे**–सुकुमाल यावत् सुरूप था।

मूलार्थ–उस चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक की भार्या कोणिक राजा की लघु माता काली नाम वाली देवी थी, जो सुकुमार और सुरूपवती थी। उस काली देवी का पुत्र

"काल" नाम का कुमार था। वह भी सुकुमार और सुन्दर रूप वाला था।

टीका—इस सूत्र में काली देवी और उसके पुत्र का वर्णन किया गया है। हस्तलिखित प्रतियों में पुत्र के विषय मे "सुकुमाल—"**सुकुमाल पाणिपाए जाव सुरूवे**"— इस प्रकार पाठ दिया गया है। महाराजा श्रेणिक की भार्या और कोणिक राजा की अपर माता काली नाम वाली देवी चम्पा नगरी मे रहती थी। इस का पूर्ण वर्णन औपपातिक सूत्र से जानना चाहिए। उस सूत्र से एवं ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र से कुछ पद लेकर वृत्तिकार ने निम्न प्रकार से उस के विषय में वर्णन किया है—

सा च काली "सेणियस्स रन्नो इट्ठा" वल्लभा कान्ता काम्यत्वात्, 'पिया' सदा प्रेमविषयत्वात्, 'मणुन्ना' सुन्दरत्वात्, 'नामधिज्जा' प्रशस्तनामधेयवतीत्यर्थः नाम वा धार्यं—हृदि धरणीयं यस्या. सा तथा 'वेसासिया' विश्वसनीयत्वात् 'सम्मया' तत्कृतकार्यस्य संमतत्वात्, 'बहुमता' बहुशो बहुभ्यो वान्येभ्यः सकाशात् बहुमता बहुमान-प्राप्ता वा, 'अणुमया' प्रियकरणस्यापि पश्चान्मताऽनुमता 'भंडकरंडकसमाणा' आभरणकरण्ड-कसमाना उपादेयत्वात् सुरक्षितत्वाच्च। 'तेल्लकेला इव सुसंगोविया तैलकेला सौराष्ट्रप्रसिद्धो मृण्मयस्तैलस्य भाजनविशेषः, स च भङ्गभयात् लोचनभयाच्च सुष्ठु संगोप्यते, एवं साऽपि संगोप्यते तथोच्यते। 'चेलापेडा इव सुसंपरिग्गहिया' वस्त्रमञ्जूषेवेत्यर्थः 'सा काली देवी सेणिएण रन्ना सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरइ'। कालनामा च तत्पुत्रः 'सोमाल-पाणिपाए' इत्यादि प्रागुक्तवर्णकोपेतो वाच्य , यावत् 'पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे' इति।

इस पाठ का भाव यह है कि वह काली देवी महाराजा श्रेणिक की वल्लभा, प्रिय विश्वसनीय सम्मत बहुमत आभरण करण्डक के समान, सुगन्धमय तेल के भाजन के समान, वस्त्रमञ्जूषा के समान अति प्रिय थी, अतः राजा श्रेणिक के साथ उसका परम स्नेह था और उसके हाथ-पांव बडे ही सुकुमार थे। उस काली देवी का पुत्र काल नामक कुमार था जो सुकुमाल और सर्वांग पूर्ण (वा सुरूप) था। जिस प्रकार ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र में मेघ कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इसके विषय मे जानना चाहिए।

काल कुमार की युद्ध में प्रवृत्ति

उत्थानिका—अब सूत्रकार काल कुमार के विषय में कहते हैं—

मूल—तए णं से काले कुमारे अन्नया कयाइ तिहिं दन्तिसहस्सेहिं तिहिं रहसहस्सेहिं तिहिं आससहस्सेहिं तिहिं मणुयकोडीहिं गरुलवूहे एक्कारसमेणं खंडेणं कूणिएणं रण्णा सद्धिं रहमुसलसंगामं ओयाए ॥ १० ॥

छाया—ततः णं सः कालः कुमारः अन्यदा कदाचित् त्रिभिः दंतीसहस्रैः त्रिभिः

रथसहस्त्रैः, त्रिभिः अश्वसहस्त्रैः, त्रिभिः मनुजकोटिभिः गरुड-व्यूहे एकादशेन खण्डेन कूणिकेन राज्ञा सार्धं रथमूशलं संग्रामं उपयातः।

पदार्थान्वयः—तए णं से काले कुमारे—तत्पश्चात् वह काल कुमार, **अन्नया कयाइ**—किसी अन्य समय, **तिहिं**—तीन, **दंतिसहस्सेहिं**—हजार हाथियों, **तिहिं**—तीन, **रहसहस्सेहिं**—हजार रथों और, **तिहिं आससहस्सेहिं**—तीन हजार घोड़ों के साथ, **तिहिं मणुयकोडीहिं**—तीन करोड मनुष्यो के साथ, **गरुलवूहे**—गरुड़ व्यूह, **एक्कारसमेणं खंडेणं**—राज्य के एकादशवे भाग के भागीदार, **कूणिएणं रन्ना सद्धिं**—कोणिक राजा के साथ, **रहमुसलं**—रथमूसल नाम वाले, **संगामं**—सग्राम मे, **ओयाए**—प्राप्त हुआ अर्थात्—रथमूसल संग्राम में गया।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह काल कुमार किसी अन्य समय तीन सहस्र हस्ती, तीन सहस्र रथ, तीन सहस्र अश्व और तीन करोड मनुष्यों को साथ लेकर राज्य के एकादशवे भाग के भागीदार राजा कोणिक के साथ गरुड़ व्यूह के आकार वाले रथ-मूसल सग्राम में प्रवृत्त हुआ।

टीका—इस सूत्र में रथमूसल सग्राम का वर्णन किया गया है। इस स्थान पर जिज्ञासुओ के जानने के लिए उक्त विषय का सक्षेप मे वर्णन करते हैं।

वृत्तिकार ने लिखा है कि श्रेणिक राजा के राज्य में दो रत्न उत्पन्न हुए—(१) अष्टादश वक्र हार और (२) सेचनक हस्ती। इनके कारण से ही संग्राम हुआ, जैसे कि लिखा है—

सेणियस्स रज्जे दुवे रयणा—१. अट्ठारसवंको हारो २ सेयणगे हत्थीय। तत्थ किर सेणियस्स रन्नो जावइय रज्जस्स मुल्लं तावइय देवदिन्नहारस्स सेयणगस्स य गन्धहत्थिस्स। तत्थ हारस्स उप्पत्ती-पत्थावे कहिज्जिस्सइ। कूणियस्स य एत्थेव उप्पत्ती वित्थरेण भणिस्सइ।

कोणिक राजा के साथ कालादि दश कुमार चम्पा नगरी में राज्य करते थे। वे सब दोगुन्दुग देवों के समान सासारिक सुखों का अनुभव करते हुए विचरते थे। हल्ल, विहल्ल नामों वाले कोणिक राजा के दो भ्राता थे।

अब हार की उत्पत्ति के विषय मे कहते हैं। शक्रेन्द्र द्वारा श्रेणिक राजा की भक्ति की प्रशसा सुनकर एक देव उस भक्ति से प्रसन्न हो गया। उसने राजा श्रेणिक को अष्टादशवक्र हार दिया और दो वृत्त गोलक दिए। राजा ने वह हार चेलना नाम वाली देवी को दे दिया और वृत्त-गोलक मंत्री अभय कुमार की माता सुनन्दा देवी को दिए। रानी ने उनको तोडकर उनमे से एक में से कुण्डल युगल और एक में से वस्त्र-युगल ग्रहण किए।

एक बार मंत्री अभय कुमार ने श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछा—भगवन्! आपके पश्चात् अन्तिम राजर्षि कौन होगा ? भगवान महावीर ने उत्तर में कहा—'राजा

उदयन राजर्षि होगा। तत्पश्चात् बद्धमुकुट राजा दीक्षित नही होंगे। तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने अभय कुमार को राज्य देने का निश्चय किया, किन्तु अभयकुमार ने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया। तब राजा श्रेणिक ने कोणिक कुमार को राज्य देने का निश्चय कर हल्ल कुमार को सेचनक हस्ती दे दिया और विहल्ल कुमार को देव का दिया हुआ हार दिया गया।

मंत्री अभयकुमार के दीक्षित होने पर सुनन्दा देवी ने क्षौम-युगल और कुण्डल-युगल हल्ल और विहल्ल कुमार को दे दिए। तब बृहत् महोत्सव के साथ अभय कुमार और उनकी माता सुनन्दा देवी दीक्षित हो गए।

राजा श्रेणिक की रानी चेलणा देवी के तीन पुत्र हुए–१. कोणिक, २. हल्ल और ३. विहल्ल।

अब कोणिक की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं–काली महाकाली प्रमुख राजा श्रेणिक की रानियों से काल कुमार आदि बहुत से पुत्र थे। अभय कुमार के दीक्षित होने पर किसी अन्य समय कोणिक कुमार काल आदि दश कुमारों को आमन्त्रित कर कहने लगा–हे कुमारो ! राजा श्रेणिक के विघ्न के कारण हम राज्य का सुख प्राप्त नहीं कर सकते, अत: आओ हम पिता को कारागृह मे डालकर राज्य के ११ भाग करे और राज्य के सुखों का अनुभव करे, उन दश कुमारो ने भाई की इस बात को स्वीकार कर लिया। तब कोणिक ने श्रेणिक को बांधकर कारागृह में डाल दिया। वहां पर कोणिक उसे अनेक प्रकार के कष्ट देने लगा–

वृत्तिकार ने प्राकृत में इस विषय में लिखा है कि–

दोगुन्दुगदेवा इव कामभोग-परायणास्त्रयस्त्रिंशाख्या देवाः फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वरतरुणिसप्पणिहिएहिं बत्तीसइपत्तनिबद्धेहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणा भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति। हल्ल-विहल्लनामाणो कूणियस्स चिल्लणादेवी-अंगजाया दो भायरा अन्नेऽवि अत्थि।

अहुणा हारस्स उप्पत्ती भन्नइ–इत्थ सक्को सेणियस्स भगवंतं पइ निच्चलभत्तिस्स पससं करेइ। तओ सेडुयस्स जीव देवो तब्भत्ति-रंजिओ सेणियस्स तुट्ठो सन्तो अट्ठारसवंकं हारं देइ। दोन्नि य वट्टगोलके देइ। सेणिएणं सो हारो चेलणाए दिन्नो पिय त्ति काउं, वट्टदुगं सुनंदाए अभयमंतिजणणीए। ताए रुट्ठाए किं अहं चेडरूवं त्ति काऊण अच्छोडिया भग्गा, तत्थ एगम्मि कुंडलजुयलं एगम्मि वत्थ-जुयलं तुट्ठाए गहियाणि।

अन्नया अभओ सामिं पुच्छइ–"को अपच्छिमो रायरिसि त्ति ?"

सामिणा उद्दायणो वागरिओ, अओ परं बद्धमउडा न पव्वयंति।

ताहे अभएण रज्जं दिज्जमाणं न इच्छियं ति पच्छा सेणिओ चिंतेइ–"कोणियस्स दिज्जिहि त्ति, हलस्स हत्थी दिन्नो सेयणगो, विहल्लस्स देवदिन्नो हारो, अभएण वि पव्वयंतेण सुनंदाए खोमजुयलं कुंडलजुयलं च हल्ल-विहल्लाणं दिन्नाणि। महया विहवेण अभओ नियजणणीसमेओ पव्वइओ।

सेणियस्स चेलणादेवी-अंग-समुब्भूया तिन्नि पुत्ता कूणिओ हल-विहल्ला य। कूणियस्स उप्पत्ती एत्थेव भणिस्सइ। काली-महाकाली पमुहदेवीणं अन्नासिं तणया सेणियस्स बहवे पुत्ता कालपमुहा संति। अभयम्मि गहियव्वए अन्नया कोणिओ कालाइहिं दसहिं कुमारेहिं समं मंतेइ–"सेणियं सेच्छाविग्घकारयं बंधित्ता एक्कारसभाए रज्ज करेमो त्ति।"

तेहिं पडिस्सुयं, सेणिओ बद्धो। पुव्वन्हे अवरन्हे य कससयं दवावेइ सेणियस्स कूणिओ पुव्वभवे वेरियत्तणेण।

चेल्लणाए कयाइ भोयणं न देइ, भत्तं वारियं पाणियं न देइ। ताहे चेल्लणा कह वि कुम्मासे वालेहिं बंधित्ता सयवार सुरं पवेसेइ। सा किर धोव्वइ सयवारे सुरापाणियं सव्वं होइ। तीए पहावेण सो वेयणं न वेएइ।

इस समस्त पाठ का अर्थ ऊपर ही प्रकट कर दिया गया है।

राजा कोणिक जब राज-सिंहासन पर स्वय ही बैठ गया तब वह चेलना देवी माता जी के चरण-वन्दन करने के लिए गया। माता उसे देखकर प्रसन्नता प्रकट न कर सकी। तब उसने कहा–"हे माता । मुझे राज्य की प्राप्ति हुई है, क्या तू इस विषय में प्रसन्न नहीं है ?"

माता ने उत्तर में कहा–"हे पुत्र । देव-गुरु के समान पिता को तूने कारागृह मे बन्द कर दिया है, मुझे प्रसन्नता किस बात की हो।" तब इसके उत्तर में उसने कहा–

माता–"राजा श्रेणिक मुझे मारना चाहता था।"

माता ने कहा–"पुत्र ! तेरा यह विचार निराधार है। जब तुम बाल्यावस्था मे थे तब तुम्हारी अगुली मे पीप और शोणित के कारण अत्यन्त वेदना हो रही थी, तब तुम्हारे पूज्य पिताजी इस अंगुली को मुख मे डालकर तुम्हे शान्त करते थे।"

तब कोणिक ने कहा–'हे माता जी। यदि मेरे पूज्य पिता जी मुझ से परम स्नेह रखते थे तो मैं अभी उनकी बेड़ी आदि को काट कर उन्हें मुक्त करता हूं। फिर वह परशु हाथ मे लेकर कारागृह में गया। महाराज श्रेणिक ने उसे आते हुए देखकर भयभीत होकर तालपुट विष के द्वारा प्राण त्याग दिए। जब कोणिक ने उनको मृत पाया तब उसने वियोग-जन्य दु:ख के साथ पिता का अन्त्येष्टि संस्कार किया। कुछ समय के पश्चात् जब उसका

शोक दूर हो गया तब उसने राजगृही नगरी को छोड़कर चम्पा नगरी को अपनी राजधानी बनाया। उक्त वर्णन निम्नलिखित वृत्ति पाठ से जिज्ञासु जन अवगत करें–

अन्नया तस्स पउमावईदेवीए पुत्तो एवं पिओ अत्थि। मायाए सो भणिओ– "दुरात्मन्! तव अंगुली किमिए वमंती पिया मुहे काऊण अत्थियाओ, इयरहा तुमं रोयंतो चेव चिट्ठेसु।" ताहे चित्तं मणागुवसंतं जायं। मए पिया एवं वसणं पाविओ, तस्स अधिई जाया। भुंजंतओ चेव उट्ठाय परसुहत्थगओ, अन्ने भणंति लोहदंडं गहाय, 'नियलाणि भंजामि' त्ति पहाविओ। रक्खवालगो नेहेण भणइ एसो सो पावी। लोहदडं परसु वा गहाय एइ' त्ति। सेणिएण चिंतियं 'न नज्जइ केण कुमारेण मारेहि ?' तओ तालपुडगं विसं खइयं। जाव एइ ताव मओ। सुट्ठुयरं अधिई जाया। ताहे यमकिच्चं काऊण घरमागओ, रज्जधुरामुक्कतत्तीओ तं चेव चिंततो अच्छइ।

एवं कालेणं विसोगो जाओ। पुणरवि सयणआसणाईए पिइसंतिए दट्ठूण अधिई होइ। तओ रायगिहाओ निग्गंतुं चंपं रायहाणिं करेइ। एवं चंपाए कूणिओ राया रज्जं करेइ, नियगभायपमुहसयणसंजोगओ। इह निरयावलिया-सुयखन्धे कूणिकवक्तव्यता आदा-वुत्क्षिप्ता।

इस पाठ का भाव ऊपर लिखा जा चुका है।

कोणिक की सहायता करने वाले कालादि १० कुमार रथ–मूसल सग्राम में अनेक लोगो का घात करने से नरक के योग्य कर्म एकत्र कर नरक में उत्पन्न हुए। इसलिए इस सूत्र का नाम निरयावलिका गुण निष्पन्न है। संग्राम का विषय निम्न प्रकार से जानना चाहिए–

चम्पा नगरी मे कोणिक नामक राजा राज्य करता था। उसके दो सहोदर थे जिनके नाम हल्ल और विहल्ल कुमार थे। वे दोनों भाई हल्ल और विहल्ल पिता के दिए हुए सेचनक नाम वाले गन्धहस्ती पर समारूढ़ होकर दिव्य कुण्डल, दिव्य वस्त्र, दिव्य हार से विभूषित तथा अपने अन्त:पुर के साथ गंगा नदी में आमोद-प्रमोद किया करते थे। उन्हे देखकर पद्मावती ने अपने पति राजा कोणिक को हार और हस्ती पाने के लिए प्रेरित किया। तब राजा कोणिक ने विहल्ल कुमार को दोनो पदार्थ देने का आदेश दिया। वे राजा के भय से अपने मातामह (नाना) चेटक राजा के पास वैशाली नगरी में चले गए। कोणिक ने चेटक के पास दूत भेजा। चेटक राजा ने कहा–हल्ल-विहल्ल भी श्रेणिक राजा के पुत्र है, अत: उन्हे भी राज्य का भाग मिलना चाहिए। कोणिक ने इस बात को स्वीकार न किया। वह संग्राम के लिए उद्यत हो गया। कोणिक की आज्ञानुसार काल आदि दस भाइयो ने तीन-तीन हजार हस्ती, रथ और घोड़े तथा तीन-तीन करोड़ सैनिकों के साथ वैशाली पर आक्रमण की तैयारी की। कूणिक स्वय भी तैयार हुआ। सारी सेना में एकादश भाइयो की सेना ३३ हजार हस्ती, ३३ हजार रथ, ३३ हजार घोड़े और ३३ करोड़ सैनिक थे। यह सेना गरुड व्यूह के संस्थान पर संस्थित की गई।

इस वृत्तान्त को जानकर राजा चेटक ने भी अष्टादश गण राजाओं को एकत्र किया। उन राजाओं की सेना और राजा चेटक की सेना मे इतने ही हस्ती आदि का प्रमाण था। तत्पश्चात् युद्ध मे सलग्न हुए राजा चेटक ने एक ही बार धनुषबाण छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली थी। उनका बाण अमोघ होता था। इसी क्रम से १० दिनो मे कालादि १० कुमार मृत्यु को प्राप्त हो गए। एकादशवे दिन राजा चेटक को जीतने के लिए कोणिक ने अष्टम भक्त के साथ देवाराधन किया। तब शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र दोनों इन्द्र आ गए। शक्र ने कहा—चेटक श्रावक है, अत: उसके ऊपर मैं प्रहार नही कर सकता। किन्तु आप की रक्षा अवश्य करूगा। तब उसकी रक्षा के लिए वज्र के समान अभेद्य कवच निर्माण किया। चमरेन्द्र ने दो सग्राम विकुर्वण किए—महाशिला कंटक और रथ-मूशल। उनमे महाशिला कण्टक सग्राम मे शत्रु के प्रति तृणादि पदार्थ भी महाशिला के समान काम करते थे। रथ-मूशल सग्राम मे एक रथ मूशल से युक्त बिना घोडे और सारथी के चारो ओर सेनाओं का क्षय करता हुआ भागता था।

युद्ध के प्रथम दिन कालकुमार मृत्यु को प्राप्त हुआ।

रथ-मूसल संग्राम के विषय में वृत्तिकार निम्न प्रकार से लिखते हैं—

तत. शक्रो बभाषे—''चेटक: श्रावक इत्यहं न तं प्रति प्रहरामि, नवरं भवन्तं संरक्षामि''। ततोऽसौ तद्रक्षार्थ वज्रप्रतिरूपकमभेद्यकवचं कृतवान्। चमरस्तु द्वौ सङ्ग्रामौ विकुर्वितवान् महाशिलाकण्टकं रथमुशलं चेति। तत्र महाशिलेव कण्टको जीवित- भेदकत्वान्महा-शिलाकण्टक.। ततश्च यत्र तृणशूकादिनाऽप्यहतस्याश्वहस्त्यादेमहाशिलाकण्टकेनेवा-स्याहतस्य वेदना जायते, स सङ्ग्रामो महाशिलाकण्टक एवोच्यते। 'रहमुसले' त्ति यत्र रथो मुशलेन युक्त. परिधावन् गच्छति अतो रथमुशल:।

तथा जो सूत्रकर्ता ने ''**तिहिं आससहस्सेहि तिहिं मणुयकोडीहिं गरुलवूहे।**'' पद दिए है इस पर विचार किया जाता है कि सहस्रो का सम्बन्ध कोटि के साथ युक्तिपूर्वक संगत नही होता, अर्थात् तीन हजार घोडे और तीन करोड मनुष्य, अत: कोटि शब्द कोई राजकीय संज्ञा विशेष प्रतीत होता है। जैसे कि स्थानांग-सूत्र मे कथन किया गया है— साधु का ९ कोटि प्रत्याख्यान होता है। इस स्थान पर कोटि शब्द एक कारिका का वाची है, अथवा कोड़ी २० का नाम भी है। आगमो मे कोडी शब्द सीमा का वाचक भी माना गया है। इससे भली-भांति सिद्ध हो जाता है कि इस स्थान पर कोटि शब्द सेना की किसी विशेष इकाई का नाम है, क्योंकि दोनों राजाओं की सर्व सेना देश के अर्थात् अंग देश और विदेह देश की सीमा पर स्थित है। ३३ करोड और ५७ करोड दोनों राजाओं की सेना थी। संग्राम का अन्तर केवल एक योजन प्रमाण है। इससे सिद्ध होता है कि कोटि शब्द से कोई संज्ञा

विशेष जाननी चाहिए। आजकल सिख समाज में "सवा लाख" केवल एक व्यक्ति के लिए कहा जाता है, तत्व केवली-गम्य है।

काली रानी की चिन्ता

उत्थानिका—अब सूत्रकार उक्त विषय मे फिर कहते हैं—

मूल—तए णं तीसे कालीए देवीए अन्नया कयाइ कुडुम्ब-जागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए (जाव०) समुप्पज्जित्था। एवं खलु ममं पुत्ते कालकुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं (जाव०) ओयाए। से मन्ने किं जइस्सइ ? नो जइस्सइ ? जीविस्सइ ? नो जीविस्सइ ? पराजिणिस्सइ ? नो पराजिणिस्सइ ? काले णं कुमारे अहं जीवमाणं पासिज्जा ? ओहयमण० (जाव०) झियाइ ॥ ११ ॥

छाया—ततः खलु तस्याः काल्या देव्या अन्यदा कदाचित् कुटुम्ब - जागरिकां जाग्रत्या अयतमेतद्रूपः आध्यात्मिकः यावद् समुदपद्यत। एवं खलु मम पुत्रः कालकुमारः त्रिभिर्दन्ति-सहस्त्रैः यावत् उपयातस्तन्मन्ये किं जेष्यति ? न जेष्यति ? जीविष्यति ? न जीविष्यति ? पराजेष्यते ? न पराजेष्यते ? कालं खलु कुमारमहं जीवन्तं द्रक्ष्यामि ? अप- हतमनः-संकल्पा यावत् ध्यायति ॥ ११ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात्—**तीसे**—उस, **कालीए देवीए**—काली देवी के, **अन्नया कयाइ**—अन्य समय में एक बार, **कुडुम्ब जागरियं**—कुटुम्ब की जागरिका अर्थात् कुटुम्ब सम्बन्धी विचार, **अयमेयारूवे**—इस प्रकार के, **अज्झत्थिए**—आध्यात्मिक विचार, **जाव**—यावत्, **समुप्पज्जित्था**—उत्पन्न हुए, **एव खलु**—निश्चय ही इस प्रकार, **ममं**—मेरा, **पुत्ते कालकुमारे**—पुत्र काल कुमार, **तिहिं दन्तिसहस्सेहि**—तीन हजार हाथी लेकर, **जाव**—यावत्, **ओयाए**—(सग्राम-भूमि मे) पहुचा है, **से**—वह काल कुमार, **मन्ने**—मै सोचती हूं, **किं जइस्सइ**— क्या जीतेगा ? **नो जइस्सइ**—नही जीतेगा ? **जीविस्सइ**—जीवित रहेगा? **नो जीविस्सइ**—जीवित नहीं रहेगा ? **पराजिणिस्सइ**—शत्रु को पराजित करेगा? **नो पराजिणिस्सइ**—या पराजित नही करेगा ? **काले णं कुमारे**—काल कुमार को, **अहं**—मै, **जीवमाण**—जीवित अवस्था में, **पासिज्जा**—क्या देख सकूगी ? **ओहयमण**—उपहत मन होकर अर्थात् उदास होकर, **जाव**—यावत्, **झियाइ**—आर्त्त-ध्यान करने लगी।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस काली देवी के (हृदय मे) एक समय कुटुम्ब का विचार करती हुई के इस प्रकार के आध्यात्मिक (मानसिक) विचार उत्पन्न हुए—इस प्रकार निश्चय ही मेरा पुत्र काल कुमार तीन हजार हाथियों के साथ यावत् सग्राम मे गया है, मै

सोचती हूं कि क्या वह जीतेगा या नही जीतेगा ? क्या वह जीवित रहेगा, या जीवित नहीं रहेगा ? क्या वह हार जाएगा, या जीत जाएगा ? क्या मैं काल कुमार को जीते हुए को देख पाऊंगी, इस प्रकार के विचारो से वह उपहत-मन अर्थात् उदास होकर यावत् आर्त्तध्यान करने लगी।

टीका—इस सूत्र मे काली देवी के विषय मे वर्णन किया गया है। एक समय की बात है कि काली देवी के हृदय मे अर्द्धरात्रि के समय अपने कुटुम्ब के सम्बन्ध में विचार करते हुए ये सकल्प उत्पन्न हुए कि ये बात ठीक निश्चय है कि मेरा पुत्र काल कुमार ३ सहस्र हस्ती, ३ सहस्र अश्व और ३ सहस्र रथ और ३ कोटि मनुष्यों के साथ रथ-मूसल नाम वाले संग्राम मे गया है। यह मैं नहीं जान पा रही हू कि क्या वह जीतेगा या नहीं ? जीवित रहेगा या नही ? वैरी को पराजित कर देगा या नहीं। काल कुमार को मै जीवित अवस्था मे देखूगी या नहीं ? इस प्रकार के विचारो से उसका मन उपहत अर्थात् उदास हो गया और वह अपने दोनो हाथ कपोलो पर रख कर आर्त्तध्यान मे डूबी अधोमुखी होकर भूमि की ओर देखने लगी। उसका कमल सा मुख और नयन विकसित न रह सके। जैसे दीन व्यक्ति का मुख होता है, उसी प्रकार मानसिक दुख के कारण से उसका मुख भी दीन हो गया। आंतरिक वेदना से उस का शरीर तेज-हीन सा हो गया था। इसलिए सूत्रकर्ता ने '**ओहयमण जाव झियाइ**' यह पाठ दिया है, इस के विषय मे वृत्तिकार लिखते है—

उपहतोमनः—संकल्पो युक्तायुक्तविवेचनं यस्याः सा उपहतमनःसंकल्पा। याव-त्कारणात् ''करयलपल्हत्थियमुही अट्टज्झाणोवगया ओमंथियवयणनयणकमला'' ओमंथिय—अधोमुखीकृतं वदनं च नयनकमले च यथा सा तथा। 'दीणविवन्नवयणा' दीनस्येव विवर्णं वदन यस्याः सा तथा। 'झियाइ' त्ति आर्तध्यानं ध्यायति, मणोमाणसिएण दुक्खेणं वचनेनाप्रकाशितत्वात् तन्मनो- मानसिक तेन अबहिर्वर्तिनाऽभिभूता।

इस वृत्ति का भाव यह है कि वह काली रानी मानसिक दुख से व्याकुल हुई आर्त्तध्यान मे लीन हो गई।

चम्पानगरी में भगवान का पदार्पण

उत्थानिका—तत्पश्चात् क्या हुआ, अब सूत्रकार इसी विषय में फरमाते हैं—

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए, परिसा निग्गया ॥ १२ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः समवसृतः। परिषद् निर्गता।

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं—उस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ भाग में, **तेणं समएणं**—

उस समय जिस समय श्रमण भगवान महावीर विद्यमान थे, **समणे**—श्रमण, **भगवं**—भगवान, **महावीरे**—महावीर, **समोसरिए**—पधारे, **परिसा**—परिषद्, **निग्गया**—नगर से निकली।

मूलार्थ—उस काल तथा उस समय मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी का समवसरण हुआ, अर्थात् वे (चम्पा नगरी में)पधारे। तब नगर की परिषद् (जनता) भगवान महावीर के वचनामृत सुनने को आई।

टीका—इस सूत्र में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समवसरण विषयक वर्णन किया गया है, उस समय संग्राम हो रहा था और काल कुमार आदि १० भ्राता उस संग्राम में गए हुए थे। तब उस समय काली देवी स्वकीय कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ता मे काल कुमार के जय पराजय विषय की चिन्ता में मग्न हो रही थी। उसी समय भगवान महावीर चम्पा नगरी के बाहर ईशान कोण में पूर्णभद्र चैत्य में विराजमान हुए। नगर की परिषद् अर्थात् जनता भगवान महावीर के वचनामृत सुनने के लिए आई।

काली की प्रभु दर्शनार्थ जाने की तैयारी

मूल—तए णं तीसे कालीए देवीए इमीसे कहाए लद्धट्ठाए समाणीए अयमेवारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं इहमागए जाव विहरइ। तं महाफलं खलु तहारूवाणं जाव विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए। तं गच्छामि समणं जाव पज्जुवासामि, इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया ! धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तमेव उवट्ठवेह। उवट्ठवित्ता जाव पच्च-प्पिणंति ॥ १३ ॥

छाया—ततः खलु तस्याः काल्याः देव्याः एतस्या· कथायाः लब्धार्थायाः सत्याः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत-एवं खलु श्रमणो भगवान् महावीरः पूर्वानुपूर्व्याः इहागत· यावद् विहरति तन्महाफलं खलु तथारूपाणां यावत् विपुलस्यार्थस्य ग्रहणतया तद् गच्छामि खलु श्रमणं यावत् पर्युपासे, इदं च खलु एतद्रूपं व्याकरणं प्रक्ष्यामि, इतिकृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कौटुम्बिक-पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! धार्मिकं यान-प्रवरं युक्तमेवं उपस्थापयत। उपस्थाप्य यावत् प्रत्यर्पयन्ति ॥ १३ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात् 'णं' वाक्यालंकार के लिए प्रयुक्त है, **तीसे कालीए देवीए**—उस काली देवी के हृदय में, **इमीसे**—इस, **कहाए**—कथा के (वृत्तान्त के), **लद्धट्ठाए**

समाणीए–वह जो चाहती थी वह हो जाने पर, **अयमेवारूवे**–इस प्रकार का मानसिक भाव, **जाव**–यावत्, **समुप्पज्जित्था**–उत्पन्न हुआ, **एवं खलु**–यह निश्चित है कि, **समणे**–श्रमण, **भगवं०**–भगवान् महावीर, **पुव्वाणुपुव्विं**–ग्रामानुग्राम, **इहमागए**– यहा इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में पधारे हैं, **जाव-विहरइ**–यावत् विहार करते हुए, **त महाफलं**–यह महान् फलदायक है, **खलु**–निश्चय ही, **तहारूवाणं**–तथारूप अर्थात् शुभ परिणाम देने वाले, **जाव**–यावत् अर्थात् श्रमण भगवन्तों का नाम-स्मरण ही, (अत:) **विउलस्स**–विपुल अर्थात् बहुत, **अट्ठस्स**–अर्थ अर्थात् प्रयोजन को, **गहणयाए**–को ग्रहण करने के लिए अर्थात् प्रयोजन-सिद्धि के लिए, **तं**–इसलिए, **गच्छामि**–मै जाती हूं, **समणं**–श्रमण भगवान महावीर की, **जाव**–यावत्, **पज्जुवासामि**– सेवा करूं, **इमं च णं**–और अपने हृदय मे पूर्व उठे हुए, **एयारूवं**–और उसी प्रकार के अन्य, **वागरण**–अनेक प्रश्न, **पुच्छिस्सामि**–मैं पूछूगी, **त्ति कट्टु**–यह कह कर, **एवं संपेहेइ**–इस प्रकार विचार करती है, **संपेहित्ता**–विचार करके, **कोडुम्बियपुरिसे**– पारिवारिक निजी दासों को, **सद्दावेइ**–बुलवाती है, **सद्दावित्ता**–बुलवा कर, **एवं वयासी**–और उनसे कहती है कि, **भो देवाणुप्पिया**–हे देवानुप्रियो ! **खिप्पामेव**–शीघ्र ही, **धम्मियं**–धार्मिक कार्यो में ही प्रयुक्त किए जाने वाले, **जाणप्पवरं**–सर्वश्रेष्ठ रथ, **जुत्तामेव**–अश्व-सारथी आदि से युक्त, **उवट्ठवेह**–तैयार करें, **उवट्ठवित्ता**–रथ को तैयार करके दास लोग, **जाव**–यावत्, **पच्चप्पिणंति**–महारानी को अर्पित करते हैं–अर्थात् ''रथ तैयार है'' यह निवेदन करते हैं।

मूलार्थ–तत्पश्चात् काली देवी (भगवान महावीर के आगमन सम्बन्धी) समाचार को सुनकर वह जो चाहती थी वही उसे प्राप्त हुआ था, अत: उसके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यह तो निश्चित ही है कि श्रमण भगवान महावीर इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य मे ग्रामानुग्राम विहार करते हुए पधारे है। उनका आगमन निश्चय ही शुभ फलदायक है, ऐसे श्रमण भगवन्तो का नाम-स्मरण ही जबकि महाफलदायक होता है तो उनके दर्शनार्थ जाना, उन्हे नमस्कार करना, उनकी सेवा करना तो शुभ फलदायक होगा ही, अत: मै उनके दर्शनार्थ जाती हूं, उनको वन्दन करती हूं, उनकी उपासना करती हू और अपने हृदय मे जो पुत्र-सम्बन्धी प्रश्न है वह उनसे पूछती हूं। यह सोचकर उसने अपने पारिवारिक दासो को बुलवाया और उनसे कहा–देवानुप्रियो ! धार्मिक कार्यों के लिए निश्चित मेरा अश्व-सारथी आदि से युक्त रथ शीघ्र लाओ। दास लोग रथ को तैयार करके ''रथ तैयार है'' महारानी से यह निवेदन करते है।

टीका–इस सूत्र में काली देवी के विषय मे वर्णन किया गया है, जैसे कि जब काली देवी ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के आगमन का समाचार प्राप्त किया, तब उसके हृदय मे निम्नलिखित विचार उत्पन्न हुए। जैसे कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी

अनुक्रम से ग्रामानुग्राम विचरते हुए इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य मे (उद्यान मे) विराजमान हो गए हैं। जो व्यक्ति महापुरुषो के धर्मोपदेश को धारण करता है, उसे महाफल प्राप्त होता है, इसलिए मैं भी भगवान महावीर की सेवा कर के यह प्रत्यक्ष प्रश्न पूछूगी। तब वह स्वकीय दासों को आमन्त्रित कर कहने लगी– ''हे देवानुप्रियो ! मेरे जाने के लिए धार्मिक रथ को अश्वों से संयुक्त कर, मुझे शीघ्र ही सूचित करो। तब दासों ने उसी प्रकार करके काली देवी को सूचित कर दिया।

कुछ प्रतियो में वृत्तिकार ने **''अज्झत्थिए''** के पश्चात् निम्नलिखित पाठ अधिक दिया है–

'चिंतियपत्थियमणोगए संकप्पे' अर्थात् चिन्तित-स्मरण-रूप, प्रार्थित–आशसा रूप, मनोगत रूप, सकल्प-विकल्प रूप और **''समणे भगवं''** इस के आगे यह पाठ देखा जाता है–

''पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव सुहंसुहेणं विहरमाणे''

वृत्तिकार ने उक्त विषय को निम्न प्रकार से सम्पूर्ण किया है। वह सर्व पाठ औपपातिक सूत्र के आधार से लिखा गया है जैसे कि–

पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे इहमागए इह सम्पत्ते इह समोसढे, इहेव चंपाए नयरीए पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।'' ''तं महाफलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहताणं, भगवंताणं, नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमणवंदण- नमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स वयणस्स सवणयाए, किमग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए।'' 'गच्छामि णं' अहं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि, एवं णो पेच्चभवे हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ 'इमं च ण एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि०'' त्ति कट्टु एव संपेहेइ सप्रेक्षते-पर्यालोचयति। सुगमम्।

नवरं ''इहमागए'' त्ति चम्पायां, 'इह संपत्ते' त्ति पूर्णभद्रे चैत्ये, ''इह समोसढे' त्ति साधूचितावग्रहे, एतदेवाह-इहेव चंपाए इत्यादि। 'अहापडिरूवं' ति यथाप्रतिरूपम् उचितमित्यर्थः। 'तं' इति तस्मात्, 'महाफलं' ति-महत्फलमायत्यां भवतीति गम्य।

'तहारूवाणं' ति तत्प्रकारस्वभावानां - महाफलजननस्वभावानामित्यर्थः। नामगोयस्स त्ति नाम्नो-यादृच्छिकस्याभिधानस्य, गोत्रस्य-गुणनिष्पन्नस्य, ''सवणयाए'' त्ति श्रवणेन, 'किमग पुण' त्ति किं पुनरिति पूर्वोक्तार्थस्य विशेषद्योतनार्थम् अंगेत्यामन्त्रणे, यद्वा परिपूर्ण एवायं शब्दो विशेषणार्थः, अभिगमनं, वन्दनं-स्तुतिः, नमनं-प्रणमनं, प्रतिपृच्छनं-शरीरादिवार्ताप्रश्नं पर्युपासनं-सेवा, तद्भावस्तत्तातया, एकस्यापि आर्यस्य आर्यप्रणेतृ-

कत्वात्, धार्मिकस्य धर्म-प्रतिबद्धत्वात्, वन्दामि, वन्दे स्तौमि, नमस्यामि—प्रणमामि, सत्कारयामि—आदरं करोमि वस्त्राद्यर्चन वा, सन्मानयामि उचितप्रतिपत्येति। कल्याणं-कल्याणहेतुं, मंगलं दुरितोपशमनहेतु, देवं चैत्यमिव चैत्यं, पर्युपासयामि सेवे, एतत् नोऽस्माकं, प्रेत्यभवे-जन्मान्तरे, हिताय पथ्यान्नवत्, शर्मणे, क्षमाय-सङ्गतत्वाय, निःश्रेयसाय-मोक्षाय, आनुगामिकत्वाय-भवपरम्परासु सानुबन्धसुखाय भविष्यति, इति कृत्वा इति हेतोः, संप्रेक्षते पर्यालोचयति संप्रेक्ष्य चैवमवादीत्—

शीघ्रमेव 'भो देवाणुप्पिया'। धर्माय नियुक्तं धार्मिकं, यानप्रवरं, 'चाउग्घंटं आसरहं' ति चतस्रो घण्टाः पृष्टतोऽग्रतः पार्श्वतश्च लम्बमाना यस्य स चतुर्घण्टः, अश्वयुक्तो रथोऽश्वरथस्तमश्वरथं, युक्तमेवाश्वादिभि· उपस्थापयत—प्रगुणीकुरुत, प्रगुणीकृत्य मम समर्पयत्।

इस वृत्ति का भाव ऊपर लिखा जा चुका है तथा "**धम्मियं जाणप्पवरं**" इस पद से यह निश्चित होता है कि धर्म के लिए वह रथ नियुक्त था, अर्थात् धार्मिक क्रियाए करते समय ही उसका उपयोग किया जाता था, तथा '**तं महाफलं**' इत्यादि पदो से यह सिद्ध किया गया है कि तथारूप अर्हत् भगवन्तों के नाम सुनने मात्र से ही महाफल होता है, फिर जो उनके पास जाकर वन्दन-नमस्कार करके प्रश्न का पूछना तथा उनकी पर्युपासना करना, इतना ही नहीं उन के मुख से निकले हुए आर्योचित धार्मिक वचनों का श्रवण करना और विपुल अर्थो का धारण करना, उसका फल हम क्या कह सकते हैं, अथवा भगवत्-स्तुति इस लोक और परलोक में हित के लिए, सुख के लिए, क्षेम और मोक्ष के लिए होती है। इस सूत्र के आधार पर स्तुति वा स्तोत्रो की रचनाएं हुई है।

जो सूत्रकर्ता ने "**कोडुंबियपुरिसे**" पद दिया है इसका भाव सेवक पुरुष है।

प्रभु के समवसरण में काली रानी का गमन

उत्थानिका—तदनन्तर काली देवी ने क्या किया अब सूत्रकार इसी विषय में कहते है—

मूल—तए णं सा काली देवी ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्पमहग्घा-भरणालंकियसरीरा बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगविंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता नियगपरियालसंपरिवुडा चंपं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुन्नभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए जाव धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ, ठवित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ,

पच्चोरुहित्ता बहूहिं जाव खुज्जाहिं महत्तरगविंदपरिक्खित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ, वंदित्ता ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणा नमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासइ ॥ १४ ॥

छाया–ततः खलु सा काली देवी स्नाता कृतबलिकर्मा यावत् अल्पमहार्घाभरणा-लंकृतशरीरा बहूभिः यावन्महत्तरकवृन्दपरिक्षिप्ता अन्तःपुरान्निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव धार्मिको यानप्रवरस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य धार्मिकं यानप्रवरं दुरोहति, दूरूह्य निजकपरि-वारसंपरिवृता चम्पा नगरीं मध्य-मध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव पूर्णभद्रश्चैत्यस्तत्रै-वोपागच्छति, उपागत्य छत्रादिकं यावद् धार्मिकं यानप्रवरं स्थापयति, स्थापयित्वा धार्मिकाद् यानप्रवरात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य बह्वीभिः कुब्जाभिः यावत्–महत्तरकवृन्दपरिक्षिप्ता यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं त्रिःकृत्वा वन्दते, वन्दित्वा स्थिता चैव सपरिवारा शुश्रूषमाणा नमस्यन्ती अभिमुखी विनयेन प्राञ्जलिपुटा पर्युपासते ॥ १४ ॥

पदार्थान्वयः–तए ण–तदनन्तर, (णं वाक्यालंकार मे), **सा काली देवी**–उस काली देवी ने, **ण्हाया**–स्नान किया, **कयबलिकम्मा**–बलिकर्म किया, **जाव**–यावत्, **अप्पमहग्घा-भरणालकियसरीरा**–भार मे हल्के किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से अपने को अलकृत किया, **बहूहिं**–बहुत सी, **खुज्जाहि**–कुबड़ी दासियों, **महत्तरगविन्दपरिक्खित्ता**–और महत्तरकवृन्द (अन्तःपुर-रक्षिका दासियों) को साथ लेकर, **अन्तेउराओ**–अन्तःपुर से, **निग्गच्छइ**–निकली, **निग्गच्छित्ता**–वहा से निकलकर, **जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला**–जहा बाहरी सभा-मण्डप था, (और) **जेणेव**–जहां पर, **धम्मिए जाणप्पवरे**–धार्मिक रथ था, **तेणेव उवागच्छइ**–वहां आती है, **उवागच्छित्ता**–आकर, **धम्मियं जाणप्पवरं**–धार्मिक रथ मे, **दुरूहइ**–बैठ गई, **दुरूहित्ता**–बैठ कर, **नियग-परियाल-संपरिवुडा**- अपने परिवार से घिरी हुई, **चंपं नयरिं मज्झं-मज्झेणं**–चम्पा नगरी के बीचो बीच के रास्ते से, **निग्गच्छइ**–निकली, आगे बढी, **निग्गच्छित्ता**–वहां से आगे बढ़कर, **जेणेव**–जहां, **पुण्णभद्दे**–पूर्णभद्र, **चेइए**–चैत्य था, **तेणेव उवागच्छइ**–वहा आ पहुंची, **उवागच्छित्ता**–वहा पहुच कर, **छत्ताईए**–भगवान् महावीर के छत्रादि अतिशयों को देखकर, (उसने अपने) **जाव**–यावत्, **धम्मिय जाणप्पवरं ठवेइ**–धर्म-यात्रा में प्रयुक्त होने वाले रथ को रुकवा दिया। **ठवित्ता**–रथ को रुकवा कर, **धम्मि-याओ जाणप्पवराओ**–उस धर्म-यात्रा में प्रयुक्त होने वाले रथ से, **पच्चोरुहइ**–नीचे उतर आई। **पच्चोरुहित्ता**–रथ से नीचे उतरकर, **बहूहिं खुज्जाहिं**–बहुत सी कुबडी दासियों, (और) **जाव**–यावत्, **महत्तरगविंदपरिक्खित्ता**–यावत् महत्तरक वृन्द के साथ अर्थात् अन्तःपुर की रक्षिका दासियों के साथ, **जेणेव**–जहां पर, **समणे भगवं महावीरे**–श्रमण

भगवान महावीर विराजमान थे, **तेणेव**—वही पर, **उवागच्छइ**—आ पहुंची, **उवागच्छित्ता**—वहां आ कर, **समणं भगवं महावीरं**—उसने श्रमण भगवान महावीर को, **तिक्खुत्तो**—तीन बार प्रदक्षिणा करके, **वंदइ**—उन्हे वंदना की, **वंदित्ता**—वन्दना करने के अनन्तर, **ठिया चेव सपरिवारा**—परिवार सहित वहां खड़ी हुई, **सुस्सूसमाणा**—सेवा-भक्ति करती हुई, **नमंस-माणा**—नमस्कार करती हुई, **अभिमुहा**—भगवान के सामने, **विणएणं**—विनय-पूर्वक, **पंजलिउडा**—कर-बद्ध होकर, **पज्जुवासइ**—भगवान की सेवा-भक्ति करने लगी।

मूलार्थ—तदनन्तर उस काली देवी ने स्नान किया, बलिकर्म किया, यावत् बहुत सी कुब्जा दासियो के वृन्द से घिरी हुई वह अन्तःपुर से निकली और निकलकर जहां बाहर की ओर उपस्थान-शाला थी, जहा धार्मिक प्रधान रथ तैयार खड़ा था, वहां आई। आकर धार्मिक प्रधान रथ पर आरूढ़ हुई। आरूढ़ होकर अपने परिवार से परिवृत हुई और चम्पा नगरी के बीचों-बीच के मार्ग से निकली। निकलकर जहां पूर्णभद्र चैत्य था, वहा आई। तीर्थंकर देव के छत्रादि अतिशयों को देखकर उसने धार्मिक प्रधान रथ को खडा किया। रथ खडा करके, उससे नीचे उतर आई, उतरकर उन बहुत सी कुब्जा दासियो के वृन्द से परिवृत हुई जहां श्रमण भगवान महावीर अपनी उपदेश रूपी वृष्टि से भव्य जनों की अज्ञानता की धूल को शांत कर रहे थे, वहां पर आई। आकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की तीन बार प्रदक्षिणा की। वन्दना-नमस्कार कर परिवार सहित खडी हुई। सेवा करती हुई नमस्कार करती हुई उनके सम्मुख विनय-पूर्वक हाथ जोड़कर सेवा करने लगी।

टीका—इस सूत्र मे काली देवी के विषय मे वर्णन किया गया है। जब काली देवी ने रथ पर आरोहण किया तो उस से पूर्व स्नान और बलि कर्म किया।

इस के विषय मे वृत्तिकार लिखते है—"**कयबलिकम्मा" त्ति स्वगृहे देवतानां कृत-बलिकर्मा**" अर्थात् स्वगृह मे देवताओं के पूजन आदि कृत्य को बली-कर्म कहते है, किन्तु यह शब्द अर्धमागधी गुजराती कोष के ५७४ पृष्ठ पर तीन अर्थों मे ग्रहण किया गया है—जैसे कि बलिकम्म, १. बलिकर्म्म शरीर नी स्फूर्ति माटे तेलादि थी मर्दन करवूं ते, २. देवताने निमित्ते अपाय ते और ३. गृहदेवतानूं पूजन। इस स्थान पर शरीर की स्फूर्ति के लिए तेलादि मर्दन ही सिद्ध होता है।[१] कारण यह कि औपपातिक सूत्र मे स्नान की पूर्ण विधि का विधान किया गया है जिस में उल्लेख है कि स्नान के पूर्व तेलादि के मर्दन का विधान है। उस स्थान पर इसका विस्तार सहित वर्णन किया गया है, किन्तु वहां पर

---

१ स्नान के अनन्तर तैल-मर्दन तो लोक प्रसिद्ध नही है, सम्भवत: सुगन्धित तैलादि लगाना अर्थ हो।

''कयबलिकम्मा'' का पाठ नही है। इससे सिद्ध हुआ कि जिस स्थान पर स्नान विधि का संक्षिप्त वर्णन किया गया हो वहां पर तो 'कयबलिकम्मा' का पाठ होता है और जिस स्थान पर स्नान की पूर्ण विधि का वर्णन होता है उस स्थान पर नहीं। इसलिए पूर्व अर्थ ही युक्ति-युक्त सिद्ध होता है।

कौतुक मगल क्रिया और दु:स्वप्नादि के फल को दूर करने के लिए प्रायश्चित्त किया। कौतुक शब्द से मषी-पुण्ड्र आदि का ग्रहण है और मगल शब्द से सिद्धार्थ दही, अक्षत, दूर्वादि (दूब) का ग्रहण है। जैसे कि-कौतुकानि मषीपुण्ड्रादीनि, मगलादीनि-सर्षपदध्यक्षतचन्दनदूर्वाकुरादीनि। इतना ही नही बल्कि उसने सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणो को जो भार में अल्प किन्तु मूल्य मे कीमती थे शरीर पर धारण किया। फिर बहुत से देशो से आई हुई दासियो के वृन्द के साथ परिवृत होती हुई भगवान महावीर के दर्शनों के लिए निकली।

सूत्रकर्ता ने 'बहूहिं खुज्जाहिं जाव' इन पदों से अनेक देशों की दासियों का वर्णन किया है। 'यावत्' शब्द से अनेक देशो की सूचना दी गई है। वृत्तिकार ने उन देशों में उत्पन्न होने वाली दासियो के विषय मे बहुत ही विस्तार से लिखा है।

भगवान का उपदेश कथन

मूल-तए णं समणे भगवं जाव कालीए देवीए तीसे य महइमहालियाए, धम्मकहा भाणियव्वा, जाव समणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणा आणाए आराहए भवइ ॥ १५ ॥

छाया-ततः णं श्रमणो भगवान् महावीरः यावत् काल्याः देव्याः तस्याः महातिमहत्याः (धर्मकथायाः नेतव्याः) भाणितव्या यावत् श्रमणोपासकः वा श्रमणोपासिका वा विहरमाणा आज्ञायाः आराधको भवति।

पदार्थान्वयः-तए णं-तत्पश्चात्, **समणे भगवं**-श्रमण भगवान महावीर, **जाव**-यावत्-अर्थात् मोक्षगामी, **कालीए देवीए**-महारानी काली देवी को लक्ष्य मे रखकर, **तीसे य**-और उस, **महतिमहालियाए**-अत्यन्त विशाल परिषद् मे, **धम्मकहा**-धर्म-कथा (धर्मोपदेश), **भाणियव्वा**-सुनाई, **जाव**-यावत् (आगार अनगार धर्म की शिक्षा मे तत्पर), **समणोवासए**-श्रमणोपासक (श्रावक), **वा**-अथवा, **समणोवासिया**-श्रमणोपासिका (श्राविका), **विहरमाणा**-विचरते हुए, **आणाए**-आज्ञा के, **आराहए**-आराधक (आज्ञा का पालन करने वाले), **भवइ**-होते हैं।

मूलार्थ-तत्पश्चात् मोक्षगामी भगवान् महावीर स्वामी ने महारानी काली देवी

एवं उस विशाल धर्म-सभा को ऐसी धर्म-कथा सुनाई, जिसको श्रवण कर श्रावक एवं श्राविकाएं धर्म में स्थिर रहकर जीवन-पथ पर चलते हुए (विहरमाणा) प्रभु की आज्ञा के आराधक-पालन करने वाले होते हैं।

टीका—इस सूत्र में श्री भगवान महावीर की (धर्मोपदेश) कथा के विषय मे वर्णन किया गया है, जैसे कि जब काली देवी और विशाल धर्म-परिषद् उस उद्यान में एकत्र हुई, तब भगवान महावीर ने धर्म कथा-वर्णन की, यावत् साधु-धर्म तथा श्रावक धर्म का वर्णन किया। अन्त मे यह बताया कि जो इस धर्म की पूर्णतया आराधना करता है, वह प्रभु की आज्ञा का आराधक हो जाता है। धर्मकथा का पूर्ण विवरण औपपातिक सूत्र से जानना चाहिए। इस स्थान पर तो केवल संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

काली का प्रश्न और भगवान का समाधान

मूल—तए णं सा काली देवी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म जाव हियया समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव एवं वयासी—एवं खलु भंते ! मम पुत्ते काले कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव रहमुसलसंगामं ओयाए, से णं किं जइस्सइ ? नो जइस्सइ ? जाव काले णं कुमारे अहं जीवमाणं पासिज्जा ? "कालीत्ति" समणे भगवं महावीरे कालिं देविं एवं वयासी—एवं खलु काली ! तव पुत्ते काले कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव कूणिएणं रन्ना सद्धिं रहमुसलं संगामं संगामेमाणे हयमहियपवरवीर-घाइयणिवडियचिंधज्झयपडागे निरालोयाओ दिसाओ करेमाणे चेडगस्स रन्नो सपक्खं सपडिदिसिं रहेणं पडिरहं हव्वमागए।

तए णं से चेडए राया कालं कुमारं एज्जमाणं पासइ, कालं एज्जमाणं पासित्ता आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, वइसाहं ठाणं ठाइ, ठाइत्ता आययकण्णाययं उसुं करेइ, करित्ता कालं कुमारं एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवेइ। तं कालगए णं काली ! काले कुमारे नो चेव णं तुमं कालकुमारं जीवमाणं पासिहिसि।

छाया—ततः खलु सा काली देवी श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य यावत्-हृदया श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः-कृत्वा यावदेवमवादीत्—एवं खलु भदन्त! मम पुत्रः कालः कुमारः त्रिभिर्दन्तिसहस्रैः यावत्—रथमुशलसंग्रामम् उपगतः, स खलु भदन्त ! किं जेष्यति ? नो जेष्यति ? यावत् कालं खलु कुमारमहं

जीवन्तं द्रक्ष्यामि ? कालि! इति श्रमणो भगवान् महावीरः कालीं देवीमेवमवादीत् एवं खलु कालि ! तव पुत्रः कालः कुमारः त्रिभिर्दन्तिसहस्रैर्यावत् कूणिकेन राज्ञा सार्द्धं रथमुशलं संग्रामं सङ्ग्रामयन् हतमथितप्रवरवीरघातितचिह्नध्वजपताकः निरालोका दिशः कुर्वन् चेटकस्य राज्ञः सपक्षं सप्रतिदिक् रथेन प्रतिरथं हव्य-मागतः ॥

ततः खलु स चेटको राजा कालं कुमारम् एजमानं पश्यति। कालमेजमानं दृष्ट्वा आशुरुप्तः यावत् मिसमिसन् धनुः परामृशति, परामृश्य इषुं परामृशति, परामृश्य वैशाखं स्थानं तिष्ठति, स्थित्वा आयतकर्णायतमिषुं करोति, कृत्वा कालं कुमार-मेकाहत्यं कूटाहत्यं जीविताद् व्यपरोपयति। तत् कालगतः खलु कालि ! कालः कुमारः नो चैव खलु त्वं कालं कुमारं जीवन्तं द्रक्ष्यसि ॥

पदार्थान्वय.–तए ण–उसके अनन्तर (धर्म-कथा श्रवण के अनन्तर), ''ण'' वाक्यालकार मे, **सा काली देवी**–वह महारानी काली देवी, **भगवओ**–भगवान्, **महावीरस्स**–महावीर के, **अंतियं**–समीप, **धम्मं**–धर्म (धर्म-कथा), **सोच्चा**–सुनकर, **निसम्म**–उस पर विचार करके, **जाव हियया**–यावत् अत्यन्त प्रसन्न हृदय से, **समणं**–श्रमण, **भगवं**–भगवान् महावीर की, **तिक्खुत्तो**–तीन बार प्रदक्षिणा करके, **जाव-यावत्**– वन्दना-नमस्कार करके, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगी, **एवं खलु भन्ते**–भगवन् इस प्रकार निश्चय से, **मम पुत्ते**–मेरा पुत्र, **काले कुमारे**–काल कुमार, **तिहि**–तीन, **दंति-सहस्सेहिं**–तीन हजार हाथियो को साथ लेकर, **जाव**–यावत् अर्थात् तीन हजार रथो, तीन हजार घोडो और तीन करोड सैनिको के साथ, **रह-मुसल-संगामं**–रथ-मूसल सग्राम में, **ओयाए**–गया है, **से**–वह काल कुमार, **णं भन्ते**–हे भगवन् ! **खलु**–निश्चय पूर्वक, **जइस्सइ**–क्या जीतेगा ? **नो जइस्सइ**–क्या नहीं जीतेगा ? **जाव**-यावत्–जीता रहेगा या नही और शत्रुओ को पराजित कर पाएगा या नहीं, **काले णं कुमारे**–काल कुमार को, **अहं**–मैं, **जीवमाणं**–जीवित ही, **पासिज्जा**–क्या देख पाऊंगी, **कालीत्ति**–काली देवी के प्रश्न को सुनकर, **समणे भगवं महावीरे**–श्रमण भगवान् महावीर, **कालि देविं**–काली देवी से, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगे, **काली! एवं खलु**–काली ! निश्चय ही, **तव पुत्ते**–तुम्हारा पुत्र, **काले कुमारे**–काल कुमार, **तिहिं दंति-सहस्सेहिं**–तीन हजार हाथियो, **जाव**–यावत् अर्थात् अन्य युद्ध-सामग्री के साथ, **कूणिएणं रन्ना सद्धिं**–राजा कूणिक के साथ, **रह-मुसलं संगामं**–रथ-मूशल सग्राम मे, **संगामेमाणे**–युद्ध करता हुआ, **हयमहियपवरवीरघाइयणिवडियचिंधज्झयपडागे**– उसका मान-मर्दन हो गया है, उसके प्रधान वीरों का घात हुआ है, उसके पताका आदि चिन्ह गिर चुके हैं, (वह) **दिसाओ**–सभी दिशाओं को, **निरालोयाओ**–अन्धकारमय-निस्तेज करता हुआ, **चेडयस्स रन्नो**–राजा चेटक के, **सपक्खं**–सन्मुख, **सपडिदिसिं**–एक-दूसरे के सामने,

रहेणं–रथ पर बैठ कर, **पडिरहं**– राजा चेटक के रथ के सामने, **हव्वं**–शीघ्र ही, **आगए**–आ गया।

तए णं–तत्पश्चात्, **से**–वह, **चेडए राया**–राजा चेटक, **कालं कुमारं**–काल कुमार को, **एज्जमाणं**–आते हुए को, **पासित्ता**–देखकर, **आसुरुत्ते**–शीघ्र ही क्रोध में आकर, **जाव**–यावत् अर्थात् रुष्ट हो गए और क्रोध के कारण उनके होठ, (फड़फड़ाने लगे), **मिसिमिसेमाणे**–क्रोध की ज्वालाओं से जलते हुए, **धणुं**–धनुष को, **परामुसइ**–सुसज्जित करने लगे, **परामुसित्ता**–धनुष को सुसज्जित करके, **उसुं**–बाण को, **परामुसइ**–धनुष पर चढाता है, **वइसाहं ठाणं ठाइ**–वैशाख स्थान, धनुष पर तीर चलाने की विशेष मुद्रा में बैठता है, **ठाइत्ता**–और बैठकर, **आयय-कण्णाययं**–कानों तक, **उसुं**–बाण को, **करेइ**–ले जाता है, **करित्ता**–और ले जाकर, **काल कुमारं**–काल कुमार को, **एगाहच्चं**–एक ही प्रहार से, **कूडाहच्चं**–जैसे किसी यन्त्र विशेष से किसी पर्वत शिखर को गिराया जाता है उसी प्रकार बाण के एक ही प्रहार से पर्वत शिखर–जैसे काल कुमार को, **जीवियाओ**–जीवन से, **ववरोवेइ**–रहित कर देता है, अर्थात् मार देता है, **त कालगए णं काली**–हे काली ! इस प्रकार कालधर्म को प्राप्त हुए, **कालं कुमार**– काल कुमार को, **नो चेव ण**–तू नहीं, **जीवमाणं**–जीवित अवस्था में, **पासिहिसि**–देख पाएगी।

मूलार्थ–तदनन्तर वह काली देवी श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समीप धर्म को सुनकर और विचार कर यावत् हृदय से प्रसन्न होकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा यावत् और वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगी–"भगवन् ! मेरा पुत्र काल कुमार तीन सहस्र हस्तियों के साथ यावत् रथ-मूसल सग्राम में गया है। हे भदन्त ! क्या वह जीतेगा, या नहीं जीतेगा ? अपने पुत्र काल कुमार को मै जीवित देख पाऊंगी या नही ? भगवान कहने लगे–हे काली ! तेरे पुत्र काल कुमार का तीन सहस्र हस्तियों के साथ यावत् तीन हजार रथो, तीन हजार घोड़ों और तीन करोड़ सैनिकों को साथ लेकर राजा कूणिक के साथ रथमूसल संग्राम मे संग्राम करते हुए मान-मर्दन हो गया है, उसके साथी वीरों का घात हुआ है, उसके (राज) चिन्ह और पताका गिर चुके है, वह दिशाओं में अन्धकार करता हुआ, चेटक राजा के समक्ष और सम्प्रतिदिक् में अपने रथ से चेटक राजा के रथ के सन्मुख आ गया। तब चेटक राजा ने काल कुमार को सन्मुख आते हुए देख कर क्रोध में भरकर यावत् क्रोध से देदीप्यमान होते हुए धनुष को ऊंचा किया, उस पर बाण चढा दिया। धनुष के चलाने के आसन पर बैठ कर कर्ण-पर्यन्त धनुष को खीच कर बाण छोड दिया। तब काल कुमार एक ही बाण से पर्वत-शिखर की भांति

गिरकर जीवन से रहित हो गया, अर्थात् मारा गया। इसलिए हे काली ! तू कालगत कालकुमार को जीवित नहीं देख पाएगी, क्योंकि वह मारा गया है।

टीका—इस सूत्र में काल कुमार के विषय मे वर्णन किया गया है। जैसे कि काली देवी ने भगवान महावीर से प्रश्न किया—"भगवन् ! मेरा पुत्र काल कुमार तीन सहस्र हस्ती आदि की सेना लेकर रथमुसल-संग्राम मे गया है, "क्या वह जीतेगा या नही? यावत् मैं काल कुमार को जीते हुए को देख पाऊगी या नहीं ?"

तब भगवान महावीर ने उत्तर मे कहा—"हे काली । तेरा पुत्र काल कुमार तीन सहस्र हाथियो आदि को लेकर, यावत् कूणिक राजा के साथ रथ-मुसल-संग्राम में संग्राम करते हुए मारा गया है। जिसका वर्णन मूलार्थ मे किया गया है।

निम्नलिखित शब्दो का भाव जान लेना चाहिए। जैसे कि—'**हयमहियपवरवीरघाइ-यणिवडियचिंधज्झयपडागे**', अर्थात् (**हत·**) **सैन्यस्य हतत्वात्, मथितो मानस्य मन्थनात्, प्रवरवीराः—सुभटा· घातिताः—विनाशिताः यस्य, तथा निपातिताश्चिन्हध्वजा·—गरुडादि-चिन्हयुक्ता· केतवः पताकाश्च यस्य सः तथा, ततः पदचतुष्टयस्य कर्मधारय·।**

तथा '**मिसिमिसेमाणे**' इस पद का यह भाव है कि वह क्रोध से देदीप्यमान हो गया।

"**सपक्खं सपडिदिसिं रहेणं पडिरहं हव्वमागए।**

इन पदो का भाव यह है कि चेटक राजा के रथ की तरफ काल कुमार का रथ सामने आ गया, समान प्रतिदिक् से रथ सन्मुख हो गया।

इसी प्रकार—'**आसुरुत्ते**' इस पद का भाव यह है कि शीघ्र ही रोष से भर गया। तथा जैसे कि—

आशु शीघ्र रुष्टः—क्रोधेन विमोहितो यः सः आशुरुष्टः, आसुरं वा आसुरसत्क कोपेन दारुणत्वात् उक्त भणितं यस्य स आसुरोक्तः, रुष्टो रोषवान्।

'**एगाहच्चं**' इस पद का भाव यह है कि एक ही बाण से जैसे यत्र द्वारा कूट पर्वत-शिखर उड़ जाता है, उसी प्रकार काल कुमार का सिर धड़ से पृथक् हो गया।

एगाहच्चं 'कूडाहच्चं' कूटस्येव पाषाणमयमहामारणयन्त्रस्येव आहत्या आहननं यत्र तत्कूटाहत्यं' इसका यह भाव है कि जिस प्रकार यन्त्र द्वारा (मशीन द्वारा) पर्वत का शिखर उड़ जाता है ठीक उसी प्रकार एक ही बाण से काल कुमार का सिर धड़ से पृथक् हो गया।

सूत्रकर्ता ने जो '**वइसाहं ठाणं ठाइ**' पद दिए हैं अर्थात् "**विशाखस्थानेन तिष्ठति**'

धनुष के चलाने के आसन पर ठहरता है अर्थात् जिस मुद्रा में बैठ कर धनुष चलाया जाता है उसी मुद्रा में बैठ कर धनुष चलाया गया।

कुछ हस्तलिखित प्रतियों में निम्नलिखित पाठ अधिक है–

'तिहिं दंतिसहस्सेहिं, तिहिं आस-सहस्सेहिं तिहिं रहसहस्सेहिं तिहिं मणुयकोडीहिं, तथा 'किं जइस्सइ, नो जइस्सइ, जीवेस्सइ नो, जीवेस्सइ, पराजिणिस्सइ नो पराजिणिस्सइ''।

इसी प्रकार भगवान के प्रतिवचन मे **तिहिं दंतिसहस्सेहिं** इत्यादि सर्व पाठ दिया गया है।

''**निरालोयाओ दिसाओ करेमाणे**', इसका भाव यह है, चारों दिशाओं को निरालोक करता हुआ अर्थात् अन्धकारमय करता हुआ, राजा चेटक के रथ के सम्मुख अपना रथ लेकर आ गया। भगवान महावीर ने **तं कालगते णं काली ! काले कुमारे नो चेव ण तुमं काल कुमारं जीवमाणं पासिहिसि**'' जो यह कहा था उसका भाव यह है, भगवान महावीर ने यह कथन किया है कि हे काली ! तेरा पुत्र काल कुमार काल गत हो चुका है, अतः तू उसको जीते हुए को नही देख सकेगी।

यह (आगम-विहारी) सर्वज्ञ का कथन है, इसलिए इसमें कोई भी दोषापत्ति नही है, क्योंकि आगम-विहारी जिस प्रकार अपने ज्ञान मे देखते है, जिस प्रकार उस प्राणी का कल्याण देखते है, उसी प्रकार द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को देखकर वर्णन करते है। काली देवी दीक्षा लेकर (अन्त समय) केवली हुई है, अतः भगवान महावीर ने इसी कारण से उक्त प्रकार का कथन किया है, क्योंकि दीक्षा का कारण यही था।

काली रानी का पुत्र-विरह सम्बन्धी शोक

मूल–तए णं सा काली देवी समणस्स भगवओ अन्तियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म महया पुत्तसोएणं अप्फुन्ना समाणी परसुनियत्ताविव चम्पगलया धस त्ति धरणीयलंसि सव्वङ्गेहिं संनिवडिया ॥ १७ ॥

छाया–ततः णं सा काली देवी श्रमणस्य भगवतः अन्तिकं एतदर्थं श्रुत्वा निशम्य महता पुत्रशोकेन व्याप्ता सती परशु-निकृन्तेव चम्पकलता धस इति धरणीतले सर्वाङ्गै संनिपतिता ॥ १७ ॥

पदार्थान्वयः–तए–तदनन्तर, **णं**–वाक्यालंकार मे, **सा काली देवी**–वह महारानी काली देवी, **समणस्स भगवओ०**–श्रमण भगवान् महावीर के, **अन्तियं**–पास से (उनके मुखारविन्द से), **एयमट्ठं**–इस अर्थ (पुत्र-मरण के समाचार) को, **सोच्चा**–सुनकर, **निसम्म**–उसके सम्बन्ध में विचार करके, **महया**–बहुत भारी, **पुत्त-सोएण**–पुत्र शोक से, **अप्फुन्ना समाणी**–

व्याप्त हुई, **परसु-नियत्ता**—कुल्हाड़े से काटी हुई, **चम्पगलया विव**—चम्पक लता के समान, **धस त्ति**—धम्म करके गिर पडती है, वैसे ही कालीदेवी भी, **धरणीयलंसि**—भूमि पर, **सव्वंगेहिं**—सर्वांग से, **संनिवडिया**—गिर पडी ।

मूलार्थ—तदनन्तर महारानी काली देवी श्रमण भगवान् महावीर के मुखारविन्द से पुत्र-मरण के समाचार को सुनकर एवं कुछ विचार कर बहुत भारी पुत्र-शोक से व्याप्त हुई कुल्हाड़े से काटी गई चम्पक लता के समान धम्म करके अर्थात् पछाड़ खाकर धरती पर सभी अंगो सहित गिर पडी ।

टीका—इस सूत्र में कालीदेवी के शोक-विषय का वर्णन किया गया है। जैसे कि जब काली देवी ने श्रमण भगवान महावीर के मुख से उक्त समाचार को सुना तब वह पुत्र के शोक से व्याप्त होती हुई, इस प्रकार भूमि पर गिरी, जैसे परशु द्वारा छेदन की हुई चम्पक लता गिर पडती है। परशु की तीक्ष्णता और चम्पक लता की सुकोमलता को लक्ष्य मे रखकर सूत्रकर्ता ने काली देवी को इस उपमा से उपमित किया है। जैसे पुत्र-स्नेह की सुकोमल लता पर पुत्र-वियोग की तीक्ष्ण धारा गिरी, तब वह देवी जिस प्रकार छेदन की हुई चम्पक लता गिर पडती है, ठीक उसी प्रकार सर्वागों से भूमि पर गिर पड़ी।

इस सूत्र से सूत्रकर्ता ने माता का पुत्र के प्रति कैसा स्नेह होता है यह सूचित किया है।

काली रानी की भगवत्-वचनों के प्रति श्रद्धा

मूल—तए णं सा काली देवी मुहुत्तन्तरेण आसत्था समाणी उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वन्दइ, नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवमेयं भन्ते ! तहमेयं भन्ते ! अवितहमेयं भन्ते ! असंदिद्धमेयं भन्ते ! सच्चे णं भन्ते ! एयमट्ठे, जहेयं तुब्भे वयह" त्ति कट्टु समणं भगवं वन्दइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ॥ १८ ॥

छाया—ततः खलु सा काली देवी मुहूर्तान्तरेण आश्वस्ता सती उत्थाय उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—एवमेतद् भदन्त ! तथ्यमेतद् भदन्त ! अवितथ्यमेतद् भदन्त ! असंदिग्धमेतद् भदन्त ! सत्यः खलु भदन्त ! एषोऽर्थः तद् यथैतद् यूयं वदथ, इति कृत्वा श्रमणं भगवन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा तमेव धार्मिकं यानप्रवर आरोहति, आरुह्य यामेव दिशं प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ॥ १८ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात् (ण वाक्यालंकार मे), **सा काली देवी**—वह काली

देवी, **मुहत्तन्तरेणं**–मुहूर्त मात्र के अन्तर से, **आसत्था**–आश्वस्त–सचेष्ट होकर, **उट्ठाए उट्ठेइ**–दासियों आदि द्वारा उठाने पर उठी, **उट्ठित्ता**–उठ कर, **समणं भगवं महावीरं**–श्रमण भगवान् महावीर को, **वन्दइ**–वन्दन करती है, **नमंसइ**–नमन करती है, **वंदित्ता**–वन्दना करके, **नमसित्ता**–नमस्कार करके, **एव**–इस प्रकार, **वयासी**–बोली, **एवमेयं भंते !**–भगवन् ! आप जैसा कहते है वैसा ही है, **तहमेय भंते !**–भगवन् ! आपने यथार्थ ही कहा है, **अवितहमेयं भंते**–भगवन् ! आपके वचन यथार्थ है, **असंदिद्धमेयं भंते !**–भगवन् ! आपके वचन सन्देह से रहित है, **सच्चेणं भन्ते ! एयमट्ठे**–भगवन् ! आपके वचन बिल्कुल सत्य हैं, ठीक वैसा ही है, **जहेयं तुब्भे वदह**–जैसा आप कह रहे है, **त्ति कट्टु**–ऐसा करके–कह कर, **समणं भगवं महावीरं**–श्रमण भगवान महावीर को, **वन्दइ**–वन्दना करती है, **नमंसइ**–नमस्कार करती है, **वंदित्ता नमंसित्ता**–वन्दना-नमस्कार करके, **तमेव**–उसी, **धम्मियं**–धर्म-कार्यो में ही प्रयुक्त होने वाले, **जाणप्पवरं**–उस श्रेष्ठ रथ पर, **दुरूहित्ता**–आरूढ होकर, **जामेव दिसिं पाउब्भूया**–जिस दिशा से आई थी, **तामेव दिसि**–उसी दिशा मे, **पडिगया**–लौट गई।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह काली देवी एक मुहूर्त के अनन्तर–अर्थात् कुछ क्षण बाद आश्वस्त होकर दासियों आदि के द्वारा उठाने पर उठ खड़ी हुई। उठकर उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके वह इस प्रकार बोली–"भगवन् ! आप जैसा कह रहे है वैसा ही है, आपके वचन यथार्थ हैं, भगवन् ! आपके वचन सन्देह से रहित हैं, बिल्कुल सत्य हैं, भगवन् । आपके वचन, ठीक वैसे ही हैं जैसा आप कह रहे हैं। ऐसा कह कर वह श्रमण भगवान् महावीर को पुन: वन्दना-नमस्कार करके (अपने साथ लाए हुए) उसी धार्मिक कार्यो में ही प्रयुक्त होने वाले श्रेष्ठ रथ पर आरूढ हो गई और आरूढ़ होकर जिस दिशा से आई थी उसी दिशा में लौट गई।

टीका–इस सूत्र मे काली देवी के विश्वास के विषय में वर्णन किया गया है। जैसे कि जब काली देवी मुहूर्तान्तर के बाद सावधान हुई तब उठकर भगवान् महावीर के प्रति कहने लगी कि "हे भगवन् । आपके वचन तथ्य, अवितथ्य और सन्देह-रहित हैं। आपका कथन सत्य है, जिस प्रकार आप कहते हैं, वह यथार्थ है।" इस प्रकार कह कर वन्दना-नमस्कार करके जिस रथ पर बैठ कर आई थी उसी रथ पर चढ़ कर अपने भवन की ओर चली गई।

सूत्रकर्ता ने यहां जो पाच पद दिए हैं वे काली देवी की उत्कृष्ट श्रद्धा के सूचक हैं। कारण कि उसकी भगवान महावीर के प्रति अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी। वे पद निम्न

प्रकार से हैं–"**एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भते ! असंदिद्धमेयं भंते ! सच्चे णं एयमट्ठे जहेयं तुब्भे वदह।**" तथा इन पदों में विशिष्ट-विशिष्टतर-विशिष्टतम श्रद्धा देखी जा रही है। अन्तिम पद द्वारा यह सूचित किया गया है–"हे भगवन् ! जो आप कहते हैं वही बात सत्य है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को उचित है कि वह भगवान् महावीर के निर्ग्रन्थ प्रवचन पर दृढ विश्वास रखे।

गौतम स्वामी द्वारा भगवान से कालकुमार के आगामी भव सम्बन्धी पृच्छा

मूल–भंतेत्ति भगवं गोयमे जाव वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–कालेणं भंते ! कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव रहमुसलं संगामं संगामेमाणे चेडएणं रन्ना एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोविए समाणे कालमासे कालं किच्चा कहिं उववन्ने ? ॥ १९ ॥

छाया–भदन्त ! इति भगवन्तं गौतमो यावद् वन्दते नमस्यते वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–कालः खलु भदन्त ! कुमारः त्रिभिर्दन्तिसहस्त्रैर्यावद् रथमुशलं संग्रामं संग्रामयन् चेटकेन राज्ञा एकाहत्य कूटाहत्यं जीविताद् व्यपरोपित· सन् कालमासे कालं कृत्वा क्व उत्पन्नः ? ॥ १९ ॥

पदार्थान्वय·–भंतेति–भगवन् ! इस प्रकार कह कर, **भगवं**–भगवान् महावीर को, **गोयमे**–गौतम, **जाव**–यावत्, **वंदति**–वन्दना करते है, **नमंसति**–नमस्कार करते है, **वंदित्ता-नमंसित्ता**–वन्दना-नमस्कार करके, **एवं वयासी**–इस प्रकार पूछने लगे, **कालेणं भते !**–भगवन् ! वह काल कुमार, **तिहिं दंतिसहस्सेहिं**–तीन हजार हाथियो के साथ, **जाव**–यावत्, **रहमुसलं सगामं संगामेमाणे**–रथ-मूशल सग्राम में युद्ध करते हुए, **चेडएणं रन्ना**–राजा चेटक के द्वारा, **एगाहच्चं**–एक ही बाण के प्रहार से, **कूडाहच्चं**–कूट की भान्ति (वज्र जैसे), **जीवियाओ**–जीवन से, **ववरोविए समाणे**–रहित होने पर अर्थात् मर कर, **काल- मासे काल किच्चा**–मृत्यु समय आने पर जब मर गया (तो वह), **कहिं उववन्ने**–कहा उत्पन्न हुआ ?

मूलार्थ–महारानी काली देवी के चले जाने के बाद गौतम स्वामी भगवान् से पूछते हैं–भगवन् ! वह काल कुमार तीन-तीन हजार हाथियो, घोड़ों, रथो और तीन करोड सैनिको को साथ लेकर रथ-मूशल संग्राम में युद्ध करते हुए राजा चेटक के कूट (वज्र) जैसे एक ही बाण से मारा गया। वह मृत्यु का समय आने पर मर कर कहां उत्पन्न हुआ?

टीका–इस सूत्र में काल कुमार की मृत्यु के अनन्तर की गति का वर्णन किया गया

है। जैसे कि गणधर गौतम ने प्रश्न किया "हे भगवन् ! रथमूसल संग्राम में काल कुमार अपनी सर्व सेना के साथ जब उक्त सग्राम मे गया तो वह संग्राम करता हुआ जब चेटक राजा के बाण से मारा गया तब वह मर कर कहां उत्पन्न हुआ ?

भगवान का समाधान

मूल–गोयमाइ समणे भगवं गोयमं एवं वयासी–एवं खलु गोयमा ! काले कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव जीवियाओ ववरोविए समाणे कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरगे दससागरोवमठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने ॥ २० ॥

छाया–गोयमादि श्रमणो भगवान् गौतममेवमवादीत्–एवं खलु गौतम ! कालः कुमारस्त्रिभिर्दन्तिसहस्त्रैर्यावद् जीविताद् व्यपरोपितः सन् कालमासे कालं कृत्वा चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्यां हेमाभे नरके दशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषु नैरयिकतया उपपन्नः ॥ २० ॥

पदार्थान्वय.–गोयमाइ–गौतम आदि मुनि-वृन्द को पास बुलाकर, **समणे भगव**– श्रमण भगवान महावीर, **गोयमं एवं वयासी**–गौतम से इस प्रकार कहने लगे, **एव खलु गोयमा**–हे गौतम ! इस प्रकार निश्चय ही, **काले कुमारे**–वह काल कुमार, **तिहि दन्ति-सहस्सेहिं**–तीन हजार हाथियों, **जाव**–यावत् अर्थात् तीन हजार घोडो, तीन हजार रथो और तीन करोड सैनिको को साथ लेकर लडते हुए, **जीवियाओ**–(जब) जीवन से, **ववरोविए समाणे**–रहित कर दिया गया, (तब वह), **कालमासे कालं किच्चा**– मृत्यु बेला आते ही मर कर, **चउत्थीए**–चौथी, **पकप्पभाए पुढवीए**–पंकप्रभा नामक पृथ्वी में, **हेमाभे नरगे**–हेमाभ नामक नरकावास मे, **दस सागरोवमठिइएसु**–दस सागरोपम स्थिति वाले, **नेरइएसु**–नरक मे, **नेरइयत्ताए**–नारकी जीव के रूप मे, **उववन्ने**–उत्पन्न हुआ।

मूलार्थ–भगवान ने गौतमादि अन्य मुनियों को भी बुलाकर कहा कि–वह काल कुमार हाथियों, घोडों, रथों और सैनिको आदि को साथ लेकर जब जीवन से रहित हो गया तो मृत्यु का समय आने पर मर कर चौथी पंकप्रभा नामक पृथ्वी पर स्थित उस हेमाभ नामक नरकावास में नारकी जीव के रूप में उत्पन्न हुआ जिसकी स्थिति दस सागरोपम की बतलाई गई है।

टीका–तब भगवान महावीर ने गौतमादि मुनियो को भी बुलाकर कहा–"हे गौतम! काल कुमार अपनी सर्व सेना से युक्त होकर जब चेटक राजा द्वारा मारा गया, तब वह काल कर के चौथी पंकप्रभा नाम वाली पृथ्वी के हेमाभ नाम वाले नरकावास मे दस

सागरोपम की स्थिति वाले नरक में नारकी के रूप में उत्पन्न हुआ। सारांश यह है कि वह चौथे नरक में दस सागरोपम स्थिति वाला नारकी बना।

सूत्रकर्ता ने '**कालमासे कालं किच्चा कहिं उववन्ने ?**' यह सूत्र दिया है। इसका यह भाव है कि काल मास कहने पर उस मास के जितने पक्ष तिथियां तथा दिन और मुहूर्त व्यतीत हो चुके थे उन सबका भी ग्रहण कर लेना चाहिए।

और "**कहिं उववन्ने**" इस पद से जीव का अस्तित्व और कर्मो द्वारा गतियों में जाना सिद्ध किया गया है, कारण कि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चारों गतियो में जीव कृत-कर्मो के अनुसार हो जाते हैं, किन्तु कर्म-क्षय से सिद्ध-गति को प्राप्त होते हैं। इससे जीव का अनादि अस्तित्व भाव सिद्ध किया गया है।

"**चउत्थीए**" इत्यादि पदों से नरको और उनके आवासो की स्थिति बताई गई है। 'दस सागरोपम' इत्यादि पदों से नारकी जीवो की आयु सूचित की गई है। आयु के विषय में प्रज्ञापना सूत्र के स्थिति-पद का अध्ययन करे। कुछ हस्तलिखित प्रतियो में सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार दिया गया है-

"**तिहिं दंतिसहस्सेहि तिहिं रहसहस्सेहिं तिहिं मणुय-कोडीहिं**" इत्यादि।

गौतम स्वामी का भगवान से पुनर्प्रश्न

मूल-काले णं भन्ते ! कुमारे केरिसएहिं भोगेहिं केरिसएहिं आरम्भेहिं केरिसएहिं समारम्भेहिं केरिसएहिं आरम्भ-समारम्भेहिं केरिसएहिं संभोगेहिं केरिसएहिं भोग-सम्भोगेहिं केरिसएण वा असुभ-कड-कम्मपब्भारेणं कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पङ्कप्पभाए पुढवीए जाव नेरइयत्ताए उववन्ने ? ॥ २१ ॥

छाया-कालः खलु भदन्त ! कुमारः कीदृशैर्भोगैः कीदृशैरारम्भैः कीदृशैः समारम्भैः कीदृशैः आरम्भ-समारम्भैः, कीदृशैः सम्भोगैः कीदृशैः भोग-सम्भोगैः, कीदृशेन वा अशुभ- कृतकर्मप्राग्भारेण कालमासे कालं कृत्वा चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्यां यावत् नैरिकतया उपपन्नः ॥ २१ ॥

पदार्थान्वयः-भन्ते-भगवन् ! **काले कुमारे**-काल कुमार, **णं**- वाक्यालंकार मे, **केरिसएहिं भोगेहिं**-किस प्रकार के भोगो से, **केरिसएहिं आरम्भेहिं**-किस प्रकार के आरम्भो से, **केरिसएहिं समारम्भेहिं**-किस प्रकार के समारम्भो से, **केरिसएहिं आरम्भ-समारम्भेहिं**-किस प्रकार के आरंभ-समारम्भो से, **केरिसएहिं संभोगेहिं**-किस प्रकार के संभोगों से, **केरिसएहिं भोगसम्भोगेहिं**-किस प्रकार के भोग-सम्भोगों से, **केरिसएण वा**-

और किस प्रकार के, **असुभकड-कम्म पब्भारेणं**—किए हुए अशुभ कर्मों के भार से या प्रभाव से, **कालमासे कालं किच्चा**—काल मास मे काल करके, **चउत्थीए**—चौथी, **पंकप्पभाए**—पंकप्रभा नाम वाली, **पुढवीए**—पृथ्वी में, **जाव**—यावत्, **नेरइयत्ताए**—नारकी के रूप में, **उववन्ने**—उत्पन्न हुआ।

मूलार्थ—भगवन् ! वह काल कुमार किस प्रकार के हिंसा, झूठ आदि सावद्य क्रिया रूप आरम्भ से, किस प्रकार के शस्त्रादि द्वारा प्राणियों के वध रूप समारम्भ से तथा किस प्रकार के आरम्भ-समारम्भ से, किस प्रकार के भोगों (शब्दादि विषयों) से, किस प्रकार के संभोगों (तीव्र अभिलाषा- जनक विषय-विकारों) से और किस प्रकार के महारम्भ एव परिग्रह रूप विषय-अभिलाषाओ के कारण और किस प्रकार के अशुभ कर्म समूह के कारण मृत्यु के समय मर कर चौथी पंकप्रभा नामक पृथ्वी पर स्थित नरक मे उत्पन्न हुआ।

टीका—इस सूत्र में काल कुमार के नरक जाने के विषय में उल्लेख किया गया है। जैसे कि गणधर गौतम ने प्रश्न किया है—"हे भगवन् ! किस प्रकार के आरम्भ समारम्भादि कर्मो से, वा किस प्रकार के भोग-सभोग से, किस प्रकार के अशुभ कर्मो के प्रभाव से वह काल कुमार मर कर चौथी पंकप्रभा नाम वाली पृथ्वी में स्थित नरक मे उत्पन्न हुआ है ?

इस प्रश्न से यह भली-भाति सिद्ध हो जाता है कि हिसा, कर्म और विषय-आसेवन तथा अशुभ कर्म ये तीनो ही नरक की उत्पत्ति के कारण हैं, क्योंकि हिसा, मैथुन और अशुभ कर्म के कथन में १८ ही पापो का समावेश हो जाता है।

निष्कर्ष यह है कि अठारह पापो के आसेवन से जीव गुरु (भारी) होकर नरक मे उत्पन्न होता है। इस स्थान पर आरम्भ से समारम्भ शब्द विशेष अर्थ का सूचक जानना चाहिए। इसी प्रकार भोग और सभोग के विषय में जानना चाहिए। अशुभ कृत कर्मों के भार से जीव अधोगति में चला जाता है।

राजा श्रेणिक तथा महारानी नंदा का वर्णन

उत्थानिका—क्या सभी अशुभ कर्मों के भार से दबे जीव अधोगति अर्थात् नरक में ही जाते है ? अब इस प्रश्न का उत्तर देते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

मूल—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं णयरे होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे। तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए नामं राया होत्था महया०। तस्स णं सेणियस्स रन्नो नन्दा नामं देवी होत्था सोमाला जाव

विहरइ ॥ २२ ॥

छाया–एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह नाम नगरं आसीत्, ऋद्धस्तिमितसमृद्धम्। तत्र खलु श्रेणिको नाम राजाभूत्, महा०। तस्य खलु श्रेणिकस्य राज्ञो नन्दा नाम्नी देवी आसीत्, सुकुमारा यावत् विहरति ॥ २२ ॥

पदार्थान्वयः–एवं खलु गोयमा–इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम, **तेणं कालेणं तेणं समएणं**–उस काल तथा उस समय (चौथे आरे मे जिस समय भगवान् महावीर विद्यमान थे), **रायगिहे नामं**– राजगृह नाम का, **णयरे होत्था**–नगर था, **रिद्धत्थिमिय-समिद्धे**–विशाल भवनो से युक्त सब प्रकार के भयों से रहित और धन-धान्य से परिपूर्ण था, **तत्थ णं रायगिहे णयरे**–उस राजगृह नगर मे, **सेणिए नामं**–श्रेणिक नाम का, **राया**–राजा, **होत्था**–था, **महया०**–जो कि सभी दृष्टियों से महान् था, **तस्स णं**–उस, **सेणियस्स रन्नो**–श्रेणिक राजा की, **नन्दा नामं देवी**–नन्दा नाम की महारानी, **होत्था**–थी (जो), **सोमाला**–सुकुमार, **जाव**–यावत् अर्थात् पूर्व जन्मार्जित पुण्यों से नाना सुखों का उपभोग करती हुई, **विहरति**–विचरण करती थी।

मूलार्थ–गौतम ! उस काल–उस समय में (चौथे आरे में जब भगवान् महावीर विद्यमान थे) राजगृह नामक एक नगर था जो कि विशाल भवनों से युक्त, धन-धान्य से परिपूर्ण और सब प्रकार के भयों से रहित था। उस नगर में श्रेणिक नामक राजा राज्य करता था जो कि सभी दृष्टियो से महान् था। उस राजा श्रेणिक की नन्दा नाम की महारानी थी जो कि अत्यन्त सुकुमार थी और जो पूर्वजन्मार्जित पुण्यो के कारण सब प्रकार के सुखों का उपभोग करती हुई विचरती थी।

टीका–इस सूत्र मे गणधर गौतम जी के उत्तर के विषय में वर्णन किया गया है। जैसे कि–गणधर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से पहले प्रश्न किया था कि–"भगवन् ! कालकुमार किस कृत अशुभ कर्म के कारण नरक में उत्पन्न हुआ ?" इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् महावीर ने कथन किया है कि–"हे गौतम ! अवसर्पिणी काल के चतुर्थ विभाग में राजगृह नाम का एक नगर था जो सुन्दर भवनो से युक्त और सभी प्रकार के भयों से रहित एवं धन-धान्य से परिपूर्ण एवं समृद्धिशाली था। उस नगर में श्रेणिक नाम का एक राजा राज्य करता था जिसकी नन्दा नाम की महारानी थी जो अत्यन्त सुकुमार थी तथा जो सभी इन्द्रियों के विषयों का सुख भोग रही थी।

इस सूत्र में **"होत्था"**–**"आसीत्"** इस भूतकाल की क्रिया के द्वारा यह निर्दिष्ट किया गया है कि अवसर्पिणी काल में समय-समय पर सभी शुभ पदार्थ ह्रास को प्राप्त होते रहते हैं।

"**रिद्धत्थिमिय-समिद्धा**"—इस पद से नगर की सुन्दरता प्रदर्शित की गई है और यह भी प्रदर्शित किया गया है कि भय-मुक्त नगर ही उन्नति के शिखरों पर पहुंच सकता है।

"**नंदा नामं देवी**"—इस पद मे नन्दा के साथ "देवी" विशेषण देकर सूत्रकार ने यह सिद्ध किया है कि महारानी नन्दा प्रमोद-क्रीडा आदि गुणों से भी सम्पन्न थी।

"**सोमाला**"—पद से यह सूचित किया गया है कि स्त्रियोचित सभी गुण उसमें पूर्ण रूप से विद्यमान थे।

अराजकता ही विनाश का कारण है, इसलिए प्रजा को न्यायशील राजा की आवश्यकता रहती है, अतः "**राज्ञः**" एव "**सेणियस्स**" इन शब्दो द्वारा यह निर्दिष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि राजा श्रेणिक एक न्यायशील शासक राजगृह पर राज्य कर रहा था।

अभय वर्णन

मूल—तस्स णं सेणियस्स रन्नो नंदाए देवीए अत्तए अभए नामं कुमारे होत्था, सोमाले जाव सुरूवे साम-दाम-दण्ड-भेद-कुसले जहा चित्तो जाव रज्जधुराए चिंतए यावि होत्था ॥ २३ ॥

छाया—तस्य खलु श्रेणिकस्य राज्ञ. नन्दायाः देव्याः आत्मजः अभयो नाम कुमारोऽभवत् सुकुमारः यावत् सुरूपः साम-दाम-दण्ड-भेद-कुशलः, यावत् राज्य-धुरायाश्चिन्तकश्चापि अभवत् ॥ २३ ॥

पदार्थान्वयः—तस्स णं—उस, **सेणियस्स**—श्रेणिक, **रन्नो**—राजा की, **नंदाए देवीए अत्तए**—नन्दा देवी का आत्मज अर्थात् पुत्र, **अभए नाम कुमारे होत्था**—अभय नामक कुमार था, **सोमाले**—(जो) सुकुमार, **जाव**—यावत्, **सुरूवे**—सुन्दर रूप वाला, (और) **साम-दाम-दंड-भेद-कुसले**—साम-दाम-दण्ड-भेद नामक चारो नीतियो मे कुशल था, **जहा चित्तो**—जैसे चित्त नामक सारथी था वैसे ही वह, **रज्जधुराए चिंतए**—राज्य का शुभ चिंतक, **यावि**—भी, **होत्था**—था।

मूलार्थ—उस राजा श्रेणिक की महारानी नन्दा देवी का आत्मज अर्थात् पुत्र अभय नामक राजकुमार था जो साम-दाम-दण्ड-भेद नामक चारो राजनीतियों में कुशल था और चित्त नामक सारथी के समान समस्त राज्य का शुभ चिन्तक भी था।

टीका—इस सूत्र में राजकुमार अभय का वर्णन किया गया है कि वह राजा श्रेणिक की नन्दा नामक महारानी का पुत्र और कुशल राजनीतिज्ञ भी था। अभय कुमार का विशद

परिचय "ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र" में प्रथम अध्ययन के सातवे सूत्र में विस्तार से दिया गया है, जिसका भाव इस प्रकार है–

राजा श्रेणिक की महारानी नन्दा का अभय कुमार नामक पुत्र था जो पाचो इन्द्रियों से परिपूर्ण तथा शुभ लक्षणों एवं व्यजनों से युक्त था। उसका शरीर मान-उन्मान की दृष्टि से उपयुक्त एव उसके सभी अंग अत्यन्त सुन्दर थे। वह चन्द्र के समान सौम्याकार कान्त और प्रियदर्शी था। सुरूप एवं साम-दाम-दण्ड-भेद–इन चारो नीतियों के प्रयोग मे कुशल था। ईहा, अपोह, अन्वय और व्यतिरेक आदि रूप विचार-शक्ति में निपुण था। उसकी बुद्धि अर्थ शास्त्र में भी निपुणता प्राप्त लिए हुए थी। औत्पातिकी, वैनेयकी, कार्मिकी और पारिणामिकी चार प्रकार की बुद्धि से युक्त था। राजा श्रेणिक समस्त राज्य-कार्यो, पारिवारिक कार्यों, कौटुम्बिक मन्त्रणाओं, गुप्त कार्यों और रहस्यमयी वार्ताओ में उसकी सलाह अवश्य लेता था। वह राजा का आलम्बन-रूप, चक्षु-रूप, प्रमाण रूप और आधार रूप था। वह सभी कार्यो में विश्वसनीय माना जाता था। उसे सभी स्थानो पर जाने की खुली छूट थी। वह राज्य का शुभ चिन्तक था। वह राजा श्रेणिक के राज्य, राष्ट्र-कोष, कोष्ठागार, बल, वाहन, नगर और अन्तःपुर सब को स्वयमेव देखता हुआ विचरता था।

चेलना वर्णन

मूल–तस्स णं सेणियस्स रन्नो चेल्लणा नामं देवी होत्था, सोमाला जाव-विहरइ ॥ २४ ॥

छाया–तस्य खलु श्रेणिकस्य राज्ञः चेलना नाम्नी देवी आसीत्, सुकुमारा यावत् विहरति ॥ २४ ॥

पदार्थान्वयः–तस्स णं–उस, **सेणियस्स**–श्रेणिक, **रन्नो**–राजा की चेलना नाम की, **देवी होत्था**–एक रानी थी, (जो) **सोमाला**–सुकुमारी, (नाना) **जाव**–यावत्-सुखो का अनुभव करती हुई, **विहरइ**–विचरती थी।

मूलार्थ–उस राजा श्रेणिक की एक रानी चेलना भी थी, जो सुकुमारता आदि नाना स्त्रियोचित गुणों से युक्त थी और सुखोपभोग करती हुई विचरती थी।

टीका–इस सूत्र में महारानी चेलना का परिचय दिया गया है। चेलना महाराजा चेटक की पुत्री थी और राजा श्रेणिक की रानी थी। वह अत्यन्त सुकुमार और स्त्रियोचित नाना गुणों से युक्त थी। वह नानाविध सुखोपभोग करती हुई विचरती थी।

चेलना का स्वप्न दर्शन तथा स्वप्नफल पृच्छा

उत्थानिका–अब सूत्रकार पुनः इसी विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

मूल—तए णं सा चेल्लणा देवी अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, जहा पभावई, जाव सुमिण-पाढगा पडिविसज्जिया, जाव चेल्लणा से वयणं पडिच्छित्ता जेणेव सए भवणे तेणेव अणुपविट्ठा ॥ २५ ॥

छाया—ततः खलु सा चेलणा देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन्तादृशके वासगृहे यावत् सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा खलु प्रतिबुद्धा यथा प्रभावती, यावत् स्वप्न-पाठकाः प्रतिविसर्जिता·, यावत् चेलना तस्य वचनं प्रतीष्य यत्रैव स्वकं भवनं तत्रैवानुप्रविष्टा ॥ २५ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात्, **सा चेल्लणा देवी**—वह महारानी चेलना, **अन्नया कयाइं**—किसी और समय, **तंसि तारिसगंसि**—पुण्यात्माओ के शयन करने योग्य, **वास-घरसि**—निवास-स्थान (राज-महल) में, **जाव**—यावत्, **सीहं**—सिंह को, **सुमिणे पासित्ता णं**—स्वप्न मे देखकर, **पडिबुद्धा**—जाग गई, **जहा पभावई**—जैसे प्रभावती जागी थी, **जाव**—यावत्, **सुमिणपाढगा**—स्वप्न-फल के विशेषज्ञों को, **पडिविसज्जित्ता**—विसर्जित करके, **जाव चेलणा से वयणं पडिच्छित्ता**—वह चेलना स्वप्न-विशेषज्ञो द्वारा कथित वचनों पर विश्वास करके, **जेणेव सए भवणे**—जहां पर उसका अपना निवास-स्थान था, **तेणेव**—वहीं जाकर, **अणुपविट्ठा**—उसमें उसने प्रवेश किया।

मूलार्थ—तत्पश्चात् महारानी चेलना देवी अन्य किसी समय पुण्यात्माओं के शयन करने योग्य अपने निवास स्थान मे शय्या पर सोते हुए स्वप्न में सिंह को देख कर जागृत हुई—जैसे रानी प्रभावती जागी थी। यावत्—अर्थात् उसने राजा के पास जाकर स्वप्न की बात कही और राजा ने उसी समय स्वप्न-फल के विशेषज्ञ विद्वानों को बुलवा कर उनसे स्वप्न-फल जाना और उन्हे प्रीतिदान देकर विसर्जित किया और चेलना देवी उनके वचनो पर विश्वास करके अपने निवास-स्थान में चली गई।

टीका—इस सूत्र मे महारानी चेलना देवी के विषय में वर्णन किया गया है, जैसे कि वह चेलना देवी अपने राज-महल में जब शयन कर रही थी तो उसने स्वप्नावस्था में सिह को देखा। स्वप्न देखते ही वह जागी और प्रसन्न होती हुई राजा श्रेणिक के शयन कक्ष में पहुंची और स्वप्न का वृत्तान्त उसे सुनाया। राजा ने कुछ स्वप्न-फल तो स्वयं ही बता दिया, फिर प्रातःकाल होते ही राजा श्रेणिक ने स्वप्न-पाठकों अर्थात् स्वप्न-फल के विशेषज्ञो को राज-सभा में बुलवाया और उन्होंने स्वप्न-फल के रूप में पुत्र-प्राप्ति बताई। स्वप्न-पाठकों के फलादेश पर विश्वास करके महारानी चेलना अपने निवास-स्थान पर

चली गई।

स्वप्न-दर्शक विषयक सम्पूर्ण वर्णन भगवती सूत्र के ११वें शतक में और ज्ञाता-धर्मकथांग सूत्र के प्रथम अध्ययन मे महारानी प्रभावती और महारानी धारिणी के प्रसगों मे विस्तार से प्राप्त होता है।

इस सूत्र में कुछ विशेष शब्दों का भावार्थ इस प्रकार है–

तंसि तारिसगंसि–इन शब्दों से यह ध्वनित होता है कि जो जीव जैसा पुण्यवान् होता है उसके लिए वैसे ही शयनादि स्थान उपलब्ध होते हैं

वास-घरंसि–इस शब्द से यह भाव प्रकट हो रहा है कि पुण्यात्माओं के शयन करने का गृह और शय्या आदि सुगन्धित पदार्थो से वासित किए होते थे, जैसे कि वृत्तिकार का कथन है कि पुण्यात्माओं की शय्या बढ़िया पुष्पो और कर्पूर, लवग, चन्दन आदि पदार्थो की धूप से सुगन्धित की हुई होती थी जो मन और हृदय को शान्त एव प्रसन्न करती है।

सीहं सुमिणे–इन शब्दो द्वारा सूचित किया गया है कि पुण्यशील जीवों की गर्भवती माताए "सिंह" आदि के दर्शन रूप शुभ स्वप्न देखती है।

चेलना रानी का दुष्ट-दोहद

मूल–तए णं तीसे चेल्लणाए देवी अन्नया कयाइं तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेवारूवे दोहले पाउब्भूए–धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव जम्म-जीविय-फले जाओ णं णियस्स रन्नो उदरवली- मंसेहिं सोल्लेहिं य तलिएहिं य भज्जिएहिं य सुरं च जाव पसन्नं च आसाएमाणीओ जाव परिभाएमाणीओ दोहलं पविणेंति ॥ २६ ॥

छाया–ततः खलु तस्याश्चेलनायाः देव्या अन्यदा कदाचित् त्रिषु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु अयमेतद्रूपो दोहदः प्रादुर्भूतः–धन्याः खलु ताः अम्बाः यावत् (तासां) जन्म-जीवित-फलं यः खलु निजस्य राज्ञ. उदर-वलिमांसै· शूलैश्च तलितैश्च भर्जितैश्च सुरां च यावत् प्रसन्ना च आस्वादयन्त्यो यावत् परिभाजयन्त्यो दोहदं प्रविणयन्ति–पूरयन्ति ॥ २६ ॥

पदार्थान्वयः–तए णं–तत्पश्चात्, **तीसे चेलणाए देवीए**–उस चेलना देवी के, **अन्नया कयाइं**–कभी एक बार, **तिण्हं मासाणं**–तीन महीने, **बहुपडिपुण्णाणं**–प्रतिपूर्ण होने पर, **अयमेवारूवे**–इस प्रकार का, **दोहले**–दोहद, **पाउब्भूए**–उत्पन्न हुआ कि, **धन्नाओ णं**–निश्चित ही धन्य हैं, **ताओ अम्मयाओ**–वे माताए, **जाव**–यावत्, **जम्म-जीविय-फले**–जन्म और जीवन सफल हैं, **जाओ णं**–जो कि, **णियस्स रन्नो**–अपने राजा अर्थात् पति

के, **उदरवलीमंसेहिं**–उदरवली अर्थात् कलेजे के मांस को, **सोल्लेहिं**–शूलों अर्थात् सलाइयों पर पका कर, और, **तलिएहिं**–तले हुए मांस का, **य भज्जिएहिं**–और भुने हुए मांस का, **सुरं च**–सुरा अर्थात् शराब का, **जाव**–यावत्, **पसन्नं च**–प्रसन्न करने वाली विशेष प्रकार की मदिरा का, **आसाएमाणीओ**–आस्वादन करती हुई, यावत्–परस्पर, **परिभाए-माणीओ**–आदान-प्रदान करती हुई, **दोहलं**–दोहद को, **पविणेंति**–पूरा करती है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् उस चेलना देवी के कभी एक बार (गर्भ) के तीन महीने पूरे होने पर (उसके हृदय में) इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ कि निश्चित ही धन्य है वे माताए, उन्हीं का जन्म और जीवन सफल है जो कि अपने राजा अर्थात् पति के कलेजे के मांस को शूलो अर्थात् सलाइयों पर पका कर और तले हुए या भुने हुए मांस का सुरा अर्थात् शराब का एवं प्रसन्न कर देने वाली विशेष प्रकार की मदिरा परस्पर बांट कर आस्वादन करती हुई अपने दोहद को पूरा करती हैं।

टीका–इस सूत्र मे चेलना के दोहद का वर्णन किया गया है। गर्भ धारण के तीन महीने पूरे होने पर उसके हृदय मे अपने पति के कलेजे का मांस खाने का दोहद (गर्भिणी नारी के मन मे उत्पन्न होने वाली इच्छा) उत्पन्न हुआ। इस सूत्र के विशिष्ट पदों का जो अर्थ वृत्तिकार ने स्पष्ट किया है वह जानने योग्य है। जैसे कि–

उदरवली-मंसेहिं–इन शब्दों का अर्थ है कलेजे का मांस।

सोल्लेहिं य तलिएहिं य भज्जिएहिं–इन शब्दो द्वारा मास के पकाने, तलने और भूनने का संकेत किया गया है।

पसन्नं–इस पद का अर्थ मन को प्रसन्न करने वाली विशेष प्रकार की मदिरा है।

दोहद की अपूर्ति के कारण चेलना की दुरावस्था

उत्थानिका–दोहद की पूर्ति के अभाव में चेलना की क्या दशा हुई ? अब इस विषय पर प्रकाश डालते हुए सूत्रकार कहते हैं–

मूल–तए णं सा चेल्लणा देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्ग-सरीरा नित्तेया दीण-विमणवयणा पंडुइय-मुही ओमंथिय-नयण-वयण-कमला जहोचियं पुप्फवत्थ-गंध-मल्लालंकारं अपरिभुंजमाणी करतलमलियव्व-कमल-माला ओहयमण-संकप्पा जाव झियाइ ॥ २७ ॥

छाया–ततः खलु सा चेलना देवी तस्मिन् दोहदे अविनीयमाने शुष्का बुभुक्षिता निर्मांसा अवरुग्णा अवरुग्ण-शरीरा निस्तेजाः दीन-विमनोवदना

पाण्डुकितमुखी अवमन्थित-नयन-वदन-कमला यथोचितं पुष्प-वस्त्र-गन्ध -माल्यालंकारं अपरिभुञ्जन्ती करतल-मलितेव कमल-माला उपहतमनः-संकल्पा यावत् ध्यायति ॥ २७ ॥

पदार्थान्वयः-तए णं-तत्पश्चात्, **सा**-वह, **चेल्लणा देवी**-चेलना देवी, **तंसि दोहलंसि**-उस दोहद के, **अविणिज्ज-माणंसि**-पूर्ण न होने पर, **सुक्का**-सूख गई, **भुक्खा**-आहारादि न करने के कारण भूखी रहने लगी, **निम्मंसा**-शरीर पर मास न रहने के कारण, (और) **ओलुग्गा**-इच्छा-पूर्ति के अभाव में रुग्ण सी, **ओलुग्ग-सरीरा**-क्षीणकाय हो जाने के कारण, **णित्तेया**-निस्तेज, **दीण-विमण-वयणा**-दीन, उत्साह-रहित एवं निस्तेज मुख वाली, **पंडुइयमुही**-फीके से मुख वाली चेलना, **ओमंथिय-नयण-वयण-कमला**-नेत्र और मुख-कमल को नीचा किए, **जहोचियं**-यथोचित, **पुप्फ-वत्थ गंधमल्लालड्कारं**-पुष्प, वस्त्र सुगन्धित पदार्थो और आभूषणों का, **अपरिभुंजमाणी**-उपभोग न करती हुई, **करतल-मलियव्व**-हथेलियो से मसली हुई, **कमल-माला**-कमलो की माला के समान, **ओहयमण-संकप्पा**-मन का सकल्प-अभिलाषा पूर्ण न होने के कारण, **जाव झियाइ**-आर्तध्यान करने लगी।

मूलार्थ-तत्पश्चात् महारानी चेलना दोहद की पूर्ति न होने के कारण सूखने लगी, रुचि का अभाव होने से भूखी रहने लगी, अतः क्षीण-काय हो गई, मानसिक व्यथा के कारण रुग्ण रहने लगी और रुग्णता के कारण निस्तेज हो गई। दीन-हीन मानसिक उत्साह न रहने के कारण उसका सुख-कमल मुरझा सा गया-मुख फीका पड़ गया। अब वह आंखें और मुख नीचा किए हुए यथायोग्य पुष्प, वस्त्र सुगन्धित पदार्थो तथा आभूषणों का सेवन नहीं करती थी। वह हाथों से मसली हुई कमलो की माला के समान मुरझा सी गई और मानसिक संकल्प (दोहद-पूर्ति की अभिलाषा) पूर्ण न होने के कारण कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विवेक से रहित होकर आर्त-ध्यान करती रहती थी-अर्थात् दु:ख में पड़ी सोचती रहती थी।

टीका-इस सूत्र में दोहद की पूर्ति न होने के कारण महारानी चेलना की क्या दशा हुई इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

सुक्का-इस पद का भाव यह है कि भोजन के अभाव मे रुधिर-क्षीणता हो जानी स्वाभाविक है और रुधिर के अभाव मे उसका शरीर सूख गया।

भुक्खा-इस पद का भाव यह है कि-गर्भावस्था मे प्रायः भोजन में अरुचि हो जाती है, साथ ही दोहद-पूर्ति के अभाव के कारण भी वह भोजन नही करती थी, अतः वह भूखी-सी ही रहती थी।

निम्मंसा–शब्द सूचित कर रहा है कि रुधिर-क्षीणता और भोजन के अभाव में उसके शरीर का मांस उतर गया, अत: वह दुर्बल एव क्षीणकाय हो गई।

चिन्ता अनेक दु:खों की माता है। महारानी चेलना चिन्तातुर रहने के कारण शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार से रुग्ण रहने लगी, अत उसके चेहरे का तेज उड सा गया। दीन-हीन सी हो जाने के कारण वह सोचती रहती थी कि सब लोग क्या सोचेगे, अत: वह मुह नीचा करके और आंखे झुकाए बैठी रहती थी, अब फूलों की मालाए, सुन्दर वस्त्र आभूषण और इत्र-फुलेल आदि के प्रयोग मे भी उसकी रुचि नहीं रही, अत: वह मुरझाई हुई कमल-माला के समान पडी-पडी चिन्ता-निमग्न रहने लगी।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र मे चिन्ता के दुष्परिणामो का बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है।

दासियों द्वारा राजा श्रेणिक को सूचित करना

मूल–तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अंग-पडियारियाओ चेल्लणं देविं सुक्कं भुक्खं जाव झियायमाणिं पासंति, पासित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता करतल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सेणियं रायं एवं वयासी-एवं खलु सामी ! चेल्लणा देवी न जाणामो केणइ कारणेणं सुक्का भुक्खा जाव झियायइ ॥ २८ ॥

छाया–ततः खलु तस्याश्चेलनाया. देव्याः अगपरिचारिका. चेलनां देवीं शुष्कां बुभुक्षितां यावद् ध्यायन्तीं पश्यन्ति। दृष्ट्वा यत्रैव श्रेणिको राजा तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य करतल-परिगृहीतं शिरसावर्त मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा श्रेणिकं राजानं एवमवादिषुः–एवं खलु स्वामिन् ! चेल्लना देवी न जानाम· केनापि कारणेन शुष्का बुभुक्षिता यावत् ध्यायति ॥ २८ ॥

पदार्थान्वय.–तए णं–तत्पश्चात्, **तीसे चेल्लणाए देवीए**–उस चेलना देवी महारानी की, **अगपडियारियाओ**–सेविकाओं ने, **चेल्लणं देविं**–महारानी चेलना देवी को, **सुक्कं**–दुर्बल–सूख सी गई, **भुक्खं**–आहार का त्याग करने के कारण भूखी सी, **जाव**–यावत्–क्षीणकाय मानसिक एव शारीरिक रूप से बीमार निस्तेज जैसी दशा को (प्राप्त), **झियाय-माणिं**–आर्तध्यान करती हुई को, **पासंति**–देखा, **पासित्ता**–देखकर वे, **जेणेव सेणिए राया**–जहां राजा श्रेणिक थे, **तेणेव**–वही पर, **उवागच्छन्ति**–आ गईं, **उवागच्छित्ता**–और वहां आकर, **करतल-परिग्गहियं**–दोनो हाथ जोडकर, **सिरसावत्तं मत्थए अजलिं कट्टु**–आवर्त-पूर्वक मस्तक पर जुडे हुए हाथ रखकर, **सेणियं रायं एवं वयासी**–राजा

श्रेणिक से इस प्रकार कहने लगीं, **एवं खलु सामी**–स्वामिन् ! बात यह है कि, **न जाणामो**– हम नहीं जान पा रही हैं कि, **चेल्लणा देवी**–महारानी चेलना देवी, **केणइ कारणेणं**–किस कारण से, **सुक्का-भुक्खा**–भूखी रहकर सूखती जा रही हैं, (और) **जाव**–यावत्, **झियायइ**– आर्तध्यान मे डूबी रहती हैं।

मूलार्थ–तब चेलना देवी की अग-परिचारिकाओं अर्थात् उसकी वैयक्तिक सेवा में नियुक्त दासियो ने चेलना देवी को सूखी-सी और भूख से ग्रस्त-सी तथा चिन्तालीन स्थिति में देखा तो वे देखते ही राजा श्रेणिक के पास पहुची। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर आवर्त-पूर्वक मस्तक पर दोनो जुड़े हुए हाथ रखकर राजा श्रेणिक से इस प्रकार निवेदन किया कि–"स्वामिन् ! न मालूम किस कारण से महारानी चेलना देवी क्षीणकाय एवं भूखी रहकर आर्तध्यान में लीन रहती हैं–चिन्ता-ग्रस्त रहती हैं।

टीका–इस सूत्र द्वारा ज्ञात होता है कि राज-महलों मे उस समय महारानियों की सेवा के लिए अनेक प्रकार की दासिया रहती थी जिनमे अग-परिचारिकाएं भी होती थीं, जिन पर महारानी के स्वास्थ्य की देख-रेख और उसकी शारीरिक परिचर्या का दायित्व होता था।

कोई ऐसी-वैसी स्थिति उत्पन्न होने पर वे सारी स्थिति राजा को जाकर बतलाती थीं। यह तत्कालीन राज-व्यवस्था थी।

श्रेणिक द्वारा चेलना से उसकी चिन्ता के कारण की पृच्छा

मूल–तए णं से सेणिए राया तासिं अंगपरियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणं देविं सुक्कं भुक्खं जाव झियायमाणिं पासित्ता एवं वयासी–किन्नं तुमं देवाणुप्पिए ! सुक्का भुक्खा जाव झियायसि ? ॥ २९ ॥

छाया–ततः खलु सः श्रेणिको राजा तासामङ्गपरिचारिकाणामन्तिके एतमर्थ श्रुत्वा, निशम्य तथैव संभ्रान्तः सन् यत्रैव चेल्लना देवी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चेल्लनां देवीं शुष्कां बुभुक्षितां यावद् ध्यायन्तीं दृष्ट्वा एवमवादीत्–किं खलु त्वं देवानुप्रिये ! शुष्का बुभुक्षिता यावद् ध्यायसि ॥ २८ ॥

पदार्थान्वयः–तए णं–तत्पश्चात्, **से सेणिए राया**–वह राजा श्रेणिक, **तासिं अंगपरियारियाणं अंतिए**–उन अंग-परिचारिकाओं के पास से, **एयमट्ठं सोच्चा**–इस बात को सुनकर, **निसम्म**–कुछ विचार कर, **तहेव**–उसी समय, **सभंते समाणे**–आश्चर्य-चकित होते हुए, **जेणेव चेल्लणा देवी**–जहां पर रानी चेलना देवी थी, **तेणेव**–वही पर,

उवागच्छइ–आ गया, (और) **उवागच्छित्ता**–वहां आकर, **चेल्लणं देविं**–चेलना देवी को, **सुक्कं भुक्खं**–सूखी सी (क्षीणकाय) एवं भूख से पीड़ित होकर, **झियायमाणिं**–आर्तध्यान करती हुई को, **पासित्ता**–देखकर, **एवं वयासी**–इस प्रकार बोला–**किन्नं तुमं**–क्यों तुम, **देवाणुप्पिए** !–हे देवानुप्रिये ! **सुक्का भुक्खा**–शरीर को सुखाकर और भूखी रहकर, **जाव**–यावत्–पूर्व वर्णित प्रकार से, **झियायसि**–चिन्ताग्रस्त होकर कुछ सोच रही हो ?

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह राजा श्रेणिक उन अंग-परिचारिकाओं (दासिओं) के मुख से रानी चेलणा की दशा सुनकर और कुछ विचार कर उसी समय कुछ आश्चर्य चकित होते हुए जहां पर महारानी चेलना देवी थी वहीं आ गया और वहां आकर चेलना देवी को कृशकाय और भूख से पीड़ित होकर आर्तध्यान करती हुई अर्थात् चिन्ताग्रस्त होकर कुछ सोचती हुई देखा और उसे देखकर बोले–"हे देवानुप्रिये! इस प्रकार अपने शरीर को सुखाकर और भूखी रहकर तुम क्यों चिन्तातुर होकर कुछ सोच रही हो ?

टीका–प्रस्तुत सूत्र में गृहस्थावस्था मे पति के कर्त्तव्य की ओर ध्यान दिलाया गया है कि अपनी पत्नी के कष्ट की बात सुनते ही उसे उसके पास जाकर उसकी चिन्तातुरता का कारण जानना चाहिए।

"देवानुप्रिये !" इस सम्बोधन से राजा श्रेणिक की पत्नी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है जो गृहस्थ जीवन में आवश्यक होती है।

चेलना का अनुत्तर

मूल–तए णं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं णो आढाइ, णो परिजाणइ, तुसिणीया संचिट्ठइ ॥ ३० ॥

छाया–ततः खलु सा चेलना देवी श्रेणिकस्य राज्ञः एतमर्थ नो आद्रियते, नो परिजानाति तूष्णीका संतिष्ठति ॥ ३० ॥

पदार्थान्वयः–तए णं–उसके बाद अर्थात् राजा श्रेणिक के पूछने पर, **सा चेल्लणा देवी**–उस महारानी चेलना ने, **सेणियस्स रन्नो**–राजा श्रेणिक के, **एयमट्ठं**–किए गए प्रश्न का, **णो आढाइ**–कोई आदर नही किया, **णो परिजाणइ**–न उसे स्वीकार ही किया–मानो उस सम्बन्ध मे वह कुछ जानती ही न हो, **तुसिणीया संचिट्ठइ**–चुपचाप मौन धारण करके बैठी रही।

मूलार्थ–तत्पश्चात् राजा श्रेणिक के पूछने पर महारानी चेलना ने राजा के प्रश्न

का कोई आदर नही किया, अर्थात् प्रश्न को सुनकर भी अनसुना कर दिया, मानो वह कुछ जानती ही न हो, अपितु वह मौन धारण करके ज्यो की त्यों बैठी रही।

टीका–प्रस्तुत सूत्र द्वारा एक मनोवैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश डाला गया है। पति और पत्नी के सम्बन्ध प्रेम और विश्वास के आधार पर टिके होते है, अत: पत्नी पति की प्रत्येक बात को आदरपूर्वक स्वीकार करे। पूछने पर दोनो तत्काल उत्तर दे। किन्तु स्त्रियो मे प्राय: मान-मनौवल करवाने की आदत होती है, उसी आदत के अनुसार महारानी चेलना ने भी राजा श्रेणिक के साथ एक मानिनी स्त्री जैसा व्यवहार किया।

राजा श्रेणिक द्वारा पुनः-पुनः पूछना

मूल–तए णं से सेणिए राया चेल्लणं देविं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी–किं णं अहं देवाणुप्पिए ! एयमट्ठस्स नो अरिहे सवणयाए जं णं तुमं एयमट्ठं रहस्सीकरेसि ? ॥ ३१ ॥

छाया–ततः खलु श्रेणिको राजा चेल्लनां देवीं द्वितीयमपि तृतीयमपि (वारं) एवमवादीत्–किं खलु अहं देवानुप्रिये ! एतदर्थस्य नो अर्हः श्रवणाय यत्खलु त्वं एतमर्थं रहस्यीकरोषि ? ३१ ॥

पदार्थान्वय·–**तए णं**–तत्पश्चात्, **से सेणिए राया**–उस राजा श्रेणिक ने, **चेल्लणं देविं**–महारानी चेलना से, **दोच्चंपि**–दूसरी बार, **तच्चपि**–फिर तीसरी बार, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहा, **किं णं अह**–किस कारण से मैं निश्चय ही, **देवाणुप्पिए**–देवानुप्रिये, **एयमट्ठस्स**–तुम्हारे इस अर्थ को–तुम्हारे इस प्रकार न बोलने के कारण को, **नो अरिहे सवणयाए**–मै सुनने के योग्य नहीं हूं, **जं णं तुमं**–जो कि तुम, **एयमट्ठं**–इस बात को मुझ से, **रहस्सीकरेसि**–छिपा रही हो।

मूलार्थ–तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने महारानी से दूसरी बार और फिर तीसरी बार भी पूछते हुए इस प्रकार कहा–देवानुप्रिये ! किस कारण से मैं निश्चय ही तुम्हारे इस प्रकार न बोलने के कारण को जानने के अयोग्य हूं ? जो कि तुम मुझ से इस प्रकार छिपाव कर रही हो ?

टीका–प्रस्तुत सूत्र में राजा श्रेणिक ने महारानी चेलना देवी से एक बार पूछा तो वह मौन रही, दूसरी, तीसरी बार पूछने पर भी उसने अपना मौन नहीं तोड़ा। इस घटना के द्वारा यह संकेत किया जा रहा है कि जैसे राजा श्रेणिक अपनी पत्नी के कष्ट को देखकर आतुर हो रहा था ऐसे ही प्रत्येक पति को अपनी पत्नी के कष्ट निवारण के लिए आतुर

होकर कष्ट निवृत्ति का उपाय करना चाहिए।

रानी चेलना के मौन रहने से यह भी ध्वनित होता है कि उसके मनोजगत में पति के प्रति अपार श्रद्धा छिपी हुई है, प्रेम छिपा हुआ है जिसके कारण वह पति के कलेजे का मांस खाने की बात नही कह पा रही है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। ज्ञाताधर्मकथा मे महारानी धारणी के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार वर्णन प्राप्त होता है।

दुष्ट-दोहद सम्बन्धी चेलना का कथन

मूल—तए णं सा चेल्लणा देवी सेणिएणं रन्ना दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी सेणियं रायं एवं वयासी—णत्थि णं सामी ! से केइ अट्ठे जस्स णं तुब्भे अणरिहा सवणयाए, नो चेव णं इमस्स अट्ठस्स सवणयाए, एवं खलु सामी ! ममं तस्स ओरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—"धन्नाणं ताओ अम्मयाओ जाओ णं णियस्स रन्नो उदरवलिमंसेहिं सोल्लएहिं य जाव दोहलं विणेंति।" तए णं अहं सामी ! तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा जाव झियायामि ॥ ३२ ॥

छाया—ततः खलु सा चेल्लना देवी श्रेणिकेन राज्ञा द्वितीयमपि तृतीयमपि (वार) एवमुक्ता सती श्रेणिकं राजानं एवं अवादीत्—"नास्ति खलु स्वामिन् ! स. कोऽप्यर्थः यस्य खलु यूयमनर्हःश्रवणतायै, नो चेव खलु अस्यार्थस्य श्रवणतायै एवं खलु स्वामिन्! मम तस्य उदारस्य यावत् महास्वप्नस्य त्रिषु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु अयमेतद्रूपो दोहदः प्रादुर्भूतः—"धन्याः खलु ताः अम्बा याः खलु निजस्य राज्ञः उदरवलिमांसैः शूलकैश्च यावत् दोहदं विनयन्ति। ततः खलु अहं स्वामिन् ! तस्मिन्दोहदे अविनीयमाने शुष्का बुभुक्षिता यावत् ध्याये ॥ ३२ ॥

पदार्थान्वय.—तए णं—तदनन्तर, **सा**—वह, **चेल्लणा देवी**—चेलना देवी, **सेणिएणं रन्ना**—राजा श्रेणिक के द्वारा—**दोच्चं पि-तच्च पि**—दो बार-तीन बार, **एवं वुत्ता समाणी**—इस प्रकार बुलाई जाने पर अथवा इस प्रकार राजा द्वारा कहने पर, **सेणियं रायं एवं वयासी**—राजा श्रेणिक से इस प्रकार बोली, **णत्थि णं सामी**—हे स्वामिन् ! ऐसा कुछ भी नही, **से**—ऐसी, **केइ अट्ठे**—कोई भी बात, **जस्स णं**—जो कि, **तुब्भे**—आपके, **अणरिहा सवणयाए**—सुनने के योग्य न हो, **नो चेव णं**—और न ही, **इमस्स अट्ठस्स**—इस बात को, **सवणयाए**—सुनने के (अयोग्य है), **एवं खलु सामी**—इस प्रकार निश्चय ही हे स्वामी, **ममं**—मुझे,

तस्स ओरालस्स—उस महान्, **जाव महासुमिणस्स**—महास्वप्न अर्थात् सिंह-दर्शन वाले सुन्दर स्वप्न को देखने के अनन्तर, **तिण्हं मासाणं**—तीन महीनो के, **बहुपडिपुण्णाणं**—परिपूर्ण होने पर, **अयमेयारूवे**—इस प्रकार का, **दोहले पाउब्भूए**—दोहद उत्पन्न हुआ, **धन्नाओ णं ताओ**—धन्य हैं वे, **अम्मयाओ**—माताएं, **जाओ णं**—जो कि अपने, **णियस्स**—निजी—अपने, **रन्नो**—राजा अर्थात् पति के, **उदरवलिमंसेहिं**—कलेजे के मांस को, **सोल्लएहिं**—शूलों पर सेके हुए मांस को (एक दूसरे को देकर खाती हुई), **जाव**—मास और मदिरा द्वारा, **दोहलं विणेंति**—अपने दोहद को पूरा करती हैं, **तएणं**—तत्पश्चात्, **सामी**—हे स्वामिन्, **अहं**—मै, **तंसि दोहलंसि**—उस दोहद के, **अविणिज्जमाणंसि**—पूर्ण न होने पर, **सुक्का**—सूखती जा रही हू, **भुक्खा**—भूखी रह रही हू, **जाव झियायामि**—यावत् आर्तध्यान कर रही हू।

मूलार्थ—तदनन्तर वह चेलना देवी राजा श्रेणिक के द्वारा दो-तीन बार बुलाई जाने पर अर्थात् पूछने पर राजा श्रेणिक से इस प्रकार कहने लगी—''हे स्वामिन् ! ऐसी कोई भी बात नहीं है जिसे सुनने के योग्य आप न हों, इस बात को भी आप सुनने के अयोग्य नही है, (किन्तु यह बात आपके सुनने के योग्य नही है), क्योंकि स्वामिन् सिह दर्शन वाले महान स्वप्न को देखने के अनन्तर गर्भ के तीन मास पूर्ण होने पर मेरे मन मे एक विचित्र दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताए धन्य हैं जो अपने राजा अर्थात् पति के कलेजे का मांस सलाइयों पर भून कर (एक-दूसरे को बांटकर मदिरा पीते हुए खाती हैं)। तदनन्तर हे स्वामिन् ! मैं उस दोहद के पूर्ण न होने पर सूखती जा रही हूं, भूखी रह रही हू और आर्त्तध्यान कर रही हू, अर्थात् चिन्तातुर होकर सोच में डूबी रहती हूं।

टीका—इस सूत्र में उक्त विषय का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि जब राजा ने दो-तीन बार रानी चेलना से पूछा तो उसने कहा—''हे स्वामिन ! ऐसी कोई भी बात नहीं है जो आपके सुनने योग्य न हो, किन्तु यह बात आपके सुनने योग्य नहीं है, क्योंकि यह घटना अत्यन्त कष्ट देने वाली है।

जब राजा ने पुन:-पुन: आग्रह किया तो चेलना देवी कहने लगी कि ''हे स्वामिन्! मैंने सिंह दर्शन वाला स्वप्न देखा था उसके बाद गर्भ के तीन मास बीतने पर मुझे आपके कलेजे का मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ, इस दोहद की पूर्ति न होने से मेरी यह दशा हो रही है कि मेरा शरीर सूखता जा रहा है और अरुचि के कारण मुझे भोजन भी अच्छा नहीं लग रहा, अत: मैं हर समय चिन्तित रहती हूं। इसके द्वारा महारानी ने अपनी असमंजस मे पड़ी स्थिति को स्पष्ट कर दिया है।

इस कथन से यह भी भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि रानी की इच्छा मांस-भक्षण की नहीं थी, किन्तु यह इच्छा केवल गर्भस्थ शिशु के प्रभाव के कारण उत्पन्न हुई थी।

उक्त घटना से यह भी ध्वनित होता है कि पति-पत्नी को चाहे जैसी भी घटना अथवा परिस्थिति हो परस्पर सत्य रूप से वह स्थिति स्पष्ट कह देनी चाहिए। स्पष्टता से उसका समाधान भी ढूंढा जा सकता है—और प्रायः ढूंढ ही लिया जाता है।

चेलना को श्रेणिक का आश्वासन

मूल—तए णं सेणिए राया चेल्लणं देविं एवं वयासी—माणं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहय० जाव झियायह, अहं णं तहा जइस्सामि जहा णं तव दोहलस्स संपत्ती भविस्सइत्ति कट्टु चेल्लणं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं, मंगल्लाहिं, मियमहुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं, समासासेइ, समासासित्ता, चेल्लणाए देवीए अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता तस्स दोहलस्स संपत्ति-निमित्तं बहूहिं आएहिं उवाएहिं य उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य पारिणामियाहि य परिणामेमाणे-२ तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिइं व अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ ॥ ३३ ॥

छाया—ततः खलु सः श्रेणिको राजा चेल्लनां देवीमेवमवादीत्—मा खलु त्वं देवाणुप्रिये अवहत० यावत् ध्याय, अहं खलु तथा यतिष्ये, यथा खलु तव दोहदस्य सम्पत्तिर्भविष्यतीति उक्त्वा चेल्लणा देवीं ताभिरिष्टाभिः कान्ताभिः प्रियाभि-र्मनोज्ञाभिर्मनोरमाभिरुदाराभिः कल्याणाभिः शिवाभिर्धन्याभिर्माङ्गल्याभिर्मित-मधुरसश्रीकाभिर्वल्गुभिः समाश्वासयति, समाश्वास्य चेल्लनाया देव्या अन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव सिंहासनं तत्रैवोपा-गच्छति, उपागत्य सिंहासनवरे पौरस्त्याभिमुखो निषीदति, निषद्य तस्य दोहदस्य सम्पत्ति-निमित्तं बहुभिरायैरुपायैश्च औत्पत्तिकीभिश्च वैनयिकीभिश्च कार्मिकी (कर्मजा) भिश्च पारिणामिकीभिश्च परिणामयन्—परिणामयन् तस्य दोहदस्य आयं वा उपायं वा स्थितिं वा अविन्दन् अपहतमनः संकल्पो यावद् ध्यायति ॥ ३३ ॥

पदार्थान्वयः—**तए णं**—तदनन्तर, **से सेणिए राया**—वह राजा श्रेणिक, **चेल्लणं देविं**—

महारानी चेलना से, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोले, **माणं तुमं देवाणुप्पिए**— देवानुप्रिये! तुम इस प्रकार, **ओहय० जाव० झियायह**—उपहत मन होकर अर्थात् अपने मन को मारकर आर्तध्यान मत करो, **अहं णं तहा जइस्सामि**—मैं निश्चय ही कोई ऐसा प्रयत्न करूंगा, **जहा णं**—जिससे कि, **तव दोहलस्स**—तुम्हारे दोहद की, **संपत्ती भविस्सइ**—पूर्ति होगी, **त्ति कट्टु**—इस प्रकार कह कर, **चेल्लणं देविं**—महारानी चेलना देवी, **ताहिं**—उसको, **इट्ठाहिं**—इष्ट-पूर्ति करने वाले, **कंताहिं**—अत्यन्त सुन्दर, **पियाहिं**—प्रियकारी, **मणुन्नाहिं**—मन को भाने वाले, **मणामाहिं**—मनोनुकूल, **ओरालाहिं**—उदार भावनाओं से युक्त अर्थात् गर्भ-काल की कामनाओं को पूर्ण करने वाली, **कल्लाणाहिं**—कल्याणकारी, **सिवाहिं**—शुभकारी, **धन्नाहिं**—धन्य कहलाने के योग्य, **मंगल्लाहिं**—मगलकारी, **मिय-महुर-सस्सिरीयाहि**—थोड़े से शब्दों द्वारा अत्यन्त मधुर लगने वाली—शोभायमान, **वग्गूहिं**—वचनों द्वारा, **समा-सासेइ**—आश्वासन देता है, **समासासित्ता**—और फिर आश्वासन देकर, **चेल्लणाए देवीए अंतियाओ**—चेलना देवी के पास से, **पडिनिक्खमइ**—वापिस लौट जाता है, **पडिनिक्खमित्ता**—और लौट कर, **जेणेव बाहिरिया**—अन्त:पुर से बाहर जहा पर, **उवट्ठाणसाला**—उपस्थानशाला—अर्थात् सभा-मण्डप था, **जेणेव सीहासणे**—और उसमें जहां पर राजसिहासन था, **तेणेव उवागच्छइ**—वही पर आ जाता है, **उवागच्छित्ता**—और आकर, **सीहासणवरंसि**—अपने सिहासन पर, **पुरत्थाभिमुहे**—पूर्व दिशा की ओर मुख करके, **निसीयइ**—बैठ जाता है, **निसीइत्ता**—और बैठ कर, **तस्स दोहलस्स**—उस दोहद के, **संपत्ति-निमित्तं**—पूर्णता के लिए, **बहूहिं आएहिं उवाएहिं**—बहुत प्रकार के साधनों और उपायों के सम्बन्ध में, **उप्पत्तियाहिं**—औत्पत्तिकी बुद्धि द्वारा, **य वेणइयाहिं**—वैनयिकी बुद्धि द्वारा, **य कम्मियाहिं**—कार्मिकी बुद्धि के द्वारा, **य पारिणामियाहिं**—और पारिणामिकी बुद्धि के द्वारा, **परिणामेमाणे-परिणामेमाणे**—अनेक प्रकार के विचार करता हुआ, **तस्स दोहलस्स**—उस दोहद की पूर्ति का, **आयं वा उवायं वा**—किसी भी साधन या प्रयोग, **ठिइं वा**—व्यवस्था के, **अविंदमाणे**—न सूझने पर, **ओहयमण-संकप्पे**—मानसिक संकल्प की पूर्ति न होने के कारण, **जाव झियायइ**—अत: वह भी आर्तध्यान करने लगा।

मूलार्थ—तदनन्तर वह राजा श्रेणिक महारानी चेलना देवी से इस प्रकार बोले—देवि! तुम इस प्रकार अपने मन को मार कर आर्तध्यान मत करो, अर्थात् दु:खी मत होओ, मैं निश्चित ही कोई ऐसा प्रयत्न करूंगा जिससे कि तुम्हारे दोहद की पूर्ति होगी। इस प्रकार कहकर राजा श्रेणिक महारानी चेलना देवी को इष्ट की पूर्ति करने वाले अत्यन्त सुन्दर प्रियकारी, मन को भाने वाले, उसे अनुकूल प्रतीत होने वाले उदार भावनाओ से युक्त अर्थात् गर्भकाल की इच्छाओ को पूर्ण करने वाले, कल्याणकारी शुभकारी, धन्य कहलाने के योग्य मंगलकारी, अल्प शब्दों द्वारा अत्यन्त मधुर एवं

शोभायमान वचनों द्वारा आश्वासन देते हैं और आश्वासन देकर चेलना देवी के पास से वापिस लौट जाते हैं और वे लौटकर जहा अपनी राज-सभा थी और उस सभा में जहां उनका अपना निजी सिंहासन था वहां पर आकर अपने श्रेष्ठ अत्युत्तम राज-सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गए। बैठकर उस दोहद की पूर्ति के लिए अनेक साधन, एवं उपाय औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और परिणामिकी बुद्धि द्वारा सोचते हुए उस दोहद की पूर्ति का कोई भी साधन, उपाय एवं व्यवस्था न सूझने पर और अपने मानसिक सकल्प की पूर्ति न होने पर राजा श्रेणिक भी आर्तध्यान करने लगे—अर्थात् चिन्ता-निमग्न हो गए।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे राजा श्रेणिक द्वारा महारानी चेलना को उसकी दोहद-पूर्ति के आश्वासन देने का वर्णन किया गया है। आश्वासन के लिए प्रयुक्त शब्दों द्वारा यह ध्वनित होता है कि किसी को यदि आश्वासन दिया जाए तो वह प्रियकारी, शुभकारी एवं कल्याण-कारी शब्दों द्वारा ही देना चाहिए।

साथ ही **"जइस्सामि"** इस क्रिया द्वारा यह शिक्षा दी गई है कि जब तक किसी बात को पूर्ण करने की शक्ति पर पूर्ण विश्वास न हो जाए तब तक निश्चयकारी वचन नही बोलने चाहिए।

प्रस्तुत सूत्र में चार प्रकार की बुद्धियो का वर्णन किया गया है। चार प्रकार की बुद्धियो का विवरण इस प्रकार है—

१. **औत्पत्तिकी बुद्धि**—जिस बुद्धि के द्वारा शास्त्रो के अभ्यास के बिना ही अनदेखे, अनसुने और पहले अनुभव में न आए हुए विषयों का भी यथार्थ ज्ञान हो जाए उसे औत्पत्तिकी बुद्धि कहा जाता है।

२. **वैनयिकी बुद्धि**—विनय-भाव से उत्पन्न होने वाली बुद्धि वैनयिकी बुद्धि कही जाती है।

३ **कार्मिकी (कर्मजा) बुद्धि**—उपयोग-पूर्वक चिन्तन-मनन करते हुए कार्य करने से उत्पन्न होने वाली बुद्धि कार्मिकी बुद्धि कहलाती है।

४. **पारिणामिकी बुद्धि**—अनुमान आदि द्वारा कार्य को सिद्ध करने वाली एवं आयु की परिपक्वता के कारण परिपुष्ट होने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली बुद्धि पारिणामिकी बुद्धि कहलाती है।

अभय का श्रेणिक से निवेदन

उत्थानिका—तदनन्तर चेलना की दोहद-पूर्ति के विषय में क्या हुआ ? अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं—

मूल–इमं च णं अभयकुमारे ण्हाए जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं ओहय० जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी–"अन्नया णं ताओ ! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठ जाव हियया भवह, किन्नं ताओ ! अज्ज तुब्भे ओहय० जाव झियायह ? तं जइणं अहं ताओ ! एयस्स अट्ठस्स अरिहे सवणयाए तो णं तुब्भे मम एयमट्ठं जहाभूयमवितहं असंदिद्धं परिकहेह, जाणं अहं तस्स अट्ठस्स अंतगमणं करेमि ॥ ३४ ॥

छाया–इतश्च खलु अभयः कुमारः स्नातः यावत् शरीरः, स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव श्रेणिको राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च श्रेणिकं राजानं अवहत० यावत् ध्यायन्तं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्–"अन्यदा खलु तात ! यूयं मां दृष्ट्वा हृष्टः यावत् हृदयः भवथ, किं खलु तात ! अद्य यूयं अवहत० यावत् ध्यायथ, तद्यदि खल्वहं तात ! एतस्यार्थस्याऽर्हः श्रवणतायै तदा खलु यूयं मम एतमर्थ यथाभूतम् अवितथं असंदिग्धं परिकथयत, यस्मात् खल्वहं तस्यार्थस्यान्तगमनं करोमि ॥ ३४ ॥

पदार्थान्वयः–**इमं च णं**–उस समय, **अभयकुमारे**–अभय कुमार, **ण्हाए**–स्नान करके, **जाव**–यावत्, **सरीरे**–शरीर को अलकृत करके, **सयाओ गिहाओ**–अपने निजी राज-महल मे से, **पडिनिक्खमइ**–बाहर निकला, **पडिनिक्खमित्ता**–और बाहर निकल कर, **जेणेव**–जहां पर, **बाहिरिया**–बाहर की ओर, **उवट्ठाणसाला**–राजसभा-मण्डप था, **जेणेव**–और जहा पर, **सेणिए राया**–राजा श्रेणिक बैठा था, **तेणेव**–वहां पर, **उवागच्छइ**–आता है, **उवागच्छित्ता**–और वहां आकर, **सेणियं राय**–राजा श्रेणिक को, **ओहय०**–उपहत मन वाले अर्थात् मरे हुए मन से, **जाव**–यावत्, **झियायमाणं**– आर्तध्यान करते हुए, **पासइ**–देखता है, **पासित्ता एवं वयासी**–और उन्हे इस दशा मे देखकर बोला, **ताओ !**–तात, **अन्नया णं**–अन्यदा हर समय अर्थात् पहले तो, **तुब्भे**–आप, **ममं पासित्ता**–मुझे देखते ही, **हट्ठ**–हर्ष-युक्त, **जाव**–यावत्, **हियया**–हृदय से, **भवह**–होते रहे हैं, **किं णं ताओ अज्ज**–हे तात ! फिर आज किस कारण से, **तुब्भे**–आप, **ओहय०**–अपने मन को मारकर, **जाव**–यावत्, **झियायह**–आर्त्तध्यान कर रहे हैं, **तं जइ णं**–वह यदि, **ताओ**–हे तात, **अहं एयमट्ठस्स**–इस अर्थ को अर्थात् आपके दुखित होने के कारण को, **अरिहे सवणयाए**–सुनने के योग्य हूं, **तो णं**–तब, **तुब्भे**–आप, **ममं**–मुझे,

एयमट्ठं–इन समस्त कारणों को, **जहाभूयं**–यथाभूत अर्थात् ज्यो का त्यों, **अवितहं**–बिल्कुल सत्य, **असंदिद्धं**–सन्देह-रहित, **परिकहेह**–कह दीजिए, **जा णं अहं**–जिससे कि मै, **तस्स अट्ठस्स**–उस अर्थ अर्थात् कार्य के, **अंत-गमणं करेमि**–अन्त तक पहुच कर–मर्म तक जाकर उसे दूर कर सकू।

मूलार्थ–उस समय अभय कुमार स्नान करके और शरीर को अलंकारो से सुसज्जित करके अपने राज-भवन से बाहर निकला और बाहर निकलकर जहां पर राज-सभा मण्डप था और जहां राजा श्रेणिक अपने मन को मारकर अर्थात् चिन्ता मे डूबा हुआ आर्त्तध्यान कर रहा था वहा आकर उसने देखा और देखकर इस प्रकार बोला–"तात ! अन्यदा अर्थात् पहले तो आप सदैव मुझे देखते ही हर्षित हृदय हो जाया करते थे, तात ! तो आज फिर क्यों अपने मन को मारे हुए आर्त्तध्यान में डूबे हुए हैं, अर्थात् चिन्तातुर हो रहे हैं ? तात । यदि आप मुझे उस चिन्ता के कारण को सुनने के योग्य समझते हैं तो आप मुझ से वह कारण ज्यों का त्यों यथार्थ रूप से सन्देह-रहित होकर कहे, जिससे कि मै उस कारण के अन्त तक–मर्म तक पहुंच कर उसे दूर कर सकूं।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में अभय कुमार द्वारा पिता के पास आकर चिन्ता के कारण को पूछने का वर्णन किया गया है और साथ ही यह मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रकट किया गया है कि पिता को पुत्रों से हर्षित हृदय से मिलना चाहिए। पुत्रों का यह कर्त्तव्य है कि वे पिता को यह विश्वास दिलाए कि हम आपकी चिन्ताओ को जानकर उन्हे हर सम्भव उपाय करके दूर करेगे।

सूत्र द्वारा यह भी ध्वनित होता है कि–पुत्रो को अपने पिता से जो भी बात पूछनी हो वह बड़े प्रेम से पूछनी चाहिए।

श्रेणिक का कथन

मूल–तए णं से सेणिए राया अभयं कुमारं एवं वयासी–णत्थि णं पुत्ता ! से केइ अट्ठे जस्स णं तुमं अणरिहे सवणाए, एवं खलु पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए तस्स ओरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं जाव अयमेवारूवे दोहले पाउब्भूए "धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ उयरवलिमंसेहिं सोल्लेहिं य जाव दोहलं विणेंति ॥ ३५ ॥

छाया—ततः खलु स श्रेणिको राजा अभयकुमारमेवमवादीत्—नास्ति खलु पुत्र ! सः कोऽप्यर्थः यस्य खलु त्वमनर्हः श्रवणतायै। एवं खलु पुत्र ! तव क्षुल्लक-मातुश्चेल्लनाया देव्यास्तस्योदारस्य यावत् महास्वप्नस्य त्रिषु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु अयमेवरूपः दोहलः प्रादुर्भूतः—"धन्यास्ते अम्बाः याः तव उदरवलिमांसैः शूलकैश्च यावत् दोहदं विनयन्ति।" ततः खलु सा चेल्लना देवी तस्मिन् दोहदेऽविनीयमाने शुष्का यावत् ध्यायति। ततः खल्वह पुत्र ! तस्य दोहदस्य सम्पत्ति-निमित्तं बहुभिरायैरुपायैश्च यावत् स्थितिं वा अविन्दन् अपहत० ध्यायामि ॥ ३५ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तदनन्तर, **से सेणिए राया**—वह राजा श्रेणिक, **अभयं कुमारं**—अभय कुमार को, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोला, **णत्थि णं पुत्ता !**—हे पुत्र ऐसा कुछ भी नहीं है, **जस्स णं तुमं**—तुम जिसके, **अणरिहे सवणाए**—जिसे तुम सुनने के योग्य नहीं हो, **एवं खलु पुत्ता !**—हे पुत्र वस्तुतः बात यह है कि, **तव**—तुम्हारी, **चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए**—छोटी माता चेलना देवी के, **तस्स ओरालस्स**—उस प्रमुख, **जाव**—यावत्, **महासुमिणस्स**—महास्वप्न के, **तिण्हं मासाणं**—तीन महीने, **बहुपडिपुन्नाण**—परिपूर्ण होने पर, **अयमेवारूवे**—इस प्रकार का, **दोहले पाउब्भूए**—दोहद उत्पन्न हुआ, **धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ**—धन्य है वे माताएं जो कि तुम्हारे (राजा श्रेणिक के), **उयरवलिमंसेहिं**—कलेजे के मांस से, **सोल्लेहिं०**—तल-भून कर, **दोहलं विणेंति**—अपने दोहद को पूर्ण करती हैं।

मूलार्थ—तब उस राजा श्रेणिक ने अभय कुमार से इस प्रकार कहा—"पुत्र ! ऐसी कोई भी बात नहीं है जो तुम्हारे सुनने के योग्य न हो, किन्तु बात यह है कि तुम्हारी छोटी माता चेलना देवी को एक महान् उदार महास्वप्न को देखे हुए तीन मास बीतने पर यह दोहद उत्पन्न हुआ है कि "वे माताएं धन्य है जो अपने पति के हृदय के मांस को सलाइयो पर सेक एव तल-भून कर उस मांस से अपने दोहद को पूर्ण करती हैं।

टीका—प्रस्तुत प्रकरण द्वारा पहला ज्ञातव्य यह सकेत मिलता है कि राजा और मत्री चाहे पिता-पुत्र ही क्यों न हों उन्हें कुछ भी छिपाए बिना सब बाते एक-दूसरे को स्पष्ट रूप से बता देनी चाहिएं, तभी कोई कार्य सम्पन्न हो सकता है, अन्यथा नही।

दूसरा संकेत इस प्रकार भी दिया गया है कि जहां माता-पिता के आचरण, वार्तालाप आदि का गर्भस्थ बालक पर प्रभाव पड़ता है वहां गर्भस्थ जीव का माता-पिता पर भी प्रभाव पड़ता है। महारानी चेलना पर गर्भस्थ दुष्ट जीव का ही यह प्रभाव पड़ा कि वह पति के कलेजे के मांस से दोहद-पूर्ति जैसा निकृष्ट विचार करने लगी।

''उयरावलिमंसेहिं'' शब्द का ''जैनागम शब्द-संग्रह अर्धमागधी गुजराती कोश'' मे कलेजे का मांस अर्थ प्राप्त होता है और 'सोल्लेहिं' शब्द का अर्थ उसी कोष में ''सलाइयों पर पकाया हुआ मास'' किया है। अतः हमने कोषानुसारी अर्थ ही ग्रहण किया है।

मूल—तएणं सा चेल्लणा देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का जाव झियायइ। तएणं अहं पुत्ता ! तस्स दोहलस्स संपत्ति-निमित्तं बहुहिं आएहिं य जाव ठिइं वा अविंदमाणे ओहय० जाव० झियामि ॥ ३६ ॥

छाया—ततः खलु सा चेलना देवी तस्मिन् दोहदे अविनीयमाणे शुष्का यावत् ध्यायति। ततः खल्वहं पुत्र ! तस्य दोहदस्य संपत्ति-निमित्तं बहुभिरायैः उपायैः यावत् स्थितिं वा अविन्दन् अपहत० यावद्० ध्यायामि ॥ ३६ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—इसलिए, **सा चेल्लणा देवी**—वह महारानी चेलना, **तंसि दोहलंसि**—उस दोहद के, **अविणिज्जमाणंसि**—पूर्ण न होने के कारण, **सुक्का**—कृशकाय होकर, **जाव झियायइ**—आर्तध्यान कर रही है। **तएणं**—इसलिए, **अहं पुत्ता**—हे पुत्र मैं, **तस्स दोहलस्स**—उसके उस दोहद की, **संपत्ति-निमित्तं**—पूर्णता के लिए, **बहुहिं आएहिं**—बहुत उपायों से भी, **जाव० ठिइं वा अविंदमाणे**—स्थिति को न समझ पाने के कारण, **ओहय० जाव० झियामि**—मै भग्न-मनोरथ होकर चिन्तातुर हो सोच रहा हूं।

मूलार्थ—हे पुत्र ! महारानी चेलना देवी के उस दोहद के पूर्ण न होने के कारण वह कृशकाय होकर चिन्तातुर रहती है। उस दोहद की पूर्ति के बहुत से उपाय करके भी कुछ समझ न पाने के कारण हताश होकर मै भग्नमनोरथ होकर चिन्ता मे डूबा रहता हू।

टीका—इस सूत्र द्वारा यह स्पष्ट हो रहा है कि गृहस्थी को अपनी चिन्ता के साथ अपने पारिवारिक-जनो के लिए भी चिन्तातुर रहना पड़ता है। इसीलिए गृहस्थ को ''चिन्ता-गृह निवासी'' कहा गया है।

अभय का पिता को आश्वासन और उपाय

उत्थानिका—इसके अनन्तर अभय कुमार ने क्या किया और दोहद-पूर्ति के लिए क्या उपाय किया, शास्त्रकार इस विषय का वर्णन करते हैं—

मूल—तए णं से अभए कुमारे सेणियं रायं एवं वयासी—''मा णं ताओ ! तुब्भे ओहय० जाव झियायह, अहं णं तहा जइहामि जहाणं मम

चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए तस्स दोहलस्स संपत्ती भविस्सइ–त्ति कट्टु सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं समासासेइ, समासासित्ता जेणेव सए गिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अब्भिंतरए रहस्सिए ठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सूणाओ अल्लं मंसं रुहिरं वत्थिपुडगं च गिण्हह।

तए णं ते ठाणिज्जा पुरिसा अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ० करतल० जाव पडिसुणेत्ता अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ–पडिनिक्ख-मंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सूणा तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अल्लं मंसं रुहिरं वत्थिपुडगं च गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव अभएकुमारे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता करयल० तं अल्लं मंसं रुहिरं वत्थिपुडगं च उवणेंति ॥ ३७ ॥

छाया–ततः खलु सः अभयः कुमार श्रेणिक राजानमेवमवादीत्–मा खलु तात ! यूयं अवहत्० यावद् ध्यायत, अहं खलु तथा यतिष्ये यथा खलु मम क्षुल्लमातुश्चेलनायाः देव्यास्तस्य दोहदस्य सम्पत्तिर्भविष्यतीति कृत्वा श्रेणिकं राजानं ताभिरिष्टाभिर्यावद् वल्गुभिः समाश्वासयति, समाश्वास्य यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य आभ्यन्तरान् राहस्यिकान् स्थानीयान् पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–गच्छत खलु यूय देवानुप्रियाः! सूनात् आर्द्र मासं रुधिरं वस्तुपुटकञ्च गृह्णीत।

ततः खलु ते स्थानीयाः पुरुषा अभयेन कुमारेण एवमुक्ताः सन्तः हृष्टाः करतल० यावद् प्रतिश्रुत्य अभयस्य कुमारस्यान्तिकात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव सूना तत्रैवोपागच्छन्ति, आर्द्र मांसं रुधिरं वस्तिपुटकं च गृह्णन्ति, गृहीत्वा यत्रैव अभयः कुमारस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य करतल० तमार्द्र मांसं रुधिरं वस्तिपुटकञ्च उपनयन्ति ॥ ३७ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं से–तत्पश्चात् उस, **अभए कुमारे**–अभय कुमार ने, **सेणियं रायं**–राजा श्रेणिक को, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहा, **तुब्भे**–आप, **ओहय० जाव**–भग्न-मनोरथ होकर यावत्, **मा झियायह**–चिन्तातुर न हो, **अहं तहा जत्तिहामि**–मैं कोई ऐसा यत्न करूंगा, **जहा णं**–जिससे कि, **मम**–मेरी, **चुल्लमाउयाए चेल्लणाए**–छोटी माता चेलना देवी के, **तस्स दोहलस्स**–उस दोहद की, **संपत्ती भविस्सइ**–पूर्ति हो सकेगी, **त्ति कट्टु**–इस प्रकार कह कर, **सेणियं रायं**–राजा श्रेणिक को, **ताहिं इट्ठाहिं**– उसकी

मनभाती (जाव), **वग्गूहिं**—वचनों द्वारा, **समासासेइ**—आश्वासन प्रदान किया और, **समासासित्ता**—आश्वासन देकर, **जेणेव**—जहा पर, **सए गिहे**—अपना महल था, **तेणेव उवागच्छइ**—वही पर लौट गया। **उवागच्छित्ता**—लौट कर, **अब्भिंतरए**—आन्तरिक, **रहस्सिए**—रहस्यो को जानने वाले, **ठाणिज्जे पुरिसे**—सम्माननीय स्थान प्राप्त विश्वस्त व्यक्तियो को, **सद्दावेइ**—बुलवाता है, **सद्दावित्ता**—और बुलवा कर, **एवं वयासी**—उन्हे इस प्रकार कहा, **गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय ! आप लोग जाओ और, **सूणाओ**—किसी कसाई के घर या दुकान से, **अल्लं**—आर्द्र अर्थात् ताजा, **मंसं रुहिरं**—मांस और रुधिर, **वत्थिपुडगं च**—और रुधिर और मास से भरी थैली (कुछ विद्वानों की दृष्टि में कलेजा) **गिण्हह**—लेकर आओ, **तएणं**—तब, **ते ठाणिज्जा पुरिसा**—वे स्थानीय विशेष विश्वास-पात्र सेवक, **अभएणं कुमारेणं**—अभय कुमार के द्वारा, **एवं वुत्ता समाणा**— इस प्रकार कहे जाने पर, **करतल जाव**—यावत् हाथ जोड़कर, **हट्ठ-तुट्ठ**—प्रसन्न एवं सतुष्ट होकर, **पडिसुणेत्ता**—अभय कुमार की बातों को सुनते ही, **अभयस्स कुमारस्स अन्तियाओ**—अभय कुमार के महल से, **पडिनिक्खमंति**—बाहर निकले, **पडिनिक्खमित्ता**—बाहर निकल कर, **जेणेव सूणा**—जहां कसाई का घर था, **तेणेव उवागच्छंति**—वही पर आ पहुचे, **उवागच्छित्ता**—तथा वहां आकर उन्होंने, **अल्लं मंसं रुहिरं वत्थिपुडगं च**—ताजे अतएव गीले-गीले मांस, रुधिर और शोणित से भरी थैली ले ली, **गिण्हित्ता**—और उसे लेकर, **जेणेव अभए कुमारे**—जहां पर अभय कुमार बैठे थे, **तेणेव उवागच्छन्ति**—वहां पर वापिस लौट आए, **उवागच्छित्ता**—और लौट कर, **करयल०**—हाथ जोडकर, **तं अल्लं मंसं रुहिर वत्थिपुडगं च**—उस ताजे मास रुधिर से भरी थैली, **उवणेंति**—उसे दे देते हैं।

मूलार्थ—तत्पश्चात् अभय कुमार ने राजा श्रेणिक से इस प्रकार कहा—आप भग्न-मनोरथ होकर इस प्रकार चिन्तातुर न हों, मैं ऐसा कोई यत्न करूंगा जिससे मेरी छोटी माता चेलना देवी के उस दोहद की पूर्ति हो सके। इस प्रकार कहकर राजा को प्रिय लगने वाले वचनों द्वारा उसने आश्वस्त कर दिया।

राजा श्रेणिक को आश्वस्त करने के पश्चात् अभय कुमार अपने महल में लौट आए और लौटते ही आन्तरिक गुप्त रहस्यो के जानकार अपने सेवकों को बुलवाया और उनसे इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! तुम लोग किसी कसाई के घर पर जाओ और वहां से गीले (ताजे) मांस और रुधिर से भरी थैली लेकर आओ।

वे सेवक अभय कुमार की बातें सुनकर प्रसन्न और परितुष्ट होकर अभय कुमार के पास से बाहर निकले और निकल कर किसी कसाई के घर पर पहुंचे और वहां से मांस और रुधिर से भरी थैली लेकर जहां अभय कुमार थे वहां पहुचे और मांस एवं

रुधिर भरी थैली हाथ जोड़कर उनको सौंप दी।

टीका—उक्त वर्णन का यह आशय कदापि नही है कि उस समय राजा लोग मासाहार करते थे। शास्त्रकार तो यह दिखाना चाहते हैं कि "बुरे जीव के गर्भ में आने पर" सात्त्विक प्रकृति की महिलाओं के विचार भी दूषित हो जाते हैं, अत: चेलना देवी को इस प्रकार का दुष्ट एवं घृणित दोहद उत्पन्न हुआ।

यहां यह तथ्य भी स्मरणीय है कि स्त्रियो के दोहद की पूर्ति उस समय के समाज में एक उचित एवं महत्वपूर्ण प्रथा मानी जाती थी, अत: अभय कुमार और राजा श्रेणिक को कलेजे का मांस देने का नाटक करना पड़ा। दोहद-पूर्ति कोई धार्मिक कृत्य नहीं, केवल सामाजिक रूढ़ि मात्र है। इसीलिए महारानी चेलना आगे चलकर आत्म-ग्लानि से प्रायश्चित्त कर इस कार्य का प्रायश्चित्त करती है, गर्भ नष्ट करने के उपाय करती है और उस बालक को अनिष्टकारी समझ कर दासी द्वारा उसे कूड़े के ढेर पर फिंकवा देती है।

महारानी चेलना के दोहद मे "पति के कलेजे का मास खाने की इच्छा" बताई गई है, सामान्य से सामान्य नारी भी ऐसी कल्पना नही कर सकती। गर्भस्थ जीव की दुष्टता का केवल प्रभाव दिखाने के लिए ऐसा चित्रण किया गया है।

अभय के उपाय से चेलना की दोहद-पूर्ति

मूल—तएणं से अभए कुमारे तं अल्लं मंसं रुहिरं कप्पणीकप्पियं करेइ, करित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सेणियं रायं रहसिगयं सयणिज्जंसि उत्ताणयं निवज्जावेइ, निवज्जावित्ता सेणियस्स उदरवलीसु तं अल्लं मंसं रुहिरं विरवेइ, विरवित्ता, वत्थिपुडएणं वेढेइ, वेढित्ता सवंतीकरणेणं करेइ, करित्ता चेल्लणं देविं उप्पिंपासाए अवलोयणवरगयं ठवावेइ, ठवावित्ता चेल्लणाए देवीए अहे सपक्खं सपडिदिसिं सेणियं रायं सयणिज्जंसि उत्ताणगं निवज्जावेइ, सेणियस्स रन्नो उयरवलिमंसाइं कप्पणीकप्पियाइं करेइ, करित्ता से य भायणंसि पक्खिवइ ॥

तएणं से सेणिए राया अलियमुच्छियं करेइ, करित्ता मुहुत्तंतरेणं अन्नमन्नेणं सद्धिं संलवमाणे चिट्ठइ।

तएणं से अभयकुमारे सेणियस्स रन्नो उयरवलिमंसाइं गिण्हेइ, गिण्हित्ता जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणाए देवीए उवणेइ।

तएणं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रन्नो तेहिं उदरवलिमंसेहिं सोल्लेहिं जाव दोहलं विणेइ।

तएणं सा चेल्लणा देवी संपुण्णदोहला एवं संमाणियदोहला विच्छिन्न-दोहला तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ ॥ ३८ ॥

छाया–ततः खलु सः अभयः कुमारस्तमार्द्र मांसं रुधिरं कल्पनी-कल्पितं करोति, कृत्वा यत्रैव श्रेणिको राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य श्रेणिक राजानं रहसिगतं शयनीये उत्तानजं, निषादयति, निषाद्य श्रेणिकस्योदरवलिषु तदार्द्रं मांसं रुधिरं विरावयति, विराव्य, वस्तिपुटकेन वेष्टयति, वेष्टयित्वा स्रवन्तीकरणेन करोति, कृत्वा चेल्लनां देवीमुपरिप्रासादे अवलोकनवरगतां स्थापयति, स्थापयित्वा चेल्लनाया देव्या अधः सपक्षं सप्रतिदिक् श्रेणिकं राजानं शयनीये उत्तानकं निषादयति, श्रेणिकस्य राज्ञ उदरवलिमांसानि कल्पनीकल्पितानि करोति, कृत्वा तच्च भाजने प्रक्षिपति।

ततः खलु सा श्रेणिको राजा अलीकमूर्छा करोति, कृत्वा मुहूर्तान्तरेण अन्योऽन्येन सार्द्ध संलपन् तिष्ठति।

ततः खलु सा अभयकुमारः श्रेणिकस्य राज्ञः उदरवलिमांसानि गृह्णाति, यत्रैव चेल्लना देवी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चेल्लनाया देव्या उपनयति।

ततः खलु सा चेल्लना देवी श्रेणिकस्य राज्ञस्तैरुदरवलिमांसैः शूलैर्यावद् दोहदं विनयति।

ततः खलु सा चेल्लना देवी सम्पूर्णदोहदा एवं संमानितदोहदा विच्छिन्नदोहदा तं गर्भ-सुखंसुखेन परिवहति ॥ ३८ ॥

पदार्थान्वयः–तए णं–तत्पश्चात्, **से**–वह, **अभए कुमारे**–अभय कुमार, **तं**–उस, **अल्लं मंसं**–आर्द्र मास, **रुहिरं**–रुधिर युक्त को, **कप्पणीकप्पियं करेइ**–छुरी से काटता है अर्थात् मांस के खण्ड-खण्ड कर देता है, **करेइत्ता**–टुकडे-टुकड़े करके, **जेणेव सेणिए राया**–जहा पर राजा श्रेणिक था, **तेणेव**–वहां पर, **उवागच्छइ**–आता है, **उवागच्छित्ता**–आकर के, **सेणियं रायं**–राजा श्रेणिक को, **रहसिगयं**–गुप्त विचार कर, **सयणिज्जंसि**–शय्या पर, **उत्ताणयं**–सीधा, **निवज्जावेइ**–सुलाता है, **निवज्जावित्ता**–सुला कर, **सेणियस्स रन्नो**–श्रेणिक राजा के, **उदरवलीसु**–उदर पर, **तं**–उस, **अल्लं मंसं रुहिरं**–रुधिर युक्त आर्द्र मास को, **विरवेइ**–बांधता है, **विरवित्ता**–बांधकर, **वत्थिपुडएणं**–वस्ति-पुटक के द्वारा, **वेढेइ**–पेट को ढकता है, **वेढइत्ता**–ढक कर, **सवंतीकरणेणं**–रुधिर टपकने

जैसा (दृश्य), **करेइ**—करता है, **करित्ता**—करके, **चेल्लणं देविं**—चेलना देवी को, **उप्पिं-पासाए**—प्रासाद के ऊपर, **अवलोयणवरगयं**—अवलोकन करने योग्य स्थान पर अर्थात् महल के झरोखे में, **ठवावेइ**—बिठाता है, **ठवावित्ता**—बैठाकर, **चेल्लणं देविं**—चेलना देवी के, **अहे**—नीचे, **सपक्खं**—दाहिने बाएं और, **सपडिदिसिं**—सम्मुख दिशा पर, **सेणियं राय**—श्रेणिक राजा को, **सयणिज्जंसि**—शैय्या पर, **उत्ताणगं**—सीधा, **निवज्जावेइ**—सुला कर अर्थात् लिटा कर, **सेणियस्स रन्नो**—श्रेणिक राजा के, **उदरवलिमंसाइं**—कलेजे के मास को, **कप्पणीकप्पियाइं करेइ**—छुरी से काट-काट कर ग्रहण करता है, **करित्ता**—काट-काटकर, **से य**—उन मास खण्डो को (वह अभय कुमार), **भायणंसि**—भाजन में, **पक्खिवइ**—प्रक्षेप करता है—डालता है।

तएण—तत्पश्चात्, **से**—वह, **सेणिए राया**—श्रेणिक राजा, **अलियमुच्छियं करेइ, करित्ता**—झूठी मूर्छा करता है और करके, **मुहुत्तंतरेणं**—मुहूर्त के अन्तर से, **अन्नमन्नेणं सद्धि**—अभय कुमार के साथ परस्पर, **संलवमाणे**—वार्तालाप करता हुआ, **चिट्ठइ**—ठहरता है।

तएणं—तत्पश्चात्, **से**—वह, **अभएकुमारे**—अभय कुमार, **सेणियस्स रन्नो**—श्रेणिक राजा के, **उदरवलिमंसाइं**—उदर वली के मांस-खण्डो को, **गिण्हेइ**—ग्रहण करता है, **गिण्हित्ता**—ग्रहण करके, **जेणेव**—जहा, **चेल्लणा देवी**—चेलना देवी थी, **तेणेव**—वहा, **उवागच्छइ**—आता है, **उवागच्छित्ता**—और आकर, **चेल्लणाए देवीए उवणेइ**—चेलना देवी को दे देता है।

तएण—तत्पश्चात्, **सा**—उस, **चेल्लणा देवी**—चेलना देवी ने, **सेणियस्स रन्नो**—श्रेणिक राजा के, **तेहिं उदरवलि-मंसेहिं सोल्लेहिं**—उन कलेजे के मास-खण्डो को सलाइयो पर भून कर, **जाव दोहल विणेइ**—यावत् अपने दोहद को पूरा किया।

तएण—तत्पश्चात्, **सा**—वह, **चेल्लणा देवी**—चेलना देवी, **संपुण्णदोहला**—सम्पूर्ण दोहद वाली एव इसी प्रकार, **संमाणिय-दोहला**—सम्मानित दोहद वाली, **विच्छिन्न-दोहला**—दोहद की समाप्ति होने पर, **तं गब्भं**—उस गर्भ को, **सुहंसुहेणं परिवहइ**—सुख पूर्वक वहन करने लगी।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह अभय कुमार उस आर्द्र रुधिर युक्त मांस को छुरी से काटकर जहां महाराजा श्रेणिक था वहां आता है, राजा श्रेणिक को गुप्त बात समझा कर उसे शय्या पर सीधा लिटाता है, लिटाकर श्रेणिक राजा के उदर से उस रुधिर युक्त मांस को बांधकर बस्ति पुटक द्वारा लपेटता है, लपेटकर चेलना देवी को महल

के झरोखे में बिठाता है, बिठाकर चेलना देवी को जहा से नीचे दाए-बाए और सामने दिखाई दे वहां बिठलाया और श्रेणिक राजा को शय्या पर चित लिटाता है। फिर श्रेणिक राजा के उदरवलि मांस को छुरी से काटकर, (श्वेत चांदी के) पात्र में प्रक्षेप करता है, तब वह राजा श्रेणिक झूठी मूर्च्छा का दिखावा करता है और फिर कुछ समय के पश्चात् अभय कुमार से परस्पर वार्तालाप करने लगता है।

तत्पश्चात् वह अभय कुमार श्रेणिक राजा के उदरवलि मांस-खण्डों को ग्रहण करता है, ग्रहण करके जहां चेलना देवी थी वहां आता है, आकर वह मांस-खण्डों से भरा पात्र चेलना देवी को भेट कर देता है।

तब वह चेलना देवी राजा श्रेणिक के उदरवलि-मास खण्डों के टुकड़े करके यावत् अर्थात् उन्हें भून कर अपना दोहद पूरा करती है।

तब चेलना देवी सम्पूर्ण दोहद वाली, सम्मानित दोहद वाली व विछिन्न दोहद वाली अर्थात् दोहद की इच्छा के नष्ट हो जाने पर उस गर्भ को सुख-पूर्वक वहन करती है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे एक ओर तो अभय कुमार जैसे मंत्री की बुद्धिमत्ता का परिचय दिया गया है और बताया गया है कि दूरदर्शी मत्री ही राष्ट्र की समस्याओ को सुलझाने मे सहायक हो सकता है।

दूसरा नारी-हठ का चित्रण किया गया है, चेलना सब कुछ आंखों से देखकर भी अपने हठ पर अडिग रही है। वह मा थी, अत: अभय कुमार को मास-स्पर्श एवं मांस-काटने जैसे अकृत्य भी करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

तीसरे यह प्रदर्शित किया गया है कि दुष्ट जीव के गर्भ में आने पर माता-पिता को अनेक तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। कुछ ही दिन बाद गर्भस्थ शिशु की नीच वृत्तियों को समझ कर उस गर्भ को नष्ट करने के पाप भार को उठाने के लिए भी वह प्रस्तुत हो जाती है।

यह सब कर्मो का खेल है, कर्म-विधान ही यह सब खेल रच रहा है।

चेलना का अन्यथा चिन्तन और प्रयास

मूल—तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावर-त्तकालसमयंसि अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था, जइ ताव इमेणं दारएणं गब्भगएणं चेव पिउणो उदरवलिमंसाणि खाइयाणि तं सेयं खलु मम एयं

गब्भं साडित्तए वा गालित्तए वा विद्धंसित्तए वा, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता तं गब्भं बहूहिं गब्भपाडणेहिं य गब्भगालणेहिं य गब्भविद्धंसणेहिं य इच्छइ साडित्तए वा पाडित्तए वा विद्धंसित्तए वा, नो चेव णं से गब्भे सडइ वा पडइ वा गलइ वा विद्धंसइ वा ॥ ३९ ॥

छाया—ततः खलु तस्याश्चेल्लनाया देव्या अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्र-कालसमये अयमेतद्रूपो यावत् समुदपद्यत—यदि तावत् अनेन दारकेण गर्भगतेन चैव पितुरुदरवलिमांसानि खादितानि तत् श्रेयः खलु मम एनं गर्भं शातयितुं वा पातयितुं वा गालयितुं वा विध्वंसयितुं वा, एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य तं गर्भं बहुभिर्गर्भशातनैश्च गर्भपातनैश्च गर्भगालनैश्च गर्भविध्वंसनैश्च इच्छति शातयितुं वा पातयितुं वा गालयितुं वा विध्वंसयितुं वा, नो चैव खलु स गर्भः शीर्यते वा पतति वा गलति वा विध्वंसते वा ॥ ३९ ॥

पदार्थान्वय.—**तए णं**—तत्पश्चात्, **तीसे चेल्लणाए देवीए**—उस चेल्लणा देवी को, **अन्नया कयाइ**—कभी फिर, **पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि**—मध्य रात्रि के समय, **अयमेयारूवे**—इस प्रकार के विचार, **जाव**—यावत्, **समुप्पज्जित्था**—उत्पन्न हुआ, **जइ**—यदि, **ताव इमेणं दारएण**—इस बालक ने, **गब्भगएणं चेव**—गर्भ मे रहते हुए ही, **पिउणो**—पिता के, **उयरवलि-मंसाणि खाइयाणि**—उदरवलि अर्थात् कलेजे का मास खाया है, **तं सेय खलु**—इसलिए निश्चय से यही उचित है कि, **मए**—मेरे द्वारा, **एय गब्भ**—इस गर्भ को, **साडित्तए वा**—पेट से बाहर कर दिया जाए अर्थात् नष्ट कर दिया जाए, **गालित्तए वा**—इसे गला दिया जाए, **विद्धंसित्तए वा**—विध्वस्त कर दिया जाए, **एव संपेहेइ**—इस प्रकार विचार करती है, **संपेहित्ता**—ऐसा विचार करके, **त गब्भं**—उस गर्भ को, **बहूहिं**—बहुत से, **गब्भ साडणेहिं**—गर्भ को नष्ट करने वाली औषधियो द्वारा, **गब्भ-पाडणेहिं**—गर्भपात करने वाली, **गब्भ-गालणेहिं**—गर्भ को गला देने वाली, **गब्भविद्धंसणेहि**—गर्भ को विध्वस्त करने वाली औषधि यो द्वारा, **य**—और, **इच्छइ**—इच्छा करने लगी, **साडित्तए वा**—गर्भ को सड़ाने के लिए, **पाडित्तए वा**—गर्भपात करने के लिए, **गालित्तए वा**—गर्भ को गला देने के लिए, **विद्धंसित्तए वा**—विध्वस्त कर देने के लिए, **नो चेव से गब्भं**—किन्तु वह सफल नहीं हो पाई उस गर्भ को, **सडइ वा**—सड़ा देने में, **पडइ वा**—पतन करने मे, **गलइ वा**—गला देने मे, **विद्धंसइ वा**—विध्वस्त कर देने में।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस चेलना देवी को अर्ध रात्रि के समय इस प्रकार के विचार उत्पन्न हुए कि यदि जन्म लेने से पूर्व ही इस गर्भस्थ बालक ने अपने पिता के कलेजे के मास को खाया है, इसलिए यही उचित है कि इस गर्भ को किसी भी तरह उदर से बाहर निकाल दिया जाए, गर्भ-पात किया जाए, इसे गला दिया जाए या विध्वस्त

कर दिया जाए। किन्तु इस प्रकार विचार करके वह उस गर्भ को सड़ा देने वाली, गिरा देने वाली गला देने वाली गर्भ को विध्वस्त कर देने वाली औषधियों के द्वारा सड़ाने, गिराने, गलाने और विध्वस्त करने मे सफल न हो सकी।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे "**इमेणं दारएणं गब्भगएणं चेव पिउणो उदरवलिमंसाणि खाइयाणि**"—अर्थात् इस गर्भगत शिशु ने पिता के कलेजे का मास खाया है"—इन शब्दो से स्पष्ट ध्वनित होता है कि महारानी चेलना देवी तो मास खाने का निमित्त मात्र थी, मांस तो गर्भस्थ नीच जीव ने खाया है। . ...**दारए कुलस्स अन्तकरे भविस्सइ**"— उसे निश्चय हो गया कि यह बालक कुल का घातक होगा, अतः इसे गर्भ में ही समाप्त कर देना चाहिए। महारानी चेलना देवी यह गर्भपात रूप दूसरा पाप करने को भी समुद्यत हो गई, यह भी गर्भस्थ शिशु की हिसक वृत्ति का ही प्रभाव था।

सूत्र में "**शातन**" शब्द का अर्थ है औषधि आदि द्वारा बाहर निकालना, इसका अर्थ छीलना भी होता है, किन्तु वह अर्थ यहां अभीष्ट नही है।

महारानी चेलना गर्भ-पात में असफल रही, इससे सिद्ध होता है कि जीव के आयुष्य कर्म को कोई समाप्त नही कर सकता।

चेलना की प्रयास-विफलता और पुत्र-जन्म

मूल—तए णं सा चेल्लणा देवी तं गब्भं जाहे नो संचाएइ बहूहिं गब्भसाडणेहिं य जाव गब्भविद्धंसणेहिं य साडित्तए वा जाव विद्धंसित्तए वा, ताहे संता तंता परितंता निव्विन्ना समाणा अकामिया अवसवसा अट्ट-वसट्टदुहट्टा तं गब्भं परिवहइ।

तए णं सा चेल्लणा देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव सोमालं सुरूवं दारयं पयाया ॥ ४० ॥

छाया—ततः खलु सा चेल्लना देवी तं गर्भ यदा नो शक्नोति बहुभिर्गर्भशातनैश्च यावद् गर्भविध्वंसनैश्च शातयितुं वा यावद् विध्वंसयितुं वा तदा शान्ता तान्ता परितान्ता निर्विण्णा सती अकामिका अपस्ववशा आर्तवशार्त-दुःखार्ता तं गर्भं परिवहति।

ततः खलु सा चेल्लना देवी नवसु मासेसु बहुप्रतिपूर्णेषु यावत् सुकुमारं सुरूपं दारकं प्रजाता ॥ ४० ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, **सा चेल्लणा देवी**—वह महारानी चेलना, **तं गब्भं**—उस (अपने) गर्भ को, **जाहे नो संचाएइ**—जब वह (गिराने मे) समर्थ न हुई—गिरा न सकी,

बहूहिं गब्भसाडणेहिं—गर्भ-नाशक अनेक औषधियों द्वारा, **य**—एवं, **जाव०**—यावत्, **गब्भ-विद्धंसणेहिं**—गर्भ के शातन विध्वंसन आदि मे, **ताहे संता तंता परितंता**—वह ग्लानि पूर्वक खेद-खिन्न होती हुई, **निव्विन्ना समाणा**—अतिशय दुखित हो गई, **(तो) अकामिया**—अनिच्छा से, **अवसवसा**—विवशता के कारण, **अट्टवसट्टदुहट्टा**— आर्तध्यान के वशीभूत होकर, **तं गब्भं**—उस गर्भ को, **परिवहइ**—वहन करने लगी, अर्थात् धारण किए रही, **तएणं**—तत्पश्चात्, **सा चेल्लणा देवी**—वह महारानी चेलणा, **नवण्हं मासाण**—नौ महीनो का लम्बा समय व्यतीत होने पर, **जाव**—यावत्, **सोमालं सुरूवं**—(उसने एक) सुकुमार एव सुरूप—सुंदर रूप वाले, **दारयं**—पुत्र को, **पयाया**—जन्म दिया।

मूलार्थ—तदनन्तर महारानी चेलना देवी जब अपने उस गर्भ को अनेक विध गर्भ-नाशक औषधियों द्वारा उदर से बाहर लाने उसे नष्ट एवं ध्वस्त करने में विफल रही तो वह ग्लानिपूर्वक खेद-खिन्न होती हुई अतिशय दुखी हो गई, तब वह अनिच्छापूर्वक विवशता के कारण आर्तध्यान के वशीभूत होकर उस गर्भ को वहन करने लगी, अर्थात् विवशता से धारण किए रही। तत्पश्चात् चेलना देवी ने नौ मासों का लम्बा समय पूर्ण होने पर एक सुकुमार एव सुरूप—सुन्दर बालक को जन्म दिया।

टीका—इस सूत्र द्वारा यह ध्वनित होता है कि गर्भस्थ जीव के दुष्ट होने के कारण महारानी चेलना देवी समय से पूर्व ही उस गर्भ को नष्ट कर देना चाहती थी, अत: यह स्पष्ट हो रहा है कि वह मासाहार नही करती थी, केवल गर्भस्थ दुष्ट जीव के प्रभाव से वह मासाहार मे प्रवृत्त हुई।

गर्भ-पात भी एक महापाप है, उसके गर्भ मे क्रूर कर्मी जीव होने से उसने यह कुकृत्य भी किया, किन्तु गर्भस्थ जीव के आयुष्य-कर्म की प्रबलता ने उस पर किसी भी औषधि का प्रभाव नहीं पड़ने दिया, क्योकि आयुष्य कर्म को कोई मिटा नही सकता।

वह ऐसे दुष्ट बालक की माता नही बनना चाहती थी, किन्तु गर्भपात के सभी उपायो में विफल होने पर उसे दु:खी होकर अनिच्छा-पूर्वक उस गर्भ को धारण किए रहना पड़ा और उसने यथासमय एक बालक को जन्म दिया।

चेलना का दासी को नवजात शिशु को उकुरड़ी पर फैंकने का आदेश

मूल—तएणं तीसे चेल्लणाए देवीए इमे एयारूवे जाव समुप्पज्जित्था-जइ ताव इमेणं दारएणं गब्भगएणं चेव पिउणो उदरवलिमंसाइं खाइयाइं, तं न नज्जइ णं एस दारए संवड्ढमाणे अम्हं कुलस्स अंतकरे भविस्सइ, तं सेयं

खलु अम्हं एयं दारगं उक्कुरुडियाए उज्झावित्तए एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिए ! एयं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झाहि ॥ ४१ ॥

छाया–ततः खलु तस्याश्चेल्लनाया देव्या अयमेतद्रूपो यावत् समुद्पद्यत–यदि तावत् अनेन दारकेण गर्भगतेन चैव पितुरुदरवलिमासानि खादितानि तन्न ज्ञायते खलु एष दारकः संवर्द्धमानः अस्माकं कुलस्यान्तकरो भविष्यति, तच्छ्रेयः खलु अस्माकम् एनं दारकमेकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्झितुम्, एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य दासचेटीं शब्दयित्वा एवमवादीत्–गच्छ खलु त्वं देवानुप्रिये ! एनं दारकमेकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्झ ॥ ४१ ॥

पदार्थान्वयः–तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए–तत्पश्चात् उस चेलना देवी के, **इमे एयारूवे**–इस प्रकार का विचार, **जाव०**–यावत्, **समुप्पज्जित्था**–उत्पन्न हुआ, **जइ ताव०**–क्योंकि, **इमेणं दारएणं**–इस बालक ने, **गब्भगएणं चेव**–गर्भ में रहते हुए निश्चय ही, **पिउणो**–पिता के, **उदरवलिमंसाइं**–उदरवली अर्थात् कलेजे के मास को, **खाइयाइं**–खाया है, **तं न नज्जइ णं**–क्या इससे यह आभास नहीं हो रहा कि, **एस दारए संवड्ढमाणे**–यह बालक बड़ा होने पर, **अम्ह कुलस्स**–हमारे कुल का, **अंतकरे भविस्सइ**– अन्त करने वाला होगा, **त सेय खलु**–अतः इसी मे (हमारा) श्रेय है, **अम्हं एयं दारगं**–कि हम इस बालक को, **एगन्ते**–किसी एकान्त स्थान में, **उक्कुरुडियाए**–कूड़े-करकट के ढेर पर, **उज्झावित्तए**–फैक दे, **एवं संपेहेइ**–(वह) इस प्रकार विचार करने लगी, **सपेहित्ता**–(और) विचार करके, **दासचेडिं**–अपनी चाकर दासी को, **सद्दावेइ**–बुलाती है, **सद्दावित्ता एवं वयासी**–और बुलाकर उसे कहती है, **गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिए**–हे देवानुप्रिये तुम जाओ और, **एयं दारगं**–इस बालक को, **एगंते**–एकान्त स्थान मे (ले जाकर), **उक्कुरुडियाए**–कूड़े-कचरे के ढेर पर, **उज्झाहि**–फैक दो।

मूलार्थ–तत्पश्चात् उस चेलना देवी के (मन मे) इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ, क्योकि गर्भ में रहते हुए ही इस बालक ने निश्चय ही अपने पिता के कलेजे के मांस को खाया है, क्या इससे यह आभास नहीं हो रहा कि यह बालक बड़ा होने पर हमारे कुल का अन्त करने वाला अर्थात् कुलघाती होगा, अतः हमारा इसी में श्रेय है कि हम इस बालक को किसी एकान्त स्थान में कूड़े-करकट के ढेर पर फैंक दें। वह इस प्रकार का विचार करने लगी और (खूब) विचार कर वह अपनी चाकर दासी को बुलाती है और बुलाकर उसे कहती है–"हे देवानुप्रिये ! तुम जाओ और इस

बालक को किसी एकान्त स्थान में (ले जाकर), किसी कूड़े-कचरे के ढ़ेर पर फैंक दो।

टीका—इस सूत्र मे "पूत के पैर पालने से ही पहचान लिए जाते हैं," इस उक्ति के आशय को स्पष्ट करते हुए सूत्रकार ने यह बताया है कि चेलना देवी को गर्भगत बालक के दुष्ट स्वभाव का पूर्ण रूप से पूर्वाभास हो गया था।

मासाहार की प्रवृत्ति ही बुरी होती है, इस बालक ने तो पिता के कलेजे का मांस खाने की इच्छा की जिसके परिणामस्वरूप मुझे इस प्रकार का निकृष्ट दोहद उत्पन्न हुआ, अत: यह बालक निश्चय ही कुलघाती होगा, अत: इसे अभी से कूड़े-करकट के ढेर पर फिकवा दूं इसी में हमारे कुल का श्रेय है।

क्योकि राजा के कलेजे का मास न होते हुए भी उसने पति के कलेजे का मास समझ कर ही खाया था अत: उसमे बालघात की महापापमयी प्रवृत्ति उदित हो गई, अत: मांस-भक्षण साधारण पाप ही नहीं वह तो अनेक प्रकार की पापमयी प्रवृत्तियो को भी जन्म देता है।

कूडे-करकट के ढेर के लिए "**उक्कुरुडिया**" शब्द तत्कालीन लोकभाषा का (देशी प्राकृत) का शब्द है।

नवजात शिशु को उकुरड़ी पर फैंकवाया

मूल—तए णं सा दासचेडी चेल्लणाए देवीए एवं वुत्ता समाणी करयल० जाव कट्टु चेल्लणाए देवीए एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तं दारगं करतलपुडेणं गिण्हइ गिण्हित्ता, जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झइ।

तए णं तेणं दारएणं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झितेणं समाणेणं सा असोगवणिया उज्जोविया यावि होत्था ॥ ४२ ॥

छाया—ततः खलु सा दासचेटी चेल्लनया देव्या एवमुक्ता सती करतल० यावत् कृत्वा चेल्लनाया देव्या एनमर्थं विनयेन प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य तं दारकं करतलपुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैवाशोकवनिका तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तं दारकमेकान्ते उक्कुरुटिकायामुज्झति।

ततः खलु तेन दारकेण एकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्झितेन सता साऽशोकवनिका उद्योतिता चाप्यभवत् ॥ ४२ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **सा दासचेडी**—वह चाकर दासी, **चेल्लणाए देवीए**—महारानी चेलना के द्वारा, **एवं वुत्ता समाणी**—ऐसा आदेश देने पर, **करयल जाव० कट्टु**—दोनो हाथ जोडकर, **चेल्लणाए देवीए**—महारानी चेलना के, **एयमट्ठं**—इस अर्थ अभिप्राय या आदेश को, **विणएणं**—विनय-पूर्वक, **पडिसुणेइ**—सुनती है, **पडिसुणित्ता**— और सुनकर, **त दारगं**—उस नवजात शिशु को, **करतलपुडेणं**—दोनों हाथों के सपुट मे ग्रहण करती है और, **गिण्हित्ता**—ग्रहण करके, **जेणेव असोगवणिया**—जहा पर अशोक वाटिका थी, **तेणेव**—वहां पर, **उवागच्छइ**—आ जाती है (और), **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **तं दारगं**—उस शिशु को, **एगन्ते**—सर्वथा एकान्त अर्थात् जन-शून्य स्थान देखकर, **उक्कुरुडियाए**— कूड़े-करकट के ढेर पर, **उज्झइ**—फैक देती है। **तएणं**—तदनन्तर, **तेणं दारएणं**—उस शिशु को, **एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झितेणं**—निर्जन स्थान में कूडे-कचरे के ढेर पर फैके जाने पर, **सा असोगवणिया**—वह अशोक वाटिका, **उज्जोविया**—प्रकाशमयी, **यावि-होत्था**—हो गई।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह चाकर दासी महारानी चेलना देवी के द्वारा दिए गए आदेश को दोनो हाथ जोडकर उसके अभिप्राय एव आदेश को सुनती है और सुनकर दोनो हाथों के सम्पुट में उस शिशु को ग्रहण करती है, फिर उस शिशु को ग्रहण करके जहां (राजा की) अशोक वाटिका थी वहां आती है। वहां आकर उस नवजात शिशु को एकान्त अर्थात् सर्वथा जनशून्य स्थान देखकर कूड़े-करकट के ढेर पर फैक देती है।

उस बालक को एकान्त में कूड़े-करकट के ढेर पर फैंकते ही वह अशोक वाटिका प्रकाशमयी हो गई—अर्थात् वहां प्रकाश ही प्रकाश छा गया।

टीका—उपर्युक्त वर्णन से यह ध्वनित होता है कि महारानी चेलना द्वारा गर्भ-पात के सभी प्रयास केवल अपने कुल की रक्षा के लिए ही किए गए, क्योकि अपने कुल की रक्षा प्रत्येक नारी का सांस्कृतिक कर्तव्य है।

चेलना मांसाहार नही करती थी, अत: उसके हृदय मे दया थी, मांसाहारी प्राय: निर्दयी होते है। यदि वह निर्दयी होती तो बालक को फैंकने का आदेश न देकर स्वयं ही उसे मार सकती थी, अथवा चुपके-चुपके मरवा सकती थी, सम्भवत: मातृवात्सल्य के कारण उसने सोचा होगा कि हो सकता है कि फैके हुए बालक को कोई निस्सन्तान दम्पत्ति ले जाएं और उसका पालन-पोषण करने लगें।

''दासचेडी'' उस दासी को कहा जाता था जो रानियों की अत्यन्त विश्वस्त और उसके निजी कार्यो को करने वाली होती थी। अन्यथा ''दासी'' शब्द से ही काम चल सकता था।

बालक आखिर राजकुमार था और भावी राजा था, अतः उसे कूड़े-कचरे के ढेर पर फैके जाने पर भी वहां प्रकाश फैल गया, क्योंकि ऐसा प्रकाश भी एक राज-लक्षण है।

श्रेणिक द्वारा शिशु को उकुरड़ी से उठाकर चेलना को सोंपना

मूल—तएणं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झियं पासेइ, पासित्ता आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे तं दारगं करतलपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणं देविं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ, आओसित्ता उच्चावयाहिं निब्भच्छणाहिं निब्भच्छेइ, निब्भच्छित्ता एवं उद्धंसणाहिं उद्धंसेइ, उद्धंसित्ता एवं वयासी—किस्स णं तुमं मम पुत्तं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झावेसि ? त्तिकट्टु चेल्लणं देविं उच्चावयसवहसावियं करेइ, करित्ता एवं वयासी—तुमं णं देवाणुप्पिए ! एयं दारगं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढेहि।

तएणं सा चेल्लणा देवी सेणिएणं रन्ना एवं वुत्ता समाणी लज्जिया विलिया विड्डा करयलपरिग्गहियं० सेणियस्स रन्नो विणएणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तं दारयं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढइ ॥ ४३ ॥

छाया—ततः खलु सः श्रेणिको राजा अस्या कथाया लब्धार्थः सन् यत्रैवाशोकवनिका तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तं दारकमेकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्झितं पश्यति, दृष्ट्वा आशुरक्त· यावत् मिसिमिसीकुर्वन् तं दारकं करतलपुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव चेल्लना देवी तत्रैवोपागच्छति, चेल्लनां देवीमुच्चावचाभिराक्रोशनाभिराक्रोशति, आक्रुश्य उच्चावचाभिर्निर्भर्त्सनाभिर्निर्भर्त्सयति, निर्भर्त्स्य, एवमुद्धर्षणाभिरुद्धर्षयति, उद्धर्ष्य एवमवादीत्—किमर्थं खलु त्वं मम पुत्रमेकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्झयसि ? इति कृत्वा चेल्लनां देवीमुच्चावचशपथशापितां करोति, कृत्वा एवमवादीत्—त्वं खलु देवानुप्रिये ! एनं दारकमनुपूर्वेण संरक्षन्ती संगोपयन्ती संवर्द्धय।

ततः खलु सा चेल्लना देवी श्रेणिकेन राज्ञा एवमुक्ता सती लज्जिता व्रीडिता

विड्डा करतलपरिगृहीतं० श्रेणिकस्य राज्ञो विनयेन एतमर्थं प्रतिश्रृणोति, प्रतिश्रुत्य तं दारकमनुपूर्वेण संगोपयन्ती संवर्धयति ॥ ४३ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सेणिए राया—तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने (जब), **इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे**—इस कथा (समाचार) को सुना और जाना तो वह, **जेणेव असोग-वणिया**—जहा पर अशोक वाटिका थी, **तेणेव**—वहीं पर, **उवागच्छइ**—(स्वयं ही) आता है, **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर, **तं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झियं**—उसने उस निर्जन स्थान में एक कूड़े-कचरे के ढेर पर फैंके गए उस बालक को, **पासेइ**—देखा, **पासित्ता**—देखकर, **आसुरुत्ते**—शीघ्र ही आंखें लाल करके अर्थात् क्रोध-पूर्वक, **जाव०**—यावत्, **मिसिमिसेमाणे**—क्रोधाग्नि से जलते हुए, **तं दारगं**—कुरडी पर पड़े हुए उस बालक को, **करतलपुडेणं**—दोनो हाथों से, **गिण्हइ**—ग्रहण करता है—उठा लेता है, **गिण्हित्ता**—(और) उठाकर, **जेणेव चेल्लणा देवी**—ज़हां पर महारानी चेलना देवी थी, **तेणेव**—वहीं पर, **उवागच्छइ**—आ जाता है, **उवागच्छित्ता**—और आकर, **चेल्लणं देविं**—चेलना देवी को, **उच्चावयाहिं**—ऊचे शब्दो में, **आओसणाहिं**—आक्रोश भरे शब्दो द्वारा, **आओसइ**— डांटता है, **आओसित्ता**—और डांट कर, **उच्चावयाहिं**—ऊच नीच शब्दों, **निब्भच्छणाहिं**—और भर्त्सनाओं द्वारा, **निब्भच्छेइ**—उसकी भर्त्सना करता है, **निब्भच्छित्ता**—और भर्त्सना करके, **एवं**—इस प्रकार, **उद्धंसणाहिं**—फटकार द्वारा, **उद्धंसेइ**—फटकारता है, **उद्धंसित्ता**—और फटकार कर, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहा, **किस्स णं तुमं**—किसलिए तुमने, **मम पुत्तं**—मेरे पुत्र को, **एगन्ते**—शून्य स्थान में, **उक्कुरुडियाए**—कूड़े-कचरे के ढेर पर, **उज्झावेसि**—तुमने फिंकवाया है, **त्तिकट्टु**—ऐसा कह कर, **चेल्लणं देविं**—चेलना देवी को, **उच्चावयसवहसावियं करेइ**—ऊच नीच शब्द कहकर शपथ (सौगन्ध) दिलवाता है, **करित्ता**—और सौगन्ध दिलवा कर, **एव वयासी**—उसको इस प्रकार कहा, **तुम णं देवाणुप्पिए**—हे देवानुप्रिये तुम्हीं, **एयं दारगं**—इस नवजात बालक की, **अणुपुव्वेणं**—यथाक्रम अर्थात् इसकी अवस्था के अनुसार क्रम से, **सारक्खेमाणी**—रक्षा करते हुए, **संगोवेमाणी**—पालन-पोषण करते हुए, **संवड्ढेहि**—इसका सवर्धन करो, अर्थात् इसे बड़ा करो।

तए णं सा चेल्लणा देवी—तब वह रानी चेलना देवी, **सेणिएणं रन्ना**—राजा श्रेणिक द्वारा, **एवं वुत्ता समाणी**—इस प्रकार कहे जाने पर, **लज्जिया**—(मन ही मन बहुत) लज्जित हुई, **विलिया**—(बाहरी रूप से भी) लज्जित हुई और, **विड्डा**—(इस प्रकार दोनो रूपो मे विशेष) लज्जित होती हुई, **करयलपरिग्गहियं**—दोनों हाथ जोडकर, **सेणियस्स रन्नो**—राजा श्रेणिक के, **विणएण**—विनीत भाव से, **एयमट्ठं पडिसुणेइ**—उस आदेश को सुनती है, **पडिसुणित्ता**—और सुन कर, **तं दारयं**—उस बालक का, **अणुपुव्वेणं**—क्रमशः उसकी

अवस्था के अनुरूप, **सारक्खमाणी**—सरक्षण एव, **संगोवेमाणी**—उसका पालन-पोषण करती हुई, **संवड्ढइ**—उसका सवर्धन करने लगी।

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने जब उस बालक सम्बन्धी वार्ता को सुना और जाना तो वह जहां पर अशोक-वाटिका थी वही पर गया और वहां जाकर उसने उस निर्जन स्थान में कूड़े-करकट के ढ़ेर पर फैके गए बालक को देखा और देखते ही आंखें लाल करके अर्थात् क्रोध मे आकर उस क्रोधाग्नि से जलते हुए, कुरड़ी पर पडे उस बालक को दोनों हाथों से उठा लिया और उठाकर वह जिस राजमहल में चेलना देवी निवास करती थी वही पर आ गया और आते ही उसने चेलना देवी को ऊंच-नीच शब्दों द्वारा क्रोधान्वित शब्दों से डांटा, फटकारा और उसकी भर्त्सना की, उसको तिरस्कृत सा किया और फिर उसने कहा—"देवानुप्रिये ! तुमने मेरे पुत्र को किसलिए कुरड़ी पर फिंकवाया," ऐसा कह कर पुन: ऊंच-नीच शब्दों द्वारा उसे सौगन्धे दिलवाते हुए कहा—"देवानुप्रिये ! तुम्हीं इस बालक का आयु के अनुरूप प्रत्येक अवस्था में इसकी रक्षा करते हुए और इसका पालन-पोषण करते हुए इसका सवर्धन करो।"

राजा श्रेणिक के द्वारा ऐसे ऊंचे-नीचे शब्द कहे जाने पर चेलना रानी मन ही मन बहुत लज्जित हुई और बाहर से भी वह लज्जित होती हुई प्रतीत हो रही थी (शायद नौकर चाकरो की उपस्थिति के कारण) इस प्रकार दोनों रूपों में लज्जित होती हुई वह हाथ जोड़कर विनयपूर्वक राजा श्रेणिक के आदेश को सुनने लगी और सुनकर उस बालक का उसकी अवस्था के अनुरूप सरक्षण करती हुई उसका पालन-पोषण करके उसका सवर्धन करने लगी।

टीका—इस सूत्र के वर्णन द्वारा ध्वनित होता है कि राजा श्रेणिक अपने अनुचरों द्वारा सब तरह की सूचनाए तुरन्त प्राप्त करता रहता था।

"अपना खून छिपता नही" इस उक्ति के अनुरूप कुरडी पर पडे बालक को देखते ही उसे विश्वास हो गया कि यह उसी का पुत्र है और उसे यह समझते देर न लगी कि यह कृत्य चेलना ने ही किया है, अत: वह बालक को लेकर सीधा चेलना देवी के महल में ही पहुंचा।

क्रोधावेश में मनुष्य ऊंच-नीच जो भी मुह मे आता है वही कह देता है। यद्यपि महारानी चेलना उसकी प्रिय रानी थी, उसके दोहद की पूर्ति के लिए उसने क्या कुछ नही किया था, किन्तु बालक के त्याग रूप अपराध पर उसे क्रोध आ ही गया और उसने उसे काफी फटकारा। मां होकर भी उसने सन्तान को कूडे के ढेर पर फिंकवा दिया,

इसलिए वह अत्यन्त ही लज्जित हुई और राजा ने शायद नौकर-चाकरों की उपस्थिति में उसे फटकारा होगा, इसलिए वह बाहरी रूप से भी लज्जित हुई।

नौकर-चाकर जब यह जानेंगे कि जिस बालक को इसने फिंकवाया था अब राजा के आदेश से उसी का पालन-पोषण कर रही है उस समय उसे और भी लज्जा का अनुभव होता रहा होगा जिसे शास्त्रकार ने "विड्डा" शब्द द्वारा ध्वनित किया है।

"विड्डा" शब्द का संस्कृत रूपान्तर "व्यालीका"-भी हो सकता है जिसका अर्थ होता है कि "माता के कर्तव्य के विपरीत आचरण करने के कारण वह लज्जित हो रही थी।"

राजा की "मुंहलगी" पत्नी होने पर भी उसने राजा के द्वारा दी गई डांट-फटकार को चुपचाप सहन कर लिया, इसके द्वारा उसने "पत्नी के कर्तव्य" पर अच्छा प्रकाश डाला है और उसने शीघ्रता मे पुत्र को फिंकवाने का जो निर्णय लिया था उसके कारण लज्जित होते हुए भी उसने पति द्वारा सौगन्ध देने पर बालक का यथोचित पालन-पोषण किया। इससे यह शिक्षा मिलती है कि झूठी सौगन्ध कभी नहीं खानी चाहिए।

श्रेणिक का पुत्र-वात्सल्य

मूल-तए णं तस्स दारगस्स एगंते उक्कुरुडियाए उज्झिज्जमाणस्स अग्गंगुलिया कुक्कुडपिच्छएणं दूमिया यावि होत्था, अभिक्खणं अभिक्खणं पूयं च सोणियं च अभिनिस्सवइ।

तए णं से दारए वेयणाभिभूए समाणे महया महया सद्देणं आरसइ। तए णं सेणिए राया तस्स दारगस्स आरसितसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव से दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं करतलपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता तं अग्गंगुलियं आसयंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता पूयं च सोणियं च आसएणं आमुसइ।

तए णं से दारए निव्वुए निव्वेयणे तुसिणीए संचिट्ठइ। जाहे वि य णं से दारए वेयणाए अभिभूए समाणे महया महया सद्देणं आरसइ ताहे वि य णं सेणिए राया जेणेव से दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं करतलपुडेणं गिण्हइ, तं चेव जाव निव्वेयणे तुसिणीए संचिट्ठइ ॥ ४४ ॥

छाया-तत. खलु तस्य दारकस्य एकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्झयमानस्याऽग्राङ्गुलिका कुक्कुटपिच्छकेन दूना चाऽप्यभूत्, अभीक्ष्णमभीक्ष्णं पूयं च शोणितं चाभिनिस्त्रवति।

ततः खलु स दारको वेदनाभिभूतः सन् महता महता शब्देन आरसति। ततः खलु श्रेणिको राजा तस्य दारकस्याऽऽरसितशब्दं श्रुत्वा निशम्य यत्रैव स दारकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य त दारकं करतलपुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा ताम-ग्रांगुलिकामास्ये प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य पूयं च शोणितं चास्येन आमृशति। ततः खलु सा दारको निवृत्तोनिर्वेदनस्तूष्णीकः संतिष्ठते। यदापि च खलु स दारको वेदनयाऽभिभूतः सन् महता-महता शब्देन आरसति तदाऽपि च खलु श्रेणिको राजा यत्रैव स दारकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तं दारकं करतलपुटेन गृह्णाति, तदेव यावत् निर्वेदनस्तूष्णीकः संतिष्ठते ॥ ४४ ॥

पदार्थान्वयः—तएण—तदनन्तर, **तस्स दारगस्स**—उस बालक को, **एगंते**—निर्जन स्थान में, **उक्कुरुडियाए**—कूडे कचरे के ढेर पर, **उज्झिज्जमाणस्स**—फैके हुए की, **अग्ग-गुलिया**—अंगुली का अग्रभाग, **कुक्कुडपिच्छएणं**—मुर्गे की चोंच से, **दूमिया यावि होत्था**—घायल कर दिया गया था, **अभिक्खणं-अभिक्खणं**—(और उससे) बार-बार, **पूयं च सोणियं च**—पीप और खून, **अभिनिस्सवइ**—टपकते रहते थे, **तएणं**—तब, **से दारगे**—वह बालक, **वेयणाभिभूए समाणे**—तीखी पीडा से पीड़ित होकर, **महया-महया**— ऊची-ऊची, **सद्देणं**—आवाज से (चीखते हुए), **आरसति**—रोने लगता था, **तएणं**—तब, **सेणिए राया**—राजा श्रेणिक, **तस्स दारगस्स**—उस बालक के, **आरसितसद्दं**—आर्तनाद को, **सोच्चा**—सुनकर, **निसम्म**—कुछ सोच कर, **जेणेव से दारए**—जहां पर वह बालक होता, **तेणेव उवागच्छइ**—वहीं आ जाता, **उवागच्छित्ता**—और आकर, **तं दारगं**—उस बालक को, **करतलपुडेणं**—अपने हाथो से (हथेलियों से), **गिण्हइ**—उठा लेता था, **गिण्हित्ता**—और उठाकर, **त अग्गंगुलियं**—अगुलि के उस घाव वाले भाग को, **आसयंसि**—मुख मे, **पक्खिवेइ**—डाल लेता है, **पक्खि-वित्ता**—और मुख में डालकर, **पूयं च सोणिय च**—पीप और खून को, **आसएणं**—मुंह से, **आमुसइ**—चूस लेता है (और उसे थूक देता है), **तएणं**—तब, **से दारए**—वह बालक, **निव्वुए**—शान्त, **निव्वेयणे**—पीडा से मुक्त होकर, **तुसिणीए सचिट्ठइ**—चुप हो जाता था, **जाहे वि य णं दारए**—जब भी वह बालक, **वेयणाए अभिभूए समाणे**—पीडा से पीडित होकर, **महया-महया-सद्देणं**—ऊची-ऊची आवाज से, **आरसइ**—रोता है, **ताहे वि य णं सेणिए**—तब-तब वह राजा श्रेणिक, **जेणेव से दारए**—जहा पर भी वह बालक होता, **तेणेव उवागच्छइ**—वहीं पर आ जाता, **उवागच्छित्ता**—और वहा आकर, **तं दारगं**—उस बालक को, **करतलपुडेणं**—अपने हाथों से, **गिण्हइ**—उठा लेता, **तं चेव जाव निव्वेयणे**—और वह जब तक पीड़ा रहित होकर, **तुसिणीए संचिट्ठइ**—मौन न हो जाता (तब तक वह वहीं) ठहरता।

मूलार्थ—निर्जन स्थान में कूड़े-कचरे के ढ़ेर पर फैंके जाने के कारण बच्चे की

अंगुली का अग्रभाग किसी मुर्गे की चोंच से छिल गया था, उसकी अंगुली के घाव से बार-बार खून और पीव बहती रहती थी, इस कारण से वह बालक पीड़ा के कारण बार-बार चीख-चीख कर रोता था। उस बालक के रुदन को सुनकर और समझकर राजा श्रेणिक बालक के पास आता और उसे अपने हाथों में उठा लेता और उठाकर उसकी घायल अंगुली को मुख में डालकर उससे बहती पीव और खून को चूस कर थूक देता। ऐसा करने पर बालक शान्त एवं पीड़ा से मुक्त हो जाता। इस तरह वह बालक जब भी वेदना के कारण चीखता और रोता तो राजा श्रेणिक उसके पास पहुंच जाता और उसे हाथों में उठाकर उसकी अंगुली को मुंह में डाल लेता और उससे पीव और खून को चूसता (और थूक देता), इस प्रकार वह बालक पीड़ा-मुक्त, शान्त और चुप हो जाता।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा श्रेणिक के वात्सल्य का चित्रण करते हुए उसके द्वारा सन्तान की पीडा को दूर करने के लिए और पीव तक को चूसने और उसके थूक देने का वर्णन करते हुए सांसारिक जनो के मोह की अतिशयता का वर्णन किया गया है।

पीव और खून को चूसने जैसे घृणित कार्य के द्वारा संकेत किया गया है कि माता-पिता को मोह के नाते ही नहीं, बल्कि कर्तव्य के नाते भी सन्तान के प्रत्येक कष्ट को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

शिशु का नामकरण

मूल—तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो तइए दिवसे चंदसूरदंसणियं करेंति, जाव संपत्ते बारसाहे दिवसे अयमेयारूवं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करेंति, जम्हाणं अम्हं इमस्स दारगस्स एगंते उक्कुरुडियाए उज्झिज्जमाणस्स अंगुलिया कुक्कुडपिच्छएणं दूमिया, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नाम-धेज्जं 'कूणिए'। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधिज्जं करेंति 'कूणिय' त्ति ॥ ४५ ॥

छाया—ततः खलु तस्य दारकस्याम्बापितरौ तृतीये दिवसे चन्द्रसूर्यदर्शनं कारयतः यावत् संप्राप्ते द्वादशाहे दिवसे इममेतद्रूपं गुणनिष्पन्नं नामधेयं कुरुतः, यस्मात् खलु अस्माकमस्य दारकस्य एकान्ते उत्कुरुटिकायामुज्झ्यमानस्याङ्गुलिका कुक्कुट-पिच्छकेन दूमिता (कूणिता) तत् भवतु खलु अस्माकमस्य दारकस्य नामधेयं 'कूणिकः'। ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ नामधेयं कुरुतः 'कूणिक' इति ॥ ४५ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, **तस्स दारगस्स**—उस पुत्र को, **अम्मापियरो**—माता-पिता ने, **तइए दिवसे**—तीसरे दिन, **चंद-सूर-दंसणियं**—चन्द्र-सूर्य के दर्शन, **करेंति**—करवाते हैं, **जाव०**—यावत्, **सपत्ते बारसाहे दिवसे**—बारहवां दिन आने पर, **अयमेयारूवं**—इस प्रकार का, **गुणनिप्फन्नं**—गुणो के अनुरूप, **नामधिज्जं**—नाम, **करेंति**—करते हैं, **जम्हाणं**— क्योंकि, **अम्हं इमस्स दारगस्स**—हमारे इस पुत्र की, **एगंते उक्कुरुडियाए**—निर्जन स्थान में कुरडी पर, **उज्झिज्जमाणस्स**—फैंके जाने के बाद, **अंगुलिया**—अगुलि, **कुक्कुडपिच्छएणं**—मुर्गे ने अपनी चोंच से, **दूमिया**—आहत कर दी थी, **तं होउ णं**—इसलिए होना चाहिए, **अम्हं इमस्स दारगस्स**—हमारे इस शिशु का, **नामधेज्जं**—नाम, **कूणिए**—कूणिक, **तएणं**—तदनन्तर, **तस्स दारगस्स**—उस शिशु का, **अम्मा-पियरो**—माता पिता ने, **नामधिज्जं करेंति**—नामकरण किया, **"कूणिय" त्ति**—कूणिक।

मूलार्थ—तदनन्तर माता-पिता अपने उस शिशु को तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य के दर्शन करवाते है और फिर बारहवां दिन आने पर गुणों के अनुरूप उसका इस प्रकार का नामकरण करते हैं, क्योंकि हमारे इस बालक को एकान्त में कुरडी पर फैंकने के बाद इसकी अंगुली को मुर्गे ने अपनी चोच से कूणित कर दिया था, अर्थात् आहत कर दिया था, इसलिए हमारे इस बालक का नाम "कूणिक" होना चाहिए। तदनन्तर उसके माता-पिता ने अपने शिशु का नाम "कूणिक" ही रख दिया।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में पुत्र-जन्म पर माता-पिता तीसरे दिन बच्चे को सूर्य-चन्द्र के दर्शन करवाते थे और बारहवें दिन उसका नामकरण-संस्कार करते थे—इस सांस्कृतिक परम्परा का उल्लेख किया गया है।

प्राय: गृहस्थ बच्चे का नाम उसके गुणों के अनुरूप रखा करते थे, क्योंकि मुर्गे ने इनके बच्चे की अंगुलि कूणित अर्थात् आहत कर दी थी, अत: उसका नाम "कूणिक" ही रखा।

तत्कालीन रीति-रिवाजो के ज्ञान के लिए प्रस्तुत सूत्र महत्वपूर्ण है।

कोणिक का युवा होना और विवाहादि की सम्पन्नता

मूल—तएणं तस्स कूणियस्स अणुपुव्वेणं ठिइवडियं च जहा मेहस्स जाव उप्पिं पासायवरगए विहरइ, अट्ठट्ठओ दाओ ॥ ४६ ॥

छाया—ततः खलु तस्य कूणिकस्यानुपूर्वेण स्थितिपतितं च यथा मेघस्य यावत् उपरि प्रासाद-वरगतो विहरति। अष्ट दायाः ॥ ४६ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, **तस्स कूणियस्स**—उस राजकुमार कूणिक के,

अणुपुव्वेणं–क्रमश: **ठिइवडियं च**–कुल क्रमागत सभी उत्सवादि, **जहा मेहस्स**–जैसे मेघ कुमार के हुए थे, **जाव०**–यावत् युवावस्था को प्राप्त होकर, **उप्पिं पासायवरगए**–अपने राज-महलो के ऊपर, **विहरइ**–आमोद-प्रमोद करता है, **अट्ठट्ठओ दाओ**–(आठ कन्याओ के साथ उसका विवाह हुआ और) उसे आठ-आठ वस्तुएं दहेज के रूप मे प्राप्त हुईं।

मूलार्थ–तदनन्तर उस राजकुमार कूणिक के क्रमश: कुल-परम्परागत सभी महोत्सव आदि हुए, जैसे शास्त्रों में मेघ कुमार के (विवाह आदि का वर्णन प्राप्त होता है वैसे ही उसका) आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ और उसे आठ-आठ वस्तुएं प्रीतिदान (दहेज के रूप में प्राप्त हुईं)।

टीका–किसी बात का बार-बार वर्णन न करके किसी भी अन्य आगम मे वर्णित विषय जैसा कह कर शास्त्रकार लौकिक विषय को अधिक विस्तार नहीं देते। यह सक्षेप-शैली आगमों की अपनी विशेषता है, अत: राजकुमार कूणिक के विवाह का विस्तृत वर्णन न करके ''मेघ कुमार के समान'' कह दिया गया है।

''ठिइवडिय''–''स्थिति-पतितं'' कह कर शास्त्रकार ने गृहस्थो के लिए कुल-परम्पराओं का पालन आवश्यक बताया है, क्योंकि ''सस्कार'' बालकों को सुसंस्कृत बना देते है।

यहां दहेज के लिए ''प्रीतिदान'' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिससे यह ध्वनित होता है कि कन्या के माता-पिता प्रसन्नता पूर्वक कन्या को जो चाहें दे, किन्तु आजकल की तरह कन्या-पक्ष के समक्ष कोई माग (डिमांड) नहीं रखी जानी चाहिए।

कोणिक का दु:संकल्प

मूल–तएणं तस्स कूणियस्स कुमारस्स अन्नया पुव्वरत्ता० जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु अहं सेणियस्स रन्नो वाघाएणं नो संचाएमि सयमेव रज्जसिरिं करेमाणे पालेमाणे विहरित्तए, तं सेयं मम खलु सेणियं रायं नियलबंधणं करेत्ता अप्पाणं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचवित्तए, त्तिकट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता सेणियस्स रन्नो अंतराणि च विरहाणि य पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे विहरइ ॥ ४७ ॥

छाया–तत: खलु तस्य कूणिकस्य कुमारस्य अन्यदा पूर्वरात्रा० यावत्समुत्पद्यत–एवं खलु अहं श्रेणिकस्य राज्ञो व्याघातेन न शक्नोमि स्वयमेव राज्यश्रियं कुर्वन् पालयन् विहर्तुं, तच्छ्रेयो मम खलु श्रेणिकं राजानं निगडबन्धनं कृत्वा आत्मानं

महता-महता राज्याभिषेकेणाभिषेचयितुम्, इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य श्रेणिकस्य राज्ञोऽन्तराणि च छिद्राणि च विरहान् च प्रतिजाग्रद् विहरति ॥ ४७॥

पदार्थान्वयः-तएणं-तब, **तस्स कूणियस्स**-उस राजकुमार कूणिक (के हृदय में), **अन्नया पुव्वरत्ता०**-(कुछ समय के बाद) अर्धरात्रि में, **जाव**-यावत्-यह विचार, **समुप्पज्जित्था**-उत्पन्न हुआ कि, **एवं खलु**-इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हुए, **अहं**-मैं, **सेणियस्स रन्नो**-राजा श्रेणिक के, **वाघाएणं**-प्रतिबन्धों के होते हुए (स्वतन्त्रता पूर्वक), **नो संचाएमि**-प्राप्त करने में असमर्थ ही रहूगा, **सयमेव**-मैं स्वयं, **रज्जसिरिं करेमाणे**-राज्य श्री का उपभोग करने में, **पालेमाणे विहरित्तए**-अपने परिवार का पालन-पोषण करते हुए जीवन-यापन करने में, **तं सेयं मम खलु**-अत: मेरे लिए यही कल्याणकारी होगा कि मैं, **सेणियं रायं**-राजा श्रेणिक को, **नियलबंधणं करेत्ता**-हथकड़ियों और बेड़ियों से बांध कर (कारागार में डाल दूं), **अप्पाणं**-और अपने आप को, **महया-महया**- महान् से भी महान्, **रायाभिसेएणं**-राज्याभिषेक से, **अभिसिंचावित्तए**-अभिषिक्त कर लेना, **त्ति कट्टु**-ऐसा विचार करके, **एवं संपेहेइ**-उसने मन में यह (कार्य करने का) निश्चय कर लिया, **संपेहित्ता**-और यह निश्चय करके, **सेणियस्स रन्नो**-राजा श्रेणिक के, **अन्तराणि**-आन्तरिक (अन्दरूनी), **छिद्दाणि**-छिद्रो अर्थात् दोषो एव कमजोरियों को, **विरहाणि**-सहायकों से रहित होने के अवसर को, **पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे** - सावधानी से देखते हुए, **विहरइ**-अपना समय व्यतीत करने लगा।

मूलार्थ-तदनन्तर किसी समय अर्ध रात्रि में राजकुमार कूणिक के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि राजा श्रेणिक के प्रतिबन्धों के कारण मै अपनी इच्छा से राज्य-वैभव का उपभोग नहीं कर पाता हूं, अत: मेरे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि मै राजा श्रेणिक को हथकडियों एवं बेड़ियों आदि से जकड़कर कारागार में डाल दूं और बहुत बड़े राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक महोत्सव आयोजित कर) अपना राज्याभिषेक कर लूं। उसने इस प्रकार सोच-विचार कर ऐसा करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और वह राजा श्रेणिक के आन्तरिक छिद्रों अर्थात् कमजोरियो तथा सहायकों से रहित होने का मौका देखते हुए समय व्यतीत करने लगा।

टीका-प्रस्तुत सूत्र में यह प्रदर्शित किया गया है कि लोभ बहुत बुरी बला है। लोभ उत्पन्न हो जाने पर मनुष्य के हृदय मे किसी बड़े छोटे का भी ख्याल नहीं रह जाता, वह कर्तव्य-अकर्तव्य को भी भूल जाता है।

राजकुमार कूणिक पर स्वयं राजा बनने का भूत सवार हो गया तो उसने अपने पिता को ही हथकड़ियों और बेड़ियों में बांधकर जेल में डाल देने का निश्चय कर लिया।

इस उदाहरण को देखते हुए मनुष्य को अत्यधिक लालसाओ के चक्कर में नहीं फंसना चाहिए। कूणिक के पास आठ राजमहल थे, उसे सुखोपभोग में कोई रोक-टोक नहीं थी, फिर भी वह पिता के विपरीत हो गया।

राज्य-प्राप्ति के लिए कोणिक का षडयंत्र

उत्थानिका—तदनन्तर राजकुमार कूणिक ने अपने पिता को कैद करने का षड्यन्त्र कैसे रचा—अब सूत्रकार इस विषय का वर्णन करते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए कुमारे सेणियस्स रन्नो अंतरं वा जाव मम्मं वा अलभमाणे अन्नया कयाइ कालादीए दस कुमारे नियघरे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे सेणियस्स रन्नो वाघाएणं नो संचाएमो सयमेव रज्जसिरिं करेमाणा पालेमाणा विहरित्तए, तं सेयं देवाणुप्पिया ! अम्हं सेणियं रायं नियलबंधणं करेत्ता रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च जणवयं च एक्कारसभाए विरिंचित्ता सयमेव रज्जसिरिं करेमाणाणं जाव विहरित्तए ॥ ४८ ॥

छाया—ततः खलु स कूणिकः कुमारः श्रेणिकस्य राज्ञोऽन्तरं वा यावत् मर्म वा अलभमानः अन्यदा कदाचित् कालादिकान् दशकुमारान् निजगृहे शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्— एवं खलु देवानुप्रियाः ! वयं श्रेणिकस्य राज्ञो व्याघातेन नो शक्नुमः स्वयमेव राजश्रियं कुर्वन्तः पालयन्तो विहर्तुम्, तच्छ्रेयो देवानुप्रियाः! अस्माकं श्रेणिकं राजानं निगडबन्धनं कृत्वा राज्यं च राष्ट्रं च बलं च वाहनं च कोशं च कोष्ठागारं च जनपदं च एकादशभागान् विभज्य स्वयमेव राज्यश्रियं कुर्वाणानां पालयतां यावद् विहर्तुम् ॥ ४८ ॥

पदार्थान्वयः—तएण—तदनन्तर, **से कूणिए कुमारे**—उस कूणिक कुमार ने, **सेणियस्स रन्नो**—राजा श्रेणिक की, **अन्तरं वा**—कोई भी आन्तरिक कमजोरी, **जाव मम्मं वा**—एवं किसी भी मार्मिक बात को, **अलभमाणे**—न मिलने पर, **अन्नया कयाइ**— किसी अन्य दिन, **कालादीए दस कुमारे**—काल कुमार आदि दस राजकुमारों (अपने भाइयों को), **नियघरे**—अपने निजी स्थान पर, **सद्दावेइ**—बुलवाया, **सद्दावित्ता एवं वयासी**—और बुलाकर उनसे कहा, **एवं खलु देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रियो । इस प्रकार, **अम्हे**—हम लोग, **सेणियस्स रन्नो**—राजा श्रेणिक की, **वाघाएणं**—रुकावटों और बाधाओं के कारण, **नो संचाएमो**—हम कभी भी प्राप्त करने मे समर्थ नहीं हो सकते, **सयमेव रज्जसिरिं**—स्वय राज्य-वैभव का, **करेमाणा**—उपभोग करते हुए, **पालेमाणा**—प्रजा का पालन-पोषण करते हुए, **विहरित्तए**—

जीवन यापन करने में, **तं सेयं देवाणुप्पिया**—इसलिए हे देवानुप्रियो । हमारे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि, **अम्हं**—हम लोग, **सेणियं रायं**—राजा श्रेणिक को, **नियल-बंधणं करेत्ता**—हथकड़ियों एव बेड़ियों से बाधकर (जेल में डाल दे और फिर), **रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च जणवयं च**—अपने राज्य अपने इस राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, भण्डार और जनपदों को, **एक्कारसभाए**—ग्यारह भागों में, **विरिंचित्ता**—बाट कर, **सयमेव**—हम स्वय, **रज्जसिरिं**—राज्य वैभव का उपभोग, **करेमाणाणं**—करते हुए, **जाव विहरित्तए**— अपना-अपना सुखी जीवन व्यतीत करे।

मूलार्थ—तदनन्तर उस कूणिक कुमार ने राजा श्रेणिक की किसी भी आन्तरिक कमजोरी एवं उसकी किसी भी मार्मिक बात के प्राप्त न होने पर, किसी दिन उचित अवसर देखकर अपने कालकुमार आदि दसो भाइयों को अपने निजी महल में बुलवाया और उनसे बोला—हे देवानुप्रियो । इस प्रकार हम लोग स्वयं राज्य का उपभोग करने मे कभी सफल नहीं हो सकते जब तक कि राजा श्रेणिक द्वारा खड़ी की गई रुकावटे और बाधाए विद्यमान है। इसलिए हमारे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि हम लोग राजा श्रेणिक को हथकड़ियो एवं बेड़ियों से जकड़ कर (कारागार में डाल दें), और हम स्वय राज्य-वैभव का उपभोग करते हुए जीवन-यापन करें। राज्य, राष्ट्र. बल (सेना), वाहन (हाथी, घोड़े, रथ आदि), कोष, धान्य- भण्डारों और जनपदों को ग्यारह भागों मे विभक्त करके स्वयं राज्य-सुख भोगते हुए राज करें और प्रजा का पालन करते हुए सुख-पूर्वक जिएं।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे राजा श्रेणिक के कृतघ्न एव क्रूर पुत्रो के हृदय में उमडते लोभ का वर्णन किया गया है और उस दाम नीति पर प्रकाश डाला है जिसके अनुसार कोणिक ने अपने भाइयो को भी अपने जैसा लोभी, क्रूर एव पितृघाती बना लिया।

लोभ मनुष्य से क्या नही करवा देता ?

पिता को कारावास में डाल कोणिक सिंहासनारूढ़ हुआ

मूल—तएणं ते कालादीया दस कुमारा कूणियस्स कुमारस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति।

तएणं से कूणिए कुमारे अन्नया कयाइं सेणियस्स रन्नो अंतरं जाणाइ, जाणित्ता सेणियं रायं नियलबंधणं करेइ, करित्ता अप्पाणं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचावेइ। तएणं से कूणिए कुमारे राया जाए महया० ॥ ४९ ॥

छाया—ततः खलु ते कालादिकाः दश कुमाराः कूणिकस्य कुमारस्य एतमर्थं विनयेन प्रतिश्रृण्वन्ति। ततः खलु स कूणिकः कुमारः अन्यदा कदाचित् कूणिकस्य राज्ञोऽन्तरं जानाति, ज्ञात्वा श्रेणिकं राजानं निगडबन्धणं करोति, कृत्वा आत्मानं महता-महता राज्याभिषेकेणाभिषेचयति। ततः खलु स कूणिकः कुमारो राजा जातो महा० ॥ ४९ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **ते कालादीया दस कुमारा**—वे काल कुमार आदि दस राज कुमार, **कूणियस्स कुमारस्स**—कूणिक कुमार के, **एयमट्ठं**—इस विचार को, **विणएणं पडिसुणेति**—विनय-पूर्वक ध्यान से सुनते हैं, **तएणं**—तदनन्तर, **कूणिए कुमारे**—कूणिक कुमार, **अन्नया कयाइं**—किसी समय (मौका पाते ही), **सेणियस्स रन्नो**—राजा श्रेणिक के, **अंतरं जाणाइ**—कुछ अन्दरूनी रहस्यो को जान लेता है, **जाणित्ता**—और जान कर, **सेणियं राय**—राजा श्रेणिक को, **नियलबंधणं करेइ**—हथकडियो और बेड़ियों से बाध देता है, **करित्ता**—और बाधकर, **अप्पाणं**—अपने आपको, **महया-महया**—विशाल से विशाल, **रायाभिसेएणं**—राज्याभिषेक (महोत्सव पूर्वक), **अभिसिंचावेइ**—अपने आपको अभिषिक्त करा देता है, **तएण**—तत्पश्चात्, **से कूणिए कुमारे राया जाए**—वह कोणिक कुमार स्वय ही राजा बन गया, **महया-महया**—महान से महान्।

मूलार्थ—तत्पश्चात् काल कुमार आदि दसों राजकुमार, कूणिक कुमार के उन विचारों को विनय-पूर्वक ध्यान से सुनते हैं। कुछ दिन बाद कूणिक कुमार को राजा श्रेणिक के कुछ आन्तरिक रहस्य मालूम हो गए, उन्हे जानकर उसने राजा श्रेणिक को हथकडियों और बेड़ियों से बाध दिया (और कारागार मे बन्द कर दिया), ऐसा करके उसने विशाल महोत्सव के साथ स्वयं ही अपना राज्याभिषेक करवा लिया। तब वह कूणिक कुमार बहुत बडा राजा बन गया।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है कि कूणिक कुमार ने अपने काल कुमार आदि दस भाइयो को राज्य का एव स्वतन्त्र होकर राज्य-वैभव के उपभोग का लोभ देकर अपनी तरफ मिला दिया, जिससे वे भविष्य मे उसका विरोध न कर सकें।

यह भी ध्वनित हो रहा है कि संसार के सभी सम्बन्ध तभी तक हैं जब तक मनुष्य स्वार्थी बन कर लोभाविष्ट नहीं हो जाता, लोभावेश मे आते ही वह सभी सम्बन्धो को भूलकर बड़े से बडा अनर्थकारी कार्य करने के लिए भी प्रस्तुत हो जाता है। कूणिक ने राज्यलोभ में आकर अपने हितकारी एवं पूज्य पिता को भी कैद ही नहीं किया, अपितु उन्हे लोह-बन्धनो से बांध भी दिया।

मूल—तए णं से कूणिए राया अन्नया कयाइं ण्हाए जाव सव्वालंकार-विभूसिए चेल्लणाए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ।

तएणं से कूणिए राया चेल्लणं देविं ओहय० जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता चेल्लणाए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता चेल्लणं देविं एवं वयासी—किं णं अम्मो ! तुम्हं न तुट्ठी व न ऊसए वा न हरिसे वा नाणंदे वा, जं णं अहं सयमेव रज्जसिरिं जाव विहरामि ? ॥ ५० ॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा अन्यदा कदाचित् स्नातः यावत् सर्वा-लङ्कारविभूषितश्चेलनाया देव्याः पादवन्दको हव्वमागच्छति।

ततः खलु स कूणिको राजा चेल्लनां देवीम् अपहत० यावद् ध्यायन्तीं पश्यति, दृष्ट्वा चेल्लनाया देव्याः पादग्रहणं करोति, कृत्वा, चेल्लनां देवीमेवमवादीत्—किं खलु अम्ब ! तव न तुष्टिर्वा नोत्सवो वा न हर्षो वा नानन्दो वा ? यत्खलु अहं स्वयमेव राज्यश्रियं यावद् विहरामि ॥ ५० ॥

पदार्थान्वय·—तएणं—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह राजा कूणिक, **अन्नया कयाइ**—एक बार फिर कभी, **ण्हाए**—उसने स्नान किया, **जाव० सव्वालंकारविभूसिए**—और सभी प्रकार के अलकारो से सुसज्जित होकर, **चेल्लणाए देवीए**—महारानी चेलना देवी के, **पाय-वन्दए**—चरणो मे नमस्कार करने के लिए, **हव्वमागच्छइ**—शीघ्रता से आता है।

तएणं—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह राजा कूणिक, **चेल्लणं देविं**—महारानी चेलना देवी को, **ओहय०**—उदास एव मानसिक संकल्प के विपरीत कार्य होने के कारण खिन्न तथा, **झियायमाणिं**—आर्त्तध्यान करती हुई को, **पासइ**—देखता है, **पासित्ता**—और उसे उदास देखकर, **चेल्लणाए देवीए**—माता चेलना देवी के—**पायग्गहणं करेइ**—चरण पकड़ लेता है, **करित्ता**—और चरण-वन्दन करके, **चेल्लणं देविं**—महारानी चेलना देवी से, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोला, **किं णं अम्मो !**—माता ! ऐसी क्या बात है ? **तुम्हं न तुट्ठी वा**—आज आपको सन्तोष नही हुआ ? **न ऊसए वा**—कोई आपको खुशी नहीं हुई? **न हरिसे वा**—हर्ष नहीं हुआ ? **नाणंदे वा**—आपको आनन्द नही हुआ ? **ज णं**—जब कि, **अहं सयमेव**—मैं स्वयं, **रज्जसिरिं**—राज्य-वैभव का उपभोग करते हुए, **जाव विहरामि**—आनन्द-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूं।

मूलार्थ—तदनन्तर किसी दिन वह राजा कूणिक स्नान करके (और बलिकर्म

प्रायश्चित्त आदि मगल कार्य करने के अनन्तर) सर्वविध राजा के योग्य आभूषण पहन कर अपनी माता चेलना देवी के पास चरण-वन्दनार्थ पहुचा। तब राजा कूणिक ने माता चेलना देवी को मानसिक संकल्प से विपरीत कार्य होने के कारण आर्त्तध्यान करते हुए देखा- चिन्तातुर देखा। देखते ही उसने माता चेलना देवी के चरण पकड़ लिए और माता चेलना देवी से इस प्रकार कहा-''मा ! ऐसी क्या बात है कि आज आपका मन संतुष्ट नहीं है, आज आपके मन में उत्साह-हर्ष एवं आनन्द नहीं है, जब कि मैं स्वय राज्य-वैभव का उपभोग करते हुए चैन की जिन्दगी जी रहा हूं, अर्थात् आपको मेरा राजा बन जाना क्या अच्छा नहीं लग रहा।

टीका-पुत्र कितना भी दुष्ट क्यों न हो, वह पिता के प्रति क्रूर व्यवहार कर सकता है, किन्तु अपनी माता के प्रति वह कभी क्रूर नहीं हो सकता। अत: कूणिक ने पिता को बांधकर जेल मे डाल दिया, किन्तु माता की चरण-वन्दना के लिए वह समय-समय पर आता ही रहता था।

कोई भी मा पुत्र से उदासीन न होते हुए भी अपने पति के प्रति भी अपनी निष्ठा एव कर्तव्य को भूल नही सकती। कूणिक अब राजा बन गया था-अत: स्वच्छन्द था, इसलिए वह उसे कुछ विशेष कहना उचित न मानते हुए अपने पति राजा श्रेणिक को बन्दी बना दिए जाने के कारण वह अत्यन्त उदास खिन्न एवं चिन्तातुर थी, अत: पुत्र के राजा बन जाने पर भी वह असन्तुष्ट एव दु:खी ही रहती थी।

कोणिक को चेलना द्वारा प्रतिबोध

मूल-तएणं सा चेल्लणा देवी कूणियं रायं एवं वयासी-''कहण्णं पुत्ता ! ममं तुट्ठी वा उस्सए वा हरिसे वा आणंदे वा भविस्सइ ? जं णं तुमं सेणियं रायं पियं देवयं गुरुजणगं अच्चंतनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करित्ता अप्पाणं महया-२ रायाभिसेएणं अभिसिंचावेसि।

तएणं से कूणिए राया चेल्लणं देविं एवं वयासी-घाएउकामेणं अम्मो! मम सेणिए राया, एवं मारेउं, बंधिउं, निच्छुभिउकामए णं अम्मो ! ममं सेणिए राया, तं कहण्णं अम्मो ! मम सेणिए राया अच्चंतनेहाणुरागरत्ते? ॥ ५१ ॥

छाया-ततः खलु सा चेल्लना देवी कूणिकं राजानमेवमवादीत्-कथं खलु पुत्र ! मम तुष्टिर्वा उत्सवो वा हर्षो वा आनन्दो व भविष्यति यत्खलु त्वं श्रेणिकं

राजानं प्रियं दैवतं गुरुजनकमत्यन्तस्नेहानुरागरक्तं निगडबन्धनं कृत्वा आत्मानं महता-महता राज्याभिषेकेण अभिषेचयसि।

ततः खलु स कूणिको राजा चेल्लनां देवीमेवमवादीत्–घातयितुकामः खलु अम्ब! मम श्रेणिको राजा, एवं मारयितुं, बन्धयितुं, निःक्षोभयितुकामः खलु अम्ब ! मम श्रेणिको राजा, तत्कथं खलु अम्ब ! मम श्रेणिको राजाऽत्यन्त–स्नेहानु-रागरक्तः ? ॥ ५१ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं–तत्पश्चात्, **सा चेल्लणा देवी**–वह चेलना देवी, **कूणियं रायं**–कूणिक राजा को, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगी, **कहण्णं पुत्ता**–हे पुत्र कैसे, **मम तुट्ठी वा**–मुझे सन्तुष्टि होगी, **उस्सए वा**–उत्सव होगा, **हरिसे वा**–हर्ष होगा, **आणंदे वा भविस्सइ**–आनन्द होगा, **जं ण तुमं**–जो तूने, **सेणियं रायं**–श्रेणिक राजा को, **पियं**–जो तुम्हारे पिता हैं, **देवयं**–देव तुल्य, **गुरुजणगं**–गुरुजनो के तुल्य, **अच्चंतनेहाणुरागरत्तं**–अत्यन्त स्नेह व राग से युक्त को, **नियलबंधणं करित्ता**–हथकड़ियो और बेड़ियों से बांध कर, **अप्पाणं**–स्वय को **महया**–महान, **रायाभिसेएण**–राज्याभिषेक से, **अभिसिंचावेसि**–अभिसिचित करवाया है।

तएणं–तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**–वह कोणिक राजा, **चेल्लणं देविं**–चेलना देवी को, **एव वयासी**–इस प्रकार कहने लगा, **घाएउकामेणं**–घात करने के इच्छुक, **अम्मो**–हे माता, **मम सेणिए राया**–श्रेणिक राजा तो मुझे, **एवं**–इस प्रकार, **मारेउं**–मारने के लिए इच्छुक, **बंधिउं**–बाधने के लिए इच्छुक, **निच्छुभिउकामए णं**–मुझे राज्य से बाहर करने के लिए इच्छुक था, **अम्मो**–हे माता, **ममं सेणिए राया**–मुझे श्रेणिक राजा, **तं**–अतः, **अम्मो**–हे माता, **मम**–मुझ पर, **सेणिए राया**–श्रेणिक राजा, **कहं अच्चंतनेहाणुरागरत्ते**–कैसे अत्यन्त स्नेह राग से युक्त था।

मूलार्थ–तत्पश्चात् चेलना देवी ने राजा कूणिक को इस प्रकार कहा–"हे पुत्र। मुझे कैसे प्रसन्नता, उत्सव, हर्ष व आनन्द हो सकता है ? क्योंकि तूने उस देव एवं गुरु के तुल्य अपने पिता राजा श्रेणिक को हथकड़ियों एव बेड़ियों से बांध रखा है जिनका तुम्हारे प्रति गहरा स्नेह व राग है, ऐसे पिता को कैद करके तूने स्वयं का राज्याभिषेक किया है, इसलिए मेरे मन में हर्ष, उत्सव, आनन्द कैसे हो सकता है ?

तत्पश्चात् वह राजा कोणिक चेलना देवी की बात सुनकर इस प्रकार कहने लगा–"हे माता ! आप कैसे कह सकती हैं कि मुझ पर राजा श्रेणिक का अत्यंत रागात्मक स्नेह है ?

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे राजा कूणिक ने अपनी माता को प्रणाम करने के बाद अपने किए हुए कुकृत्य का समर्थन माता चेलना से करवाना चाहा, किन्तु महारानी चेलना पति के प्रति समर्पित रानी थी। वह अपने पति के प्रति अथाह स्नेह रखती थी। श्रेणिक की कैद के कारण वह सर्वाधिक दु:खी रहने लगी। प्रस्तुत सूत्र से रानी चेलना की स्पष्ट-वादिता का भी पता चलता है। रानी चेलना कहती है कि मुझे तेरे राजा बनने की खुशी कैसे हो सकती है ? तूने अपने देव-गुरु तुल्य पिता को कारागार मे डाल दिया है, तुझे अपने पिता की महानता व तेरे प्रति स्नेह का भी ध्यान नही रहा।

रानी चेलना देवी की बात सुनकर राजा कूणिक ने अपनी माता से पूछा–"हे माता! आप कैसे कहती हैं कि मेरे पिता राजा श्रेणिक मेरे से बहुत स्नेह व राग रखते हैं ? इस सूत्र से सिद्ध होता है कि कोणिक ने राजा श्रेणिक को कैद में डालते समय माता से विचार-विमर्श नहीं किया था। इसी कारण माता ने आशीर्वाद के स्थान पर उपालम्भ दिया।

पियं और जणगं "पिता" और "जनक" ये दोनों शब्द पिता के पर्यायवाची शब्द है तथा **पियं** शब्द वल्लभ पति आदि अर्थो में भी प्रयुक्त होता है। गुजराती अर्ध-मागधी कोष पृष्ठ ५४९ में ऐसा ही कथन है।

कोणिक के समक्ष चेलना द्वारा पूर्व वृत्त वर्णन

मूल–तएणं सा चेल्लणा देवी कूणियं कुमारं एवं वयासी–एवं खलु पुत्ता ! तुमंसि ममं गब्भे आभूए समाणे तिण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं ममं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए-धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव अंग-पडिचारियाओ निरवसेसं भाणियव्वं जाव० जाहे वि य णं तुमं वेयणाए अभिभूए महया जाव० तुसिणीए संचिट्ठसि, एवं खलु तव पुत्ता ! सेणिए राया अच्चंतनेहाणुरागरत्ते ॥ ५२ ॥

छाया–ततः खलु सा चेल्लना देवी कूणिकं कुमारमेवमवादीत्–एवं खलु पुत्र ! त्वयि मम गर्भे आभूते सति त्रिषु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेषु ममायमेतद्रूपो दोहदः प्रादुर्भूतः–धन्याः खलु ता अम्बाः यावत् अङ्गप्रतिचारिकाः, निरवशेषं भणितव्यं यावत् यदापि च खलु एवं वेदनयाऽभिभूतो महता यावत् तूष्णीकः संतिष्ठसे, एवं खलु तव पुत्र ! श्रेणिको राजाऽत्यन्तस्नेहानुरागरक्तः ॥ ५२ ॥

पदार्थान्वयः–**तएण**–तब, **सा चेल्लणा देवी**–वह महारानी चेलणा, **कूणियं कुमारं**–

कोणिक कुमार से, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगी, **एवं खलु पुत्ता**–हे पुत्र! इस प्रकार समझो, **तुमंसि ममं गब्भे आभूए समाणे**–जब तू मेरे गर्भ में आया था तब, **तिण्हं मासाणं**–तीन महीने, **बहुपडिपुन्नाणं**–अच्छी तरह पूर्ण होने पर, **ममं**–मेरे हृदय में, **अयमेयारूवे**–इस प्रकार का, **दोहले पाउब्भूए**–दोहद उत्पन्न हुआ था, **धन्ना णं ताओ अम्मयाओ**–कि धन्य हैं वे माताए, **जाव**–यावत्, **अंगपडिचारियाओ निरवसेसं भाणियव्व**–इस संकल्प से लेकर अंग परिचारिकाओ (सेविकाओं) द्वारा जो-जो कार्य किए गए थे और जो कुछ अभय कुमार ने किया था वे सब कार्य उसने बता दिए, **जाव**–वहां तक जब उसे कुरड़ी पर फैंका गया था और उसकी अंगुली के अग्रभाग को मुर्गे ने चोंच से छील दिया था, उसे श्रेणिक ने चेलना को लाकर दिया था और उसे यह भी बताया कि, **जाहे वि य णं तुमं**–और जब भी तुम, **वेयणाए**–वेदना से, **अभिभूए**–अभिभूत हो जाते थे, **महया**–महान्, **जाव तुसिणीए संचिट्ठसि**–जब तक तुम चुप होकर शान्त नहीं हो जाते थे (तब तक श्रेणिक तुम्हारी अंगुली के खून और पीप को चूस-चूस कर थूकते रहते थे, **एवं खलु तव पुत्ता**–हे पुत्र । इस प्रकार (तुम स्वय ही समझ सकते हो कि), **सेणिए राया**–राजा श्रेणिक, **अच्चंतनेहाणुरागरत्ते**–अत्यन्त स्नेह से तुम पर अनुरक्त था।

मूलार्थ–तब महारानी चेलना कोणिक कुमार को इस प्रकार कहने लगी–हे पुत्र! तुम इस प्रकार समझो कि "जब तू मेरे गर्भ में आया था, तब तीन महीने अच्छी तरह पूरे हो जाने पर मेरे हृदय में इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ था कि "धन्य है वे माताएं जो यावत् अर्थात् अंग-परिचारिकाओं द्वारा जो-जो कार्य किए गए थे और जो कुछ भी अभय कुमार ने किया था वे सब कार्य उसने कोणिक को बता दिए और कुरड़ी पर फैकने से लेकर राजा श्रेणिक द्वारा उसे वापिस लाकर पुनः चेलना को सौंपने से लेकर यह भी बताया कि जब भी तुम मुर्गे द्वारा छीली गई अंगुली के भारी कष्ट के कारण व्यथित होते थे तब तुम्हारे पिता श्रेणिक तुम्हारी अंगुली से पीप और खून तब तक चूस कर थूकते रहते थे जब तक तुम चुप होकर शान्त नहीं हो जाते थे। इस प्रकार हे पुत्र ! तुम स्वयं ही समझ सकते हो कि राजा श्रेणिक तुम पर कितना स्नेहानुरोग रखते थे।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि महारानी चेलना ने कुमार कोणिक को उसके गर्भ में आने से लेकर आज तक का सारा वृत्तान्त आद्योपान्त सुना दिया, जिससे उसका हृदय एकदम बदल गया, क्योंकि सत्य में हृदय-परिवर्तन की अपार शक्ति है।

इस सूत्र द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि कोणिक कुमार इससे पूर्व इस घटना से सर्वथा

अपरिचित था, अतः वह अपने पिता को अपना शत्रु समझता था, इसीलिए उसने उसे हथकडियों और बेड़ियों से बांधकर जेल में डाल दिया था।

राज्य-लोभ और पूर्व जन्मार्जित कर्म भी इसमें कारण थे, किन्तु जीवन-क्रम के ज्ञान का अभाव भी उसके इस दुष्कार्य करने के पीछे एक कारण था।

कोणिक का हृदय परिवर्तन / पिता को मुक्त करने हेतु गमन

मूल—तएणं से कूणिए राया चेल्लणाए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म चेल्लणं देविं एवं वयासी—दुट्ठु णं अम्मो ! मए कयं, सेणियं रायं पियं देवयं गुरुजणगं अच्चंतनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करंतेणं, तं गच्छामि णं सेणियस्स रन्नो सयमेव नियलाणि छिंदामि त्तिकट्टु परसुहत्थगए जेणेव चारगसाला तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ ५३ ॥

छाया—ततः खलु सः कूणिको राजा चेल्लनाया देव्या अन्तिके एतमर्थ श्रुत्वा निशम्य चेल्लना देवीमेवमवादीत्—दुष्ठु खलु अम्ब ! मया कृतं श्रेणिकं राजानं प्रियं दैवतं गुरुजनकमत्यन्तस्नेहानुरागरक्तं निगडबन्धनं कुर्वता, तद् गच्छामि खलु श्रेणिकस्य राज्ञः स्वयमेव निगडानि छिनद्मि, इति कृत्वा परशुहस्तगतो यत्रैव चारकशाला तत्रैव प्रधारयति गमनाय ॥ ५३ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, **से कूणिए राया**—वह राजा कूणिक, **चेल्लणाए देवीए**—महारानी चेलना के, **अंतिए**—पास से, **एयमट्ठं सोच्चा**—इस वृत्तान्त (घटनाक्रम) को सुन कर, **निसम्म**—और सुनते ही, **चेल्लणं देवि**—महारानी चेलना से, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोला—**दुट्ठु णं अम्मो**—हे मां ! निश्चय ही एक दुष्कृत्य, **मए कयं**—मैंने किया है कि, **सेणिय राय**—राजा श्रेणिक को (जो कि मेरे लिए), **देवयं**—देव स्वरूप, **गुरुजणगं**—परमोपकारक (गुरुतुल्य), **अच्चंतनेहाणुरागरत्तं**—अत्यन्त स्नेहानुराग से युक्त हैं उन्हे, **नियल-बंधणं करंतेणं**—हथकडियों-बेडियों में बाधने वाले ने, **तं गच्छामि**—अत: मैं जाकर, **सेणियस्स रन्नो**—राजा श्रेणिक के, **सयमेव नियलाणि छिंदामि**—स्वयमेव बन्धन भूत हथकडियों-बेड़ियों को काटता हूं, **त्ति कट्टु**—ऐसा कहकर, **परसुहत्थगए**—हाथ में परशु लेकर, **जेणेव चारगसाला**—जहा जेलखाना था, **तेणेव**—वही पर, **पहारेत्थ गमणाए**—पहुंचने के लिए चल पड़ा।

मूलार्थ—तदनन्तर उस राजा कूणिक ने महारानी चेलना से जब उपरोक्त वृत्तान्त सुना तो वह सुनते ही महारानी चेलना से इस प्रकार बोला—मां ! निश्चय ही मैंने राजा श्रेणिक को जो कि मेरे लिए देवता तुल्य हैं, मेरे परमोपकारक गुरु जैसे हैं और मुझ

पर अत्यन्त स्नेहानुराग रखते हैं। उनके हथकड़ियों-बेड़ियों जैसे बन्धन मैं स्वयमेव जाकर काटता हूं। यह कहकर वह हाथ में परशु लेकर जहां जेलखाना था वहा पहुंचने के लिए चल दिया।

टीका—सदुपदेशों से और वास्तविकता को जानकर मनुष्य कैसा भी क्रूर क्यों न हो उसके हृदय का परिवर्तन हो ही जाता है।

अपनी माता से पिता के स्नेहानुराग की वास्तविक बात को सुनते ही कोणिक का हृदय बदल गया और वह परशु (कुल्हाडा अथवा कुल्हाड़े जैसा कोई औजार जिससे शीघ्र ही बन्धन कट सकें) हाथ में लेकर उस जेलखाने की ओर चल दिया जहा राजा श्रेणिक को उसने बन्द किया था।

सूत्रकार ने उपर्युक्त उल्लेख से यह सिद्ध कर दिया है कि सदुपदेश कभी व्यर्थ नहीं जाता, उसका प्रभाव मनुष्य के मन पर पडता ही है।

श्रेणिक द्वारा आत्मघात

मूल—तएणं सेणिए राया कूणियं कुमारं परसुहत्थगयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—एस णं कूणिए कुमारे अपत्थियपत्थिए जाव सिरि-हिरिपरिवज्जिए परसुहत्थगए इह हव्वमागच्छइ। तं न नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए जाव संजायभए तालपुडगं विसं आसगंसि पक्खिवइ।

तएणं से सेणिए राया तालपुडगविसे आसगंसि पक्खित्ते समाणे मुहुत्तंतरेणं परिणममाणंसि निप्पाणे निच्चिट्ठे जीवविप्पजढे ओइन्ने।

तएणं से कूणिए कुमारे जेणेव चारगसाला तेणेव उवागए, सेणियं रायं निप्पाणं निच्चिट्ठं जीवविप्पजढं ओइन्नं पासइ, पासित्ता महया पिइसोएणं अप्फुण्णे समाणे परसुनियत्ते विव चंपगवरपायवे धसत्ति धरणियलंसि सव्वंगेहिं संनिवडिए ॥ ५४ ॥

छाया—ततः खलु श्रेणिको राजा कूणिकं कुमारं परशुहस्तगतमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्—एष खलु कूणिकः कुमारः अप्रार्थितप्रार्थितो यावत् श्रीह्री-परिवर्जितः परशुहस्तगत इह हव्यमागच्छति, तन्न ज्ञायते खलु मां केनापि कुमारेण (कुत्सित-मारेण) मारयिष्यतीति, कृत्वा भीतो यावत् संजातभयस्तालपुटकं

विषमास्ये प्रक्षिपति।

ततः खलु स श्रेणिको राजा तालपुटकविषे आस्ये प्रक्षिप्ते सति मुहूर्त्तान्तरेण परिणाम्यमाने निष्प्राणो निश्चेष्टो जीवविप्रत्यक्तोऽवतीर्णः। ततः खलु सः कूणिकः कुमारो यत्रैव चारकशाला तत्रैवोपागतः, उपागत्य श्रेणिकं राजानं निष्प्राणं निश्चेष्टं जीव-विप्रत्यक्तमवतीर्णं पश्यति, दृष्ट्वा महता पितृ-शोकेन आक्रान्तः सन् परशु-निकृत्त इव चम्पकवर-पादपः "धस" इति धरणीतले सर्वांगैः निपतितः ॥ ५४॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **सेणिए राया**—राजा श्रेणिक, **कूणियं कुमारं**—कूणिक कुमार को, **परसुहत्थगयं**—हाथ मे कुल्हाड़ा लिए हुए, **एज्जमाणं**—आते हुए को, **पासइ**—देखता है, **पासित्ता**—और उसे देखते ही (वह मन ही मन), **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा, **एस ण कूणिए कुमारे**—निश्चय ही यह कूणिक कुमार, **अपत्थियपत्थिए**—अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाला अर्थात् अकर्तव्य को कर्तव्य मानने वाला, **जाव० सिरि-हिरि-परिवज्जिए**—यावत् राजकर्तव्यरूप लक्ष्मी और लज्जा से रहित, **परसु-हत्थगए**—हाथ मे परशु लिए हुए, **इह**—यहा पर, **हव्वमागच्छइ**—शीघ्र ही पहुचने वाला है, **त न नज्जइ णं**—इस समय मैं नहीं जान पा रहा, **ममं**—यह मुझे, **केणइ**—किस प्रकार की, **कुमारेण**—बुरी मौत से, **मारिस्सइ**—मारेगा, **त्तिकट्टु**—ऐसा सोचते ही वह, **भीए**—भयभीत हो गया, **जाव सजायभए**—और भय उत्पन्न होते ही, **तालपुडगविस**—तालपुट नामक भयंकर विष (वह अपने), **आसगंसि**—मुख मे, **पक्खिवइ**—डाल लेता है।

तएण—तदनन्तर, **से सेणिए राया**—वह राजा श्रेणिक, **तालपुडगविसे**—तालपुट विष, **आसगंसि पक्खित्ते समाणे**—मुख में डालते ही, **मुहुत्तंतरेणं**—कुछ ही क्षणों में, **परिणम-माणसि**—विष के शरीर में घुलते ही, **निप्पाणे निच्चेट्ठे**—निष्प्राण एव निश्चेष्ट होकर, **जीवविप्पजढे**—जीवन विहीन होकर (भूमि पर), **ओइण्णे**—गिर पड़ा। **तएणं से कूणिए कुमारे**—तब वह कूणिक कुमार, **जेणेव चारगसाला**—जहा पर बन्दीखाना था, **तेणेव उवागए**—वहीं पर आ पहुचा, (वह आते ही) **सेणियं रायं**—राजा श्रेणिक को, **निप्पाणं निच्चिट्ठं**—निष्प्राण एवं निश्चेष्ट, **जीव-विप्पजढं**—जीवन-विहीन को, **ओइन्नं**—भूमि पर गिरे हुए को, **पासइ**—देखता है, **पासित्ता**—देखकर, **महया**—अत्यन्त, **पिइसोएण**—पितृ शोक से, **अप्फुण्णे समाणे**—शोकाक्रान्त हो जाने पर, **परसु-नियत्ते विव**—परशु से काटे हुए, **चंपगवरपायवे**—चम्पक वृक्ष के समान, **"धसत्ति"**—धडाम से, **धरणियलंसि**—पृथ्वी पर, **सव्वंगेहिं**—पूरे शरीर सहित, **संनिवडिए**—गिर पड़ा।

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा श्रेणिक हाथ मे परशु लिए हुए कोणिक कुमार को

अपनी ओर आते हुए देखता है और देखते ही उसने मन ही मन कहा–यह कूणिक कुमार निश्चय ही अकर्तव्य को कर्तव्य मानने वाला, राज-नियमों एवं लज्जा से रहित है। यह हाथ में परशु लिए हुए शीघ्र ही यहां पहुंचने वाला है, इस समय मैं नहीं जान पा रहा कि यह मुझे किस बुरी मौत से मारेगा, ऐसा सोचते ही भयभीत होकर उसने तालपुट विष को अपने मुह में डाल लिया।

तदनन्तर वह राजा श्रेणिक तालपुट विष को मुख मे डालते ही कुछ ही क्षणों में विष के शरीर मे घुल जाने से निष्प्राण एव निश्चेष्ट तथा जीवन-रहित होकर भूमि पर गिर पड़ा। तब वह कूणिक कुमार जहा पर बन्दीखाना था वहीं पर आ पहुंचा। उसने वहां आकर राजा श्रेणिक को निष्प्राण, निश्चेष्ट और जीवन-विहीन–मृतक अवस्था मे भूमि पर पड़े हुए देखा और देखते ही वह अत्यन्त (भारी) पितृ-वियोग के शोक के कारण शोकाक्रान्त होकर, परशु से कटे हुए चम्पक वृक्ष के समान धडाम से धरती पर पूरे शरीर से गिर पड़ा।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे राजा श्रेणिक की बन्दीगृह में हुई मृत्यु का वर्णन किया गया है। राजा श्रेणिक ने कूणिक कुमार के अब तक के व्यवहार से यही जाना था कि यह मुझे मारने ही आ रहा है।

यह घटना इस विषय का सकेत दे रही है कि मनुष्य को सहसा कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए, बिना विचारे किया हुआ कार्य मृत्यु जैसे अनर्थ का कारण बन जाता है।

राजा लोग पहले अपने पास 'तालपुट' नामक भयकर विष (साईनाइड जैसा विष) प्राय: रखा करते थे। आपत्ति आने पर घुट-घुट कर मरने की अपेक्षा वे यह विष खाकर मर जाते थे। श्रेणिक राजा था, इसलिए बन्दीखाने मे बन्द करते समय संभवत: उसकी पूरी तरह तलाशी न ली गई हो, अत: यह विष राजा श्रेणिक के पास ही रह गया होगा। इसलिए जेल में उसे विष कहां से प्राप्त हुआ ? यह शका निराधार है।

कोणिक का पितृ-शोक / चम्पा को राजधानी बनाया

मूल–तएणं से कूणिए कुमारे मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे रोयमाणे कंदमाणे, सोयमाणे विलवमाणे एवं वयासी–अहो णं मए अधन्नेणं अपुन्नेणं अकय-पुन्नेणं दुट्ठु कयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चंतनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करंतेणं, मम मूलगं चेव णं सेणिए राया कालगए त्तिकट्टु ईसर-तलवर जाव० संधिवाल-सद्धिं संपरिवुडे रोयमाणे इड्ढिसक्कार-

समुदएणं सेणियस्स रन्नो नीहरणं करेइ। करित्ता बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ।

तएणं से कूणिए कुमारे एएणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अन्नया कयाइ अंतेउर-परियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए रायगिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव चंपा नगरी तेणेव उवागच्छइ। तत्थवि णं विउलभोगसमिइ-समन्नागए कालेणं अप्पसोए जाए यावि होत्था।

तएणं से कूणिए राया अन्नया कयाइ कालादीए दस कुमारे सद्दावेइ-सद्दावित्ता रज्जं च जाव जणवयं च एक्कारसभाए विरिंचइ, विरिंचित्ता सयमेव रज्जसिरिं करेमाणे पालेमाणे विहरइ ॥ ५५ ॥

छाया—ततः खलु सः कूणिकः कुमारो मुहूर्त्तान्तरेण आस्वस्थः सन् रुदन् क्रन्दन् शोचन् विलपन् एवमवादीत्—अहो खलु मया अधन्येन अपुण्येन अकृत-पुण्येन दुष्ठु कृतं श्रेणिकं राजानं प्रियं दैवतमत्यन्तस्नेहानुरागरक्त निगड़-बन्धन कुर्वता, मम मूलकं चैव खलु श्रेणिको राजा कालगतः, इति कृत्वा ईश्वर-तलवर यावत् सन्धिपालैः सार्धं संपरिवृतो रुदन् ३-(क्रन्दन्, शोचन्, विलपन्) महता ऋद्धि- सत्कार-समुदयेन श्रेणिकस्य राज्ञो नीहरणं करोति, कृत्वा बहूनि लौकिकानि मृतकृत्यानि करोति।

ततः खलु स. कूणिकः कुमार एतेन महता मनोमानसिकेन दुःखेनाभिभूतः सन् अन्यदा कदाचित् अन्तःपुर-परिवार-संपरिवृतः सभाण्डमत्तोपकरणमादाय राजगृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव चम्पा-नगरी तत्रैवोपागच्छति, तत्रापि च विपुल-भोग-समितिसमन्वागत. कालेन अल्पशोको जातश्चाप्यभूत्।

ततः खलु सः कूणिको राजा अन्यदा कदाचित् कालिकादिकान् दसकुमारान् शब्दापयित्वा राज्यं च यावत् जनपदं च एकादश-भागान् विभजति, विभज्य स्वयमेव राज्यश्रियं कुर्वन् पालयन् विहरति ॥ ५५ ॥

पदार्थान्वय·—तएण—तत्पश्चात्, **से कूणिए कुमारे**—वह कूणिक कुमार, **मुहुत्ततरेण**—कुछ ही क्षणों के अनन्तर, **आसत्थे समाणे**—स्वस्थ हो जाने पर, **रोयमाणे**—रोते हुए, **कंदमाणे**—क्रन्दन करते हुए, **सोयमाणे**—शोकाकुल होते हुए, **विलवमाणे**—विलाप करते हुए, **एव वयासी**—इस प्रकार कहने लगा, **अहो णं मए**—ओह मै, **अधन्नेणं**—अभागा हू, **अपुन्नेणं**—अधर्मी हू, **अकय-पुन्नेणं**—पुण्य-हीन हूं, **दुट्ठु कयं**—मैने दुष्कृत्य किया है,

जं—जो कि, **सेणियं रायं**—राजा श्रेणिक को, (जो मेरे) **पियं देवयं अच्चंतनेहाणु रागरत्तं**—प्रिय थे, देव तुल्य थे, अत्यन्त स्नेहानुराग-रंजित थे, **नियलबंधणं करंतेणं**—उन्हे हथकडियों बेडियों से बन्धन में डालते हुए, **मम मूलगं चेव**—तो निश्चय ही मै ही इसका मूल कारण हूं, (जो कि), **सेणिए राया कालगए**—राजा श्रेणिक कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुए हैं, **त्तिकट्टु**—ऐसा कह कर, **ईसर-तलवर-जाव संधिवालसद्धिं**—ईश्वर तलवर और सधि पाल आदि, **संपरिवुडे**—से घिरे हुए, **रोयमाणे०**—रुदन-क्रन्दन-विलाप आदि करते हुए, **महया**—महान्, **इड्ढिसक्कार-समुदएणं**—समृद्धि सत्कार एव समारोह के साथ, **सेणियस्स रन्नो नीहरणं करेइ**—राजा श्रेणिक के शव का अन्तिम सस्कार करता है, **करित्ता**—करके, **बहूइ**—बहुत प्रकार के, **लोइयाइं**— लौकिक, **मयकिच्चाइं करेइ**—मृतक-कृत्यो को करता है।

तएणं से कूणिए कुमारे—तदनन्तर वह कूणिक कुमार, **एएणं महया**—इस महान्, **मणोमाणसिएणं**—अपने मानसिक, **दुक्खेणं**—दु:ख से, **अभिभूए समाणे**—अभिभूत हो जाने पर, **अन्नया कयाइ**—फिर कभी, **अंतेउरपरियाल-संपरिवुडे**—अन्त:पुर—महारानियो और परिवार से युक्त अर्थात् घिरा हुआ, **सभंडमत्तोवगरणमायाए**—अपने वस्त्र-पात्र आदि जीवन-साधनो के साथ, **रायगिहाओ**—राजगृह नगरी से, **पडिनिक्खमइ**— बाहर निकलता है, **पडिनिक्खमित्ता**—और बाहर निकलकर, **जेणेव चपा नयरी**—जहां पर चम्पा नाम की नगरी थी, **तेणेव**—वही पर, **उवागच्छइ**—आता है। **तत्थ वि णं**—और वहा पर आकर, **विउलभोगसमिइ-समन्नागए**—विपुल-भोग सामग्री उसने प्राप्त की, (और) **कालेणं**—और समय पाकर, **अप्पसोए जाए यावि होत्था**—अल्प शोक वाला अर्थात् शोक-रहित हो गया।

तएणं कोणिए राया—तत्पश्चात् वह राजा कूणिक, **अन्नया कयाइ**—किसी अन्य समय मे, **कालादीए दस कुमारे**—काल आदि अपने दस राजकुमार भाइयो को, **सद्दावेइ**—बुलवाता है, **सद्दावित्ता**—और बुलवाकर, **रज्जं च**—समस्त राज्य-वैभव तथा, **जणवय च**—जनपदो को, **एक्कारसभाए**—ग्यारह भागो में, **विरिंचइ**—बाट देता है, **विरिंचित्ता**—और बाट कर, **सयमेव**—खुद ही, **रज्जसिरिं करेमाणे**—राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करते हुए, **पालेमाणे**—उसका पालन करते हुए, **विहरइ**—विहरण करने लगा।

मूलार्थ—तदनन्तर वह राजा कूणिक कुछ क्षणों के बाद कुछ स्वस्थ होकर रुदन, क्रन्दन, शोक और विलाप करता हुआ इस प्रकार बोला—"ओह मै अभागा हूं, पापी हूं, अकृत-पुण्य हूं, मैंने बहुत ही दुष्ट कार्य किया है जो कि मैंने राजा श्रेणिक को जो कि मेरे अत्यन्त प्रिय, देवतुल्य और गुरु के समान एवं स्नेहानुराग-रंजित थे उन्हें हथकड़ियों एवं बेड़ियों से जकड़ दिया। तो निश्चय पूर्वक मैं ही उसका मूल कारण

हूं जो राजा श्रेणिक मृत्यु को प्राप्त हुए। इस प्रकार हार्दिक दु:ख व्यक्त करके ईश्वर, तलवर और सन्धिपाल आदि से घिरे हुए–रोते, शोक करते और विलाप करते हुए महान् ऋद्धि-समृद्धि के साथ उसने राजा श्रेणिक को देखा और अनेकविध लौकिक कृत्यो के साथ उनका अन्तिम-संस्कार किया।

तदनन्तर वह कोणिक कुमार अत्यन्त मानसिक पीड़ा से पीडित होने पर, एक बार अपनी महारानियों एवं परिवार के साथ अपने खान-पान एवं वस्त्रों आदि के सहित राजगृह नगर से बाहर निकला और जहां पर चम्पा नगरी थी वहां पर आया, वहां पर अनेकविध भोग-समुदाय को प्राप्त करता हुआ कुछ समय पाकर शोक-रहित हो गया अर्थात् अपने पितृ-शोक को भूल गया।

तत्पश्चात् एक बार उस राजा कोणिक ने अपने कालादिक दस राजकुमार भाइयों को बुलवाया और बुलवा कर प्राप्त राज्य-वैभव और समस्त जनपदों को उसने ११ भागों मे बांट दिया और बाटकर स्वयं राज्य-श्री का उपभोग एवं पालन करने लगा।

टीका–"बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं" इन शब्दो से स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि कोणिक ने पिता की अन्त्येष्टि करते समय जो भी कृत्य किए वे लौकिक थे, उनका अध्यात्म-जगत से कोई सम्बन्ध नही था।

कोणिक को पितृ-वियोग का इतना गहरा आघात लगा कि आखिर उसने राजगृह नगर का ही परित्याग कर दिया और चम्पा को उसने अपनी राजधानी बना लिया।

"ईश्वर" "तलवर" आदि शब्द उस समय अधिकारी वर्ग के लिए प्रयुक्त होते थे।

इस नगरी का नाम "चम्पा" इसलिए पडा था कि जहां पर यह नगरी बसाई गई थी उस स्थान पर पहले हजारों चम्पक वृक्ष थे, अत: वह नगरी 'चम्पा' नाम से प्रसिद्ध हुई।

वेहल्ल कुमार का वर्णन

मूल–तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कूणियस्स रन्नो सहोयरे कणीयसे भाया वेहल्ले नामं कुमारे होत्था सोमाले जाव सुरूवे। तएणं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स सेणिएणं रन्ना जीवंतएणं चेव सेयणए गंधहत्थी अट्ठारसवंके य हारे पुव्वदिन्ने ॥ ५६ ॥

छाया–तत्र खलु चम्पायां नगर्यां श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्रश्चेलनाया देव्या आत्मजः

कूणिकस्य राज्ञः सहोदरः कनीयान् भ्राता वेहल्लो नाम कुमार आसीत्, सुकुमारो यावत् सुरूपः। ततः खलु तस्य वेहल्लस्य कुमारस्य श्रेणिकेन राज्ञा जीवता चैव सेचनको गन्धहस्ती अष्टादशवक्रो हारश्च पूर्वं दत्तः ॥ ५६ ॥

पदार्थान्वयः—तत्थ णं चंपाए नयरीए—वहा उस चम्पा नामक नगरी में, **सेणियस्स रन्नो पुत्ते**—राजा श्रेणिक का पुत्र, **चेल्लणाए देवीए अत्तए**—चेलना देवी का आत्मज, **कूणियस्स रन्नो सहोयरे**—राजा कूणिक का सहोदर, (सगा) **कणीयसे भाया**—छोटा भाई, **वेहल्ले नामं**—वेहल्ल नाम का, **कुमारे होत्था**—राजकुमार था, **सोमाले जाव सुरूवे**—सुकुमार यावत् सुरूप था, **तएणं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स**—पहले कभी उस वेहल्ल कुमार को, **सेणिएणं रन्ना**—राजा श्रेणिक ने, **जीवंतएणं चेव**—अपने जीवन-काल में ही, **सेयणए गन्धहत्थी**—सेचनक गन्धहस्ती, **अट्ठारसवंके हारे**—अठारह लडियों वाला हार, **पुव्वदिन्ने**—पहले ही दे दिया था।

मूलार्थ—उस चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक का ही पुत्र और महारानी चेलना का आत्मज तथा राजा कूणिक का सगा छोटा भाई वेहल्ल नाम का राजकुमार था जो कि सुकुमार एव सुन्दर रूप वाला था। उस वेहल्ल कुमार को राजा श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में ही सेचनक नाम का गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार पहले ही दे दिया था।

टीका—"आत्मज" शब्द का भाव यह है कि कोणिक और वेहल्ल कुमार की माता एक ही थी। इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए वेहल्ल कुमार को "सहोयरे" सहोदर एक ही माता के उदर से उत्पन्न कहा है।

दोनो का पिता तो राजा कूणिक था ही। यह स्पष्टीकरण इसलिए दिया गया है कि राजा श्रेणिक की अनेक रानिया थी, उन सबके पुत्र भी राजा श्रेणिक के ही पुत्र थे, किन्तु वे सब राजा कूणिक के सगे भाई न थे।

वेहल्ल कुमार का गंगा स्नानार्थ गमन

मूल—तएणं से वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गन्धहत्थिणा अंतेउर परियाल-संपरिवुडे चंपं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता अभिक्खणं-अभिक्खणं गंगं महानइं मज्जणयं ओयरइ ॥ ५७ ॥

छाया—ततः खलु सः वेहल्लः कुमारः सेचनकेन गन्धहस्तिना अन्तःपुर-परिवार-संपरिवृतः, चम्पायाः नगर्याः मध्यंमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं गंगां (गंगायां) महानदीं (महानद्यां) मज्जनकमवतरति ॥ ५७ ॥

पदार्थान्वयः—तए ण—तब, **से वेहल्ले कुमारे**—वह वेहल्ल कुमार, **सेयणएणं गंध-हत्थिणा**—सेचनक गन्धहाथी पर (सवार होकर), **अतेउरपरियाल-संपरिवुडे**—अपनी रानियो और शेष परिवार एव परिकर आदि के सहित, **चंपं नगरिं**—चम्पा नगरी के, **मज्झं-मज्झेणं**—बीचों-बीच के मार्ग से, **निग्गच्छइ**—(नगरी से) बाहर जाता है, **निग्गच्छित्ता**—और बाहर जाकर, **अभिक्खणं-अभिक्खणं**—बारम्बार, **गंगं महानइं**—महानदी गंगा में, **मज्जणयं**—स्नानार्थ, **ओयरइ**—अवतरित होता है—उसमे प्रवेश करता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह वेहल्ल कुमार सेचनक गन्धहस्ती पर सवार होकर अपनी रानियों और निजी परिवार एव दास-दासियो के साथ चम्पा नगरी के बीचों-बीच के मार्ग से होते हुए नगरी से बाहर निकला और निकलकर महानदी गंगा में बार-बार स्नान करने के लिए उतरा—अर्थात् गंगा नदी में प्रविष्ट हुआ।

टीका—इस सूत्र द्वारा स्पष्ट हो रहा है कि कूणिक जब राजगृह नगरी से चम्पा नगरी मे आया तो वेहल्ल कुमार आदि अपने सभी भाइयों को भी साथ ही ले गया था।

वेहल्ल कुमार ने अपने पिता के दिए हुए गन्धहस्ती और अठारह लड़ियो वाले हार को भी साथ ही लाना था और वह लाया भी। उसी हाथी पर बैठ कर वह अपने परिवार के साथ गंगा नदी पर स्नान करने के लिए गया था।

गंगा-स्नान और आमोद-प्रमोद

मूल—तएणं सेयणए गन्धहत्थी देवीओ सोंडाए गिण्हइ, गिण्हित्ता अप्पेगइयाओ पुट्ठे ठवेइ, अप्पेगइयाओ खंधे ठवेइ, एवं अप्पेगइयाओ कुंभे ठवेइ, अप्पेगइयाओ सीसे ठवेइ, अप्पेगइयाओ दंतमुसले ठवेइ, अप्पेगइयाओ सोंडाए गहाय उड्ढं वेहासं उव्विहइ, अप्पेगइयाओ सोंडागयाओ अंदोलावेइ, अप्पेगइयाओ दंतंतरेसु नीणेइ, अप्पेगइयाओ सीभरेणं ण्हाणेइ, अप्पेगइयाओ अणेगेहिं कीलावणेहिं कीलावेइ ॥ ५८ ॥

छाया—ततः खलु सेचनको गन्धहस्ती देवीः शुण्डया गृह्णाति, गृहीत्वा अप्येकिकाः पृष्ठे स्थापयति, अप्येकिकाः स्कन्धे स्थापयति, अप्येकिकाः कुम्भे स्थापयति, अप्येकिकाः शीर्षे स्थापयति, अप्येकिकाः दन्तमुशले स्थापयति, अप्येकिकाः शुण्डया गृहीत्वा ऊर्ध्व वैहायसमुद्वहते, अप्येकिकाः शुण्डागता आन्दोलयति, अप्येकिकाः दन्तान्तरेषु नयति, अप्येकिकाः शीकरेण स्नपयति, अप्येकिकाः अनेकैः क्रीडनकैः क्रीडयति ॥ ५८ ॥

पदार्थान्वयः—तएण—तब वह, **सेयणए गंधहत्थी**—सेचनक गन्धहस्ती, **देवीओ**—वेहल्ल

कुमार की रानियो को, **सोंडाए गिण्हइ**—सूंड से पकडता है (और), **गिण्हित्ता**—पकडकर, **अप्पेगइयाओ**—उनमे से किसी को, **पुट्ठे ठवेइ**—अपनी पीठ पर बिठा लेता है, **अप्पेगइयाओ**—किसी को, **खंधे ठवेइ**—कन्धे पर बिठला लेता है, **एवं**—इस प्रकार, **अप्पेगइयाओ**—किसी को अपने कुम्भस्थल पर (अर्थात् गर्दन के पास), **ठवेइ**—स्थापित कर लेता है, **अप्पेग-इयाओ**—किसी को, **सीसे ठवेइ**—सिर पर बिठा लेता है, **अप्पेगइयाओ**—और किसी को, **दतमुसले ठवेइ**—दातों पर बिठा लेता है, **अप्पेगइयाओ**—कुछ को, **सोडाए गहाय**—सूंड से पकड़ कर, **उड्ढं वेहासं उव्विहइ**—ऊंचे आकाश में उछाल कर पुनः दांतों पर रख लेता है, **अप्पेगइयाओ**—किसी को, **सोंडागयाओ**—सूड से उठाकर, **अंदोलावेइ**—झुलाता है, **अप्पेगइयाओ**—कुछ को, **दंततरेसु नीणेइ**—दातों के अन्तर मे (दोनों दातो के बीच में) ले जाता है, **अप्पेगइयाओ**—और कुछ को, **सीभरेणं**—जल-सीकरो अर्थात् जल की फुहारो से, **ण्हाणेइ**—स्नान करवाता है, **अप्पेगइयाओ**—अनेक स्त्रियों को, **अणेगेहिं**—अनेक प्रकार की, **कीलावणेहिं**—क्रीडाओ से, **कीलावेइ**—खेल खिलाता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सेचनक हाथी वेहल्ल कुमार की रानियों को सूड से पकडता है और पकड़कर किसी को अपनी पीठ पर बिठा लेता है, किसी को कंधे पर, किसी को कुम्भ स्थल पर, किसी को सिर पर, किसी को दांतो पर बिठा लेता है, किसी को सूंड से पकड़ कर ऊपर आकाश मे उछालता है, किसी को सूंड से पकड़ कर झुलाता है, किसी को दांतों के मध्यभाग में बिठा लेता है, किसी को जल की फुहारों से स्नान करा देता है। इस प्रकार वह अनेक प्रकार की क्रीड़ाओ द्वारा खेल खिलाता है।

टीका—गीतार्थ—शास्त्र-मर्मज्ञ मुनियों का यह कथन है कि इस गन्धहस्ती को जाति-स्मरण ज्ञान था। इसका मतिज्ञान भी अत्यन्त निर्मल था, इसी कारण यह उपर्युक्त जल-क्रीड़ाए कर रहा था।

''गन्धहस्ती'' ऐसा हाथी होता है जिसके शरीर की विशेष गन्ध को पाते ही अन्य हाथी त्रस्त हो जाते है और हथनिया उसकी गध से आकृष्ट होकर स्वयं ही उसके पास आ जाती हैं।

इससे यह भी प्रमाणित होता है कि पचेन्द्रिय जीवों को प्रशिक्षित करके विशिष्ट ज्ञान भी दिया जा सकता है।

प्रजा की प्रतिक्रिया

उत्थानिका—अब सूत्रकार इस घटना के परिणाम पर प्रकाश डालते हैं—

मूल—तएणं चंपाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-महाप-

हपहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया ! वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गन्धहत्थिणा अंतेउर० तं चेव जाव अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ, तं एस णं वेहल्ले कुमारे रज्ज-सिरिफलं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ, नो कूणिए राया ॥ ५९ ॥

छाया—ततः खलु चम्पायां नगर्या शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-महापथ-पथेषु बहुजनोऽन्योन्यस्य एवमाख्यापयति यावत् प्ररूपयति एवं खलु देवानुप्रियाः! वेहल्लः कुमारः सेचनकेन गन्धहस्तिना अन्तःपुर० तदेव यावत् अनेकैः क्रीडनकैः क्रीडयति तदेष खलु वेहल्लः कुमारो राज्यश्रीफलं प्रत्यनुभवन् विहरति नो कूणिको राजा ॥ ५९ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **चंपाए नयरीए**—उस चम्पा नगरी में, **सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-महापहपहेसु**—सिंघाड़े जैसे त्रिकोण मार्गो, चौराहों, राजमार्गो पर, **बहुजणो**—अनेक व्यक्ति, **अन्नमन्नस्स**—परस्पर (एक-दूसरे से), **एवमाइक्खइ**—इस प्रकार कहने लगे, **जाव परूवेइ**—यावत् आलोचनात्मक विचार करते हैं, **एवं खलु देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रियो ! क्या यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि, **वेहल्ले कुमारे**—वेहल्ल कुमार ही, **सेयणएणं गंधहत्थिणा**—इस गधहस्ती को पाकर, **अंतेउर०**—अपनी रानियो एवं अपने निजी परिवार के साथ, **तं चेव जाव० अणेगेहिं कीलावणएहिं**—वही अनेक प्रकार की क्रीडाओ द्वारा, **कीलावेइ**—क्रीड़ाएं करता है—खेल खेलता है, **तं एस णं वेहल्ले कुमारे**— इसलिए यह वेहल्ल कुमार ही, **रज्जसिरिफलं**—राज्य लक्ष्मी-राजसी ऐश्वर्य का, **पच्चणुब्भ- वमाणे**—अनुभव करता हुआ उससे लाभ उठाता हुआ, **विहरइ**—सुखपूर्वक जी रहा है, **नो कूणिए राजा**—कूणिक राजा होते हुए भी राज्य श्री का सुख नहीं उठा पा रहा था।

मूलार्थ—तत्पश्चात् अर्थात् वेहल्ल कुमार की क्रीड़ाओ को देखकर चम्पा नगरी के तिराहो, चौराहों और राजमार्गो पर खडे अनेक व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे से इस प्रकार कहते हुए आलोचना करने लगे कि देवानुप्रियो ! क्या यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वेहल्ल कुमार ही इस गन्धहस्ती को पाकर अपनी रानियो एवं अपने निजी परिवार के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ाए करता हुआ राज्य-सुख का पूरा-पूरा अनुभव कर रहा है ? अर्थात् वही राज-ऐश्वर्य का उपभोग कर रहा है, कूणिक राजा होते हुए भी राजसी ऐश्वर्य का पूर्ण रूप से उपभोग नही कर पा रहा।

टीका—इस सूत्र द्वारा चम्पा नगरी के त्रिकोण मार्गों, चौराहों आदि का जो वर्णन

किया गया है उससे चम्पानगरी की विशालता और सुव्यवस्थित रचना का बोध हो रहा है।

प्राचीन काल से लोगों की यह आदत रही है कि एक-दूसरे की अकारण ही आलोचना करते रहते है। चम्पा नगरी के नाग रिक भी इसी प्रकार की आलोचना कर रहे थे–इसे ही ''लोकप्रवाद'' कहा जाता है।

पद्मावती की ईर्ष्या

मूल–तएणं तीसे पउमावईए देवीए इमीसे कहाए लद्धट्ठाए समाणीए अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंध-हत्थिणा जाव अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ, तं एस णं वेहल्ले कुमारे रज्जसिरिफलं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ, नो कूणिए राया, तं किं अम्हं रज्जेण वा जाव जणवएण वा जइ णं अम्हं सेयणगे गंधहत्थी नत्थि? तं सेयं खलु ममं कूणियं रायं एयमट्ठं विन्नवित्तए, त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० जाव एवं वयासी–एवं खलु सामी ! वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंधहत्थिणा जाव अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ, तं किण्णं सामी ! अम्हं रज्जेण वा जाव जणवएण वा जइणं अम्हं सेयणए गंधहत्थी नत्थि ? ॥ ६० ॥

छाया–ततः खलु तस्याः पद्मावत्या देव्या अस्या कथायाः लब्धार्थायाः सत्या अयमेतद्रूपो यावत् समुदपद्यत–एवं खलु वेहल्लः कुमारः सेचनकेन गन्धहस्तिना यावद् अनेकैः क्रीड़नकै· क्रीडयति, तदेवं खलु वेहल्लः कुमारो राज्यश्रीफलं प्रत्यनुभवन् विहरति नो कूणिको राजा, तत्किमस्माकं राज्येन यावज्जनपदेन वा यदि खल्वस्माकं सेचनको गन्धहस्ती नास्ति, तच्छ्रेयः खलु मम कूणिकं राजान-मेतमर्थं विज्ञपयितुम्, इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य यत्रैव कूणिको राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य करतल० यावदेवमब्रवीत्–एवं खलु स्वामिन् ! वेहल्लः कुमारः सेचनकेन गन्धहस्तिना यावद् अनेकैः क्रीडनकैः क्रीडयति, तत्किं खलु स्वामिन् ! अस्माकं राज्येन वा यावद् जनपदेन वा यदि खल्वस्माकं सेचनको गन्धहस्ती नास्ति ॥ ६०॥

पदार्थान्वयः–तएणं–तत्पश्चात्, **तीसे पउमावईए देवीए**–उस पद्मावती देवी को, **इमीसे कहाए**–इस समाचार के, **लद्धट्ठाए समाणीए**–प्राप्त होने पर, **अयमेयारूवे**– इस प्रकार का विचार, **जाव०**–यावत्, **समुप्पज्जित्था**–उत्पन्न हुआ, **एवं खलु**–इस प्रकार तो,

वेहल्ले कुमारे–वेहल्ल कुमार ही, **सेयणएण गन्धहत्थिणा**–सेचनक हाथी के द्वारा, **जाव**–यावत्, **अणेगेहिं कीलावणएहिं**–अनेक प्रकार के खेल, **कीलावेइ**– खेल रहा है, **तं एस णं वेहल्ले कुमारे**–अत: यह वेहल्ल कुमार ही, **रज्जसिरिफलं**– राज्य-वैभव-प्राप्ति के फल का, **पच्चणुब्भवमाणे**–अनुभव करता हुआ, **विहरइ**–विहार कर रहा है, अर्थात् जीवन का आनन्द लूट रहा है, **नो कूणिए राया**–राजा कूणिक नही। **तं किं अम्हं**–(ऐसी दशा में) हमारा, **रज्जेण वा जाव० जणवएण वा**–इस राज्य और इस जनपद (पर अधिकार का क्या प्रयोजन रह जाता है), **जइ णं अम्हे**–यदि हमारे पास, **सेयणगे गन्धहत्थी नत्थि**–सेचनक हाथी नही है, **तं सेय खलु मम**–इसलिए अब इसी मे मेरा श्रेय है कि, **कूणियं राय**–(मैं) राजा कूणिक से, **एयमट्ठं**–यह बात, **विन्नवित्तए**–निवेदन कर दू, **त्ति कट्टु**–ऐसा करके अर्थात् यह बात मन में आते ही, **एव सपेहेइ**–यह निश्चय करती है (और), **संपेहित्ता**–निश्चय करके, **जेणेव कूणिए राया**–जहा पर राजा कूणिक था, **तेणेव उवागच्छइ**–वहीं पर आती है (और), **उवागच्छित्ता**–वहा पहुच कर, **करयल० जाव**–दोनो हाथ जोडते हुए, **एवं वयासी**– इस प्रकार बोली, **एवं खलु सामी**–हे स्वामिन् ! (जब कि), **वेहल्ले कुमारे**–वेहल्ल कुमार ही, **सेयणएण गंधहत्थिणा**–सेचनक हाथी को पाकर, **अणेगेहिं कीलावणएहि**– अनेक प्रकार के खेल, **कीलावेइ**–खेलता है, **तं किण्ण सामी अम्हं**–तो हे स्वामी । इससे हमे क्या लाभ है, **रज्जेण वा जणवएण वा**– इस राज्य-वैभव और इस विशाल राज्य से, **जइणं अम्हं**–जब कि हमारे पास, **सेयणए गन्धहत्थी**–यह सेचनक हाथी ही, **नत्थि**–नहीं है ? ।

मूलार्थ–तत्पश्चात् उस महारानी पद्मावती को जब यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसके मन मे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि इस प्रकार तो वेहल्ल कुमार ही, सेचनक हाथी के द्वारा अनेक प्रकार के खेल खेल रहा है, तब तो वह वेहल्ल कुमार ही वस्तुत: राज्य-प्राप्ति का फल अनुभव करता हुआ, जीवन का आनन्द लूट रहा है, राजा कूणिक नहीं। ऐसी दशा में हमारा इस राज्य-वैभव और इतने बड़े प्रदेश की प्राप्ति का क्या प्रयोजन रह जाता है ? यदि हमारे पास सेचनक गंधहस्ती ही नहीं है। अब मेरा इसी में श्रेय है कि मैं यह बात राजा कूणिक से निवेदन कर दूं। ऐसा करके अर्थात् यह बात मन में आते ही वह यह निश्चय करती है और निश्चय करते ही वह जहां राजा कूणिक था वहां आती है और वहां पहुच कर दोनों हाथ जोड़ते हुए इस प्रकार कहती है–"हे स्वामिन् । जब कि वेहल्ल कुमार ही सेचनक हाथी को पाकर अनेक प्रकार के खेल खेलता है तो हे स्वामी ! इस राज्य-वैभव और इतने विशाल राज्य से हमें क्या लाभ है ? जब कि हमारे पास सेचनक हाथी ही नहीं है।

टीका–इस वर्णन द्वारा सूत्रकार ने व्यर्थ की लोक-चर्चाओ की ओर ध्यान देने के

दुष्परिणामों का वर्णन कर दिया है और यह भी बताया है कि उस समय पारिवारिक शान्ति भग हो जाती है जब स्त्रियां देवर, जेठ आदि से ईर्ष्या करने लगती हैं। दोनों भाइयो और परस्पर सम्बन्धी राज्यों मे भविष्य मे जो कलह उत्पन्न हुई वह रानी पद्मावती के हृदय की ईर्ष्या का ही दुष्परिणाम है।

इसमें मनुष्य को यथाप्राप्त धन से सन्तुष्ट न रहने का दुष्परिणाम भी बताया गया है।

स्त्री-हृदय विशेष ईर्ष्यालु होता है, इस मानवीय कमजोरी का भी शास्त्रकार ने सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है।

पद्मावती का त्रियाहठ

मूल–तएणं से कूणिए राया पउमावईए देवीए एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ। तएणं सा पउमावई देवी अभिक्खणं-अभिक्खणं कूणियं रायं एयमट्ठं विन्नवेइ।

तएणं से कूणिए राया पउमावईए देवीए अभिक्खणं-अभिक्खणं एयमट्ठं विन्नविज्जमाणे अन्नया कयाइ वेहल्लं कुमारं सद्दावेइ, सद्दावित्ता सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं जायइ ॥ ६१ ॥

छाया–ततः खलु स कूणिको राजा पद्मावत्याः देव्याः एतमर्थं नो आद्रियते, नो परिजानाति, तूष्णीकः संतिष्ठते।

ततः खलु सा पद्मावती देवी अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं कूणिकं राजानं एतमर्थं विज्ञापयति। ततः खलु स कूणिको राजा पद्मावत्याः देव्याः अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं एतमर्थं विज्ञाप्यमानः अन्यदा कदाचित् वेहल्लं कुमार शब्दयति, शब्दयित्वा सेचनकं गन्धहस्तिनं अष्टादशवक्रं च हार याचते ॥ ६१ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं–तब, **से कूणिए राया**–वह राजा कूणिक, **पउमावईए देवीए**–महारानी पद्मावती द्वारा, **एयमट्ठ**–निवेदित की गई बात को, **नो आढाइ**–कोई आदर नहीं देता अर्थात् उसे कोई महत्त्व नही देता, **नो परिजाणइ**–न ही उसे अच्छा मानता है, **तुसिणीए संचिट्ठइ**–अतः मौन धारण करके बैठा रहता है। **तएणं**–तब, **सा पउमावई देवी**–वह महारानी पद्मावती, **अभिक्खणं-अभिक्खणं**–बारबार, **कूणियं रायं**–राजा कूणिक के समक्ष, **एयमट्ठं विन्नवेइ**–वही बात दोहराती है।

तएणं–तब, **से कूणिए राया**–वह राजा कूणिक, **पउमावईए देवीए**–महारानी पद्मावती के द्वारा–**अभिक्खणं-अभिक्खणं**–बारम्बार, **एयमट्ठं**–उसी बात को, **विन्नविज्जमाणे**–

कहने पर, **अन्नया कयाइ**—कुछ समय बाद, **वेहल्लं कुमारं सद्दावेइ**— वेहल्ल कुमार को बुलवाता है, **सद्दावित्ता**—और बुलवा कर उससे, **सेयणगं गन्धहत्थिं**—सेचनक गन्धहस्ती, **अट्ठारसवंकं च हारं**—और अठारह लडियों वाला हार, **जायइ**—मांगता है।

मूलार्थ—तब वह राजा कूणिक महारानी पद्मावती देवी की बातों को कोई महत्त्व नहीं देता और न ही वह उसकी बातों को अच्छा समझता है, बल्कि (उपेक्षा भाव से) चुप बैठा रहता है। तब वह महारानी पद्मावती बार-बार राजा कूणिक के समक्ष अपनी बात को दोहराती है। इस प्रकार महारानी पद्मावती के द्वारा बार-बार अपनी बातों को दोहराने पर राजा कूणिक कुछ समय के बाद वेहल्ल कुमार को बुलवाता है और बुलवा कर उससे सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार मांगता है।

टीका—राजा कोणिक रानी पद्मावती की बातो को लोभ-युक्त, असन्तुष्ट वृत्ति की तथा निरर्थक-सी जान कर उनको कोई महत्व नहीं देता और न ही उन बातों को अच्छा समझता है, अत: वह मुस्कुरा कर चुप रह जाता है। आखिर कूणिक राजा था, वह राजनीति को अच्छी तरह समझता था, अत: वह उसे कुछ कहने की अपेक्षा मौन धारण कर लेना ही उचित मानता है।

किन्तु **'तिरिया-हठ'** प्रसिद्ध ही है, अत: रानी हठ-पूर्वक बार-बार अपनी बात को दोहराती है।

''रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान'' की कहावत के अनुसार आखिर कूणिक उसकी बातो को मान लेता है, फिर भी उसे टालने का यत्न करता है। ''अन्नया कयाइ'' शब्दों द्वारा यह बात व्यक्त होती है कि वह यह समझता रहा कि सम्भवत: समय पाकर पद्मावती शायद हाथी और हार के लोभ को छोड़ दे, किन्तु उसके हठ के सामने आखिरकार उसे झुक जाना पडा और उसने वेहल्ल कुमार को बुलवा कर उसके समक्ष हाथी और हार की माग रख ही दी।

स्त्री के सामने पुरुष झुक ही जाता है, यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है।

वेहल्ल कुमार का कोणिक को युक्तियुक्त उत्तर

मूल—तएणं से वेहल्ले कुमारे कूणियं रायं एवं वयासी—''एवं खलु सामी ! सेणिएणं रन्ना जीवंतेणं चेव सेयणए गन्धहत्थी अट्ठारसवंके य हारे दिन्ने, तं जइ णं सामी ! तुब्भे ममं रज्जस्स य जणवयस्स य अद्धं दलह तो णं अहं तुब्भं सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं दलयामि।

तएणं से कूणिए राया वेहल्लस्स कुमारस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो

परिजाणइ, अभिक्खणं-अभिक्खणं सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं जायइ ॥ ६२ ॥

छाया—ततः खलु स वेहल्लः कुमारः कूणिकं राजानमेवमवादीत्—एवं खलु स्वामिन् ! श्रेणिकेन राज्ञा जीवता चैव सेचनको गन्धहस्ती अष्टादशवक्रश्च हारो दत्तः, तद् यदि खलु स्वामिन् ! यूयं मह्यं राज्यस्य च यावत् जनपदस्य च अर्ध दत्त तदा खल्वहं युष्मभ्यं सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारं ददामि।

ततः खलु स कूणिको राजा वैहल्लस्य कुमारस्य एतमर्थ नो आद्रियते, नो परिजानाति, अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारं याचते ॥ ६२ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से वेहल्ले कुमारे**—वह वेहल्ल कुमार, **कूणियं रायं एवं वयासी**—कोणिक राजा को इस प्रकार बोला, **एवं खलु सामी**—हे स्वामी ! इस प्रकार निश्चय ही, **सेणिएणं रन्ना**—राजा श्रेणिक ने, **जीवंतेण चेव**—जीवित अवस्था मे ही मुझे, **सेयणए गंधहत्थी**—सेचनक गन्धहस्ती (और), **अट्ठारसवंके य हारे दिन्ने**—अठारह लडियो वाला हार दिया था, **तं जइ णं सामी**—इसलिए हे स्वामी ! यदि, **तुब्भे**—आप, **ममं रज्जस्स**—मुझे राज्य का, **य**—और, **जणवयस्स य**—जनपद का, **अद्धं दलह**—आधा भाग देवें, **तो णं अहं**—तो मैं, **तुब्भं**—आपको, **सेयणयं गंधहत्थिं**—सेचनक गन्धहस्ती, **च**—और, **अट्ठारसवंकं च हारं**—अठारह लड़ियो वाला हार, **दलयामि**—दे देता हूं।

तएणं—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह कोणिक राजा, **वेहल्लस्स कुमारस्स**—वेहल्ल कुमार के, **एयमट्ठं**—इस अर्थ (बात) को सुनकर, **नो आढाइ**—न तो उसकी बात को आदर देता है, **नो परिजाणइ**—न उसकी बात मानता है, **अभिक्खणं-अभिक्खणं**—बार-बार, **सेयणयं गंधहत्थिं**—सेचनक गन्धहस्ती, **अट्ठारसवंकं हारं**—अठारह लडियो वाला हार, **जायइ**—मागता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस वेहल्ल कुमार ने कोणिक राजा को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—"हे स्वामी ! निश्चय ही मुझे राजा श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार दिया था, (अगर आप इन्हें पाना ही चाहते हैं तो) हे स्वामी ! आप मुझे राज्य का और जनपद का आधा-आधा भाग दे दें, तो मैं आपको सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार दे सकता हू।

तत्पश्चात् राजा कोणिक वेहल्ल कुमार की बात को आद्र-सम्मान न देता हुआ सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार की पुनः-पुनः याचना करता है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में वेहल्ल कुमार की प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है। जब वेहल्ल

कुमार से राजा कोणिक ने सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लडियों वाला हार मांगा तो वेहल्ल कुमार ने उत्तर दिया–हे स्वामी ! ये दोनों वस्तुए पिता श्री ने मुझे अपने जीवन-काल मे ही दे दी थीं। इस प्रकार इन वस्तुओं पर मेरा ही अधिकार है। अगर आप इन वस्तुओं को लेना ही चाहते है तो मुझे राज्य व जनपद का आधा भाग प्रदान करे, तभी आप ये वस्तुएं ले सकते है, अन्यथा नही।

वेहल्ल कुमार का उत्तर न्याय-सगत था, परन्तु कोणिक अपनी पटरानी की इच्छा-पूर्ति के विरुद्ध कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था।

वेहल्ल कुमार के कथन का कोणिक पर कोई प्रभाव न पडा। वह अपनी बात पर अडिग रहा।

प्रस्तुत सूत्र मे कोणिक के राज-हठ व स्त्री सम्बन्धी आकर्षण का सूत्रकार ने सुन्दर चित्रण किया है।

वेहल्ल कुमार का आत्मरक्षार्थ चिन्तन

मूल–तएणं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स कूणिएणं रन्ना अभिक्खणं-अभिक्खणं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं जाएमाणस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पज्जित्था–एवं खलु अक्खिविउकामे णं गिण्हिउकामे णं उद्दालेउकामे णं ममं कूणिए सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं तं जाव ममं कूणिए राया (नो जाणइ) ताव (सेयं मे) सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अंतेउरपरियाल-संपरिवुडस्स सभंड-मत्तोवगरणमायाए चंपाओ नयरीओ पडिनिक्खमित्तए, पडिनिक्खमित्ता वेसालीए नयरीए अज्जगं चेडयरायं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कूणियस्स रन्नो अंतराणि जाव पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे विहरइ ॥ ६३ ॥

छाया–ततः खलु तस्य वेहल्लस्य कुमारस्य कूणिकेन राज्ञा अभीक्ष्णं-अभीक्ष्णं सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारं याच्यमानस्य अयं एतद्रूप· अध्यात्मिक· ४ समुत्पन्नः, एवं खलु आक्षेप्तुकामः खलु, ग्रहीतुकामः खलु आच्छेत्तुकामः खलु मां कूणिको राजा सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारम् तत् यावन्मां कूणिको राजा (नो जानाति) तावत् (श्रेयो मम) सेचनक गन्धहस्तिनम् अष्टा-दशवक्रं च हारं गृहीत्वान्तःपुरपरिवारसंपरिवृतस्य सभाण्ड-

मत्रोपकरणमादाय चम्पाया नगर्याः प्रतिनिष्क्रम्य वैशाल्यां नगर्यामार्यकं चेटक-राजमुपसम्पद्य विहर्तुम्। एवं संप्रेक्ष्य कूणिकस्य राज्ञोऽन्तराणि यावत् प्रतिजाग्रत्-प्रतिजाग्रत् विहरति ॥ ६३ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स**—उस वेहल्ल कुमार के, **कूणिएणं रन्ना**—कोणिक राजा के द्वारा, **अभिक्खणं-अभिक्खणं**—बारम्बार, **सेयणगं गंध-हत्थिं**—सेचनक गंधहस्ती को और, **अट्ठारसवंकं च हारं**—अठारह लडियो के हार को—**जाएमाणस्स**—मागते हुए, **अयमेयारूवे**—इस प्रकार का, **अज्झत्थिए**—आध्यात्मिक (आन्तरिक भाव), **समुप्पज्जित्था**—उत्पन्न हुआ, **एवं**—इस प्रकार, **अक्खिविउकामे ण**—झूठा दोष लगाने वाला होने से, **गिण्हिउकामे णं**—ग्रहण करने की इच्छा होने से, **उद्दालेउकामे णं**—बलात्कारी की तरह इच्छा रखने वाला होने से, **ममं कूणिए राया**—मुझ से कोणिक राजा, **सेयणगं गंधहत्थि**—सेचनक गन्धहस्ती, **अट्ठारसवंकं च हारं**—अठारह लडियो वाला हार, छीनना चाहता है, **तं जाव कूणिए राया**—तो जब तक कूणिक राजा, **नो जाणइ ताव सेयं मे**—को पता नहीं लगता, तब तक मेरे लिए श्रेयस्कर है कि, **सेयणगं गंधहत्थिं**—सेचनक गन्ध-हस्ती, **अट्ठारस वंकं च हारं**—और अठारह लडियों वाला हार, **गहाय**—ग्रहण कर, **अंतेउर-परियालसंपरिवुडस्स**—अन्तःपुर एवं परिवार (दास-दासियो) से घिरा हुआ, **सभंडमत्तो-वगरणमायाए**—अपने भण्डोपकरण लेकर, **चंपाओ नयरीओ**—चम्पा नगरी से, **पडिनिक्ख-मित्तए**—बाहर निकलूं और, **पडिनिक्खमित्ता**—निकल कर, **वेसालीए नयरीए**—वैशाली नगरी मे, **अज्जग चेडयरायं**—आर्य चेटक राजा के, **उवसंपज्जित्ताणं**—पास पहुंच करके, **विहरित्तए**—विचरण करूं, **एवं**—इस प्रकार, **संपेहेइ संपेहित्ता**—विचार करता है और विचार करके, **कूणियस्स रन्नो**—कूणिक राजा के, **अंतराणि**—अन्तर (कमियो) को, **जाव**—यावत्, **पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे विहरइ**—देखता हुआ विचरता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस वेहल्ल कुमार ने राजा कूणिक के द्वारा बारम्बार सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाले हार के छीनने के भाव को देखकर उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन वस्तुओं के ग्रहण करने का कामी होने से, छीनने का कामी होने से, मुझे यह उचित है कि मै सेचनक गंधहस्ती और अठारह लडियो वाला हार लेकर के, अन्तःपुर से घिरा हुआ, अपने भाण्डोपकरण आदि लेकर, चम्पा नगरी से निकलूं और वैशाली नगरी मे आर्य चेटक (नाना) के पास चला जाऊं।

वह इस प्रकार विचार करता है और विचार करके राजा कोणिक के अन्तर अर्थात् छिद्रों को देखता हुआ विचरता है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे वेहल्ल कुमार की सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले

हार की प्रति रक्षा की चिन्ता का वर्णन है। वेहल्ल कुमार को राजा कोणिक की शक्ति का अनुभव है, इसलिए वह सोचता है कि चम्पा में रहते हुए मैं इन वस्तुओं की रक्षा नहीं कर सकता। मेरे लिए सपरिवार चम्पा नगरी को त्याग कर वैशाली में अपने नाना आर्य चेटक के पास जाना ठीक रहेगा।

मनुष्य वहीं जाता है जहा उसके धन-धान्य व परिवार की रक्षा हो सके। इससे वेहल्ल की अपने परिवार के प्रति सहज चिंता प्रतिध्वनित होती है। हर गृहस्थ को अपने परिवार की रक्षा के मामले में इसी तरह रक्षा की चिन्ता करनी चाहिए।

इस सूत्र से यह भी ध्वनित होता है कि जिस देश मे अपने धन-धान्य की रक्षा न होती हो, राजा प्रजा की अभिलाषाओं से अनभिज्ञ हो, वह देश त्याग देना ही उपयुक्त है। वेहल्ल कुमार ऐसे अवसर की तलाश करने लगा कि कब अच्छा अवसर आए और कब वह चम्पा को छोड कर, अपने नाना चेटक के पास चला जाए।

प्रस्तुत सूत्र से सिद्ध होता है राजा कोणिक स्वय गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार नही चाहता था, न ही वह अपने भाइयो से युद्ध करना चाहता था, परन्तु प्राचीन काल से त्रिया-हठ की हजारों कथाए भारतीय इतिहास मे मिलती है। इस त्रिया-हठ के कारण ही मर्यादा पुरुषोत्तम को राज्य की जगह वनवास मिला। पद्मावती देवी का त्रिया-हठ रथ-मुसल-संग्राम का कारण बना।

राजा कोणिक पद्मावती पर पूर्ण रूप से आसक्त था, इसी कारण वह अपनी रानी की बात को टाल न सका। उसने अपनी रानी के कहने पर अपने भाइयों से दोनों वस्तुओं को ले लेने का निश्चय कर लिया।

वेहल्ल का वैशाली गमन

मूल—तएणं से वेहल्ले कुमारे अन्नया कयाइं कूणियस्स रन्नो अंतरं जाणइ जाणित्ता, सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अंतेउर-परियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए चंपाओ नयरीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव वेसाली नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेसालीए नयरीए अज्जगं चेडयं रायं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ॥ ६४॥

छाया—ततः खलु स वेहल्लः कुमारः अन्यदा कदाचित् कूणिकस्य राज्ञोऽन्तरं जानाति, ज्ञात्वा सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारं गृहीत्वा अन्तःपुर-परिवारसंपरिवृतः सभाण्डमत्रोपकरणमादाय चम्पातो नगरीतः प्रतिनिष्क्रामति,

प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव वैशाली नगरी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य वैशाल्यां नगर्यामार्यकं चेटकमुपसंपद्य विहरति ॥ ६४ ॥

पदार्थान्वय–तएणं–तत्पश्चात्, **से वेहल्ले कुमारे**–वह वेहल्ल कुमार, **अन्नया कयाइं**–किसी अन्य समय, **कूणियस्स रण्णो**–राजा कूणिक के, **अन्तरं जाणइ**–आन्तरिक अर्थात् मानसिक आशय को समझ जाता है, **जाणित्ता**–और जान कर, **सेयणगं गन्ध हत्थिं**–सेचनक गन्धहस्ती, **अट्ठारसवंकं च हारं**–(और) अठारह लड़ियो वाले हार को, **गहाय**–लेकर, **अन्तेउर-परियालसंपरिवुडे**–अपनी रानियो और खड्ग-रत्नादि तथा अपने समस्त कोष तथा दास-दासी आदि सेवक वर्ग को साथ लेकर, (तथा), **सभंडमत्तोवगरण-मायाए**–बर्तन आदि घरेलू सामग्री को, **गहाय**–साथ लेकर, **चम्पाओ नयरीओ**–चम्पा नामक नगरी से, **पडिनिक्खमइ**–बाहर निकल जाता है, **पडिनिक्खमित्ता**–और बाहर निकल कर, **जेणेव वेसाली नयरी**–जिधर वैशाली नगरी थी, **तेणेव**–उधर ही, **उवागच्छइ**–चल पड़ता है, **उवागच्छित्ता**–और चल कर, **वेसालीए नयरीए**–वैशाली नगरी मे, **अज्जग चेडयं**–(अपने नाना) आर्य चेटक के, **उवसंपज्जित्ता**–पास पहुच कर, **णं विहरइ**–अपना जीवन-यापन करने लगता है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वेहल्ल कुमार जब किसी समय राजा कूणिक के आन्तरिक आशय को जान जाता है और जानकर सेचनक गंध हस्ती और अठारह लड़ियो वाला हार तथा अपनी रानियों, खड्ग आदि हथियारों, दास-दासियो और रत्न आदि को और गृहोपयोगी समस्त बर्तन आदि लेकर (उपयुक्त अवसर पाते ही) चम्पा नगरी से बाहर निकल जाता है और बाहर निकल कर जिधर वैशाली नगरी थी उधर ही चल पड़ता है और चल कर वैशाली नगरी में जहां उसके नाना आर्य चेटक थे उनके पास पहुंचकर अपना जीवन व्यतीत करने लगता है।

टीका–प्रस्तुत सूत्र से ध्वनित होता है कि मनुष्य को जहां कोई व्यक्ति अपना शत्रु जान पडे और जहा अपने को असुरक्षित समझे वहा से उसे चल देना चाहिए और किसी ऐसे सुरक्षित स्थान पर पहुच जाना चाहिए जहां वह निर्भय होकर जीवन व्यतीत कर सके।

मनुष्य को यथासम्भव ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिए जो विश्वस्त हो, सबल हो और समय आने पर कुछ सहायता भी कर सके। अतः वेहल्ल कुमार अपने नाना के पास पहुंचा, जो सशक्त राजा थे।

कोणिक द्वारा चेटक के पास दूत को भेजना

मूल–तएणं से कूणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे–एवं खलु वेहल्ले कुमारे ममं असंविदितेणं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अंतेउरपरियालसंपरिवुडे जाव अज्जयं चेडयं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं सेयं खलु ममं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं आणेउं दूयं पेसित्तए। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी- ''गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! वेसालिं नयरिं, तत्थ णं तुमं मम अज्जं चेडगं रायं करतल० वद्धावेत्ता एवं वयाहि–एवं खलु सामी ! कूणिए राया विन्नवेइ–एस णं वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्नो असंविदितेणं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय इह हव्वमागए, तए णं तुब्भे सामी ! कूणियं रायं अणुगिण्हमाणा सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह, वेहल्लं कुमारं च पेसेह ॥ ६५ ॥

छाया–ततः खलु स कूणिको राजा अस्याः कथाया लब्धार्थः सन् 'एवं खलु वेहल्लः कुमारो मम असंविदितेन सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारं गृहीत्वा अन्तःपुरपरिवारसंपरिवृतो यावद् आर्यकं चेटकं राजानमुपसंपद्य खलु विहरति, तच्छ्रेयं खलु मम सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारम् आनेतुं दूतं प्रेषयितुम्। एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य दूतं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–गच्छ खलु त्वं देवानुप्रिय! वैशालीं नगरीं, तत्र खलु त्वं मम आर्यं चेटकं राजानं करतल० वर्द्धयित्वा एवं वद–'एवं खलु स्वामिन् ! कूणिको राजा विज्ञापयति–एवं खलु वेहल्लः कुमारः कूणिकस्य राज्ञः असंविदितेन सेचनक गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारं गृहीत्वा इह हव्यमागतः, ततः खलु यूयं स्वामिन् ! कूणिकं राजानमनुगृह्णन्तः सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारं कूणिकस्य राज्ञः प्रत्यर्पयत, वैहल्ल्यं कुमारं च प्रेषयत ॥ ६५ ॥

पदार्थान्वयः–**तएणं**–तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**–वह कोणिक राजा, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे**–इस चर्चा के लब्धार्थ होने पर, **एवं खलु**–निश्चय ही इस प्रकार, **वेहल्ले कुमारे**–वेहल्ल कुमार, **ममं**–मुझे, **असंविदितेणं**–बिना बताए ही, **सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं**–सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लड़ियो वाले हार को, **गहाय**–ग्रहण करके, **अंतेउरपरियालसंपरिवुडे**–अन्तःपुर के परिवार से घिरा हुआ, **जाव**–यावत्, **अज्जयं चेडयं रायं**–नाना आर्य चेटक राजा की, **उवसंपज्जित्ताणं**–शरण ग्रहण करता

हुआ, **विहरइ**—विचरता है, **तं सेयं खलु**—तो निश्चय ही यही श्रेष्ठ है, **ममं सेयणगं गन्ध हत्थिं**—मेरे सेचनक गन्धहस्ती को, **च**—और, **अट्ठारसवंकं च हारं**—अठारह लड़ियों वाले रत्न हार को, **आणेउं**—वापिस मंगवाने के लिए, **दूयं पेसित्तए**—दूत भेजना चाहिए, **एव संपेहेइ, संपेहित्ता**—इस प्रकार विचारता है और विचार कर, **दूयं सद्दावेइ, सद्दावेइत्ता**— दूत को बुलाता है और बुलाकर, **एवं वयासी**— इस प्रकार बोला, **गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, **वेसालिं नयरिं**—वैशाली नगरी को, **तत्थ णं**—वहां पर, **तुमं अज्जं चेडयं रायं**—तुम मेरे नाना आर्य चेटक को, **करयल० वद्धावेत्ता**—दोनो हाथ जोड़कर और बधाई देकर, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहना, **एवं खलु सामी**—हे स्वामी ! निश्चय ही इस प्रकार, **कूणिए राया विन्नवेइ**—कोणिक राजा विनती करता है कि, **एस णं वेहल्ले कुमारे**—यह वेहल्ल कुमार, **कूणिए रन्नो**—कूणिक राजा को, **असंविदितेण**—बिना बताए ही, **सेयणगं-गन्धहत्थिं अट्ठारसवकं च हारं**—सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाले हार को, **गहाय**—ग्रहण करके, **हव्वमागए**—शीघ्र ही यहा आ गया है, **तएणं**—तो, **तुब्भे सामी**—हे स्वामी आप, **कूणियं राय**—राजा कूणिक को, **अणुगिण्हमाणा**—उस पर अनुग्रह (कृपा) करते हुए, **सेयणग गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं**—सेचनक गधहस्ती को और अठारह लड़ियों के हार को, **कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह**—कोणिक राजा को वापिस कर दो, **च**—और, **वेहल्लं कुमारं च पेसेह**—वेहल्ल कुमार को वापिस भेज दो।

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा कोणिक को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने विचार किया—इस प्रकार निश्चय ही वेहल्ल कुमार मुझे बिना बताए सेचनक गंध-हस्ती व अठारह लडियों के हार को लेकर अंत:पुर के परिवार से घिरा हुआ यावत् अपने नाना चेटक राजा की शरण ग्रहण करता हुआ विचरता है। मुझे निश्चय ही अब यही उचित है कि सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार को प्राप्त करने के लिए दूत भेजना चाहिए।

(वह कोणिक) ऐसा विचार करता है, विचार करने के बाद दूत को बुला कर इस प्रकार आज्ञा देता है—"हे देवानुप्रिय ! तुम वैशाली नगरी में जाओ, वहां मेरे नाना आर्य चेटक को दोनों हाथ जोड़ कर बधाई देते हुए, इस प्रकार कहना—"निश्चय ही कूणिक राजा प्रार्थना करता है कि वेहल्ल कुमार कोणिक राजा को बिना सूचित किए सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले वक्र हार को ग्रहण करके, शीघ्र ही यहां आ गया है। हे स्वामी ! आप कूणिक राजा पर अनुग्रह करते हुए सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार राजा कूणिक को वापिस लौटा दें। (इसके साथ) वेहल्ल कुमार को भी वापिस भेज दें।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक द्वारा अपने नाना राजा चेटक के पास दूत भेजने का वर्णन है। प्राचीन काल से ही दूत का काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। राजा कोणिक दूत को बुलाकर समझाता है कि तुम मेरे नाना चेटक के यहां वैशाली जाओ। उनसे विनयपूर्वक सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ियों वाला रत्न हार और वेहल्ल कुमार की मांग करो। सूत्रकर्त्ता ने यहां **करयल वद्धावेत्ता** पद प्रयुक्त किया है। यह समग्र सूत्र इस प्रकार जानना चाहिए–**करयलपरिग्गहिय दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएण वद्धावेइ वद्धावेइत्ता एवं वयासी**–अर्थात् **शिरसा मस्तकेन प्राप्तम्–स्पृष्टं शिरसि वा आवर्तः इति शिरस्यावर्तो तस्य। जएणं विणएणं वद्धावेइ त्ति जयः–सामान्यो विनयादि विषयो विजयः–स एव विशिष्टतरः प्रचण्डप्रतिपन्थादि विषय· वर्धयति जयते विजयते च वर्द्धस्व त्वमिनमित्येवमाशिषं प्रयुक्तेस्मेत्वर्थ·**–इसका भाव इस प्रकार है कि दोनों हाथ करबद्ध कर शिर से स्पर्शन करता हुआ, आवर्तन के साथ जय-विजय के शब्दों से बधाई देता है। क्योकि जय शब्द सामान्य विघ्नो का नाश करने के अर्थ मे आता है। विजय प्रचण्ड शत्रुओं पर विजय के स्वर में कहता है। अर्थात् हे स्वामी ! आपकी जय-विजय मे बढ़ावा हो, यह आशीर्वचन है।

अणुगिण्हमाणा का अर्थ विनय पूर्वक है।

असंविदितेन का अर्थ विनय-पूर्वक सूचना है।

दूत द्वारा चेटक को कोणिक का निवेदन कथन

मूल–तए णं से दूए कूणिएणं० करतल० जाव पडिसुणित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा चित्तो जाव वद्धावित्ता एवं वयासी–एवं खलु सामी ! कूणिए राया विन्नवेइ–एस णं वेहल्ले कुमारे तहेव भाणियव्वं जाव वेहल्लं कुमारं च पेसेह ॥ ६६ ॥

छाया–**ततः खलु स दूतः कूणिकेन० करतल० यावत् प्रतिश्रुत्य यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य यथा चित्तो यावद् वर्द्धयित्वा एवमवादीत्–एवं खलु स्वामिन् ! कूणिको राजा विज्ञापयति–एवं खलु वेहल्लः कुमारस्तथैव भणितव्यं यावद् वेहल्लं कुमारं प्रेषयत ॥ ६६ ॥**

पदार्थान्वयः–**तएणं**–तत्पश्चात्, **से दूए**–वह दूत, **कूणिएणं करयल० जाव पडि-सुणित्ता**–कोणिक राजा के समीप दोनो हाथ जोडकर यावत् उसके कथन को सुन कर, **जेणेव सए गिहे**–जहां उसका अपना निवास था, **तेणेव उवागच्छइ**–वहां पर आया और आकर यावत्, **जहा चित्तो**–जैसे चित्त सारथी ने किया था, **जाव**–यावत्, **वद्धावित्ता**–

बधाई देकर, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोला, **एवं खलु सामी**—इस प्रकार निश्चय ही हे स्वामी, **कोणिए राया विन्नवेइ**—राजा कोणिक निवेदन करता है, **एस णं वेहल्ले कुमारे**—यह वेहल्ल कुमार के सम्बन्ध में, **तहेव भाणियव्वं**—इस प्रकार से कहना, **जाव**—यावत्, **वेहल्लं कुमारं पेसेह**—वेहल्ल कुमार को (मेरे पास) भेज दो।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह दूत कोणिक राजा के समीप दोनों हाथ जोड़कर यावत् उस (कोणिक) के कथन को सुनता है और सुनकर, जहा उसका गृह था, वहां आता है। वहां से चलकर चित्त सारथी की तरह, (वैशाली पहुंचा और वहा) बधाई देकर (वैशाली नरेश राजा चेटक से) इस प्रकार बोला—"हे स्वामी। निश्चय ही राजा कोणिक (मेरे स्वामी) ने निवेदन किया है कि आप वेहल्ल कुमार को यावत् सेचनक हाथी और अठारह लडियों वाला हार वापिस भेज दो।

टीका—तब दूत ने कोणिक राजा की बात ध्यान से सुनी और वह तैयार होकर, चित्त सारथी की तरह वैशाली नगरी में राजा चेटक के दरबार में पहुचा। दूत ने राजा कोणिक के मन की इच्छा महाराजा चेटक को बताई। सारथी के लिए "**जहा चित्तो**" पद आया है, वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

"जहा चित्तो' त्ति राजप्रश्नीये द्वितीयोपाङ्गे यथा श्वेताम्बी नगर्याश्चित्रो नाम दूत. प्रदेशिराज्ञा प्रेषित·, श्रावस्त्यां नगर्यां जितशत्रुसमीपे स्वगृहान्निर्गत्य गत: तथाऽयमपि। कोणिक नामको राजा यथा एवं विहल्लकुमारोऽपि।

अर्थात् जैसे रायप्रश्नीय उपाग में राजा प्रदेशी द्वारा श्वेताम्बिका नगरी से जितशत्रु के पास श्रावस्ती नगरी में दूत भेजने का वर्णन है यहां वही वर्णन जानना चाहिए।

इस सूत्र मे दूत की विनम्रता, आज्ञा-पालन, स्वामी भक्ति व कर्त्तव्य-परायणता का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। दूत वही कहता है जो कोणिक राजा ने आदेश दिया था। दूत की तैयारी के लिए चित्त सारथी का प्रकरण यहा दोहराया गया है।

चेटक का उत्तर

मूल—तए णं से चेडए राया तं दूयं एवं वयासी—जह चेव णं देवाणुप्पिया! कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए ममं नत्तुए तहेव णं वेहल्ले वि कुमारे सेणियस्स रन्नो पुत्ते, चेल्लणाए देवीए अत्तए मम नत्तुए, सेणिएणं रन्ना जीवंतेणं चेव वेहल्लस्स कुमारस्स सेयणगे गंधहत्थी अट्ठारसवंके हारे पुव्वदिन्ने, तं जइ णं कूणिए राया वेहल्लस्स रज्जस्स य रट्ठस्स य जणवयस्स य अद्धं दलयइ तो णं सेयणयं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं

च हारं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामि, वेहल्लं च कुमारं पेसेमि। तं दूयं सक्कारेइ संमाणेइ पडिविसज्जेइ ॥ ६७ ॥

छाया—ततः खलु स चेटको राजा तं दूतमेवमवादीत्—यथैव खलु देवानुप्रिय! कूणिको राजा श्रेणिकस्य राज्ञ. पुत्रः, चेल्लनायाः देव्या आत्मजः मम नप्तकः, तथैव खलु वैहल्लोऽपि राज्ञः पुत्रः, चेल्लनाया देव्या आत्मजो, मम नप्तकः। श्रेणिकेन राज्ञा जीवता चैव वेहल्लाय कुमाराय सेचनको गन्धहस्ती अष्टादशवक्रो हारः पूर्व दत्तः, तद् यदि खलु कूणिको राजा वेहल्लाय राज्यस्य च राष्ट्रस्य च जनपदस्य चार्द्धं ददाति तदा खलु सेचनकगन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारं कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्पयामि, वेहल्लं च कुमारं प्रेषयामि। तं दूतं सत्करोति सम्मानयति प्रतिविसर्जयति ॥ ६७ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से चेडए राया**—वह चेटक राजा, **तं दूयं**—उस दूत को, एवं **वयासी**—इस प्रकार बोला, **जह चेव णं देवाणुप्पिया**—जैसे कि हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार, **कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते**—कोणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र है, **चेल्लणाए देवीए अत्तए**—चेलना रानी का आत्मज है, **मम नत्तुए**—मेरा नाती (दोहता) है, **तहेव ण**—वैसे ही, **वेहल्ले वि कुमारे**—वेहल्ल कुमार भी, **सेणियस्स रन्नो पुत्ते**—श्रेणिक राजा का पुत्र है, **चेल्लणाए देवीए अत्तए**—चेलना देवी का आत्मज है, **मम नत्तुए**—और मेरा दोहता है, **सेणिएणं रन्नो**—श्रेणिक राजा ने, **जीवन्तेणं चेव**—अपने जीवन काल मे ही, **वेहल्लस्स कुमारस्स**—वेहल्ल कुमार को, **सेयणगे गधहत्थी**—सेचनक गन्धहस्ती, **अट्ठार-सवंके य हारे पुव्वदिन्ने**—अठारह लड़ियों वाला वक्र हार पहले दिया था, **तं जइ णं**—तो यदि, **कूणिए राया**—कोणिक राजा, **वेहल्लस्स**—वेहल्ल कुमार को, **रज्जस्स य रट्ठस्स य जणवयस्स य**—राज्य, राष्ट्र और जनपद का, **अद्धं दलयइ**—आधा भाग दे दे, **तो णं अहं**—तो मैं, **सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवकं हारं च**—सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियो वाला वक्र हार, **कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामि**—कोणिक राजा को लौटा सकता हू, **वेहल्लं च कुमारं**—और वेहल्ल कुमार को भी, **पेसेमि**—भेजता हूं। ऐसा कहकर, **तं दूय**—उस दूत को, **सक्कारेइ संमाणेइ**—सत्कार व सम्मान देता है और, **पडिविसज्जेइ**—विसर्जन (विदा) करता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक उस दूत को इस प्रकार कहने लगा—"हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार राजा कोणिक, राजा श्रेणिक का पुत्र, महारानी चेलना का आत्मज और मेरा दोहता है उसी तरह वेहल्ल कुमार भी श्रेणिक राजा का पुत्र व रानी चेलना का आत्मज है और मेरा दोहता है। श्रेणिक राजा ने अपने जीवन-काल में ही

वेहल्ल कुमार को सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाला वक्र हार प्रदान किया था। अगर राजा कोणिक इन दोनों वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है तो वह वेहल्ल कुमार को आधा राज्य, राष्ट्र और जनपद प्रदान करे। ऐसा करने पर कोणिक को सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियो वाला वक्र हार मैं वापिस कर दूंगा। इसके साथ वेहल्ल कुमार को भी वापिस भेज दूंगा। इस कथन के बाद वह दूत का सम्मान करता है, सत्कार करता है और दूत को विसर्जित–वापिस भेजता है।

टीका–जब दूत ने वैशाली गणराज्य के राजा चेटक से सेचनक हाथी व अठारह लडियो वाला हार और वेहल्ल कुमार की वापसी के बारे मे अपने स्वामी राजा कोणिक का संदेश दिया तो राजा चेटक ने अपनी न्याय-प्रियता, सज्जनता, निडरता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, स्पष्टवादिता का सहारा लिया। राजा चेटक ने परम्परागत ढंग से दूत सम्बन्धी सभी कर्तव्यों का पालन किया, दूत का मान-सम्मान भी किया। साथ में यह भी कहलाकर भेजा कि अगर राजा कोणिक इच्छित वस्तुएं व वेहल्ल कुमार की वापसी चाहता है तो वह अपना आधा राज्य वेहल्ल कुमार को प्रदान कर दे। वस्तु वही लौटाई जाती है जो दी जाए। जो वस्तु दी ही नही गई उसे वापस मांगना निरर्थक है। फिर वेहल्ल कुमार ने अपने नाना के यहा इसीलिए शरण ग्रहण की थी क्योंकि वह जानता था कि मेरे नाना न्याय-प्रिय आदर्शवादी व सत्यवादी राजा है। ऐसे गुण व शक्ति-सम्पन्न राजा की शरण हर ढग से कल्याणकारी है।

दूत के वेहल्ल कुमार, सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लडियो वाला हार मागने पर राजा चेटक ने अपनी न्याय-प्रियता का प्रमाण देते हुए कहा कि मेरे लिए कोणिक और वेहल्ल कुमार मे कोई रिश्ते का भेद नहीं है। शक्ति के सहारे मैं ये वस्तुए वापस नहीं कर सकता। अगर राजा कोणिक अपने राज्य का आधा भाग वेहल्ल कुमार को प्रदान करे तभी यह सम्भव है।

प्रस्तुत सूत्र से भी पता चलता है कि राजा चेटक के समय राजा श्रेणिक मर चुका था। शास्त्रकार ने स्पष्ट कहलवाया है कि दोनों वस्तुएं राजा श्रेणिक ने वेहल्ल कुमार को अपने जीवन-काल मे ही दी थी। इसलिए इन वस्तुओ की माग बेकार है। पर उपयुक्त उत्तर राजा कोणिक की भावना के विपरीत था, क्योकि राजा कोणिक तो लोभ में फसा होने के कारण अपने पराए की पहचान ही खो बैठा था।

दूत द्वारा चेटक का उत्तर कोणिक से कथन

मूल–तए णं से दूए चेडएणं रन्ना पडिविसज्जिए समाणे जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ,

दुरूहित्ता वेसालिं नगरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुहेहिं वसहिपायरासेहिं जाव वद्धावित्ता एवं वयासी-एवं खलु सामी ! चेडए राया आणवेइ-जह चेव णं कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए मम नत्तुए, तं चेव भाणियव्वं जाव वेहल्लं च कुमारं पेसेमि। तं न देइ सामी ! चेडए राया सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं, वेहल्लं नो पेसेइ ॥ ६८ ॥

छाया-तत· खलु म दूतः चेटकेन राजा प्रतिविसर्जितः सन् यत्रैव चतुर्घण्टः अश्वरथस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चतुर्घण्टमश्वरथं दूरोहति, दूरुह्य वैशालीं नगरीं मध्यंमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य शुभैर्वसतिप्रातराशैर्यावद् वर्धयित्वा एवमवादीत्-एवं खलु स्वामिन् ! चेटको राजा आज्ञापयति-यथैव खलु कूणिको राजा श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्रः, चेल्लनाया देव्या आत्मजः मम नप्तकः, तथैवं भणितव्यं यावद् वेहल्लं च कुमारं प्रेषयामि। तन्न ददाति खलु स्वामिन् ! चेटको राजा सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारं वेहल्लं च नो प्रेषयति ॥ ६८ ॥

पदार्थान्वयः-तएणं-तत्पश्चात्, **से दूए**-वह दूत, **चेडएणं रन्ना पडिविसज्जिए समाणे**-राजा चेटक द्वारा विसर्जित होने पर, **जेणेव चाउग्घण्टे आसरहे**-जहां पर चार घण्टो वाला अपना अश्वरथ था अर्थात् जिस अश्व-रथ के चारों ओर घटे बाधे हुए थे, **तेणेव**-वहा पर, **उवागच्छइ**-आता है, **उवागच्छित्ता**-आकर, **चाउग्घण्टं आसरहं दुरूहइ**-उस चार घटो वाले, अश्व-रथ पर आरूढ होकर, **वेसालिं नयरि**-वैशाली नगरी के, **मज्झंमज्झेण**-बीचों-बीच होता हुआ, **निग्गच्छइ**-जाता है, **निग्गच्छित्ता**-जाकर, **सुभेहिं वसहीहिं**-मार्ग मे अच्छे ठिकानो मे विश्राम करता हुआ, **पायरासेहिं**-प्रातःकालीन जलपान करके, **जाव वद्धावित्ता एवं वयासी**-यावत् बधाई देकर, इस प्रकार बोला, **एवं खलु सामी**-हे स्वामी निश्चय ही, **चेडए राया आणवेइ**-चेटक राजा इस प्रकार कहता है, **जह चेव ण कूणिए राया**-जैसे कोणिक राजा, **सेणियस्स रन्नो पुत्ते**-श्रेणिक राजा का पुत्र, **चेल्लणाए देवीए अत्तए**-चेलना देवी का आत्मज है, **मम नत्तुए**-मेरा दोहता है, **तं चेव भाणियव्वं**-इस प्रकार से कहना, **जाव**-यावत् (अर्थात् वेहल्ल कुमार भी राजा श्रेणिक का पुत्र, चेलना देवी का आत्मज और मेरा दोहता है), **वेहल्लं च कुमार पेसेमि**- वेहल्ल कुमार को वापस भेज दूंगा, **तं न देइ णं सामी**-वस्तुतः हे स्वामी वह नही देता, **चेडए राया**-चेटक राजा, **सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं हारं च**-सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लडियों वाला हार, **वेहल्लं च नो पेसेइ**-और वेहल्ल कुमार को भी नहीं भेजना चाहता।

मूलार्थ-वह दूत राजा चेटक द्वारा वापस भेज देने पर जहां उस का चार घण्टो

वाला अश्व-रथ खड़ा था वहां आता है, आकर चतुर्घण्टक अश्वरथ पर आरूढ़ होता है, आरूढ़ होकर वैशाली नगरी के बीचों-बीच से होता हुआ बाहर आकर सुखमय स्थानों में विश्राम करता है। प्रात:काल का अशन करता है (अर्थात् सुबह का अल्पाहार करता है) और फिर राजा कोणिक के पास आता है, यावत् बधाई देकर इस प्रकार कहता है—हे स्वामी ! निश्चय ही चेटक राजा इस प्रकार कहता है कि कोणिक राजा श्रेणिक का पुत्र, चेल्लना देवी का आत्मज व मेरा दोहता है, इसी प्रकार वेहल्ल कुमार भी है यावत् पूर्व कथनानुसार वेहल्लकुमार को आधा राज्य मिलने पर भेज दूंगा। हे स्वामी! वस्तुत: चेटक राजा सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार और वेहल्ल कुमार को देने के लिए तैयार नही है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे दूत के वैशाली आगमन का वर्णन है। दूत चार घण्टों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ होकर गया था, इस सुन्दर रथ के चारों ओर घण्टे लगे हुए थे। दूत रास्ते मे सुखमय स्थानों पर ठहरा, अर्थात् वैशाली से लेकर चम्पा नगरी तक उसे कोई असुविधा नहीं हुई। दूत सीधा अपने स्वामी राजा कोणिक के पास पहुंचा। वैशाली नरेश का सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ियों वाला हार व वेहल्ल कुमार सम्बन्धी सारा सन्देश सुनाता है। निम्नलिखित सन्देश ही राजा कोणिक के क्रोध का कारण बना है जब दूत राजा चेटक की यह बात बतलाता है—**न देइ णं सामी ! चेडए राया सेयणगगन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं हारं च, वेहल्लं न पेसेइ।**

दूत द्वारा प्रयुक्त रथ के बारे मे टीकाकार का कथन है—

'चाउग्घंट' त्ति चतस्रो घण्टाश्चतसृष्वपि दिक्षु अवलम्बिता यस्य स चतुर्घण्टो रथ:।

दूत के सफर के बारे मे वृत्तिकार ने कहा है—

सुभेहिं वसहीहिं पायरासेहिं, त्ति प्रातराश: आदित्योदयादेवाद्यप्रहरद्वयसमयवर्ती भोजनकाल: निवाराश्च—निर्वसनभूभाग: तौ द्वावपि सुखहेतुकौ न पीडाकारिणौ—अर्थात् उसका सारा सफर आनंदमय रहा, सुबह का भोजन दूत ने सुखपूर्वक किया। भोजन करने के पश्चात् वह कोणिक से मिला।

दूत का सन्देश कोणिक राजा की इच्छा के सर्वथा प्रतिकूल था।

कोणिक ने पुन: दूत भेजकर अपनी मांग दोहराई

मूल—तएणं से कूणिए राया दुच्चं पि दूयं सद्दावित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! वेसालिं नयरिं, तत्थ णं तुमं मम अज्जगं चेडगं रायं

जाव एवं वयाहि—एवं खलु सामी ! कूणिए राया विन्नवेइ जाणि काणि रयणाणि समुप्पज्जंति सव्वाणि ताणि रायकुलगामीणि, सेणियस्स रन्नो रज्जसिरिं करेमाणस्स पालेमाणस्स दुवे रयणा समुप्पन्ना, तं जहा—सेयणए गंधहत्थी, अट्ठारसबंके हारे, तण्णं तुब्भे सामी ! रायकुलपरंपरागयं ठिइयं अलोवेमाणा सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं हारं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह, वेहल्लं कुमार पेसेह।

तएणं से दूए कूणियस्स रन्नो तहेव जाव वद्धावित्ता एवं वयासी—एवं खलु सामी ! कूणिए राया विन्नवेइ जाणि काणित्ति जाव वेहल्लं कुमारं पेसेह ॥ ६९ ॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा द्वितीयमपि दूतं शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं देवानुप्रिय ! वैशालीं नगरीं, तत्र खलु त्वं मम आर्यकं चेटकं राजानं यावत् एवं वद—एवं खलु स्वामिन् ! कूणिको राजा विज्ञापयति—यानि कानि रत्नानि समुत्पद्यन्ते सर्वाणि तानि राजकुलगामीनि, श्रेणिकस्य राज्ञो राज्यश्रियं कुर्वतः पालयतो द्वे रत्ने समुत्पन्ने, तद्यथा—सेचनको गन्धहस्ती, अष्टादशवक्रो हारः, तत्खलु यूयं स्वामिन् ! राजकुलपरम्परागतां स्थितिमलोपयन्तः सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारं कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्पयत, वेहल्लं कुमारं प्रेषयत।

ततः खलु स दूतः कूणिकस्य राज्ञस्तथैव यावद् वर्धयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु स्वामिन् ! कूणिको राजा विज्ञापयति—यानि कानीति यावत् वेहल्लं कुमारं प्रेषयत ॥ ६९ ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं**—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—उस कूणिक राजा ने, **दुच्चं पि दूयं सद्दावित्ता**—दूसरे दूत को बुलाकर, **अपि**—संभावना अर्थ मे है, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहा, **गच्छह ण तुम देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, **वेसालिं नयरिं**—वैशाली नगरी को, **तत्थ णं तुमं मम अज्जगं**—वहां तुम मेरे नाना आर्य, **चेडगं रायं**—चेटक राजा को, **जाव**—यावत्, **एवं वयाहि**—इस प्रकार कहना, **एवं खलु सामी**—हे स्वामी ! निश्चय ही, **कूणिए राया विन्नवेइ**—कोणिक राजा इस प्रकार कहता है, **जाणि काणि रयणाणि**—जो कोई भी रत्न, **समुप्पज्जन्ति**—राज्य में उत्पन्न होते हैं, **सव्वाणि ताणि**—वे सब, **रायकुलगामीणि**—राज्य-कुल मे ही पहुंचाये जाते हैं, **सेणियस्स रन्नो**—श्रेणिक राजा के, **रज्जसिरिं करेमाणस्स**—राज्य श्री को करते हुए के, **पालेमाणस्स**—पालन करते हुए, **दुवे रयणा समुप्पन्ना**—दो रत्न उत्पन्न हुए, **तं जहा**—जैसे कि, **सेयणए गन्धहत्थी, अट्ठारसवंके**

हारे–सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लडियो वाला वक्र हार, **तण्णं तुब्भे सामी**–तो आप हे स्वामी, **रायकुलपरंपरागयं ठिइयं**–राज्य कुल की परम्परागत स्थिति को, **अलोवेमाणा**–लुप्त न करते हुए, **सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं**–सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लडियों वाला हार, **कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह**–राजा कूणिक को वापिस लौटा दो, **वेहल्लं कुमारं पेसेह**–और वेहल्ल कुमार को भी वापस भेज दो।

तएणं से दूए–तदनन्तर वह दूत, **कूणियस्स रन्नो**–राजा कूणिक का, **तहेव जाव वद्धावित्ता**–उसी प्रकार से वर्धापन देकर, **एवं वयासी**–इस प्रकार बोला, **एवं खलु सामी**–इस प्रकार हे स्वामिन् ! **कूणिए राया विन्नवेइ**–राजा कूणिक आपको सूचित करता है, **जाणि काणित्ति**–जैसे भी हो वैसे, **जाव**–यावत्, **वेहल्लं कुमारं पेसेह**–वेहल्ल कुमार को वापस लौटा दो।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह कोणिक राजा दूसरे दूत को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहता है–"हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे नाना राजा चेटक को यावत् इस प्रकार कहो–

हे स्वामी ! निश्चय ही राजा कूणिक इस प्रकार कहता है कि जो कोई रत्न राज्य में उत्पन्न होते हैं वे सब राज-कुल में पहुंचाए जाने वाले होते हैं। श्रेणिक राजा के राज्य काल मे दो रत्न उत्पन्न हुए थे–सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लडियों वाला हार। आप राज्य-कुल परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियो वाला हार राजा कोणिक को वापिस लौटा दो और वेहल्ल कुमार को भी वापस भेज दो।

तत्पश्चात् वह दूत राजा कूणिक को पूर्ववत् नमस्कार करके चला गया और वैशाली पहुंच कर राजा चेटक को हाथ जोड कर बधाई देता हुआ इस प्रकार बोला–निश्चय ही हे स्वामी । राजा कूणिक आपसे निवेदन करता है कि जो भी राज्य के रत्न पदार्थ होते हैं वे राजा के ही होते हैं, अत: आप सेचनक गन्धहस्ती, अष्टादश वक्र हार और वेहल्ल कुमार को राजा कोणिक के पास भेज दो।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक द्वारा दूसरी बार दूत भेजने का वर्णन है जिसमे पुन: सेचनक गंधहस्ती, अठारह लडियों वाला हार व वेहल्ल कुमार की वापसी की मांग दोहराई गई है। साथ में राजा कोणिक ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि जो रत्न किसी भी राजा के राज्य में पैदा होते है उनका स्वामी राजा ही होता है। राजा श्रेणिक के राज्यकाल में ये दो रत्न उत्पन्न हुए थे। राजा श्रेणिक के परिवार से सम्बन्धित होने के कारण इन वस्तुओ पर राज-कुल का ही अधिकार है। इस परम्परा का पालन करते हुए आपको ज्यादा आग्रह नही करना चाहिए। राजा कूणिक ने अपने मगध साम्राज्य के ग्यारह भाग

किए थे। इन दोनों वस्तुओ के भाग नहीं हो सकते थे, अत: ये वस्तुए राजा कूणिक को वापस लौटा देनी चाहिए। इसके साथ ही वेहल्ल कुमार को भी वापस लौटाया जाए। वृत्तिकार ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है–

रायकुल-परम्परागयं ठिइयं अलोवेमाणे त्ति–एवं परम्परामलोपयन्तः अर्थात् राज-कुल की परम्परागत स्थिति को लोप नहीं करना चाहिए।

राज-कुल की परम्पराओ का पालन करना प्रत्येक राजा का प्रथम कर्त्तव्य है।

चेटक का प्रत्युत्तर

मूल–तएणं से चेडए राया तं दूयं एवं वयासी–जह चेव णं देवाणुप्पिया! कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते, चेल्लणाए देवीए अत्तए जहा पढमं जाव वेहल्लं च कुमारं पेसेमि, तं दूयं सक्कारेइ संमाणेइ पडिविसज्जेइ ॥ ७० ॥

छाया–ततः खलु स चेटको राजा त दूतमेवमवादीत्–यथा चैव खलु देवानुप्रिय! कूणिको राजा श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्रः चेल्लनाया देव्या आत्मजः, यथा प्रथमं यावद् वेहल्लं च कुमार प्रेष्यामि। तं दूतं सत्करोति सम्मानयति प्रतिविसर्जयति ॥ ७० ॥

पदार्थान्वय·–तएणं–तत्पश्चात्, **से चेडए राया**–वह राजा चेटक, **त दूय एवं वयासी**–उस दूत को इस प्रकार बोला, **जह चेव णं देवाणुप्पिया**–जैसे हे देवानुप्रिय । निश्चय ही, **कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते**–कोणिक राजा श्रेणिक का पुत्र है, **चेल्लणाए देवीए अत्तए**–चेलना देवी का आत्मज है, **जहा पढमं**–जैसे पहले कहा जा चुका है, **जाव**–यावत्, **वेहल्ल च कुमारं पेसेमि**–मै वेहल्ल कुमार को भेज दूगा, **तं दूयं सक्कारेइ संमाणेइ**–उस दूत का सम्मान सत्कार करता है, **पडिविसज्जेइ**–और उसे विसर्जित करता है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह राजा चेटक उस दूत को इस प्रकार कहने लगा 'हे देवानुप्रिय! निश्चय ही राजा कोणिक श्रेणिक राजा का पुत्र और चेलना देवी का आत्मज है, जैसे पहले कहा जा चुका है (उसी प्रकार राजा चेटक ने दूत को उत्तर दिया) यावत् वेहल्ल कुमार को भेजता हूं आदि। वह उस दूत का सत्कार-सम्मान करता है और उसके बाद दूत को विदा करता है।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे राजा श्रेणिक का दूत वैशाली-सम्राट् चेटक को जो सदेश देता है उसी का उत्तर चेटक राजा दूत को देता है। यह उत्तर वही है जो उसने प्रथम दूत को दिया था। वह यह कि अगर कोणिक राजा सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ी वाला हार

चाहता है और वेहल्ल कुमार की वापसी चाहता है तो अपना आधा राज्य प्रदान करे, तभी उसे ये दोनों वस्तुएं प्राप्त हो सकती है।

दूत का कोणिक को निवेदन

उत्थानिका—दूत ने आकर राजा कोणिक से जो निवेदन किया अब सूत्रकार उसी के विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से दूए जाव कूणियस्स रन्नो वद्धावित्ता एवं वयासी-चेडए राया आणवेइ—जह चेव णं देवाणुप्पिया ! कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए जाव वेहल्लं कुमारं पेसेमि, तं न देइ णं सामी ! चेडए राया सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं, वेहल्लं कुमारं नों पेसेइ ॥ ७१ ॥

छाया—ततः खलु स दूतो यावत् कूणिकं राजानं वर्धयित्वा एवमवादीत्—चेटको राज्ञा आज्ञापयति—यथा चैव खलु देवानुप्रिय ! कूणिको राजा श्रेणिकस्य राज्ञः पुत्र· चेल्लनाया देव्या आत्मजः यावद् वेहल्लं कुमारं प्रेषयामि, तन्न ददाति खलु स्वामिन् ! चेटको राजा सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं च हारं, वेहल्लं कुमारं नो प्रेषयति ॥ ७१ ॥

पदार्थान्वय —तएणं—तत्पश्चात्, **से दूए**—वह दूत, **कूणियस्स रन्नो**—कोणिक राजा को, **वद्धावेत्ता**—बधाई देकर, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा, **चेडए राया**—राजा चेटक, **आणवेइ**—भाव प्रकट करता है कि, **जह चेव णं देवाणुप्पिया**—निश्चय ही हे देवानुप्रिय । जैसे, **कूणिए राया**—कोणिक राजा, **सेणियस्स रन्नो पुत्ते**—श्रेणिक राजा का पुत्र, **चेल्लणाए देवीए अत्तए**—चेलना देवी का आत्मज है, **जाव०**—यावत्, **वेहल्लं कुमारं पेसेमि**—वेहल्ल कुमार को भेजता हूं, **तं न देइ णं सामी**—तो हे स्वामी । ऐसा प्रतीत होता है कि वह नही देगा, **चेडए राया**—चेटक राजा, **सेयणगं गन्धहत्थिं**—सेचनक गन्धहस्ती को और, **अट्ठारसवंकं हारं**—अठारह लडियों वाला हार, **वेहल्ल कुमारं नो पेसेइ**—वेहल्ल कुमार को भी वापस नहीं भेजेगा।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह दूत कोणिक राजा को जय-विजय के साथ बधाई देकर इस प्रकार कहने लगा—"हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही राजा चेटक यह भाव प्रकट करता है कि कोणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का आत्मज है यावद् मैं वेहल्ल कुमार को भेज दूंगा, तो हे स्वामी । चेटक राजा सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार को वापिस नहीं करेगा और वेहल्ल कुमार को वापस नहीं भेजेगा

(ऐसा प्रतीत होता है)।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में दूत ने वैशाली नरेश द्वारा दिए गए उत्तर का वर्णन अपने स्वामी राजा कोणिक से किया है। दूत का यह उत्तर दूत की निर्भयता का चित्रण करता है।

चेटक को कोणिक की कठिन चेतावनी

उत्थानिका—दूत के उत्तर को सुनकर राजा कोणिक ने क्या किया उसे आगे कहते है—

मूल—तएणं से कूणिए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे तच्चं दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी— गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! वेसालीए नयरीए चेडगस्स रन्नो वामेणं पाएणं पायपीढं अक्कमाहि, अक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणावेहि, पणावित्ता आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु चेडगं रायं एवं वदाहि-हं भो चेडगराया ! अपत्थियपत्थिया ! दुरंत जाव-परिवज्जिया! एस णं कूणिए राया आणवेइ-पच्चप्पिणाहि णं कूणियस्स रन्नो सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं वेहल्लं च कुमारं पेसेहि, अहवा जुद्धसज्जा चिट्ठाहि, एस णं कूणिए राया सबले सवाहणे सखंधावारेणं जुद्धसज्जे इह हव्वमागच्छइ ॥ ७२ ॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा तस्य दूतस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य आशरक्तः यावन्मिसिमिसी—कुर्वन् तृतीयं दूत शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्— गच्छ खलु त्वं देवानुप्रिय ! वैशालीं नगरीं चेटकस्य राज्ञो वामेन पादेन पादपीठमाक्राम, आक्रम्य कुन्ताग्रेण लेखं प्रणायय, प्रणाय्य आशुरक्तो यावत् मिसिमिसीकुर्वन् त्रिवलिकां भृकुटिं ललाटे संहृत्य चेटकं राजानमेवं वद—हं भो चेटक राजाः! अप्रार्थितप्रार्थकाः! दुरन्त यावत् परिवर्जिताः ! एष. खलु कूणिको राजा आज्ञापयति— प्रत्यर्पयत खलु कूणिकस्य राज्ञः सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारं वेहल्लं च कुमारं प्रेषयत, अथवा युद्धसज्जाः तिष्ठत। एवं खलु कूणिको राजा सबलः सवाहनः सस्कन्धावारः खलु युद्धसज्ज इह हव्यमागच्छति ॥ ७२ ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं**—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह राजा कोणिक, **तस्स दूयस्स अन्तिए**—उस दूत के समीप से, **एयमट्ठं सोच्चा**—इस अर्थ को सुनकर, **निसम्म**—विचार करके, **आसुरुत्ते**—क्रोधित होकर, **जाव**—यावत्, **मिसिमिसेमाणे**—क्रोध से आकुल-व्याकुल होता हुआ, **तच्चं दूयं सद्दावेइ**—तीसरे दूत को बुलाता है और, **सद्दावित्ता**—बुलाकर, **एवं**

बयासी—इस प्रकार कहने लगा, **गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ, **वेसालीए नयरीए**—वैशाली नगरी मे, **चेडगस्स रन्नो**—वहां चेटक राजा के, **वामेणं पाएणं**—बाएं पैर से, **पायपीढं**—पादपीठ सिंहासन को, **अक्कमाहि अक्कमित्ता**—ठोकर मारना, और ठोकर मार कर, **कुंतग्गेणं लेहं पणावेहि, पणावेहित्ता**—कुंताग्र पर अर्थात् बरछी की नोक से लेख को देना, और देकर, **आसुरुत्ते**—क्रोधित होकर, **जाव**—यावत्, **मिसिमिसेमाणे**—दांत पीसते हुए, **तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु**—मस्तक पर तीन भृकुटी चढ़ाकर, **चेडगं रायं एवं वयाहि**—चेटक राजा को इस प्रकार कहना, **हं भो**—अरे ओ, **चेडगराया**—चेटक राजा, **अपत्थियपत्थिया**—मृत्यु की प्रार्थना करने वाले, **दुरंत**—दुष्ट, **जाव**—यावत्, **परिवज्जिया**—लक्ष्मी रहित, **एस णं कूणिए राया आणवेइ**—कोणिक राजा यह आज्ञा करता है, **पच्चप्पिणाहि**—वापस लौटा दो, **कूणियस्स रन्नो**—कोणिक राजा को, **सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं**—सेचनक गधहस्ती व अठारह लडियो वाला हार, **वेहल्लं कुमारं पेसेहि**—और वेहल्ल कुमार को वापस भेज दो, **अहवा जुद्धसज्जो चिट्ठाहि**— अन्यथा युद्ध के लिए सुसज्जित होकर तैयार हो जाओ, **एस णं कूणिए राया**—यह कोणिक राजा, **सबले**—अत्यन्त बलवान् (हाथियो सहित), **सवाहणे**—वाहन सहित अर्थात् पालकी आदि सवारी सहित, **सखन्धावारे**—पैदल सैनिक दल के साथ पड़ाव करता हुआ, **जुद्धसज्जे**—युद्ध के लिए तैयार होकर, **इह हव्वमागच्छइ**—यहां शीघ्र ही आ रहा है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा कोणिक, उस दूत के पास से इस अर्थ को सुनकर विचार कर आशुरक्त यावत् क्रोध से आकुल-व्याकुल (दांत पीसता) हुआ, तृतीय दूत को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार आज्ञा देता है 'हे देवानुप्रिय ! तुम वैशाली नगरी जाओ, वहां चेटक राजा के सिंहासन को बाएं पैर से ठोकर मारना, ठोकर मार कर कुन्ताग्र (बरछी के अग्रभाग से) यह लेख उसे देना, देकर आशुरक्त यावत् आकुल-व्याकुल होना, मस्तक में भृकुटी चढ़ाकर चेटक राजा को इस प्रकार कहना—अरे ओ मृत्यु चाहने वाले लक्ष्मी रहित चेटक ! कोणिक राजा आज्ञा देता है कि तुम कोणिक राजा को सेचनक गधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला हार लौटा दो और वेहल्ल कुमार को वापस भेज दो। (अथवा) नही तो युद्ध के लिए सुसज्जित हो जाओ। वह कोणिक राजा हाथी—घोड़ों पालकी आदि वाहनो और पैदल सेना के साथ पड़ाव डालता हुआ शीघ्र ही यहां आ रहा है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में कोणिक राजा द्वारा अपने तीसरे दूत से वार्तालाप का वर्णन है। राजा कोणिक, राजा चेटक के इन्कार करने पर किस तरह क्रोधित होता है, इसका स्पष्ट चित्रण शास्त्रकार ने किया है। राजा कोणिक अपने तीसरे दूत से राजा चेटक को स्पष्ट

सूचित करता है कि या तो वह दोनों वस्तुओं और वेहल्ल कुमार को वापस लौटा दे या फिर युद्ध के लिए तैयार हो जाए।

प्रस्तुत सूत्र में (हं भो) फटकार के अर्थ में लिया गया है। **'अपत्थियपत्थिया'** पद का अर्थ है मृत्यु को आमन्त्रण देने वाला। जिस मृत्यु की कोई इच्छा नहीं रखता उस मृत्यु की इच्छा करने वाला। **कुन्तग्गेणं लेहं पणावेहि**—इस सूत्र द्वारा कोणिक राजा द्वारा प्रेषित संदेश को बरछे की नोंक पर टांग कर प्रस्तुत करने का उल्लेख है। इस पद द्वारा यह सिद्ध होता है कि आर्य लोग लिखने की कला प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के काल से ही जानते थे। इस सूत्र मे राजा कोणिक अपने नाना वैशाली नरेश चेटक को युद्ध की धमकी अपमान जनक शब्दों में देता है। इस सूत्र में उस समय की प्राचीन युद्ध-पद्धति का वर्णन किया गया है।

उत्थानिका—आज्ञा पालक दूत ने फिर क्या किया अब सूत्रकार इसी विषय में कहते हैं।

मूल—तएणं से दूए करयल० तहेव जाव जेणेव चेडए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—एस णं सामी ! ममं विणयपडिवत्ती, इयाणिं कूणियस्स रन्नो आणत्ती चेडगस्स रन्नो वामेणं पाएणं पायपीढं अक्कमइ, अक्कमित्ता, आसुरुत्ते कुंतग्गेणं लेहं पणावेइ तं चेव सबलखंधावारे णं इह हव्वमागच्छइ ॥ ७३ ॥

छाया—ततः खलु सः दूतः करतल० तथैव यावद् यत्रैव चेटको राजा तत्रैवोपागच्छति उपागत्य करतल० यावद् वर्धयति, वर्धयित्वा एवमवादीत्—एषा खलु स्वामिन् ! मम विनयप्रतिपत्तिः, इदानीं कूणिकस्य राज्ञः आज्ञप्तिः चेटकस्य राज्ञो वामेन पादेन पादपीठमाक्रामति, आक्रम्य आशुरक्तः कुन्ताग्रेण लेखं प्रणाययति तदेव सबलस्कन्धावारः खलु इह हव्यमागच्छति ॥ ७३ ॥

पदार्थान्वय—तएणं—तत्पश्चात्, **से दूए**—वह दूत, **करयल०**—दोनो हाथ जोड़कर, **जाव**—यावत्, **तहेव**—उसी प्रकार, **जेणेव चेडए राया**—जहा चेटक राजा था, **तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता**—वहां आता है और आकर, **करयल० जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी**—दोनो हाथ जोड़कर बधाई देता हुआ, इस प्रकार बोला, **एस णं सामी**—हे स्वामी ! यह, **मम विणयपडिवत्ती**—यह मेरी विनय प्रतिप्रत्ति है, **इयाणिं कूणियस्स रन्नो आणत्ती**—अब कोणिक राजा की आज्ञा का पालन करता हूं ऐसा कहकर, **चेडगस्स रन्नो**—चेटक राजा के, **वामेणं पाएणं**—बाएं पैर से, **पायपीढं**—पादपीठ सिंहासन को, **अक्कमइ**—स्पर्श करता

है अर्थात् ठोकर मारता है, ठोकर मार कर, **आसुरुत्ते**–आशुरक्त क्रोधित होता हुआ, **कुंतग्गेण लेहं पणावेइ**–कुंताग्र से लेख को देता है, **तं चेव**–और इस प्रकार से, **सबलखन्धा-वारेणं**–सबल पैदल आदि चतुरंगिणी सेना सहित, **इह हव्वमागच्छइ**–यहां शीघ्र आ रहा है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह दूत करतल (दोनो हाथ जोड़कर) यावत् उस प्रकार जहां चेटक राजा था, वहां आता है, वहां आकर यावत् दोनों हाथ जोड़कर जय-विजय से बधाई देता हुआ इस प्रकार कहने लगा–"हे स्वामी ! यह तो मेरी विनय भक्ति है। अब राजा कोणिक की आज्ञा का पालन करता हूं। ऐसा कहकर राजा चेटक के सिंहासन को बाएं पैर से छूता है, छूकर आशुरक्त होता हुआ, कुताग्र से लेख को अर्पण करता है। बाकी उसी प्रकार सबल-पैदल आदि चतुरंगिणी सेना सहित राजा कोणिक शीघ्र ही यहा आ रहा है।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक के सन्देश का वर्णन है जिसे राजा चेटक तक दूत अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए पहुंचाता है। दूत अपनी ओर से राजा चेटक का सम्मान करता हुआ वही सन्देश देता है जो उसके स्वामी ने उसे देने को कहा है। दूत की कर्त्तव्य परायणता, निडरता, स्वामीभक्ति का स्पष्ट चित्रण इस सूत्र मे किया गया है। प्रस्तुत सूत्र से यह भी सिद्ध है कि दूत को प्राचीन काल से ही अवध्य व सम्मान जनक स्थान मिलता रहा है। दूत मित्र के पास भी जाता है और शत्रु के पास भी। हर स्थान पर वह अपने स्वामी का संदेशवाहक बन कर जाता है। राजा चेटक के प्रति दूत का अभद्र व्यवहार उसकी स्वेच्छा से नही, वह तो राजाज्ञा का पालन मात्र है।

चेटक का सटीक उत्तर

उत्थानिका–तब चेटक राजा ने दूत से क्या व्यवहार किया, अब सूत्रकार उसका कथन करते है–

मूल–तएणं से चेडए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जाव साहट्टु एवं वयासी–न अप्पिणामि णं कूणियस्स रन्नो सेयणगं अट्ठारसवंकं हारं, वेहल्लं च कुमारं नो पेसेमि, एस णं जुद्धसज्जे चिट्ठामि। तं दूयं असक्कारियं असंमाणियं अवद्दारेणं निच्छुहावेइ ॥ ७४॥

छाया–ततः खलु स चेटको राजा तस्य दूतस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य आशुरक्तः यावत् संहृत्य एवमवादीत्–नार्पयामि खलु कूणिकस्य राज्ञः सेचन-कमष्टादशवक्रं हारं वेहल्लं च कुमारं नो प्रेषयामि, एष खलु युद्धसज्जस्तिष्ठामि।

तं दूतमसत्कारितमसम्मानितमपद्वारेण निष्कासयति ॥ ७४ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से चेडए राया**—वह चेटक राजा, **तस्स दूयस्स अंतिए**—उस दूत के समीप से, **एयमट्ठं सोच्चा**—इस अर्थ (बात) को सुनकर, **निसम्म**—विचार कर, **आसुरुत्ते**—क्रोधित हुआ, **जाव साहट्टु**—यावत् मस्तक पर तीन भृकुटी चढ़ाता हुआ, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोला, **न अप्पिणामि णं**—नहीं अर्पण करता हूं, **कूणियस्स रन्नो**—कोणिक राजा को, **सेयणगं अट्ठारसवंक हारं**—सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियो वाले हार को, **वेहल्लकुमारं नो पेसेमि**—वेहल्ल कुमार को भी वापिस नही भेजता, **एस णं जुद्धसज्जे चिट्ठामि**—परन्तु युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आता हूं ऐसा कहकर, **तं दूयं असक्कारियं**—उस दूत का असत्कार करता है, **असंमाणियं**—असम्मान या अपमान करता है, और, **अवद्दारेणं निच्छुहावेइ**—अपद्वार से बाहर निकलवा देता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा चेटक उस दूत के द्वारा इस अर्थ (बात) को सुनकर, विचार करता है, विचार करके क्रोधित होता हुआ यावत् मस्तक पर तीन भृकुटी चढाता हुआ, इस प्रकार कहने लगा—"मैं कोणिक राजा के पास सेचनक गंधहस्ती, अठारह लड़ियों वाला हार व वेहल्ल कुमार को वापस नहीं भेज सकता। हां, मैं युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आता हूं।

उस दूत का वह राजा चेटक असत्कार करता है, असम्मान करता है और अपमान करके अपद्वार से बाहर निकाल देता है, अर्थात् दुर्गन्धी भरे जल मार्ग से दूत को बाहर निकालता है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि दूत के मुख से राजा कोणिक का सदेश सुनकर श्रमणोपासक राजा चेटक को भी क्रोध आ गया। उसने राजा कोणिक की युद्ध की चुनौती स्वीकार कर ली। साथ मे स्पष्ट कह दिया कि जब तक राजा कोणिक आधा राज्य प्रदान नही करता, तब तक सेचनक गन्धहस्ती, अठारह लड़ियो वाला हार व वेहल्ल कुमार किसी कीमत पर वापस नही भेजे जाएगे। अब उसने दूत को सत्कार-सन्मान न देकर, नगर के अपद्वार से वापस लौटा दिया। अपद्वार का अर्थ है—वह मार्ग जहां से नगर का दुर्गन्धि भरा जल गुजरता है। राजा चेटक ने युद्ध की चुनौती स्वीकार करके शरणागत की रक्षा का कर्तव्य निभाया इसी कारण से राजा चेटक ने दूत से कहा—

न अप्पिणामि णं कूणियस्स रन्नो सेयणगं अट्ठारसवंकं हारं वेहल्लं च कुमारं नो पेसेमि, एस णं जुद्धसज्जे चिट्ठामि—इस वाक्य से चेटक राजा की शूरवीरता ध्वनित होती है। राजा चेटक ने दूत से कहा हे दूत ! तू अवध्य है इसलिए मैं तुझे नही मारूगा, पर अपने स्वामी के पास मेरा संदेश ज्यो का त्यों पहुंचा देना।

मूल—तएणं से कूणिए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते कालादीए दस कुमारे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! वेहल्ले कुमारे ममं असंविदितेणं सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं हारं अतेउरं सभंडं च गहाय चंपाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता वेसालिं अज्जगं चेडगरायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तएणं मए सेयणगस्स गन्धहत्थिस्स अट्ठारसवंकस्स हारस्स अट्ठाए दूया पेसिया, ते य चेडएण रण्णा इमेणं कारणेणं पडिसेहिया अदुत्तरं च णं ममं तच्चे दूए असक्कारिए, तं अवद्दारेणं निच्छुहावेइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं चेडगस्स रन्नो जुत्तं गिण्हित्तए ॥ ७५ ॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा तस्य दूतस्यान्तिके एतमर्थ श्रुत्वा निशम्य आशुरक्तः कालादीन् दशकुमारान् शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाः! वेहल्लः कुमारो मम असंविदितः खलु सेचनकं गन्धहस्तिनम् अष्टादशवक्रं हारम् अन्तःपुरं सभाण्डं च गृहीत्वा चम्पातो निष्क्रामति, निष्क्रम्य वैशालीम् आर्यकं चेटकराजम् उपसंपद्य विहरति। ततः खलु मया सेचनकस्य गन्धहस्तिनः अष्टादश-वक्रस्य हारस्य अर्थाय दूताः प्रेषिता, ते च चेटकेन राज्ञा अनेन कारणेन प्रतिषिद्धाः, अथोत्तरं च खलु मम तृतीयो दूतः असत्कारितः तं अपद्वारेण निष्कासयति, तच्छ्रेयः खलु देवानुप्रियाः ! अस्माकं चेटकस्य राज्ञः युक्तं ग्रहीतुम् ॥ ७५ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह कोणिक राजा, **तस्स दूयस्स अन्तिए**—उस दूत के समीप से, **एयमट्ठं सोच्चा**—इस अर्थ को सुनकर, **निसम्म**—विचार कर, **आसुरत्ते**—आशुरक्त हुए या क्रोधित होकर, **कालादीए दस कुमारे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता**—कालादि दश कुमारों को बुलाता है बुलाकर, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा, **एवं खलु देवाणुप्पिया**—इस प्रकार निश्चय ही, हे देवानुप्रिय ! **वेहल्ले कुमारे**—वेहल्ल कुमार, **ममं असंविदितेणं**—मुझे बिना बताए, **सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं हारं**—सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार को लेकर अपने अतःपुर परिवार के साथ, **सभंडं च गहाय**—अपने साज सामान को साथ लेकर, **चम्पाओ निक्खमइ निक्खमित्ता**—चम्पा नगरी से निकल गया है और निकल कर, **वेसालिं**—वैशाली में, **जाव**—यावत्, **अज्जगं चेडगरायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ**—नाना आर्य चेटक की शरण ले कर विचरता है, **तएणं मए**—तो इस समाचार को सुनकर मैंने, **सेयणगस्स गंधहत्थिस्स अट्ठारसवंकस्स हारस्स**

अट्ठाए–सेचनक गन्धहस्ती और अठारह लडियो वाले हार के लिए, **दूया पेसिया**–दो दूत भेजे, **ते य**–वह, **चेडएण रन्ना**–चेटक राजा ने, **इमेणं कारणेणं**–इस कारण से, **पडिसेहिया**–प्रतिषेध करके वापिस लौटा दिए, **अदुत्तरं च णं**–इतना ही नही, किन्तु, **मम तच्चे दूए**–मेरे तीसरे दूत को, **असक्कारिए**–सत्कार न देते हुए, **असंमाणिए**–असम्मान देते हुए, **अवद्दारेणं निच्छुहावेइ**–अपद्वार से अर्थात् नगर के दुर्गन्धित छोटे मार्ग से निकलवा दिया, **तं सेयं खलु देवाणुप्पिया**–तो निश्चय ही हे देवानुप्रिय ! यही श्रेय है, **अम्हं**–हमे, **चेडगस्स रन्नो**–चेटक राजा से, **जुत्तं गिण्हित्तए**–युद्ध के लिए निकलना चाहिए अर्थात् युद्ध के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

मूलार्थ–तत्पश्चात् कोणिक राजा ने उस दूत से इस बात को सुना, फिर विचार किया। यावत् क्रोध मे आकुल-व्याकुल होकर काल आदि दश कुमारों को बुलाकर इस प्रकार कहने लगा–"हे देवानुप्रियो ! निश्चय ही वेहल्ल कुमार मुझे सूचित किए बिना सेचनक गधहस्ती, अठारह लडियों वाले हार को, अपने साज-सामान समेत अन्त:पुर के साथ चम्पा नगरी से निकला, निकल कर वैशाली में यावत् नाना चेटक के आश्रित होकर विचरता है। इस समाचार के प्राप्त होने पर मैने सेचनक गधहस्ती और अठारह लड़ियों वाले हार के लिए दो दूत भेजे। उनको चेटक राजा ने प्रतिषेधित कर दिया, इतना ही नहीं, मेरे तीसरे दूत को तिरस्कार करके अपद्वार से बाहर निकलवा दिया, अत: हे देवानुप्रियो ! निश्चय ही हमें चेटक राजा के साथ युद्ध के लिए सुसज्जित होना श्रेयस्कर है।

टीका–कोणिक राजा ने अपने भाइयों को अपने दूत के साथ राजा चेटक द्वारा किए गए व्यवहार से अवगत कराया है। दूत से किए अभद्र व्यवहार को सुनकर कोणिक क्रोधित हो गया था, उसने अपने दस भ्राताओ कालादि को निमंत्रण दिया। कोणिक राजा ने वेहल्ल कुमार के वैशाली पहुंचने की सूचना दी और साथ में कहा कि वेहल्ल कुमार हमारे राज्य के सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लडियो वाला हार भी ले गया है। मैंने राजा चेटक को समझाने के लिए दो दूत भेजे, पर राजा चेटक नही माना। अत में मैंने तीसरे दूत को भेजा। जिसके साथ चेटक राजा ने अभद्र व्यवहार करते हुए, उसे अपद्वार से बाहर निकलवा दिया, इसलिए हमे युद्ध के लिए तैयार हो जाना चाहिए। राजा कोणिक के इन शब्दों से उस का मनोगत भाव प्रकट होता है।

तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं चेडगस्स रन्नो जुत्तं गिण्हित्तए–इस संदर्भ में वृत्तिकार का कथन है–**ततो यात्रां सह ग्रामयात्रां गृहीतुमुद्यता वयमिति**–यहां कोणिक

राजा ने अपने दूत द्वारा राजा चेटक के प्रति किए गए अभद्र व्यवहार का वर्णन नहीं किया।

भ्राताओं की स्वीकृति

मूल—तएणं कालाइया दस कुमारा कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति ॥ ७६ ॥

छाया—ततः खलु कालादिकाः दश कुमाराः कूणिकस्य राज्ञः एतमर्थं विनयेन प्रतिश्रृण्वन्ति ॥ ७६ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **कालाइया दस कुमारा**—कालादि दश कुमार, **कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं**—कोणिक राजा के इस अर्थ को अर्थात् आज्ञा को, **विणएणं पडिसुणेन्ति**— विनयपूर्वक सुनते हैं, अर्थात् स्वीकार करते हैं।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे काल आदि दस कुमार, राजा कोणिक की इस आज्ञा को विनयपूर्वक सुनते हैं, अर्थात् स्वीकार करते हैं।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक द्वारा अपने कालादि दस भाइयों को युद्ध की प्रेरणा देने का वर्णन है। राजा कोणिक की बात को सभी भाई विनय-पूर्वक सुनते हैं, अर्थात् मान लेते है। **पडिसुणेन्ति**—का अर्थ है स्वीकार करना। उन कुमारो ने अपनी ओर से कुछ नही कहा अर्थात् उन भाइयों ने अपनी ओर से राजा कोणिक को न्याय-मार्ग पर लाने की चेष्टा नहीं की।

युद्ध के लिए तैयारी

उत्थानिका—राजा कोणिक ने इस विषय में जो आगे कथन किया, उसी का सूत्रकार ने कथन किया है—

मूल—तएणं से कूणिए राया कालादीए दस कुमारे एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सएसु सएसु रज्जेसु पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया जाव पायच्छित्ता हत्थिखंधवरगया पत्तेयं-पत्तेयं तिहिं दंतिसहस्सेहिं, एवं तिहिं रहसहस्सेहिं, तिहिं आससहस्सेहिं, तिहिं मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं सएहिंतो सएहिंतो नयरेहिंतो पडिनिक्खमह, पडिनिक्खमित्ता ममं अंतियं पाउब्भवह ॥ ७७ ॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा कालादीन् दश कुमारान् एवमवादीत्—गच्छत

खलु यूयं देवानुप्रियाः ! स्वकेषु राज्येषु प्रत्येक प्रत्येकं स्नाता यावत् प्रायश्चित्ताः हस्तिस्कन्धवरगताः प्रत्येकं प्रत्येकं त्रिभिर्दन्तिसहस्त्रैः एवं त्रिभी रथसहस्त्रैः, त्रिभि-रश्वसहस्त्रैः, तिसृभिर्मनुष्यकोटिभिः सार्द्धं संपरिवृता सर्वर्द्ध्या यावद्रवेण स्वकेभ्यः स्वकेभ्यो नगरेभ्यः प्रतिनिष्क्रामत, प्रतिनिष्क्रम्य ममान्तिकं प्रादुर्भवत ॥ ७७ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से कूणिए-राया**—वह राजा कूणिक, **कालादीए दस कुमारे**—कालादि दश कुमारों को, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोला, **गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय आप जाओ, **सएसु सएसु रज्जेसु**—अपने-अपने राज्यों में, **पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया**—प्रत्येक-प्रत्येक स्नान कर, **जाव**—यावत्, **पायच्छित्ता**—शुद्ध होकर, **हत्थिखन्ध-वरगया**—हस्तिस्कध होकर अर्थात् हाथियो पर सवार होकर, **पत्तेयं पत्तेयं तिहिं दंतिसहस्सेहिं**—प्रत्येक-प्रत्येक तीन हजार हाथियो के साथ, **एवं**—इस प्रकार, **तिहिं रह-सहस्सेहिं**—तीन-तीन हजार रथों के साथ, **तिहिं आससहस्सेहिं**—तीन-तीन हजार अश्वो के साथ, **तिहिं मणुस्सकोडीहिं**— तीन-तीन करोड मनुष्यों (सैनिको) के साथ, **संपरिवुडा**—सपरिवृत हुए, घिरे हुए, **सव्विड्ढीए जाव रवेणं**—सर्व ऋद्धि से युक्त होकर यावत् वाद्य यत्रो के विभिन्न शब्दों के साथ, **सएहिंतो सएहिंतो**—अपने-अपने, **नयरेहिंतो**—नगरों से, **पडिनिक्खमह पडिनिक्खमइत्ता**— निकलो और निकल कर, **ममं अन्तियं पाउब्भवह**—मेरे समीप प्रकट हो जाओ, अर्थात् मेरे पास पहुच जाओ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह राजा कोणिक कालादिक दश कुमारों को इस प्रकार कहने लगा—"हे देवानुप्रियो ! आप लोग अपने-अपने राज्यों में जाओ, वहा जाकर प्रत्येक (राजकुमार) स्नानादि करके यावत् शुद्ध होकर, हस्ति-स्कन्ध को प्राप्त होना, अर्थात् हाथियों पर सवार हो जाना, प्रत्येक राजकुमार तीन-तीन हजार हाथियों के साथ, तीन-तीन हजार रथों के साथ, तीन-तीन हजार घोडों के साथ और तीन-तीन करोड मनुष्यो (सैनिको) से परिवृत होकर सर्व-ऋद्धि सहित यावत् नाना प्रकार के वाद्य-यन्त्रो के शब्दो के साथ अपने-अपने नगरों से बाहर आओ, बाहर आकर मेरे पास पहुंच जाओ।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे राजा कोणिक ने हाथी, घोड़ों, रथों व सैनिकों सहित तैयार होकर आने को कहा है। प्रस्तुत सूत्र में युद्ध से पहले की तैयारी का वर्णन भी ध्वनित होता है कि कैसे प्राचीन राजा हाथी पर बैठकर, विभिन्न वाद्य-यन्त्रों के शब्दों के स्वर गुंजाते हुए युद्ध के मैदान में जाया करते थे। यहां कोणिक ने तैयार होकर हाथी पर बैठकर अपने समीप आने की आज्ञा अपने कालादि दस कुमारो को दी है। इस सूत्र से यह भी प्रकट होता है कि प्रत्येक राजकुमार की अपनी-अपनी सेना थी। इस बारे में

वृत्तिकार ने स्पष्ट किया है—**गच्छत यूयं स्वराज्येषु निजनिजसामग्र्या संनह्य समागच्छत मम समीपे**—अर्थात् आप अपने-अपने राज्य में जाओ और अपनी-अपनी युद्ध-सामग्री से सज कर मेरे पास पहुंचो।

कालादि दस भाइयों की युद्ध की तैयारी

मूल—तए णं ते कालाईया दस कुमारा कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं सोच्चा सएसु सएसु रज्जेसु पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया जाव तिहिं मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं सएहिंतो सएहिंतो नयरेहिंतो पडिनिक्ख-मंति पडिनिक्खमित्ता जेणेव अंगा जणवए, जेणेव चंपा नयरी जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागया, करयल० जाव वद्धावेंति ॥ ७८ ॥

छाया—ततः खलु ते कालादिका दशकुमाराः कूणिकस्य राज्ञ एतमर्थं श्रुत्वा स्वकेषु स्वकेषु राज्येषु प्रत्येकं प्रत्येकं स्नाताः, यावत् तिसृभिर्मनुष्यकोटिभिः सार्द्धं सपरिवृता यावत् रवेण स्वकेभ्यः स्वकेभ्यो नगरेभ्यः प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव अङ्ग जनपदः, यत्रैव चम्पा नगरी, यत्रैव कूणिको राजा तत्रैवोपागतः करतल० यावद् वर्धयन्ति ॥ ७८ ॥

पदार्थान्वय.—तएणं—तत्पश्चात्, **ते कालाईया दस कुमारा**—वे काल आदि दस कुमार, **कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं सोच्चा**—कोणिक राजा के इस अर्थ—आज्ञा को सुनकर, **सएसु सएसु रज्जेसु**—अपने-अपने राज्य मे आए, **पत्तेय पत्तेयं ण्हाया**—और आकर प्रत्येक राजकुमार ने स्नान किया, स्नान करके, **जाव**—यावत्, **तिहिं मणुस्सकोडीहिं सद्धिं**—तीन-तीन करोड़ मनुष्यों (सैनिकों) के साथ, **सपरिवुडा**—सपरिवृत हुए अर्थात् घिरे हुए, **सव्विड्ढीए**—सर्व ऋद्धियो से युक्त, **जाव**—यावत्, **रवेणं**—वाद्य-यत्रो के स्वरों से युक्त होकर, **सएहिंतो सएहिंतो नयरेहिन्तो**—अपने-अपने नगरों से, **पडिनिक्खमंति**—निकलते हैं और, **पडिनिक्ख-मइत्ता**—निकल कर, **जेणेव अंगा जणवए**—जहा अग जनपद था, **जेणेव चंपा नयरी**—जहा चम्पा नगरी थी, **जेणेव कूणिए राया**—जहां राजा कोणिक था, **तेणेव उवागया**—वहा आए, आकर, **जाव**—यावत्, **करयल० वद्धावेंति**—दोनों हाथ जोडकर जय-विजय शब्दो द्वारा बधाई देते हैं।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे कालादि दश कुमार, राजा कोणिक की आज्ञा को सुनकर अपने-अपने राज्यों में आए। राज्य में आकर प्रत्येक राजकुमार ने स्नान किया। यावत् तीन-तीन हजार हाथियो, रथों और तीन करोड़ मनुष्यो (सैनिकों) के साथ सपरिवृत (घिरे) होकर, सर्व ऋद्धि (राज्य वैभव) से युक्त होकर यावत् वाद्य-यन्त्रों के शब्दों के साथ अपने-अपने नगरों से निकलते हैं, निकल कर जहां अंग देश की राजधानी

चम्पा नगरी थी, वहां कोणिक राजा के पास आते हैं, आकर यावत् दोनो हाथ जोड़कर जय-विजय स्वर से बधाई देते हैं कि महाराज आपकी जय हो।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि राजा कोणिक की आज्ञा का पालन करते हुए कालादि दसों भ्राता अपने-अपने नगरो से सैनिक दलबल के साथ अंग देश की राजधानी चम्पा नगरी मे आते है। प्रस्तुत सूत्र से यह सिद्ध होता है कि मगध देश अलग था, जिस की राजधानी पाटलीपुत्र थी। अग देश मगध का एक हिस्सा था और चम्पा एक प्रमुख नगरी थी। जैन इतिहास की अनेक कथाओ मे इसका वर्णन है। इस सूत्र में मगध-साम्राज्य के राजतन्त्र की विशाल सीमा का पता चलता है। प्रत्येक राजकुमार की सैनिक शक्ति, वैभव और प्रभुसत्ता का वर्णन भी इस सूत्र से मिलता है। प्राचीन काल में छोटे-छोटे राजा बडे राजा की आधीनता स्वीकार कर लेते थे। यही बात कोणिक राजा के इतिहास से ज्ञात होती है।

कोणिक की युद्ध के लिए तैयारी

मूल—तएणं से कूणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, हय-गय-रह-चाउरंगिणिं सेणं संनाहेह, ममं एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह, जाव पच्चप्पिणंति ॥ ७९ ॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! आभिषेक्यं हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत, हय-गज-रथ-चतुरङ्गिणीं सेनां संनह्यत ममैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत यावत् प्रत्यर्पयन्ति ॥ ७९ ॥

पदार्थान्वय.—तएणं—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह राजा कोणिक, **कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता**—कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है और बुलाकर, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा, **खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय शीघ्र ही, **आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह**—बैठने योग्य अभिषिक्त हस्ति-रत्न को तैयार करो, **हयगयरह चाउरंगिणिं सेणं सनाहेह**—घोडे-हाथी, रथ आदि चतुरंगिणी सेना तैयार करो, **ममं एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह**—मेरी इस आज्ञा का पालन करो, **जाव पच्चप्पिणन्ति**—यावत् वे पुरुष उस कोणिक राजा की आज्ञा को पूरा करते है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस राजा कोणिक ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुला कर इस प्रकार आज्ञा प्रदान करते हुए कहने लगा—हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही (मेरे) बैठने

योग्य अभिषेक किया हुआ हस्ति-रत्न सुसज्जित (तैयार) करो और इसी तरह अश्व-गज-रथ आदि चार प्रकार की सेना तैयार करो, मेरी आज्ञा पूरी करके मुझे सूचित करो। सेवक राजा की आज्ञा का पालन करते हैं।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि राजा कोणिक ने देखा कि उसके दसो भाई अपनी-अपनी सेना लेकर चम्पा आ गए है। तब कोणिक ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि वे भी एक अभिषेक किया हुआ बैठने योग्य हाथी तैयार करे, साथ में चारों प्रकार की सेना को तैयार रहने का आदेश दो। सेवकों ने कोणिक राजा की आज्ञा का पालन किया। हस्तिरत्न का अर्थ है प्रमुख हाथी। इसलिए इसे गजरत्न भी कहा गया है।

चतुरंगिणी सेना का वर्णन औपपातिक सूत्र में विस्तार से मिलता है, अतः जिज्ञासुओं को उस सूत्र का स्वाध्याय करना चाहिए।

उत्थानिका—तत्पश्चात् कोणिक राजा ने क्या किया अब सूत्रकार इस विषय में कहते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ जाव पडिनिग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जाव नरवई दुरूढे।

तएणं से कूणिए राया तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव रवेणं चंपं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कालादीया दस कुमारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कालाइएहिं दसहिं कुमारेहिं सद्धिं एगओ मेलायंति ॥ ८० ॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति यावत् प्रतिनिर्गत्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यावत् नरपतिर्दुरूढः।

ततः खलु स कूणिको राजा त्रिभिर्दन्तिसहस्रैः यावत् चम्पां नगरीं मध्यं—मध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कालादिकाः दश कुमारास्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य कालादिकैर्दशभिः कुमारैः सार्द्धमेकतो मिलति ॥ ८० ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह कोणिक राजा, **जेणेव मज्जणघरे**—जहां स्नान-घर था, **तेणेव उवागच्छइ**—वहां आता है, **जाव**—यावत् स्नानादि से निवृत्त होकर, **पडिनिग्गच्छित्ता**—राजमहल से निकल कर, **जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला**—जहां बाह्य उपस्थानशाला थी, **जाव**—यावत्, **नरवई दुरूढे**—नरपति कूणिक अभिषिक्त हस्ति पर बैठ गया।

तएणं–तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**–वह कोणिक राजा, **जाव**–यावत्, **तिहिं दंति-सहस्सेहिं**–तीन हजार हाथियों के साथ, **जाव रवेणं**–यावत् वाद्य-यंत्रों के स्वरों के साथ, **चम्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं**–चम्पा नगरी के मध्य-मध्य से होता हुआ, **निग्गच्छइ**–निकलता है, **निग्गच्छइत्ता**–और निकल कर, **जेणेव कालाईया दस कुमारा**–जहां कालादि दश कुमार थे, **तेणेव उवागच्छइ**–वहां आता है, **उवागच्छित्ता**–आकर, **कालाइएहिं कुमारेहिं सद्धिं एगओ मेलायन्ति**–कालादि दश कुमारो के साथ एकत्रित होता है, अर्थात् सब भाई इकट्ठे मिल जाते हैं।

मूलार्थ–तत्पश्चात् राजा कोणिक जहां स्नान-घर था वहां आता है, यावत् स्नानादि क्रियाओ से निवृत्त होकर, राजमहल से निकलता है और निकलकर जहां बाहिर उपस्थान-शाला (राज-सभा) थी वहां आता है। आकर यावत् कोणिक राजा हाथी पर सवार होता है। फिर कोणिक राजा तीन हजार हाथियो के साथ यावत् वाद्य-यंत्रो के स्वरों के साथ चपानगरी के बीचों-बीच होता हुआ आता है, आकर कालादि दश कुमारो के समूह के साथ एकत्रित होता है, अर्थात् भाइयो के साथ मिल जाता है।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे राजा कोणिक की युद्ध सम्बन्धी तैयारी का परम्परागत ढग से वर्णन है। राजा कोणिक ने पहले स्नान किया, फिर उपस्थान शाला (सभा-मण्डप) में आता है फिर हाथी पर आरूढ होकर, वाद्य-यंत्रों व चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ वहां आता है जहां कालादि दश कुमार पडाव डाले हुए थे। राजा कोणिक के साथ तीन-तीन हजार घोड़े, हाथी व अश्व थे। इस प्रकार की सैनिक तैयारी का समग्र वर्णन औपपातिक सूत्र मे मिलता है।

युद्ध के लिए सैन्य प्रस्थान

मूल–तएणं से कूणिए राया तेत्तीसाए दंतिसहस्सेहिं, तेत्तीसाए आससहस्सेहिं, तेत्तीसाए रहसहस्सेहिं, तेत्तीसाए मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सुभेहिं वसहिपायरासेहिं नाइविप्पगिट्ठेहिं अंतरावासेहिं वसमाणे-वसमाणे अंगजणवयस्स मज्झं-मज्झेणं जेणेव विदेहे जणवए जेणेव वेसाली नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ ८१ ॥

छाया–ततः खलु स कूणिको राजा त्रयस्त्रिंशतैः दन्तिसहस्रैः, त्रयस्त्रिंशता-श्वसहस्रैः, त्रयस्त्रिंशतैः रथसहस्रैः, त्रयस्त्रिंशतैः मनुष्यकोटिभिः सार्द्धं संपरिवृतः सर्वर्द्धया यावद् रवेण शुभैर्वसतिप्रातराशै–नातिविप्रकृष्टैरन्तरावासैः वसन् वसन्

अङ्गजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव विदेहो जनपदः यत्रैव वैशाली नगरी तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ॥ ८१ ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं**—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह राजा कोणिक, **तेत्तीसाए दन्तिसहस्सेहिं**—३३ हजार हाथियों के साथ, **तेत्तीसाए आससहस्सेहिं**—तेंतीस हजार अश्वो के साथ, **तेत्तीसाए रहसहस्सेहिं**—तेंतीस हजार रथों, **तेत्तीसाए मणुस्सकोडीहिं**—तेंतीस करोड़ मनुष्यों (सैनिकों) के, **सद्धिं**—साथ, **संपरिवुडे**—संपरिवृत हुआ यावत् घिरा हुआ, **जाव**—यावत्, **सव्विड्ढीए जाव रवेणं**—वाद्य-यत्रों के स्वर घोष के साथ सर्व ऋद्धि युक्त, **सुभेहिं**—शुभ बस्तियों मे पड़ाव करता हुआ, **वसहिपाय-रासेहिं**—प्रातःकालीन जल-पान आदि करता हुआ, **नाइविप्पगिट्ठेहिं**—अधिक न चलते हुए, **अन्तरावासेहिं वसमाणे, वसमाणे**—रास्ते में पड़ाव डालता हुआ, **अंगजणवयस्स मज्झंमज्झेणं**—अंग देश के बीचो-बीच, **जेणेव विदेहे जणवए**—जहा विदेह जनपद था, **जेणेव वेसाली नयरी**—जहा वैशाली नगरी थी, **तेणेव पहारेत्थ गमणाए**—वहां जाने के लिए तैयार हुआ अर्थात् उसने वैशाली नगरी की ओर प्रस्थान किया।

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा कोणिक ३३ हजार हाथियो, ३३ हजार अश्वों, ३३ हजार रथो, ३३ करोड सैनिकों से घिरा हुआ यावत् अपनी समस्त ऋद्धि के साथ विभिन्न वाद्य-यंत्रो के स्वरों सहित, मंगलमय स्थानों पर पड़ाव डालता हुआ निकला, फिर सुबह के भोजन को ग्रहण करता हुआ, अधिक यात्रा न करके मार्ग में पड़ाव डालता हुआ, विश्राम करता हुआ अंग देश के बीचों-बीच होकर, जहां विदेह देश की वैशाली नगरी थी वहां जाने के लिए उसने प्रस्थान किया।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे राजा कोणिक का कालादि दश भाइयो व उनकी विशाल सेनाओं के साथ युद्ध में उतरने का वर्णन है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजा कोणिक ने विदेह देश पर सीधा आक्रमण नही किया, बल्कि वह आराम से रास्ते मे पड़ाव डालता हुआ विदेह देश की राजधानी वैशाली की सीमा पर पहुचा। उसने आते ही युद्ध प्रारम्भ नहीं किया। प्राचीन काल में निरपराधी लोग युद्ध मे न मारे जाएं इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था और युद्ध निश्चित मैदानों में ही लड़ा जाता था।

गणाध्यक्ष चेटक की गणराजाओं से मंत्रणा

उत्थानिका—जब कोणिक राजा ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया तो वैशाली नरेश चेटक ने क्या किया, अब इसका वर्णन सूत्रकार प्रस्तुत सूत्र मे करते है—

मूल—तएणं से चेडए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे नवमल्लइ-

नवलेच्छइ-कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्नो असंविदिते णं सेयणगं गन्धहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय इहं हव्वमागए, तए णं कूणिएणं सेयणगस्स अट्ठारसवंकस्स य अट्ठाए तओ दूया पेसिया, ते य मए इमेणं कारणेणं पडिसेहिया।

तएणं से कूणिए ममं एयमट्ठं अपडिसुणमाणे चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे जुज्झसज्जे इहं हव्वमागच्छइ, तं किं नु देवाणुप्पिया ! सेयणगं अट्ठारसवंकं च कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामो ? वेहल्लं कुमारं पेसेमो ? उदाहु जुज्झित्था ॥ ८२ ॥

छाया—ततः खलु स चेटको राजा अस्याः कथाया लब्धार्थः सन् नवमल्लकि-नवलिच्छवि—काशी—कौशलकान् अष्टादशापि गण-राजान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाः ! वेहल्लः कुमारः कूणिकस्य राज्ञा असंविदितेन सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारं गृहीत्वा इह हव्यमागतः। ततः खलु कूणिकेन सेचनकस्य अष्टादशवक्रस्य चार्थाय त्रयो दूताः प्रेषिताः, ते च मयाऽनेन कारणेन प्रतिषिद्धा.। ततः खलु स कूणिको मम एतमर्थमप्रतिशृण्वन् चातुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं संपरिवृत्तः युद्धसज्ज इह हव्यमागच्छति, तत् किं नु देवानुप्रियाः! सेचनक-मष्टादशवक्रं च कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्पयामः, वेहल्लं कुमारं प्रेषयामः ? उताहो युध्यामहे? ॥ ८२ ॥

पदार्थान्वय.—**तएणं**—तत्पश्चात्, **से चेडए राया**—वह राजा चेटक, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे**—इस कथा (समाचार) के प्राप्त होने पर, **नव मल्लई**—नव मल्ल जाति के, **नव लेच्छई**—नव लिच्छवि जाति के, **कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो सद्दावेइ सद्दावित्ता**—काशी कौशल देशों के अट्ठारह गण-राजाओं अर्थात् गणराज्य-प्रमुखों को बुलवाता है और बुलवाकर, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहता है, **एवं खलु देवाणुप्पिया**—इस प्रकार हे देवानुप्रियो निश्चय ही **वेहल्ले कुमारे**—वेहल्ल कुमार, **कूणियस्स रन्नो**—कोणिक राजा को, **असंविदिते णं**—बिना किसी पूर्व सूचना के, **सेयणगं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय इह हव्वमागए**—सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियों वाला वक्र हार ग्रहण करके शीघ्र ही यहां आ गया है, **तएणं**—तत्पश्चात्, **कूणिएणं सेयणगस्स अट्ठारसवंकस्स य अट्ठाए**—कोणिक राजा ने उस सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियो के हार को लौटाने के लिए, **तओ दूया पेसिया**—तीन दूत भेजे, **ते य मए इमेणं कारणेणं पडिसेहिया**—मैंने

इस कारण से उनका प्रतिषेध कर दिया, अर्थात् उन्हे वापिस लौटा दिया।

तएणं–तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**–उस कोणिक राजा, **ममं एयमट्ठं**–मेरे इस अर्थ को, **अपडिसुणमाणे**–स्वीकार न करते हुए (न सुनते हुए), **चाउरङ्गिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे**–चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ, **जुद्धसज्जे इह हव्वमागच्छइ**–यहां शीघ्र ही युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आ रहा है, **तं किं नु देवाणुप्पिया**–तो क्या हे देवानुप्रियो !, **सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं हारं च**–सेचनक गधहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार, **कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामो**–कोणिक राजा को वापिस लौटा दू ? **वेहल्लं कुमारं पेसेमो**–वेहल्ल कुमार को भी वापिस लौटा दू, **उदाहु जुज्झित्था**–अथवा उसके साथ युद्ध करूं।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह राजा चेटक यह समाचार प्राप्त होने पर अर्थात् ज्ञात होने पर उसने नव-मल्ली, नव लिच्छवि, काशी, कौशल देशो के अठारह राजाओं को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा कि–हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार निश्चय ही वेहल्ल कुमार राजा कोणिक को बिना सूचित किए सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार के साथ यहा शीघ्रता से आ गया है। तत्पश्चात् कोणिक राजा ने सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार के लिए तीन दूत भेजे। मैंने उनका प्रतिषेध कर दिया अर्थात् वस्तुएं लौटाने से इन्कार कर दिया। तत्पश्चात् कोणिक राजा मेरे इस अर्थ को न स्वीकार करते हुए चतुरगिणी सेना से संपरिवृत (घिरा हुआ) युद्ध के लिए तैयार होकर यहां शीघ्र आ रहा है। हे देवानुप्रियो ! क्या मैं सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार उसे वापस लौटा दूं ? वेहल्ल कुमार को भी वापस भेज दूं ? अथवा उससे युद्ध करूं ?

टीका–प्रस्तुत सूत्र में बतलाया गया है कि जब वैशाली गणतन्त्र के प्रमुख राजा चेटक को ज्ञात हुआ कि कोणिक अपने दस भाइयों व विशाल सेना के साथ इधर आ रहा है तो उसने नवमल्ल–नव लिच्छवि, काशी–कौशल देशों के अठारह गणराजाओ को वैशाली में बुलवाया। प्राचीन काल में छोटे–छोटे राजा मिलकर गण–परिषद् बनाते थे जो युद्ध-आदि के सामय अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आकर युद्ध में भाग लेते थे। राजा चेटक अठारह गण राजाओं का प्रमुख था। उसने उन सभी राजाओ को वस्तुस्थिति से अवगत कराया। राजा चेटक ने कहा–"हे देवानुप्रियो ! वेहल्ल कुमार सपरिवार बिना किसी को बताए सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लड़ियों वाला हार लेकर मेरी शरण में आया है। ये वस्तुएं राजा श्रेणिक ने अपने जीवन-काल में ही वेहल्ल कुमार को दी थीं, इसलिए कोणिक राजा का इन पर कोई अधिकार नहीं है।

इन वस्तुओ के लिए राजा कोणिक ने तीन दूत भेजे। मैंने उन दूतों की बात पर कोई ध्यान नही दिया। इन बातों से भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन गणराज्यों में निर्णय सर्व-सम्मति या बहुमत से किए जाते थे। इन सूत्रों से राजा चेटक की शरणागत-रक्षा की भावना भी झलकती है, फिर चेटक राजा उन गणराजाओं से पूछता है कि क्या हमें युद्ध करना उचित है ? या वेहल्ल कुमार, सेचनक गंधहस्ती व अठारह लड़ियों वाले हार की वापिसी उचित है।

गणराजाओं द्वारा चेटक की शरणागत-वत्सलता का समर्थन

उत्थानिका—चेटक राजा को इन गणराजाओं ने क्या उत्तर दिया, अब सूत्रकार इसी विषय मे कहते हैं—

मूल—तएणं नवमल्लइ-नवलेच्छइ—कासी—कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो चेडगं रायं एवं वयासी—न एयं सामी ! जुत्तं वा पत्तं वा रायसरिसं वा जन्नं सेयणगं अट्ठारसवंकं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणिज्जइ वेहल्ले य कुमारे सरणागए पेसिज्जइ, तं जइ णं कूणिए राया चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे जुज्झसज्जे इहं हव्वमागच्छइ, तो णं अम्हे कूणिएणं रण्णा सद्धिं जुज्झामो ॥ ८३ ॥

छाया—ततः खलु नवमल्लकि—नवलेच्छकि—काशी—कौशलका अष्टादशापि गणराजाश्चेटकं राजानमेवमवादिषुः-नैतत् स्वामिन् ! युक्तं वा, प्राप्तं व राजसदृशं वा यत्खलु सेचनकमष्टादशवक्रं कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्प्यते, वेहल्लश्च कुमारः शरणागतः प्रेष्यते, तत् यदि खलु कूणिको राजा चातुरङ्गिण्या सेनया सार्द्ध संपरिवृतो युद्धसज्ज इह हव्यमागच्छति तदा खलु वयं कूणिकेन राज्ञा सार्द्ध युध्यामहे ॥ ८३ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **नवमल्लइ-नवलेच्छइ**—नव मल्ली व नव लिच्छवि, **कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो**—काशी-कौशल के अठारह गणराजा, **चेडगं रायं एव वयासी**—राजा चेटक से इस प्रकार बोले, **न एयं सामी**—हे स्वामी ! **इस** प्रकार न करे, क्योकि, **जुत्तं वा पत्तं वा**—यह उपयुक्त नहीं, अर्थात् ठीक नही है, और न्याय से प्राप्त को लौटाना, **रायसरिसं वा**—राजा के योग्य नहीं है, **जं णं**—आप के लिए, **सेयणगं अट्ठारसवंकं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणिज्जइ**—जैसे कि सेचनक गन्धहस्ती व अठारह लडियो वाला हार कोणिक राजा को वापस लौटाना, **वेहल्ले य कुमारे सरणागए पेसिज्जइ**—शरणागत वेहल्ल कुमार को वापस भेजना, **तं जइणं कूणिए राया**—तो यदि

कोणिक राजा, **चाउरङ्गिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे जुज्झसज्जे इहं हव्वमागच्छइ**–चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत होता हुआ युद्ध के लिए सुसज्जित होकर यहा शीघ्र ही आ रहा है, **तएणं अम्हे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झामो**–तो हम कोणिक राजा के साथ युद्ध करेंगे।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वे नव मल्ल जाति के, नव लिच्छवी जाति के एवं काशी तथा कौशल देश के अठारह गणराजा चेटक राजा के प्रति इस प्रकार कहने लगे–हे स्वामिन् यह युक्त (योग्य) नहीं है, न्याय से प्राप्त को लौटाना उचित नहीं है। यह आप के योग्य भी नहीं है कि सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ियो के हार को कोणिक राजा को वापिस कर दिया जाए। साथ मे शरण मे आए हुए वेहल्ल कुमार को वापस भेज दिया जाए। हे स्वामिन् ! यदि कोणिक चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत हुआ युद्ध के लिए सुसज्जित होकर शीघ्र ही यहां आ रहा है, तो हम कोणिक राजा के साथ युद्ध करेंगे।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि जब नव मल्ली नव लिच्छवि, काशी-कौशल देशो के अठारह राजाओ ने अपने गण-प्रमुख की बात सुनी, तो आपस में विचार-विमर्श किया। सभी राजा न्याय-प्रिय थे। शरण में आए शरणागत की रक्षा करने व राजा के कर्तव्यों से भली-भांति अवगत थे। सभी आपसी विमर्श के बाद राजा चेटक के पास आए और आकर निवेदन किया–हे स्वामी ! यह बात उचित नही है, न ही न्याय से प्राप्त को लौटना उचित माना जा सकता है, क्योंकि गुणवान व्यक्ति अयोग्य कार्य नही कर सकता। यह बात राजा के योग्य नही है कि शरणागत को शरण न दी जाए। यदि कोणिक युद्ध के लिए आ रहा है तो हम सब युद्ध के लिए तैयार है। पर शरणागत को लौटाना किसी भी तरह ठीक नहीं।

प्रस्तुत सूत्र से सिद्ध होता है कि ये सभी राजा-महाराजा चेटक को अपना प्रमुख मानते थे। यह बात उनके द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित शब्दो से सिद्ध हो रही है–

"न एयं सामी ! जुत्तं वा पत्तं वा रायसरिसं वा"

"हे स्वामिन् !" यह सम्बोधन इस बात को सिद्ध करता है। जबकि राजा चेटक उन्हें देवानुप्रिय–शब्द से सम्बोधित करता है। प्रस्तुत सूत्र में सभी राजा अपने स्वामी के प्रति निष्ठा प्रकट करते हैं।

गणराजाओं द्वारा युद्ध की तैयारी

मूल–तए णं से चेडए राया ते नवमल्लइ-नवलेच्छइ-कासी-कोसलगा

अट्ठारस वि गणरायाणो एवं वयासी–जइणं देवाणुप्पिया ! तुब्भे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झह, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया ! सएसु-सएसु-रज्जेसु ण्हाया जहा कालादीया जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति ॥ ८४ ॥

छाया–ततः खलु सः चेटको राजा तान् नवमल्लकि–नवलेच्छकि–काशी-कौशलकान् अष्टादशापि गणराजान् एवमवादीत्–यदि खलु देवानुप्रियाः! यूयं कूणिकेन राज्ञा सार्द्धं युध्यध्व तद् गच्छत खलु देवानुप्रियाः ! स्वकेषु स्वकेषु राज्येषु, स्नाता यथा कालादिका यावद् जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति ॥ ८४ ॥

पदार्थान्वयः–तएण–तत्पश्चात्, **से चेडए राया**–वह राजा चेटक, **नवमल्लइ-नवलेच्छइ-कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो एवं वयासी**–नवमल्ली, नव लिच्छवी, काशी कौशल आदि देशों के अठारह गणराजाओ के प्रति इस प्रकार कहने लगा, **जइणं देवाणुप्पिया !**–यदि हे देवानुप्रियो !, **तुब्भे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झह**–आप कोणिक राजा के साथ युद्ध करना चाहते हो, **तं गच्छह णं देवाणुप्पिया !**–तो देवानुप्रियो ! (आप) जाओ, **सएसु-सएसु-रज्जेसु**–अपने-अपने राज्यो में, **ण्हाया**–स्नानादि क्रियाये करके, **जहा**–जैसे, **कालादीया**–कालादि दश कुमार कोणिक के पास आए थे, **जाव**–यावत्, **जएणं विजएणं वद्धावेंति**–राजा चेटक के समीप जय-विजय शब्दों से बधाई देते हैं।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह राजा चेटक उन नव मल्ली, नव लिच्छवि, काशी कौशल देशो के अठारह गणराजाओ को इस प्रकार कहने लगा–हे देवानुप्रियो ! आप लोग पहले अपने-अपने राज्यो मे जाओ और स्नानादि क्रियाए करो। जैसे कालादि दश कुमार राजा कोणिक के पास आए थे इसी प्रकार वे राजा लोग चेटक के पास जय-विजय शब्दों के साथ बधाई देते हुए लौट आए।

टीका–सभी गणराजाओ ने जब युद्ध के प्रति अपनी सहमति प्रदान की तो वैशाली गणराज्य प्रमुख राजा चेटक ने अपने यहा आए नव मल्ली, नव लिच्छवी काशी-कौशल देशों के अठारह गणराजाओ से कहा "कि आप भी युद्ध की तैयारी करें।" सभी राजा अपने-अपने प्रदेशों में जाते है और फिर सैनिक दल-बल के साथ राजा चेटक के पास आते है। सूत्रकार का कथन है कि इन राजाओं की युद्ध की तैयारी व राजा चेटक के पास आने का वर्णन कालादि दश कुमारों की तरह है जिसका सूत्रकार ने वर्णन पहले कर दिया है।

मूल–तए णं से चेडए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–आभिसेक्कं जहा कूणिए जाव दुरूढे ॥ ८५ ॥

छाया–ततः खलु स चेटको राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–आभिषेक्यं यथा कूणिको यावद् दुरूढः।

पदार्थान्वयः–तए णं–तत्पश्चात्, **से चेडए राया**–वह राजा चेटक, **कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता**–अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है और बुलाकर, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगा, **आभिसेक्कं जहा कूणिए जाव दुरूढे**–हे देवानुप्रिये । अभिषेक युक्त हस्तिरत्न को तैयार करो, जिस प्रकार कोणिक राजा हाथी पर आरूढ हुआ, यावत् उसी प्रकार चेटक भी हाथी पर सवार हो गया।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह राजा चेटक कौटुम्बिक पुरुषों अर्थात् अपने अधिकारी वर्ग को बुलाकर आज्ञा प्रदान करता है–हे देवानुप्रियो । अभिषिक्त हाथी लाने की तैयारी करो। (यहा हाथी पर आरूढ़ होने तक का समस्त वर्णन राजा कोणिक की तरह जानना चाहिए), अर्थात् राजा चेटक भी वैसे ही हस्ती-रत्न पर आरूढ़ हुआ।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में राजा चेटक की युद्ध-स्थल में जाने की तैयारी का वर्णन किया गया है। राजा चेटक युद्ध के योग्य हाथी को तैयार करने की अपने सेवको को आज्ञा देता है। सेवक आज्ञा का पालन करते हुए हाथी तैयार करके प्रस्तुत करते हैं। राजा चेटक भी राजा कोणिक की तरह उस हाथी पर सवार होता है।

गणराजाओं का युद्ध के लिए प्रस्थान

मूल–तएणं से चेडए राया तिहिं दंतिसहस्सेहिं जहा कूणिए जाव वेसालिं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव ते नवमल्लइ-नवलेच्छइ-कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो तेणेव उवागच्छइ।

तएणं से चेडए राया सत्तावन्नाए दंतिसहस्सेहिं, सत्तावन्नाए आस-सहस्सेहिं, सत्तावन्नाए रहसहस्सेहिं, सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सुभेहिं वसहिं पायरासेहिं नातिविप्प-गिट्ठेहिं अंतरेहिं वसमाणे-वसमाणे विदेहं जणवयं मज्झं-मज्झेणं जेणेव देसपंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंधावारनिवेसणं करेइ, कूणियं रायं पडिवालेमाणे जुज्झ-सज्जे चिट्ठइ ॥ ८६ ॥

छाया–ततः खलु स चेटको राया त्रिभिर्दन्तिसहस्त्रैर्यथा कूणिको यावद् वैशालीं नगरीं मध्य-मध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव ते नवमल्लकी-नवलेच्छकी-काशी-कौशलका अष्टादशापि गणराजनास्तत्रैवोपागच्छति।

ततः खलु स चेटको राजा सप्तपञ्चाशता दन्तिसहस्त्रै सप्तपञ्चाशता अश्वसहस्त्रैः, सप्तपञ्चाशता रथसहस्त्रैः, सप्तपञ्चाशता मनुष्यकोटिभिः, सार्द्धं संपरिवृतः सर्वर्द्ध्या यावद् रवेण शुभैर्वसतिप्रातराशैर्नातिविप्रकृष्टैरन्तरैर्वसन् वसन् विदेहं जनपदं मध्यं-मध्येन यत्रैव देशप्रान्तस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्कन्धा-वारनिवेशनं करोति, कृत्वा कूणिकं राजानं प्रतिपालयन् युद्धसज्जस्तिष्ठति ॥ ८६ ॥

पदार्थान्वयः-तएणं-तत्पश्चात्, **से चेडए राया**-वह राजा चेटक, **तिहिं दंतिसह-स्सेहिं**-तीन हजार हाथियों के साथ, **जहा कूणिए जाव**-जैसे कोणिक राजा यावत्, **वेसालिं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता**-वैशाली नगरी के बीचों-बीच होता हुआ आता है और आकर, **जेणेव ते नवमल्लइनवलेच्छइ- कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो**-जहां नव मल्ली, नव लिच्छवी और काशी कौशल देशों के अठारह गणराजा थे, **तेणेव उवागच्छइ**-वहीं पर आता है।

तएणं-तत्पश्चात्, **से चेडए राया**-फिर वह राजा चेटक, **सत्तावन्नाए दतिसहस्सेहिं, सत्तावन्नाए आस- सहस्सेहिं, सत्तावन्नाए रहसहस्सेहिं, सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहिं सद्धिं सपरिवुडे**-सत्तावन हजार हाथियों, सत्तावन हजार घोडों, सत्तावन हजार रथों और सत्तावन करोड मनुष्यो (सैनिकों) से घिरा हुआ, **सव्विड्ढीए जाव**-सर्वऋद्धि युक्त यावत्, **रवेणं**-वाद्य यन्त्रो के स्वरो के साथ, **सुभेहिं वसहीहिं**-शुभ बस्तियो में पडाव डालता हुआ, **पायरासेहिं**-प्रातःकालीन जल-पानादि करता हुआ, **नातिविप्पगिट्ठेहिं अंतरेहिं वसमाणे-वसमाणे**-अति लम्बा रास्ता तय न करता हुआ, मार्ग में पड़ाव डाल कर निवास करता हुआ, **विदेहं जणवयं मज्झंमज्झेणं**-विदेह देश के बीचों-बीच से होता हुआ, **जेणेव देवपंते**-जहां देश की सीमा थी, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता**-वहा आता है और आकर, **खंधावारनिवेसणं करेइ**-सेना का पडाव डलवा देता है, **कूणियं रायं पडिवालेमाणे जुज्झसज्जे चिट्ठइ**-और राजा कोणिक की प्रतीक्षा करता हुआ युद्ध-क्षेत्र में आकर ठहर जाता है।

मूलार्थ-तत्पश्चात् वह राजा चेटक तीन हजार हाथियों के साथ, जैसे कोणिक राजा यावत् चम्पा नगरी के मध्य में से होता हुआ निकलता है, (वैसे ही यह भी वैशाली नगरी से निकला) और निकलकर, जहां वे नवमल्ली नवलिच्छवी काशी कौशल देश के अठारह गण राजा उपस्थित थे वहां आया और वहां आकर वह राजा चेटक सत्तावन हजार हाथी, सत्तावन हजार घोड़े, सत्तावन हजार रथ, सत्तावन कोटि मनुष्यो (सैनिकों) के साथ घिरा हुआ यावत् सर्व ऋद्धि युक्त वाद्य यंत्रों के शब्दों के साथ शुभ स्थानों पर पडाव डालता हुआ, प्रातःकालीन भोजन ग्रहण करता हुआ,

लम्बी यात्रा न करता हुआ विदेह देश के बीचों-बीच से होता हुआ जहां अपने राज्य की सीमा थी, वहां आता है और वहां आकर सेना का पड़ाव डालता है। अब वह राजा कोणिक की प्रतीक्षा करता हुआ युद्ध के लिए प्रतीक्षा करने लगा।

टीका—राजा चेटक अपनी सेना के साथ चलता हुआ जहां पर नवमल्ली, नव लिच्छवी, अठारह काशी कौशल आदि देशों के अन्य गणराजा थे उनसे आकर मिला। चेटक उनका प्रमुख राजा था, इसलिए राजा चेटक विशाल सेना के साथ सुसज्जित होकर विदेह देश की सीमा पर आ पहुचा और वहां कोणिक राजा की युद्ध के लिए प्रतीक्षा करने लगा।

उत्थानिका—तत्पश्चात् क्या हुआ, अब सूत्रकार इसी विषय मे कहते हैं—

मूल—तएणं से कूणिए राया सव्विड्ढीए जाव रवेणं जेणेव देसपंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेडयस्स रन्नो जोयणंतरियं खंधावार- निवेसं करेइ।

तएणं से दोन्नि वि रायाणो रणभूमिं सज्जावेंति, सज्जावित्ता रणभूमिं जयंति ॥ ८७ ॥

छाया—ततः खलु स कूणिको राजा सर्वर्द्धया यावद् रवेण यत्रैव देशप्रान्तस्तत्रै- वोपागच्छति उपागत्य चेटकस्य राज्ञो योजनान्तरितं स्कन्धावारनिवेशं करोति।

ततः खलु तौ द्वावपि राजानौ रणभूमिं सज्जयतः, सज्जयित्वा रणभूमिं याताः ॥ ८७ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से कूणिए राया**—वह राजा कोणिक, **सव्विड्ढीए जाव रवेणं**—यावत् सर्व ऋद्धि-युक्त एव वाद्य यत्रो के स्वरो के साथ, **जेणेव देसपन्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता**—जहा मगध देश की सीमा थी वहां वह आया और आकर, **चेडयस्स रन्नो जोयणन्तरियं**—राजा चेटक के एक योजन के अन्तर से, **खन्धावारनिवेसं करेइ**—सेना का स्कन्धावार निवेश करता है अर्थात् सैनिको को ठहराता है।

तएणं—तत्पश्चात्, **ते दोन्नि वि रायाणो रणभूमिं सज्जावेन्ति सज्जावित्ता**—वे दोनों राजा रणभूमि को सजाते हैं अर्थात् व्यूह-रचना करते हैं, और सजा कर, **रणभूमिं जयंति**—रण भूमि में जीतने की इच्छा करते हैं।

मूलार्थ—तत्पश्चात् राजा कोणिक सर्व ऋद्धि-युक्त यावत् वाद्य-यंत्रों के साथ जहां मगध देश की सीमा थी वहां आया और आकर राजा चेटक से एक योजन की दूरी पर अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया।

तत्पश्चात् वे दोनों राजा रणभूमि को शुद्ध करते हैं, अर्थात् झाड-झंखाड़ साफ कर युद्ध के योग्य व्यूह बनाते हैं, शुद्ध करके, रण-भूमि में जीतने की इच्छा से आते हैं।

टीका—तब वह राजा कोणिक सर्व राजकीय ऋद्धियो के साथ यावत् वाद्य-यन्त्रों की ध्वनियो के साथ मगध देश की सीमा पर पहुचकर राजा चेटक से एक योजन के अन्तर पर स्कन्धावार अर्थात् अपनी सैनिक छावनी डाल देता है। सारांश यह कि उसने राजा चेटक से एक योजन की दूरी पर अपना स्कन्धावार स्थापित किया। एक योजन के कहने का सारांश यह है कि दोनो देशो की एक-एक योजन भूमि मे युद्ध करने का निश्चय किया गया था और 'देशपते' इस पद से यह सूचित किया है कि अपने-अपने देश की सीमा पर दोनों राजाओं की सेनाएं स्थित हो गई थी। यह योजन-भूमि दोनो पक्षों की ओर से निश्चित की गई होगी। क्योकि तत्कालीन युद्ध के नियमानुसार जो राजा दूसरे की सीमा मे प्रविष्ट होकर युद्ध करते हुए आगे बढ़ जाता था उसे ही विजयी माना जाता था।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि दोनों राजाओं की सेना युद्ध-परम्परा के अनुसार युद्धभूमि को शुद्ध करती है। जिस प्रकार मल्लयुद्ध के लिए अपना-अपना स्थान (अखाडा) शुद्ध करते है ठीक उसी प्रकार दोनों राजाओ ने रणभूमि को शुद्ध किया—एक योजन भूमि को ठीक किया—काटे, झाड़ियां आदि साफ की गईं जिससे सेना शीघ्रता से आगे बढ़ सके। इस प्रकार साफ की हुई रण-भूमि मे पहुच कर वे युद्ध के लिए सुसज्जित होने लगे।

कोणिक द्वारा गरुड़व्यूह की रचना

मूल—तएणं से कूणिए तेत्तीसाए दंतिसहस्सेहिं जाव मणुस्सकोडीहिं गरुलवूहं रएइ, रइत्ता गरुलवूहेणं रहमुसलं संगामं उवायाए ॥ ८८ ॥

छाया—ततः खलु स कूणिकस्त्रयस्त्रिंशता दन्तिसहस्रैर्यावन्मनुष्यकोटिभिर्गरुडव्यूहं रचयति, रचयित्वा गरुडव्यूहेन रथमुशलं सङ्ग्राममुपायातः ॥ ८८ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं से कूणिए—तत्पश्चात् वह राजा कोणिक, **तेत्तीसाए दन्तिसहस्सेहिं**—तेतीस हजार हाथियो के सहित, **जाव**—यावत्, **मणुस्सकोडीहिं**—एक करोड़ सैनिको सहित, **गरुलवूहं रएइ**—गरुड़ व्यूह की रचना करता है, **रइत्ता**—रच कर, **रह-मुसल संगामं उवायाए**—रथ मूसल संग्राम के लिए आ गया।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस राजा कोणिक ने तेंतीस हजार हाथियो एवं तेंतीस-तेंतीस

हजार घोड़ों, रथों और तेंतीस कोटि पैदल सैनिकों से युक्त होकर गरुड-व्यूह की रचना की। गरुड-व्यूह की रचना करके वह राजा कोणिक रथ-मूशल संग्राम की तैयारी में प्रवृत्त हुआ।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे राजा कोणिक द्वारा वैशाली के सीमान्त के समीप गरुड़-व्यूह की रचना करने का वर्णन है। गरुड़-व्यूह का अर्थ है जिस सेना का अग्र भाग विशाल हो, जिससे शत्रु पर प्रभाव पड सके वही सेना प्रथम आक्रमण करती है।

रथ मूसल सग्राम का विशद वर्णन भगवती सूत्र में आता है। जिज्ञासुओं को उस स्थल का स्वाध्याय करना चाहिए।

चेटक द्वारा शकटव्यूह की रचना

उत्थानिका–अब सूत्रकार राजा चेटक की व्यूह-रचना के विषय में कहते हैं–

मूल–तएणं से चेडए राया सत्तावन्नाए दंतिसहस्सेहिं जाव सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहिं सगडवूहं रएइ, रइत्ता सगडवूहेणं रहमुसलं संगामं उवायाए ॥ ८९ ॥

छाया–ततः खलु सः चेटको राजा सप्तपञ्चाशद्भिः दन्तिसहस्त्रैर्यावत् सप्तपञ्चाशद्भिः मनुष्यकोटिभिः शकटव्यूहं रचयति, रचयित्वा शकटव्यूहेन रथमुसलं संग्राममुपायातः ॥ ८९ ॥

पदार्थान्वयः–*तएणं*–तत्पश्चात्, **से चेडए राया**–वह राजा चेटक, **सत्तावन्नाए दन्ति-सहस्सेहिं जाव सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहिं सगड-वूहं रइए रइत्ता**–सत्तावन हजार हाथियो यावत् सत्तावन करोड़ मनुष्यों से युक्त होकर शकट-व्यूह की रचना करता है, रचना करके, **सगडवूहेणं रहमुसलं संगामं उवायाए**–शकट-व्यूह की आकृति में रथ-मूशल संग्राम को लक्ष्य मे रख कर युद्धभूमि मे आता है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह राजा चेटक सत्तावन हजार हाथियों और सत्तावन-सत्तावन हजार घोड़ों और रथों तथा सत्तावन करोड सैनिकों के साथ आकर शकट-व्यूह की रचना करता है। रचना करके शकट-व्यूह द्वारा रथमूसल संग्राम को लक्ष्य में रखकर युद्ध-भूमि में उतरता है।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में वैशाली गणराज्य-प्रमुख राजा चेटक द्वारा शकट-व्यूह की रचना द्वारा रथ-मूसल सग्राम में उतरने का वर्णन है।

शकट-व्यूह की रचना इस प्रकार होती है–सबसे आगे के हिस्से में ज्यादा शकट,

बीच में इनकी संख्या कम होती जाती है, पिछले भाग में फिर विशाल होता जाता है। यहां 'यह ध्यान रहना चाहिए कि जहां कोणिक ने गरुड़-व्यूह की रचना की है वहां राजा चेटक ने शकट-व्यूह की रचना की है। अत: इस सूत्र से सिद्ध होता है कि युद्ध-विशेषज्ञ सेना की तैनाती इस प्रकार करते थे कि शत्रु का व्यूह-भेदन किया जा सके।

युद्ध का वर्णन

मूल—तएणं ते दोण्ह वि राईणं अणीया सन्नद्धा जाव गहियाउहपहरणा मंगतिएहिं फलएहिं निक्कट्ठाहिं असीहिं, अंसागएहिं तोणेहिं, संजीवेहिं धणूहिं, समुक्खित्तेहिं सरेहिं, समुल्लालिताहिं डावाहिं, ओसारियाहिं उरुघंटाहिं, छिप्पतूरेणं वज्जमाणेणं, महया उक्किट्ठसीहनायबोलकल-कलरवेणं समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा सव्विड्ढीए जाव रवेणं हयगया हयगएहिं, गयगया गयगएहिं, रहगया रहगएहिं, पायत्तिया पायत्तिएहिं, अन्नमन्नेहिं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था ॥ १० ॥

छाया—ततः खलु ते द्वयोरपि राज्ञोरनीके सन्नद्धा यावद्-गृहीतायुधप्रहरणे मङ्गतिकैः फलकैः निष्कासितैरसिभिः, अंशगतैस्तूणैः, सजीवैर्धनुर्भिः समुत्क्षिप्तैः शरैः, समुल्लालिताभिः डावाभिः, अवसारिताभिः उरुघण्टाभिः, क्षिप्रतूरेण वाद्यमानेन महता उत्कृष्टसिंहनादबोलकलकलरवेणं समुद्ररवभूतमिव कुर्वाणे सर्वऋद्ध्या यावद् रवेण हयगताः हयगतैः, गजगताः गजगतैः, रथगताः रथगतैः, पदातिका पदातिकैः, अन्योन्यैः सार्द्ध संप्रलग्नाश्चाऽत्यभूवन् ॥ १० ॥

पदार्थान्वयः—तएण—तत्पश्चात्, **ते दोण्ह वि राईणं**—उन दोनों राजाओं की, **अणीया**—सेनाएं, **सन्नद्धा**—सज कर कवच आदि पहन कर, **जाव**—यावत्, **गहियाउह-पहरणा**—प्रहारक आयुध ग्रहण करके उन्होंने, **मगतिएहिं**—ढालो से, **फलएहिं**—फलकादि से, म्यान से बाहिर निकाली, **निक्कट्ठाहिं**—छोटे आकार के, **असीहिं**—खड्गो से, **अंसागएहिं**—स्कन्ध पर रखे, **तोणेहिं**—तूणीरो से—**सजीवेहिं**—खिंची हुई डोरी वाले, **धणूहिं समुक्खित्तेहिं सरेहिं**—धनुष को ऊंचा करके फैंके गए बाणों से, **समुल्लालियाहिं**—शिरो को उछालने से, **डावाहिं ओसारियाहिं**—बाई भुजा ऊंची करके बर्छी आदि ऊंची करने से, **ऊरुघण्टाहिं**—हाथी घोडों आदि की जंघाओं से जो घुघरू बांधे होते हैं उनके स्वर से, **छिप्पतूरेणं वज्जमाणेणं**—वाद्य-यन्त्रों की ध्वनियों से, **महया**—बड़े, **उक्किट्ठसीहनाय-बोलकलकलरवेणं**—उत्कृष्ट सिंहनाद के समान गर्जनाओं से, **समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा**—समुद्र के समान शब्द करते हुए, **सव्विड्ढीए**—सर्व ऋद्धि युक्त अर्थात् अनेक विध आभूषण पहने हुए, **जाव**—यावत्, **रवेणं**—वाद्य-यन्त्रो के स्वरों के साथ, **हयगया**—अश्वों के सवार,

हयगएहिं—अश्वो के सवारो के साथ, **गयगया गयगएहिं**—हाथी पर बैठे हुए हाथी पर सवारो के साथ, **रहगया रहगएहिं**—रथ के सवार रथियो के साथ, **पायत्तिया पायत्तिएहिं**—पैदल सैनिक पैदल सैनिको के साथ, **अन्नमन्नेहि सद्धिं**—परस्पर, **संपलग्गा यावि होत्था**—युद्ध करने में जुट गए।

मूलार्थ—तब दोनों राजाओं की सेनाएं सजधज कर अर्थात् कवचादि पहन कर आ गई, उन्होनें सब तरह के आयुध ग्रहण किए और ढाल बरछी आदि को हाथों में ग्रहण किया। इस प्रकार फलक आदि से, म्यान से बाहर निकाले छोटे खड्गों से, स्कन्धो पर तूणीर रखने से धनुष चढ़ाने से, धनुष की डोरी आदि के खींचने से, और शीशो को उछालने से, भुजा आदि के ऊंचा करने से, हाथी घोड़ों आदि की जंघादि में बंधे घण्टा आदि जन्य-ध्वनिया करने से, वाद्य-यन्त्रो के बजने से बहुत ही उत्कृष्ट सिंहनाद यावत् शब्दों की कल-कल ध्वनियो से, समुद्र की भाति शब्द करते हुए, सर्व ऋद्धियों के साथ यावत् वाद्य-यन्त्रो के स्वरो के साथ, घोड़े वाले घोड़े वालो से, हाथी वाले हाथी वालों से, रथों वाले रथ वालों से, पैदल पैदल से परस्पर युद्ध करने लग गए।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे दोनो सेनाओ के परस्पर युद्ध का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। दोनों तरफ की चतुरंगिणी सेना मैदान मे आ गई। विभिन्न हथियारो से युद्ध होने लगा। युद्ध मे उत्साह-वर्धक वाद्य-यन्त्र बजने लगे। इसमें एक बात स्पष्ट की गई है कि रथ वाले सैनिक रथ वालों से लड़ रहे थे, हाथी पर चढ़े हाथी पर सवार सैनिको व घोडों पर चढे घुड़सवारो से परस्पर युद्ध करने लगे, पैदल सैनिक पैदल से भिडने लगे।

यहां कुछ शब्द ध्यान देने योग्य है—**मंगतिएहिं फलएहिं**—इसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है—

मंगतिएहिं त्ति हस्तपाशितैः, फलकादिभिः—फलकादि से हाथ में पाश रूप बनाया हुआ।

इस प्रकार वैशाली के मैदान मे परस्पर दोनों सेनाओं मे घमासान युद्ध होने लगा।

युद्ध की रौरवता का चित्रण

मूल—तएणं ते दोण्ह वि रायाणं अणीया णियगसामीसासणाणुरत्ता महंतं जणक्खयं जणवहं जणप्पमद्दं जणसंवट्टकप्पं नच्चंतकबंधवारभीमं रुहिरकद्दमं करेमाणा अन्नमन्नेणं सद्धिं जुज्झंति ॥ ११ ॥

छाया—ततः खलु ते द्वयोरपि राज्ञोरनीके निजकस्वामिशासनानुरक्ते महान्तं

जनक्षयं जनवधं जनप्रमर्दं जनसंवर्तकल्पं नृत्यत्कबन्धवारभीमं रुधिरकर्दमं कुर्वाणो अन्योऽन्येन सार्द्धं युध्येते ॥ ९१ ॥

पदार्थान्वयः—तए—तत्पश्चात्, **णं**—वाक्यालंकार, **ते दोण्ह वि रायाणं**—उन दोनों राजाओं की, **अणीया**—सेनाएं, **णियगसामीसासणाणुरत्ता**—अपने-अपने स्वामी के अनुशासन में रहते हुए (वफादारी से), **महया**—बड़ी संख्या में, **जणक्खयं**—जनों को क्षय कर, **जणवहं**—जनों का वध कर, **जणप्पमद्दं**—जनों का प्रमर्दन कर उन्हें कुचलकर, **जणसंवट्टकप्पं**—जनसहार के समान, **नच्चंतकबंधवारभीमं**—शिर के बिना धड़ों के नाचने के कारण भयानक बनी युद्ध भूमि में, **रुहिरकद्दमं करेमाणा**—खून से मैदान में कीचड़ से भरते हुए, **अन्नमन्नेणं सद्धिं जुज्झति**—परस्पर युद्ध करने लगे।

मूलार्थ—तत्पश्चात् दोनो राजाओं की सेनाएं अपने-अपने स्वामी के अनुशासन मे अनुरक्त होकर बहुत से लोगों का क्षय, वध, प्रमर्दन करने लगीं, जिससे मृतकों के सिरों की बहुत संख्या हो गई। युद्ध-स्थल में सिर के बिना धड़ नाच रहे थे। हाथियों का रूप भयंकर हो गया। मैदान को खून के कीचड़ से भरते हुए योद्धा परस्पर लड़ने लगे।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे युद्ध का वर्णन करते हुए बताया गया है कि यह युद्ध कितना भयकर था। दोनो ओर के सैनिक अपनी-अपनी स्वामी-भक्ति का परिचय देते हुए बहादुरी से अपने प्राणो की आहुतिया देने लगे। इस सूत्र में कुछ शब्द ध्यान देने योग्य हैं—

''**नियगसामीसासणाणुरत्ता**'' का अर्थ अपने स्वामी की भक्ति में अनुरक्त हुए।

''**जणसंवट्टकप्पं**'' का अर्थ है जिस प्रकार संवर्तक वायु चारो ओर से वस्तु एकत्र करती है इसी प्रकार इस रथमुसल संग्राम मे सैनिको के शिर इकट्ठे हो रहे थे। ''**नच्चंत-कबधवारभीमं**'' अर्थात् सिर के बिना धड नाच रहे थे।

काल कुमार की मृत्यु

उत्थानिका—अब सूत्रकार काल कुमार के विषय मे कहते हैं—

मूल—तएणं से काले कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं जाव मणुस्सकोडीहिं गरुलवूहेणं एक्कारसमेणं खंधेणं कूणियरहमुसलं संगामं संगामेमाणे हयमहिय जहा भगवया कालीए देवीए परिकहियं जाव जीवियाओ ववरोविए ॥ ९२ ॥

छाया—ततः खलु स कालः कुमारस्त्रिभिर्दन्तिसहस्त्रैर्यावन्मनुष्यकोटिभि-

गरुडव्यूहेन एकादशेन स्कन्धेन कूणिकरथमुशलं संग्रामं संग्रामयन् हतमथित यथा भगवता काल्यै देव्यै परिकथितं यावज्जीवितात् व्यपरोपिता: ॥ १२ ॥

पदार्थान्वय:–तएणं–तत्पश्चात्, **से काले कुमारे**–वह काल कुमार, **तिहिं दन्ति-सहस्सेहिं**–तीन हजार हाथियो, **जाव**–यावत्, **मणुस्सकोडीहिं**–करोड़ों सैनिको को साथ लेकर, **गरुलवूहेणं**–गरुड़ व्यूह से, **एक्कारसमेणं खंधेणं**–अपनी सेना के एकादश भाग सहित, **कूणिएणं रन्ना सद्धिं**–कोणिक राजा के साथ रह कर, **रहमुसलं संगामं संगामेमाणे**–रथ मुशल संग्राम में संग्राम करता हुआ, **हयमहिय जहा**–हतमथित हो गया अपना होश-हवास खो बैठा जैसे, **भगवया कालीए देवीए परिकहियं**–काली देवी के प्रति भगवान ने कहा, **जाव**–यावत्, **जीवियाओ ववरोविए**–जीवन से व्यतिरिक्त हो गया अर्थात् मारा गया।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह काल कुमार अपने तीन हजार हाथियों और करोड़ों सैनिकों से युक्त यावत् गरुड़-व्यूह की रचना करके अपनी सेना के ग्यारहवे भाग सहित राजा कोणिक के साथ रह कर रथ-मुसल संग्राम में राजा चेटक से युद्ध करते हुए आहत और मथित हुआ, जैसे भगवान महावीर ने काली देवी से कहा था यावत् जीवन से रहित हो गया अर्थात् मारा गया।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में राजा कोणिक द्वारा चलाए गए रथ-मूसल सग्राम का वर्णन है। इस समय काल कुमार तीन हजार हाथियों यावत् तीन करोड़ सैनिकों के साथ राजा चेटक के द्वारा मारा गया। चम्पा मे विराजित सर्व विवरण काली देवी (श्रेणिक की रानी तथा कालकुमार की जननी) को श्रमण भगवान महावीर सुना रहे हैं।

इस स्थान पर कोटि मनुष्यो का उल्लेख है–३३ करोड सेना का वर्णन है। राजा चेटक एव अठारह गणराजाओं की सेना का प्रमाण सत्तावन करोड़ बताया गया है। यहां पर हमारा विचार है कि कोटि एक विशेष सज्ञा होगी जो उस समय सैनिक परिमाण के लिए प्रयुक्त हुआ करती थी।

तपागच्छीय श्वेताम्बर श्री आत्माराम जी महाराज अपने ग्रंथ "जैन तत्त्वादर्श" के सातवें परिच्छेद सम्यक्त्व के पांच अतिचारों का वर्णन करते हुए प्रथम शंका अतिचार मे लिखते हैं–सो जिन-वचन में शंका करनी, क्योंकि जिन-वचन बहुत गम्भीर है और उसका यथार्थ अर्थ कहने वाला इस काल में कोई नहीं है और जो शास्त्र हैं सो अनेक नयात्मक हैं, उनकी गिनती तथा संज्ञा विचित्र है। कई एक जगह तो कोटि शब्द करोड का वाचक है, और किसी जगह रूढ वस्तु २० की संख्या का वाचक है। क्योंकि श्री

जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण सर्व संघ के समस्त आचार्य संघयण नामा पुस्तक में तथा विशेषण-वती ग्रंथ में लिखते हैं कि कोई आचार्य कोडी शब्द को एक करोड़ का वाचक नहीं मानते हैं, किन्तु संज्ञातर मानते है, क्योंकि वर्तमान काल में भी बीस को कोड़ी कहते हैं तथा सौराष्ट्र देश मे भी पाच आने की कौडी है। कोड़ी शब्द मे जैसे यह मतान्तर है ऐसे ही शत सहस्र शब्द भी किसी सज्ञा के वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुञ्जय तीर्थ में जो मुनि मोक्ष गए हैं वहा भी पाच कोडी आदि शब्द संज्ञा विशेष में है। ऐसे ही ५६ करोड़ यादवों की संख्या कोई संज्ञा विशेष है। कोणिक एवं चेटक राजाओ की सेना में जो कोड़ी शत शतसहस्र शब्द है सो सज्ञा विशेष के वाचक हैं। इसलिए सब शब्दो का सर्व-जगह एक सरीखा अर्थ मानना युक्त नहीं है। इस कथन में पूज्य श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण पूरे साक्षी देने वाले हैं।

हो सकता है ''कोटि'' शब्द आज की सैनिक शब्दावली के ''कम्पनी'' शब्द का बोधक हो। किसी भी कम्पनी मे सैनिकों की सख्या निश्चित नही होती, कम्पनी विशिष्ट सैनिक समूह को कहा जाता है। ऐसे ही कोटि में सैनिको की सख्या निश्चित नहीं होती होगी। फिर भी सत्य अर्थ तो केवलीगम्य ही है।

कालकुमार का नरकगमन

उत्थानिका—अब सूत्रकार काल कुमार की गति के विषय में कहते है—

मूल—तं एयं खलु गोयमा ! काले कुमारे एरिसएहिं आरंभेहिं जाव एरिसएणं असुभकडकम्मपब्भारेणं कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरए-नेरइयत्ताए उववन्ने ॥ १३ ॥

छाया—तदेतत् खलु गौतम ! कालः कुमारः ईदृशैरारम्भैर्यावद् ईदृशेन अशुभ-कृतकर्मप्राग्भारेण कालं कृत्वा चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्यां हेमाभे नरके नैरयिकतयोपपन्नः ॥ १३ ॥

पदार्थान्वयः—तं एयं खलु गोयमा—हे गौतम निश्चय ही, **काले कुमारे एरिसएहिं आरम्भेहिं जाव एरिसएणं असुभकडकम्मपब्भारेणं**—काल कुमार इस प्रकार के आरम्भ से यावत् इस प्रकार के अशुभ कर्म के प्रभाव से, **कालमासे कालं किच्चा**—काल मास में काल करके, **चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरए नेरइयत्ताए उववन्ने**—चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के हेमाभ नामक नरक-आवास में नारकी रूप में उत्पन्न हुआ।

मूलार्थ—श्रमण भगवान महावीर ने कथन किया कि—''हे गौतम ! काल कुमार इस प्रकार निश्चय ही आरम्भ यावत् अशुभ कृत्य के कारण कालमास में

काल करके चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के हेमाभ नरकावास में नारकी रूप में उत्पन्न हुआ ।। ९३ ।।

टीका–काल कुमार का भविष्य बताते हुए श्रमण भगवान महावीर ने अपने प्रथम शिष्य गणधर इन्द्रभूति गौतम को बताया कि काल कुमार आरम्भ आदि अशुभ कर्मों के कारण मर कर चौथी नरक पंकप्रभा मे हेमाभ नामक पृथ्वी मे नारकी बना है। ससार की झूठी माया के पीछे सघर्ष का फल यही होता है। संग्राम में प्राय: तीनों योगों से हिंसा होती है, अत: उक्त क्रियाओं के त्याग से आत्मा को शान्ति की प्राप्ति हो सकती है।

कालकुमार का भविष्य-कथन

उत्थानिका–अब इसी विषय मे आगे कहते है और इस सूत्र का उपसंहार करते हैं–

मूल–काले णं भंते ! कुमारे चउत्थीए पुढवीए अणंतरं उवट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवंति अड्ढाइं जहा दढप्पइन्नो जाव सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ जाव अंतं काहिइ। तं एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णते त्तिबेमि ।। ९४ ।।

।। पढमं अज्झयणं समत्तं ।। १ ।।

छाया–काल: खलु भदन्त ! कुमारश्चतुर्थ्या: पृथिव्या अनन्तरमुद्वर्त्य कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ?

गौतम ! महाविदेहे वर्षे यानि कुलानि भवन्ति आढ्यानि यथा दृढप्रतिज्ञो यावत् सेत्स्यति भोत्स्यते यावद् अन्तं करिष्यति।

तदेवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत्संप्राप्तेन निरयावलिकानां प्रथमाध्ययनस्यायमर्थ: प्रज्ञप्त:। इति ब्रवीमि ।। ९४ ।।

।। प्रथममध्ययनं समाप्तम् ।। १ ।।

पदार्थान्वय–काले णं भन्ते ! कुमारे–हे भगवन् ! काल कुमार, **चउत्थीए पुढवीए**–चौथी पृथ्वी से, **अणन्तरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ**–बिना अन्तर नरक से निकल कर कहां पैदा होगा, **कहिं उववज्जिहिइ**–कहां उत्पन्न होगा, **गोयमा महाविदेहे वासे**–हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में, **जाइं कुलाइं भवन्ति**–जो कुल है, **अड्ढाइं**–ऋद्धिमान धन- धान्य से

युक्त, **जहा**–जैसे, **दढपइन्नो**–दृढप्रतिज्ञ कुमार का वर्णन राजप्रश्नीय मे कहा गया है, **जाव सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ जाव अन्त काहिइ**–यावत् सिद्ध होगा, बुद्ध होगा यावत् सब दु:खों (कर्मो) का अन्त करेगा, **तं एवं खलु जम्बू**–तो इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू, **समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं**–श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को प्राप्त ने, **निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते**–निरयावलिका सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ–(गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं) हे भगवन् ! वह काल कुमार चौथी नरक की आयु पूर्ण करके कहां पैदा होगा ? कहां उत्पन्न होगा ? (इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान महावीर फरमाते हैं) हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में ऋद्धिमान यावत् धन-धान्य से युक्त कुल में पैदा होगा, जैसे राजप्रश्नीय सूत्र मे दृढ़प्रतिज्ञ कुमार का वर्णन है वैसे ही इसका वर्णन समझना चाहिए। फिर वह सिद्ध-बुद्ध मुक्त होगा, यावत् सब (कर्मो) का अंत करेगा, (जो जन्म मरण का कारण हैं)।

आर्य सुधर्मा अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते है–"हे जम्बू ! मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान ने निरयावलिका सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह वर्णन किया है।

टीका–भगवान महावीर ने काल कुमार का भविष्य बताते हुए अपने प्रिय शिष्य गणधर इन्द्रभूति को सूचित किया है कि यह काल कुमार चौथी नरक की आयु पूरी करके दृढप्रतिज्ञ की तरह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। वही से यह शेष कर्मो का क्षय कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होगा।

प्रस्तुत अध्ययन के उपसंहार के रूप मे जम्बू स्वामी से उनके पूज्य गुरुदेव श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं–"जम्बू ! जैसे मैने निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का अर्थ अपने पूज्य शास्ता श्रमण भगवान महावीर से सुना था वैसा ही तुम्हे बताया है। हम पाठको की जानकारी के लिए शास्त्रो मे वर्णित लोक का स्वरूप सक्षेप मे कथन करते हैं, ताकि स्वर्ग-नरक व महाविदेह क्षेत्र का विषय स्पष्ट हो जाए।

जैन धर्म के अनुसार लोक–

लोक अलोक की सीमा–लोक और अलोक की सीमा निर्धारण करने वाले स्थिर शाश्वत और व्यापक दो तत्त्व हैं–धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, जो इस अखण्ड आकाश को दो भागो में विभाजित करते हैं। ये दोनो जहा तक है वहां तक लोक है और जहां इन दोनो का अभाव है, वहां अलोक है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के अभाव

में जीवों और पुद्‌गलों को गति और स्थिति मे सहायता नहीं मिलती। इसलिए जीव और पुद्‌गल लोक मे ही हैं, अलोक में नही।

महान् वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन ने भी क्षेत्र–लोक की सीमा इसी से मिलती-जुलती मानी है–"लोक के परिमित होने का कारण यह है कि द्रव्य अथवा शक्ति लोक के बाहर जा नही सकती। लोक के बाहर उस शक्ति (धर्मास्तिकाय) का अभाव है जो गति मे सहायक होती है।"

लोक का संस्थान (आकार)–लोक का आकार सुप्रतिष्ठक–सस्थान बताया गया है, अर्थात्–वह नीचे विस्तृत, मध्य में सकीर्ण और ऊपर मृदगाकार है। तीन शरावों (सकोरो) में से एक शराव औंधा रखा जाए, दूसरा सीधा और तीसरा उसी के ऊपर औंधा रखा जाए तो जो आकृति बनती है वही आकृति (त्रिशरावत्-सम्पुटाकृति:) लोक की है। अलोक का आकार मध्य मे पोल वाले गोले जैसा है।

अलोक का कोई भी विभाग नहीं है, वह एकाकार है। लोकाकाश तीन भागों मे विभक्त है–ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। तीनों लोकों की कुल लम्बाई १४ रज्जू (राजू) है, जिसमे से सात रज्जू से कुछ कम ऊर्ध्वलोक है, मध्यलोक १८०० योजन परिमाण वाला है और अधोलोक सात रज्जू से कुछ अधिक है।

लोक को इन तीन विभागो में विभक्त कर देने के कारण उन तीनों की पृथक्-पृथक् आकृतिया बनती हैं। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय कहीं पर फैले हुए है और कही पर सकुचित हैं। ऊर्ध्वलोक मे धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय विस्तृत होते चले गए है। इस कारण ऊर्ध्वलोक का आकार मृदग-सदृश है और मध्यलोक में वे कृश हैं, इसलिए उसका आकार बिना किनारी वाली झालर के समान है। नीचे की ओर फिर वे विस्तृत होते चले गए हैं। इसलिए अधोलोक का आकार औंधे शराव के जैसा बनता है, यह लोकाकाश की ऊंचाई हुई। उसकी मोटाई सात रज्जू है।

लोक कितना बड़ा है ? लोक की मोटाई भगवान् महावीर ने एक रूपक द्वारा समझाई है–मान लो कि एक देव मेरुपर्वत की चूलिका (चोटी) पर खडा है जो एक लाख योजन की ऊंचाई पर है। नीचे चारों दिशाओं में चार दिक्कुमारिया हाथ मे बलिपिण्ड लिए खड़ी है। वे बहिर्मुखी होकर एक साथ उन बलिपिण्डों को फैकती है। देव उन चारों बलिपिण्डों को पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही हाथ से पकड़ लेता है और तत्काल दौड़ता है। ऐसी दिव्य शीघ्रगति से लोक का अन्त पाने के लिए ६ देव पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊंची और नीची इन छह दिशाओं मे चले। ठीक इसी समय एक श्रेष्ठी के घर में एक हजार वर्ष की आयु वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी आयु समाप्त हुई, इसके पश्चात्

हजार-हजार वर्ष की आयु वाले उसके बेटे-पोते हुए। इस प्रकार की परम्परा से सात पीढ़ियां समाप्त हो गईं। उनके नाम-गोत्र भी मिट गए। तथापि वे देव तब तक चलते ही रहे, फिर भी लोक का अन्त न पा सके। यह ठीक है कि उन शीघ्रगामी देवो ने लोक का अधिकतर भाग तय कर लिया होगा, परन्तु जो भाग शेष रहा वह असख्यातवां भाग है। इससे यह समझा जा सकता है कि लोक का आयतन कितना बडा है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टीन ने लोक का व्यास एक करोड़ अस्सी लाख प्रकाश वर्ष माना है।

लोक के आयतन को पूर्वोक्त रूपक द्वारा समझने के पश्चात् भी गौतम स्वामी की जिज्ञासा पूर्ण रूप से शान्त न हुई। वे सविनय बोले—"भन्ते ! यह लोक कितना बडा है?" गौतम स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान महावीर ने कहा—"गौतम ! यह लोक बहुत बडा है। यह पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण तथा ऊर्ध्व और अधो दिशाओ में असख्यात् योजन कोटाकोटी (करोड़-करोड) लम्बा चौड़ा है।

ऊर्ध्वलोक-परिचय—मध्यलोक से ९०० योजन ऊपर का भाग ऊर्ध्वलोक कहलाता है। उसमें देवों का निवास है, इसलिए उसे देवलोक या स्वर्गलोक कहते है।

देव चार प्रकार के होते हैं—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। इस ऊर्ध्वलोक मे कल्पोपपन्न और कल्पातीत, ये दो प्रकार के वैमानिक देव ही रहते हैं। जिन देवलोको में इन्द्र, सामानिक आदि पद होते हैं, वे देवलोक कल्प के नाम से प्रसिद्ध है। कल्पों (बारह देवलोको) मे उत्पन्न देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं और कल्पो (बारह देवलोको) से ऊपर के (नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानवर्ती देव कल्पातीत कहलाते हैं। कल्पातीत देवों में किसी प्रकार की असमानता नही होती। वे सभी इन्द्रवत् होने से अहमिन्द्र कहलाते है। किसी कारणवश मनुष्य-लोक में आने का प्रसग उपस्थित होने पर कल्पोपपन्न देव ही आते हैं, कल्पातीत नही। अन्तिम देवलोक का नाम सर्वार्थसिद्ध है।

इससे बारह योजन ऊपर सिद्धशिला है, जो ४५ लाख योजन लम्बी और इतनी ही चौडी है। इसकी परिधि कुछ अधिक तीन गुणी है। मध्यभाग मे इसकी मोटाई आठ योजन है, जो क्रमश: किनारों की ओर पतली होती हुई अन्त में मक्खी के पंख से भी अधिक पतली हो गई है। इसका आकार खुले हुए छत्र के समान है। शख, अकरत्न और कुन्दपुष्प के समान स्वभावत: श्वेत, निर्मल, कल्याणकर एवं स्वर्णमयी होने से इसे 'सीता' भी कहते हैं। 'ईषत् प्राग्भारा' नाम से भी यह प्रसिद्ध है। इससे एक योजन प्रमाण ऊपर वाले क्षेत्र को 'लोकान्तभाग' भी कहते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में इस लोकान्त को 'लोकाग्र' भी कहा गया है, क्योंकि वह लोक का अन्त या सिरा है, इसके पश्चात् लोक की सीमा

समाप्त हो जाती है। इस एक योजन प्रमाण लोकान्त भाग के ऊपरी कोस के छठे भाग में मुक्त (सिद्ध) आत्माओं का निवास है।

मध्यलोक का परिचय–मध्यलोक को तिर्यक्लोक या मनुष्यलोक भी कहा गया है। यह १८०० योजन प्रमाण है। इस लोक के मध्य में जम्बूद्वीप है और उसे घेरे हुए असख्यात द्वीप समुद्र है। ये सभी परस्पर एक दूसरे को वलय (चूडी) के आकार में घेरे हुए हैं। इनमें प्राय: पशुओ और वान-व्यन्तर देवों के स्थान है। इतने विशाल क्षेत्र मे केवल अढाई द्वीपों में ही मनुष्य जाति का निवास है। मनुष्य के साथ-साथ तिर्यञ्चों (ऐसे जीव जिनकी पीठ सदैव आकाश की तरफ रहती है) का भी इसमे निवास पाया जाता है। अढाई द्वीप को 'समय-क्षेत्र' भी कहते हैं। अढाई द्वीपों की रचना एक सरीखी है। अन्तर केवल इतना ही है कि इनका क्षेत्र क्रमश: दुगुना-दुगुना होता चला गया है। पुष्करद्वीप के मध्य मे मानुषोत्तर पर्वत आ जाने से मनुष्य क्षेत्र में आधा पुष्कर द्वीप ही गिना गया है।

जम्बूद्वीप में सात मुख्य क्षेत्र है–भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। विदेह क्षेत्र के दो अन्य प्रमुख भाग हैं–देवकुरु और उत्तरकुरु। धातकीखण्ड और पुष्करार्धद्वीप में इन सभी क्षेत्रो की दुगुनी-दुगुनी सख्या है। ये सभी क्षेत्र तीन भागों मे विभक्त हैं–कर्मभूमि, अकर्मभूमि और अन्तरद्वीप।

कर्मभूमिक क्षेत्र वे हैं, जहा के निवासी मानव कृषि, वाणिज्य, शिल्पकला आदि कर्मो (पुरुषार्थ) के द्वारा जीवन-यापन करते है। कर्मभूमिक क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट पुण्यात्मा और निम्नलिखित पापात्मा दोनों प्रकार के मनुष्य पाए जाते है।

कर्मभूमिक क्षेत्र १५ है–५ भरत हैं जिनमें से जम्बूद्वीप में एक, धातकीखण्ड में दो और पुष्करार्द्ध-द्वीप में दो हैं। इसी तरह ५ ऐरावत है–जम्बूद्वीप में एक,धातकीखण्ड मे दो, पुष्करार्द्ध द्वीप में दो। महाविदेह भी पांच है–एक जम्बूद्वीप मे, दो धातकीखण्ड मे और दो पुष्करार्द्धद्वीप में है। यो अढाई द्वीपों में कर्मभूमि के सब क्षेत्र पन्द्रह हैं।

अकर्मभूमिक क्षेत्र वे हैं, जहा कृषि आदि कर्म किए बिना अनायास ही भोगोपभोग की सामग्री मिल जाती है। जीवन-निर्वाह के लिए कोई पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। यहा भोगो–भोग्य-सामग्री की प्रचुरता होने से यह भोगभूमि भी कहलाती है। जम्बूद्वीप में एक हैमवत्, एक हरिवर्ष एक रम्यकवर्ष, एक हैरण्यवत, एक देवकुरु और एक उत्तरकुरु, यो छह भोगभूमिक क्षेत्र हैं। धातकीखण्ड और पुष्करार्द्धद्वीप मे इनके प्रत्येक के दो-दो क्षेत्र होने से दोनों द्वीपो में बारह-बारह क्षेत्र है।

इस प्रकार सब मिलकर अकर्मभूमि के ३० क्षेत्र होते है।

अन्तरद्वीप—कर्मभूमि और अकर्मभूमि के अतिरिक्त जो समुद्र के मध्यवर्ती द्वीप बच जाते है, वे अन्तरद्वीप कहलाते हैं। जम्बूद्वीप के चारो ओर विस्तृत लवणसमुद्र मे हिमवान् पर्वत की दाढाओं (पार्श्व भागों में निकले हुए लम्बे भू-भाग) पर अट्ठाईस अन्तरद्वीप हैं, जो सात चतुष्कों में विद्यमान है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार है—

प्रथम चतुष्क—एकोरुक, आभाषिक, लागूलिक, वैमानिक।

द्वितीय चतुष्क—हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलीकर्ण।

तृतीय चतुष्क—आदर्शमुख, मेषमुख, हयमुख और गजमुख।

चतुर्थ चतुष्क—अश्वमुख, हस्तिमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख।

पचम चतुष्क—अश्वकर्ण, सिंहकर्ण, गजकर्ण और कर्णप्रावरण।

षष्ठ चतुष्क—उल्कामुख, विद्युन्मुख, जिह्वामुख और मेघमुख।

सप्तम चतुष्क—घनदन्त, गूढदन्त, श्रेष्ठदन्त और शुद्धदन्त।

इसी प्रकार शिखरी पर्वत की दाढाओ पर भी इन्हीं नामो के २८ अन्तर द्वीप है। इस तरह सब मिलाकर ५६ अन्तरद्वीप होते है। इन अन्तरद्वीपो में मनुष्यों का निवास है।

आधुनिक विज्ञान ने जितने भूखण्ड का अन्वेषण किया है, वह तो केवल कर्मभूमि के जम्बू-द्वीप स्थित भरतक्षेत्र का छोटा-सा ही भाग है। मध्यलोक तो अकर्मभूमिक और अन्तरद्वीप के क्षेत्रों को मिलाने पर बहुत ही विशाल है, फिर भी ऊर्ध्वलोक और अधोलोक की अपेक्षा इसका क्षेत्रफल अत्यल्प ही माना जाएगा।

ज्योतिष्क देवलोक—मध्यलोकवर्ती जम्बूद्वीप के सुदर्शनमेरु के समीप समतलभूमि से ७९० योजन ऊपर तारामण्डल है, जहा आधा कोस लम्बे-चौड़े और चौथाई कोस ऊचे तारा विमान है।

तारामण्डल से १० योजन पर ऊपर एक योजन के ६१वें भाग मे से ४८ भाग लम्बा-चौडा और २४ भाग ऊंचा, अकरत्नमय सूर्यदेव का विमान है।

सूर्यदेव के विमान से ८० योजन ऊपर एक योजन के ६१ भाग मे से ५६ भाग लम्बा-चौडा और २८ भाग ऊचा, स्फटिकरत्नमय चन्द्रमा का विमान है।

चन्द्रविमान से ४ योजन ऊपर नक्षत्र माला है। इनके रत्नमय पंचरगे विमान एक-एक कोस के लम्बे-चौडे आधे-आधे कोस के ऊचे हैं।

नक्षत्रमाला से ४ योजन ऊपर ग्रहमाला है। ग्रहो के विमान पचवर्णी रत्नमय है। ये

दो-दो कोस लम्बे-चौड़े और एक कोस ऊंचे है।

ग्रहमाला से चार योजन की ऊंचाई पर हरितरत्नमय बुध तारा है। इससे तीन योजन ऊपर स्फटिकरत्नमय शुक्र तारा है। इससे तीन योजन ऊपर पीतरत्नमय बृहस्पति तारा है। इससे तीन योजन ऊपर रक्तरत्नमय मंगल तारा है। इससे तीन योजन ऊपर जम्बूनदमय शनि तारा है।

इस प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिष्चक्र मध्यलोक मे ही है और समतल भूमि से ७९० योजन की ऊंचाई से आरम्भ होकर ९०० योजन तक अर्थात् ११० योजन मे स्थित है। ज्योतिष्क देवो के विमान जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से ११२१ योजन दूर चारो ओर घूमते रहते हैं।

अधोलोक परिचय—मध्यलोक से नीचे का प्रदेश अधोलोक कहलाता है। इसमे सात नरक भूमियां हैं जो रत्नप्रभा आदि सात नामों से विश्रुत है। इनमें नारक जीव (पापी जीव) रहते हैं। इन सातों भूमियो की लम्बाई-चौड़ाई एक-सी नहीं है। नीचे-नीचे की भूमियां ऊपर-ऊपर की भूमियों से उत्तरोत्तर अधिक लम्बी-चौडी हैं। ये भूमियां एक दूसरी के नीचे है, किन्तु परस्पर सटी हुई नही है। बीच-बीच मे अन्तराल (खाली जगह) है। इस अन्तराल मे घनोदधि, घनवात और आकाश है। अधोलोक की सात भूमियो के नाम इस प्रकार है—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा। इनके नामो के साथ जो प्रभा शब्द जुड़ा हुआ है, वह इनके रंग को अभिव्यक्त करता है।

सात नरक भूमियो की मोटाई इस प्रकार है—

रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन काण्ड है—पहला रत्न बहुल खरकाण्ड है, जिसकी ऊपर से नीचे तक की मोटाई १६००० योजन है। उसके नीचे दूसरा काण्ड पंकबहुल है, जिसकी मोटाई ८०००० योजन है और उसके नीचे तृतीय काण्ड जलबहुल है, जिसकी मोटाई ८४००० योजन है। इस प्रकार तीनो काण्डो की कुल मिलाकर मोटाई १,८०००० योजन है।

इसमें ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर बीच में १७८००० योजन का अन्तराल है, जिसमे १३ पाथडे और १२ आन्तरे हैं। बीच के १० आन्तरों में असुरकुमार आदि दस प्रकार के भवनपतिदेव रहते है। प्रत्येक पाथडे के मध्य मे एक हजार योजन की पोलार है जिसमे तीस लाख नरकावास हैं।

दूसरी नरक-पृथ्वी की मोटाई १,३२००० योजन है। तीसरी नरक पृथ्वी की मोटाई १,२८००० योजन है। चतुर्थ नरकभूमि की मोटाई १,२०००० योजन है, पांचवी नरक-भूमि की मोटाई १,१८००० योजन है, छठी नरकभूमि की मोटाई १,१६००० योजन है और सातवीं

नरक-पृथ्वी की मोटाई १,०८००० योजन है। सातों नरकों के नीचे जो घनोदधि है उसकी मोटाई भी विभिन्न प्रमाणों मे है।

रत्नप्रभा आदि नरक-भूमियो की जितनी-जितनी मोटाई बताई गई है, उस-उस के ऊपर और नीचे के एक-एक हजार योजन भाग को छोडकर शेष भाग में नरकावास हैं।

इन सातो नरक भूमियों में रहने वाले जीव नारक कहलाते है। ज्यों-ज्यो नीचे की नरक-भूमियों मे पापी जीव जाते है, त्यो-त्यों नारक जीवों में कुरूपता, भयंकरता, बेडौलपन आदि विकार बढ़ते जाते हैं।

नरकभूमियों में तीन प्रकार की वेदनाएं प्रधानरूप से नारको को होती है—(१) परमा-धार्मिक असुरों (नरकपालों) द्वारा दी जाने वाली वेदनाएं, (२) क्षेत्रकृत—अर्थात्—नरक की भूमियां खून आदि से लथपथ अत्यन्त कीचड वाली, अत्यन्त ठण्डी या अत्यन्त गरम होती है, इत्यादि कारणो से होने वाली वेदनाए। (३) नारकी जीवों द्वारा परस्पर एक दूसरे को पहुंचाई जाने वाली वेदनाएं।

परमाधार्मिक असुर (देव) तीसरे नरक तक ही जाते हैं। उनका स्वभाव अत्यन्त क्रूर होता है। वे सदैव पापकर्मों में रत रहते हैं, दूसरो को कष्ट देने मे उन्हें आनन्दानुभव होता है। नारकी जीवों को वे अत्यन्त कष्ट देते है। वे उन्हें गरम-गरम शीशा पिलाते हैं, गाड़ियो मे जोतते हैं, अतिभार लादते हैं, गर्म लोह-स्तम्भ का स्पर्श करवाते हैं और काटेदार झाड़ियों पर चढने-उतरने को बाध्य करते हैं।

आगे की चार नरकभूमियों में दो ही प्रकार की वेदनाएं होती हैं, परन्तु पहली से सातवी नरकभूमि तक उत्तरोत्तर अधिकाधिक वेदनाएं होती हैं। वे पापी जीव मन ही मन संक्लेश पाते रहते है। एक-दूसरे को देखते ही उनमे क्रोधाग्नि भडक उठती है। पूर्व जीवन के वैर का स्मरण करके एक दूसरे पर क्रूरतापूर्वक झपट पड़ते हैं। वे अपने ही द्वारा बनाए हुए शस्त्रास्त्रो, या हाथ-पैरों, दातो आदि से एक दूसरे को क्षत-विक्षत कर डालते है। उनका शरीर वैक्रिय होता है जो पारे के समान पूर्ववत् जुड जाता है। नरकों मे अकाल मृत्यु नही होती। जिसका जितना आयुष्य है, उसे पूरा करके ही वे उस शरीर से छुटकारा पा सकते है।

संक्षेप मे क्षेत्र की दृष्टि से इन तीनों लोकों की रचना पूर्वोक्त प्रकार से बतलाई गई है।

महाविदेह

विदेह क्षेत्र का ही दूसरा नाम महाविदेह है। मेरु पर्वत से पूर्व और पश्चिम में यह क्षेत्र

है। इसके बीचों-बीच मेरुपर्वत के आ जाने से इसके दो विभाग हो जाते हैं—पूर्व महाविदेह और पश्चिम महाविदेह। पूर्व महाविदेह के मध्य मे सीता नदी और पश्चिम महाविदेह के मध्य में सीतोदा नाम की नदी के आ जाने से एक-एक के फिर दो विभाग हो जाते हैं। इस प्रकार इस क्षेत्र के चार विभाग बन जाते है। इन चारों विभागों में आठ-आठ विजय (क्षेत्र-विशेष) है। ये ८ x ४ = ३२ होने से महाविदेह में ३२ विजय प्रदेश-विशेष पाए जाते हैं। इस क्षेत्र मे सदैव चौथे आरे जैसी स्थिति रहती है।
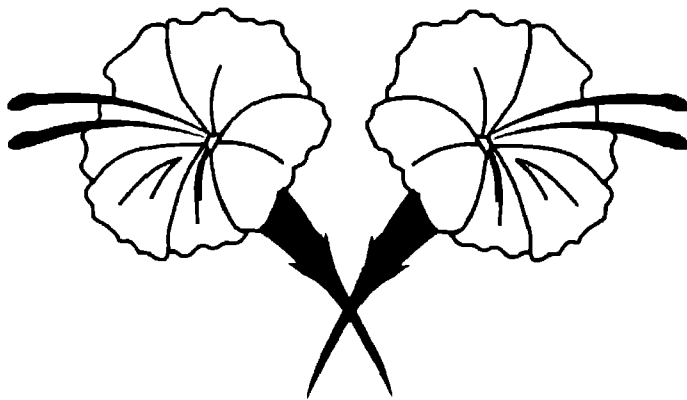
द्वितीय से दशम अध्ययन

सुकाल आदि शेष नौ भाइयो का वर्णन

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते अज्झयणस्स निरयावलियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुन्नभद्दे चेइए। कोणिए राया। पउमावई देवी। तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कोणियस्स रन्नो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था, सुकुमाला। तीसे णं सुकालीए देवीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे होत्था। सुकुमाले। तएणं से सुकाले कुमारे अन्नया कयाइ तिहिं दंतिसहस्सेहिं जहा कालो कुमारो निरवसेसं तं चेव जाव महाविदेहे वासे अंतं काहिइ ॥ १ ॥

॥ बीयं अज्झयणं समत्तं ॥ २ ॥

एवं सेसा वि अट्ठ अज्झयणा नेयव्वा पढमसरिसा, णवरं मायाओ सरिसणामाओ ॥ १० ॥ निक्खेवो सव्वेसिं जाणियव्वो तहा ॥

॥ निरयावलियाओ समत्ताओ ॥

॥ पढमो वग्गो समत्तो ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत्-संप्राप्तेन निरयावलिकानां प्रथमस्याध्ययनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य निरयावलिकानां श्रमणेन भगवता यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन्

समये चम्पा नाम्नी नगरी अभूत्। पूर्णभद्रश्चैत्यः। कूणिको राजा। पद्मावती देवी। तत्र खलु चम्पायां नगर्या श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कूणिकस्य राज्ञः क्षुल्लमाता सुकाली नाम देव्यभूत् सुकुमारा। तस्याः खलु सुकाल्या देव्याः पुत्रः सुकालो नाम कुमारोऽभूत्, सुकुमारः। ततः खलु स सुकालः कुमारः अन्यदा त्रिभिर्दन्तिसहस्रैर्यथा कालः कुमारः, निरवशेषं तदेव यावन्महाविदेहे वर्षेऽन्तं करिष्यति ॥ १ ॥

॥ द्वितीयमध्ययनं समाप्तम् ॥ २ ॥

एवं शेषाप्यष्टाध्ययनानि ज्ञातव्यानि प्रथमसदृशानि। नवरं मातरः सदृश-नाम्न्यः॥ १० ॥ निक्षेपः सर्वेषां भावितव्यस्तथा ॥

निरयावलिकाः समाप्ताः ॥ प्रथमो वर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—जइ णं भन्ते—हे भगवन् यदि, **समणेणं जाव संपत्तेणं**—श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष को सप्राप्त ने, **निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते**—निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है, **दोच्चस्स णं भन्ते**—हे भगवन्। तो दूसरे, **अज्झयणस्स निरयावलियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते**—अध्ययन निरयावलिका का क्या अर्थ श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने बताया है ?, **एव खलु**—इस प्रकार हे जम्बू, **तेणं कालेण तेणं समएणं**—उस काल व उस समय में, **चम्पा नामं नयरी होत्था**—चम्पा नाम की नगरी थी, **पुण्णभद्दे चेइए**—पूर्ण-भद्र नाम का चैत्य था, **कोणिए राया**—राजा कोणिक था, **पउमावई देवी**— उसकी पद्मावती नाम की रानी थी, **तत्थ णं**—उस, **चम्पाए नयरीए सेणियस्स रन्नो**—उस चम्पा नगरी मे श्रेणिक राजा की, **भज्जा**—भार्या, **कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया**—कोणिक राजा की छोटी माता, **सुकाली नामं देवी होत्था**—सुकाली नाम की देवी (रानी) थी, **सुकुमाला**—वह सुकोमल थी, **तीसे णं**—उस, **सुकालीए देवीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे होत्था सुकुमाले**—सुकाली देवी का पुत्र सुकाल था जो शरीर से सुकोमल था, **तएणं**—तत्पश्चात्, **से सुकाले कुमारे**—वह सुकाल कुमार, **अन्नया**—अन्यदा किसी, **कयाइ**—कभी अर्थात् किसी समय, **तिहिं दन्तिसहस्सेहिं**—तीन हजार हाथियों सहित, **जहा**—जैसे, **कालो कुमारोः**—काल कुमार का वर्णन है, **निरवसेसं**—निरवशेष (मृत्यु को प्राप्त हुआ), **तं चेव**—उसी प्रकार का वर्णन जानना चाहिए, **जाव**—यावत्, **महाविदेहे वासे**—महाविदेह क्षेत्र मे पैदा होगा, **अन्तं काहिइ**—सब दु:खों का अन्त करेगा। **बीय अज्झयणं समत्तं**—दूसरा अध्ययन समाप्त हुआ।

एवं—इसी प्रकार, **सेसावि अट्ठ अज्झयणा**—शेष आठ अध्ययन भी, **नेयव्वा**—जानने चाहिएं, **पढमसरिसा**—प्रथम अध्ययन की तरह, **णवरं**—इतना विशेष है, **मायाओ सरिस-णामाओ**—उनकी माताओं के नाम उनकी तरह ही थे।

मूलार्थ—आर्य जम्बू कहते है—हे भगवन् ! अगर मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान ने निरयावलिका सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ बताया है, तो हे भगवन् ! उस मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने निरयावलिका के दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ?

आर्य सुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू । उस काल, उस समय में चम्पा नाम की एक नगरी थी, वहां पूर्णभद्र नाम का चैत्य था। वहां राजा कोणिक राज्य करता था। उसकी पद्मावती नाम की रानी थी। उस चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक की भार्या एवं राजा कूणिक की छोटी माता सुकाली देवी थी, जो कि सुकोमल थी। उस सुकाली देवी का पुत्र सुकाल कुमार किसी समय तीन हजार हाथियो (व सेना) के सहित मारा गया। जैसे काल कुमार मोक्ष प्राप्त करेगा वैसे ही सुकाल कुमार भी नरक की आयु सम्पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र मे पैदा होगा, यावत् सब दु:खों का अन्त करेगा।

इसी प्रकार शेष आठ अध्ययनों का विषय भी जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इन सब राजकुमारों के नाम उनकी माताओं के नामों के अनुसार है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे शास्त्रकार ने शेष नौ अध्ययनों का सक्षिप्त वर्णन किया है। साथ मे सूचित किया है कि सभी राजकुमार रथ-मुशल संग्राम में काल कुमार की तरह लड़ते हुए मारे गए और नरक गति को प्राप्त हुए।

सभी राजकुमार मर कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे। वहां से वे सब दु:खों से मुक्त होकर सिद्ध-बुद्ध पद प्राप्त करेंगे। सभी राजकुमारों का वर्णन समान है, अन्तर केवल माताओं के नामों का है। सभी का पिता राजा श्रेणिक है, सभी कोणिक के भ्राता है। प्राचीन काल मे पिता की दूसरी पत्नी के लिए सम्मानजनक छोटी माता पद आया है अत: उसे भी कोणिक की छोटी माता कहा गया है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि रथ-मूशल सग्राम किसे कहते हैं। इसका वर्णन भगवती सूत्र के सातवे शतक मे प्राप्त होता है।

लडाई मे राजा चेटक ने बहादुरी से दशों भाइयों को एक-एक बाण से मार दिया। यह भयकर स्थिति देखकर राजा कोणिक भयभीत हुआ कि कही अपने भाइयो की तरह मैं भी राजा चेटक के हाथो न मारा जाऊं। राजा कोणिक ने अपने पूर्व भव के दो मित्रों को याद किया जो अब शक्रेन्द्र व चमरेन्द्र के रूप मे देव-लोक में पैदा हुए थे। कोणिक की आराधना से दोनो देव प्रसन्न हुए। वे कोणिक के समीप आए। उन्होने रथमूशल तथा महाशिला कंटक सग्राम मे भाग लिया। जब शक्रेन्द्र ने महाशिला कंटक संग्राम में वैक्रिय

किया, तब कोणिक राजा शस्त्रों से सुसज्जित होकर उदाई नामक हस्ति-रत्न पर आरूढ़ हुआ। उस समय शक्रेन्द्र अभेद्य वज्रमय कवच वैक्रिय कर, राजा कोणिक के सन्मुख खडा रहा। एक हाथी पर सुरेन्द्र और नरेन्द्र दोनों इन्द्र मिलकर सग्राम करने लगे। उस सग्राम में शक्रेन्द्र ने तृणकाय पत्थर कंकर वैक्रिय किया वह सब महाशिला रूप बन गए। इस तरह उस संग्राम में चौरासी (८४) लाख मनुष्यो की मृत्यु हुई।

प्राय: सब सैनिक मरकर नरक में उत्पन्न हुए। इस तरह चमरेन्द्र ने तापस के बर्तनो की तरह वैक्रिय करके राजा कोणिक की सहायता की। शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र ने इस युद्ध मे भाग लिया। सारथी के बिना ही खाली रथ चारों तरफ मुसलों को लगाकर छोडा गया। इससे ९६ लाख मनुष्यों का घात हुआ। उनमें से दस हजार मछली के पेट मे उत्पन्न हुए, एक मनुष्य गति में पैदा हुआ और एक देव गति में आया।

वैशाली नगरी मे वरुण नामक नाग सारथी का पोता बहुत ऋद्धिवन्त जीवाजीव का ज्ञाता था। श्रमणोपासक था, निरन्तर छठ-छठ व्रत का पारना करते हुए, आत्मा को सयमासयम से भावित कर रहा था। वह राजा की आज्ञा से षट् व अष्टम तप कर रथ-मुशल संग्राम मे आया। उसका नियम था कि वह निरपराधी जीव को नहीं मारेगा। जब दूसरी ओर से बाण मारा गया तब वह सग्राम स्थान मे ही देव-गुरु व धर्म की साक्षी से समाधि-मरण को प्राप्त करके सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुआ।

इस देव का अन्य देवो ने स्वर्ग मे आगमन महोत्सव मनाया, जिससे देव आपस मे कहने लगे–जो सग्राम मे मरता है वह स्वर्ग मे जाता है। उस समय उस वरुण के पौत्र का बाल मित्र भी संग्राम में आया हुआ था। उसको भी बाण लगा। वह भी अपने मित्र के पास आकर वैसे ही आसन पर बैठ कर हाथ जोडकर बोला–जो मेरे मित्र ने किया, वह ही मै करूं, यह सोचकर उसने मन से पापकारी शल्यो का त्याग किया। आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य के रूप मे पैदा हुआ। वहां से धर्म आराधना द्वारा महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध मुक्त होगा।

इस युद्ध में व्यापक स्तर पर जान-माल की भारी क्षति हुई। राजा चेटक आदि अठारह (१८) गणराजाओं की हार हुई। राजा कोणिक जीत गया। इस प्रकार कोणिक द्वारा वैशाली का विनाश हुआ।

–निरयावलिका प्रथम वर्ग सपूर्ण–

कल्पावतंसिका नामक

(द्वितीय-वर्ग)

अह कप्पवडिंसियाओ नाम बीओ वग्गो

अथ कल्पावतंसिका द्वितीयो वर्गः

उत्थानिका—प्रथम वर्ग निरयावलिका का अर्थ सुनने के पश्चात् आर्य जम्बू अपने गुरुदेव पचम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी से पुन: जिज्ञासा करते हुए, द्वितीय वर्ग कल्पा-वतंसिका का अर्थ सविनय पूछते हुए कहते हैं—"हे भगवन् ! मैंने आपके द्वारा वर्णित प्रथम उपांग निरयावलिका का अर्थ सम्यक् रूप से ग्रहण कर लिया है, अब कृपया मुझे द्वितीय वर्ग कल्पावतंसिका का अर्थ बताने का अनुग्रह करें जो आपने श्रमण भगवान महावीर से श्रवण किया था।

शिष्य की जिज्ञासा का समाधान आर्य सुधर्मा स्वामी जिस प्रकार करते हैं उसी का कथन इस अध्ययन में किया गया है। इस अध्ययन से यह बात सिद्ध होती है कि जब यह उपांग आर्य सुधर्मा जी ने सुनाया था उस समय श्रमण भगवान महावीर मोक्ष में पधार चुके थे।

द्वितीय वर्ग के दस अध्ययनों के नाम

मूल—जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स कप्पवडिंसियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पन्नत्ता ?

एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, तंजहा—१. पउमे, २. महापउमे, ३. भद्दे, ४. सुभद्दे, ५. पउमभद्दे, ६. पउमसेणे, ७. पउमगुम्मे, ८. नलिणिगुम्मे, ९. आणंदे, १०. नंदणे ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन उपाङ्गानां प्रथमस्य

वर्गस्य निरयावलिकानामयमर्थः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य खलु भदन्त ! वर्गस्य कल्पावतंसिकानां श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कति अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ?

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन कल्पावतंसिकानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—१. पद्मः, २. महापद्मः, ३. भद्रः, ४. सुभद्रः, ५. पद्मभद्रः, ६. पद्मसेनः, ७. पद्मगुल्मः, ८. नलिनीगुल्मः, ९. आनन्दः, १०. नन्दनः ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—जइ णं भंते—हे भगवन् यदि, **समणेणं भगवया**—श्रमण भगवान महावीर ने, **जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने, **उवङ्गाणं**—उपागो मे प्रथम, **निरयावलियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते**—निरयावलिका का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, **दोच्चस्स ण भंते वग्गस्स कप्पवडिंसियाणं**—हे भगवन् ! तो द्वितीय वर्ग कल्पावतंसिका के, **समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पन्नत्ता**—मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान (महावीर) ने कितने अध्ययन बताए हैं।

एवं खलु जम्बू—इस प्रकार हे जम्बू, **समणेण भगवया**—श्रमण भगवान, **जाव संपत्तेणं**—यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने, **कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता**— कल्पावतंसिका नामक वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादित किए है, **तं जहा**—जैसे, **पउमे**—पद्म, **महापउमे**—महापद्म, **भद्दे**—भद्र, **सुभद्दे**—सुभद्र, **पउमभद्दे**—पद्मभद्र, **पउमसेणे**—पद्मसेन, **पउमगुम्मे**—पद्मगुल्म, **नलिणिगुम्मे**—नलिनीगुल्म, **आणन्दे**—आनद, (और) **नन्दणे**—नंदन।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि मोक्ष को सप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने उपांगों में प्रथम निरयावलिका का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! दूसरे वर्ग कल्पावतंसिका के यावत् मोक्ष को सप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने कितने अध्ययन प्रतिपादित किए हैं ?

हे जम्बू ! मोक्ष को सप्राप्त श्रमण भगवान ने कल्पावतंसिका नामक दूसरे वर्ग के दस अध्ययन प्रतिपादन किए है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. पद्म, २. महापद्म, ३. भद्र, ४. सुभद्र, ५. पद्मभद्र, ६. पद्मसेन, ७. पद्मगुल्म, ८ नलिनी गुल्म, ९. आनन्द, और १०. नन्दन।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में दूसरे वर्ग कल्पावतंसिका के विषय मे वर्णन किया गया है। इस वर्ग के दस अध्ययन है। आर्य जम्बू के प्रश्न के उत्तर में आर्य गणधर सुधर्मा ने बताया कि इन दश अध्ययनों में कल्प देवलोक में उत्पन्न चारित्रनिष्ठ आत्माओं का वर्णन है। यहा "**समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं**" पद से सम्पूर्ण "**नमोत्थुणं**" का पाठ ग्रहण करना चाहिए।

पद्म कुमार का जन्म

उत्थानिका—अब जम्बू स्वामी प्रथम अध्ययन के विषय में श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते है—

मूल—जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स कप्पवडिंसियाणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुन्नभद्दे चेइए। कूणिए राया। पउमावई देवी। तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था, सुकुमाल०। तीसेणं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था, सुकुमाल०। तस्स णं कालस्स पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाल० जाव विहरइ।

तए णं सा पउमावई देवी अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। एवं जम्मणं जहा महाबलस्स, जाव नामधिज्जं, जम्हाणं अम्हं इमे दारए कालस्स कुमारस्स पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधिज्जं पउमे, सेसं जहा महब्बलस्स अट्ठओ दाओ जाव उप्पिं पासाय-वरगए विहरइ ॥ २ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कल्पावतंसिकानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त! अध्ययनस्य कल्पावतंसिकानां श्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम्नी नगरी आसीत्। पूर्णभद्रं चैत्यं, कूणिको राजा, पद्मावती देवी। तत्र खलु चम्पायां नगर्यां श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कूणिकस्य राज्ञो लघुमाता काली नाम देवी आसीत्। सुकुमारा०। तस्याः खलु देव्याः पुत्रः कालो नाम कुमारः आसीत्। सुकुमारः०। तस्य खलु कालस्य कुमारस्य पद्मावती नाम्नी देवी अभवत्। सुकमारा० यावत् विहरति।

ततः खलु सा पद्मावती देवी अन्यदा कदाचित् तादृशे वासगृहे अभ्यन्तरतः सचित्रकर्मणि यावत् सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा खलु प्रतिबुद्धा। एवं जन्म यथा महाबलस्य यावत् नामधेयं, यस्मात् खलु अस्माकं अयं दारकः कालस्य कुमारस्य पुत्रः पद्मावत्याः देव्या आत्मजः तद् भवतु खलु अस्माकम् अस्य दारकस्य नामधेयं पद्मः। शेषं

यथा महाबलस्य अष्ट दायाः यावत् उपरि प्रासादवरगतो विहरति ॥ २ ॥

पदार्थान्वयः—जइ णं भंते—हे भगवन् । यदि, **समणेणं जाव संपत्तेणं**—श्रमण भगवान महावीर यावत् मोक्ष को सप्राप्त ने, **कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता**—कल्पा-वतंसिका के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं, **पढमस्स णं भंते**—तो हे भगवन् ! प्रथम, **अज्झयणस्स कप्प वडिंसियाण समणेणं भगवया जाव के अट्ठे पन्नत्ते**—कल्पावतंसिका के (प्रथम) अध्ययन का श्रमण भगवान महावीर यावत् मोक्ष को प्राप्त ने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है, **एवं खलु जंबू**—इस प्रकार हे जम्बू ! **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल, उस समय में, **चंपा नामं नयरी होत्था**—चम्पा नाम की नगरी थी, **पुन्नभद्दे चेइए**—पूर्ण-भद्र नाम का चैत्य था, **कूणिए राया**—कोणिक नाम का राजा था, **पउमावई देवी**—पद्मावती नाम की रानी थी, **तत्थणं चंपाए नयरीए**—उस चम्पा नगरी में, **सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था**—श्रेणिक राजा की भार्या, कोणिक राजा की छोटी माता काली देवी थी, **तीसे णं कालीए देवीए**—उस काली देवी का, **पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था**—काल कुमार नाम का पुत्र था, **सुकुमाले०**—जो सुकोमल था, **तस्स णं कालस्स पउमावई नामं देवी होत्था**—उस काल कुमार की पद्मावती नाम की रानी थी, **सोमाला जाव विहरइ**—जो कि सुकुमार थी यावत् शान्ति पूर्वक जीवन यापन कर रही थी।

तए णं—तत्पश्चात्, **सा पउमावई देवी**—वह पद्मावती रानी, **अन्नया कयाइं**—अन्य किसी समय, **तंसि तारिसगंसि वासघरंसि**—उस पुण्य आत्मा के योग्य वासगृह में, **अब्भिंतरओ**—आभ्यंतर से, **सचित्तकम्मे**—जो वास गृह सचित्र था, **जाव**—यावत्, **सीहं सुमिणे**—सिंह स्वप्न में, **पासित्ता णं**—देखकर, **पडिबुद्धा**—जागृत हुई, **एवं**—इस प्रकार, **जम्मण**—जन्म, **जहा**—जैसे, **महाबलस्स**—महाबल कुमार, **जाव**—यावत्, **नामधिज्जं**— नाम करण हुआ था, **जम्हाणं**—जिससे, **अम्हं**—हमारा, **इमे दारए**—यह बालक, **काल कुमारस्स**—काल कुमार का, **पुत्ते**—पुत्र है, **पउमावईए देवीए अत्तए**—पद्मावती का आत्मज है, **तं**—अतः, **होउणं**—हो, **अम्ह**—हमारे, **इमस्स दारगस्स**—इस बालक का, **नामधिज्जं**—नामकरण, **पउमे**—पद्म, **सेसं**— शेष वर्णन, **जहा**—जैसे, **महाबलस्स**—महाबल कुमार का है उसी प्रकार जानना चाहिए, **अट्ठओ दाओ**—आठ पत्नियों अर्थात् आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ, **जाव**—यावत्, **उप्पिंपासायवरगए**—ऊपर प्रधान प्रासाद में रहता हुआ, **विहरइ**—विचरता है।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यावत् मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने कल्पा-वतंसिका के दश अध्ययन प्रतिपादित किए हैं तो हे भगवन् ! मोक्ष को संप्राप्त भगवान

महावीर ने कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया–निश्चय ही उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी, पूर्णभद्र नाम का चैत्य था, कोणिक नाम का राजा राज्य करता था, उसकी पद्मावती नाम की रानी थी। उस चम्पा नगरी मे श्रेणिक राजा की भार्या एवं राजा कोणिक की छोटी माता काली नाम की रानी थी जो सुकोमल थी। उस काली देवी के काल कुमार नाम का पुत्र था जो सुकोमल था। उस काल कुमार की पद्मावती नाम की रानी थी जो सुकोमल थी एव शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी।

तत्पश्चात् वह पद्मावती देवी किसी समय पुण्यवान प्राणी के योग्य वासगृह में शैय्या पर शयन कर रही थी। वह वासगृह अन्दर से चित्रों से सुसज्जित था यावत् (वह) सिंह के स्वप्न को देखकर जाग उठी। (बालक उत्पन्न हुआ) जिसका जन्म, नामकरण आदि जिस प्रकार महाबल कुमार का हुआ था उसी प्रकार इसका भी जानना चाहिए। यह काल कुमार का पुत्र व पद्मावती का आत्मज है, अत: इस बालक का नाम पद्म रखा गया। शेष वर्णन महाबल कुमार की तरह जानना चाहिए, आठ कन्याओं से उसका विवाह हुआ, आठो कन्याओं के परिवारों का दान-दहेज आया, यावत् राज-प्रासाद में बैठकर सुख भोगता हुआ विचरता है। शेष वर्णन महाबल कुमार की तरह ही जानना चाहिए।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे आर्य सुधर्मा के शिष्य अंतिम केवली जम्बू स्वामी ने दश अध्ययनो मे से प्रथम अध्ययन का अर्थ पूछा है। शिष्य की जिज्ञासा को शात करते हुए गुरुदेव कहते है कि प्रथम अध्ययन में पद्म कुमार का वर्णन है। इसका समस्त वर्णन महाबल कुमार की तरह जानना चाहिए। जैसे पंचम अंग भगवती सूत्र के ग्यारहवें शतक मे महाबल कुमार का बर्णन है वैसा ही समझे, अन्तर इतना है कि यहा पद्म कुमार के पिता कालकुमार हैं। कोणिक व काल कुमार की रानियो के नाम एक तरह के हैं। काल कुमार की रानी सिंह का स्वप्न देख कर जागृत होती है। प्राचीन परम्परा है कि शुभ स्वप्न आने पर जागृत रहना अच्छा होता है। यहा राजकुमार पद्म के जन्म का वर्णन आया है। जो अपने माता-पिता की तरह सुकोमल एवं सुन्दर है, बड़ा होने पर आठ राजकन्याओ के साथ उसका विवाह होता है। आठो सुन्दर कन्याएं काफी दहेज लाई। परन्तु प्राचीन काल में दहेज आज की तरह जरूरी नहीं होता था, माता-पिता सभी वस्तुएं पुत्री को स्वेच्छा से भेंट करते थे। जीवन-भर स्त्री ही इसकी स्वामिनी होती थी। इसे स्त्री-धन कहा जाता था। महाबल कुमार की तरह इसने भी प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव जी द्वारा प्रतिपादित ७२ कलाएं कलाचार्य से सीखीं। अब ये आठ पत्नियों के साथ सुख से रह रहा है।

'**सोमाला**' पद का कई अर्थो मे प्रयोग हुआ है, शरीर का सुकोमल, शान्तिपूर्वक जीवन, या सुखमय जीवन गुजारने वाले के रूप में।

पद्म की प्रव्रज्या

मूल–सामी समोसरिए, परिसा निग्गया, कूणिओ निग्गए, पउमेवि जहा महब्बले निग्गए तहेव अम्मापिइ–आपुच्छणा जाव पव्वइए अणगारे जाए जाव गुत्तबंभयारी ॥ ३ ॥

छाया–स्वामी समवसृतः, परिषद् निर्गता, कूणिको निर्गतः, पद्मोऽपि यथा महाबलो निर्गतस्तथैव अम्बापितृ–आपृच्छना यावत् प्रव्रजितोऽनगारो जातो यावत् गुप्तब्रह्मचारी ॥ ३ ॥

पदार्थान्वयः–सामी–स्वामी, **समोसरिए**–पधारे, **परिसा निग्गया**–परिषद् दर्शनार्थ निकली, **कूणिओ निग्गए**–राजा कोणिक भी राजमहल से निकला, **पउमेवि जहा महाबले निग्गए तहेव**–जैसे महाबल कुमार निकला था वैसे ही पद्मकुमार भी दर्शनार्थ निकला, वैसे ही, **अम्मापिइ**–माता-पिता से, **आपुच्छणा**–पूछ कर, **जाव पव्वइए**–यावत् प्रव्रजित हुए, **अणगारे जाए**–अणगार हुए, **जाव गुत्तबंभयारी**–यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हुए।

मूलार्थ–उस नगरी में स्वामी (श्रमण भगवान महावीर पधारे)। धर्म परिषद् निकली। राजा कूणिक भी राजमहल से निकला, पद्म कुमार भी महाबल कुमार की तरह दर्शन करने आया, (धर्म उपदेश सुनकर) माता-पिता की आज्ञा से प्रव्रजित हुए, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अणगार हुए।

टीका–श्रमण भगवान् महावीर अपना धर्म-उपदेश करते हुए चम्पा नगरी में पधारे। राजा प्रजा भगवान के दर्शन करने व धर्म उपदेश सुनने आए। पद्म कुमार भी भगवान के दर्शन करने आया। धर्म उपदेश सुन कर वह माता-पिता की आज्ञा से महाबल की तरह ही दीक्षित हो गया। अनगार (साधु) के गुणों से युक्त हो गया, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

पद्म अणगारः स्वाध्याय और साधना

मूल–तएणं से पउमे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहुहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव विहरइ। तएणं से पउमे अणगारे तेणं ओरालेणं जहा मेहो तहेव धम्मजागरिया चिंता एवं जहेव मेहो तहेव समणं भगवं आपुच्छित्ता

विउले जाव पाओवगए समाणे।

छाया–ततः खलु स पद्मोऽनगारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके सामायिकादिकानि एकादशाङ्गानि अधीते। अधीत्य बहुभिः चतुर्थषष्ठाष्टम० यावद् विहरति। ततः स पद्मोऽनगारो तेन उदारेण यथा मेघस्तथैव धर्मजागरिका, चिन्ता, एवं यथैव मेघस्तथैव श्रमणं भगवन्तमापृच्छ्य विपुले यावत् पादपोगतः सन् ॥ ४ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं से पउमे अणगारे–तत्पश्चात् वह पद्म अनगार, **समणस्स भगवओ महावीरस्स**–श्रमण भगवान महावीर के, **तहारूवाणं**–तथारूप विद्वान, **थेराणं**–स्थविरों के, **अतिए**–समीप, **सामाइयमाइयाइं**–सामायिक आदि से लेकर, **एक्कारस्स अंगाइं**–ग्यारह अगों का, **अहिज्जइ**–अध्ययन करता है, **अहिज्जित्ता**–अध्ययन करके, **बहूहिं**–बहुत से, **चउत्थछट्ठट्ठम**–एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास आदि ग्रहण कर, **जाव**–यावत्, **विहरइ**–विचरता है, **तएणं**–तत्पश्चात्, **पउमे अणगारे**–वह पद्म अनगार, **तेणं**–उस, **उरालेण**–प्रधान तप द्वारा शरीर से, **जहा**–जैसे, **मेहो**–मेघ कुमार, **तहेव**–उसी प्रकार, **धम्मजागरिया**–धर्म जागरण, **चिंता**–चिन्तन, **एवं**–इसी प्रकार, **जहेव**–जैसे, **मेहो**–मेघ कुमार, **तहेव**–उसी प्रकार, **समणं भगवं**–श्रमण भगवान से, **आपुच्छित्ता**–पूछ कर, **विउले**–विपलुगिरि पर चढकर, **जाव**–यावत्, **पाओवगए समाणे**–पादोपगमन अनशन कर साधना करने लगा।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह पद्म अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप श्रमणों के समीप रह कर सामायिक आदि से लकर एकादश अंगों को पढ़ता है, पढ़ कर बहुत बार एक-एक उपवास, दो-दो उपवास, तीन-तीन उपवास आदि से महातप धारण कर विचरता है। तब पद्म अनगार का उस प्रधान तप के करने से शरीर कृश हो गया। जिस प्रकार मेघ कुमार ने धर्म जागरण करते हुए अनशन करने की विचारणा की थी, ठीक उसी प्रकार का विचार कर, पद्म अनगार भगवान महावीर से आज्ञा लेकर विपुलगिरि (राजगृह) पर्वत पर चढ़ कर पादोपगमन अनशन कर साधना करने लगा।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में राजकुमार पद्म की स्थविरो के पास एकादश अंग पढ़ने की चर्चा है। सामायिक आचारांग सूत्र का ही नाम है। पद्म अणगार लम्बे समय तक तप करते हुए धर्म-जागरण करता है। लम्बे समय तक तप करने से जब शरीर-कृश हो गया तब वह पद्म अनगार मेघ कुमार की तरह विपुलगिरि पर समाधि-मरण के लिए जाता है। वह पादोपगमन अनशन की आज्ञा भगवान महावीर से लेता है। मेघ मुनि भी राजा श्रेणिक

का पुत्र था। उसका वर्णन ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र में देखना चाहिए।

हस्तलिखित कतिपय प्रतियों में 'समाणे' पद के स्थान पर समणं पद दिया गया है, किन्तु प्रकरण अनुसार 'समाणे' पद ही उपयुक्त है। तथा ''धम्मजागरिया चिंता'' इन दो पदो से यह सूचित किया गया है कि यदि रात्रि में निद्रा खुल जाए, तब धर्म के विषय में चिन्तन करना चाहिए। इसका नाम ही धर्म-जागरणा है। फिर विचार पूर्वक सच्चे धर्म का पालन करना चाहिए। कारण यह है कि धर्म-जागरणा करने के अतिरिक्त कुछ अन्य-जागरण भी हैं जैसे कि कुटुम्ब-जागरिया, अत्थ-जागरिया, काम-जागरिया, कलह जागरिया, विवाद-जागरिया, संक्लेश-जागरिया, मोह-जागरिया आदि अनेक जागरण हैं। इनको छोड़कर धर्म-जागरण ही आत्मा के लिए कल्याणकारी है। इसका कारण यह है कि रात्रि में निद्रा से मुक्त होने पर विचार अवश्य आते हैं। अठारह पापो के अशुभ विचार होते हैं, उन पापों से बचने के लिए शुभ विचार किए जाते हैं। जिन्हें शास्त्रकार ने धर्म जागरणा नाम दिया है। धर्म-जागरण, नित्य जागरण, बुद्ध जागरण, प्रबुद्ध जागरण, सुदर्शन जागरण आदि शुभ जागरण है।

पद्म अणगार का पण्डितमरण

मूल–तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं, बहुपडिपुण्णाइं पंच वासाइं सामन्नपरियाए, मासियाए संलेहणाए सटिं्ठ भत्ताइं० आणुपुव्वीए कालगए। थेरा ओइन्ना, भगवं गोयमो पुच्छइ, सामी कहेइ जाव सटिं्ठ भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइय० उड्ढं चंदिम० सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने, दो सागराइं० ॥ ५ ॥

छाया–तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके सामायिकादिकानि एकादशाङ्गानि बहुप्रतिपूर्णानि पञ्च वर्षाणि श्रामण्यपर्यायः। मासिक्या संलेखनया षष्ठि भक्तानि० आनुपूर्व्या कालगतः। स्थविरा अवतीर्णाः, भगवान् गौतमः पृच्छति, स्वामी कथयति यावत् षष्ठि भक्तानि अनशनेन छित्वा आलोचित० ऊर्ध्वं चन्द्रमः० सौधर्मे कल्पे देवत्वेन उपपन्न·, द्वौ सागरौ० ॥ ५ ॥

पदार्थान्वयः–तहारूवाण–तथारूप श्रमण, **थेराणं**–स्थविरो के, **अंतिए**–समीप, **सामाइयमाइयाइं**–सामायिक आदि, **एक्कारस अगाइं**–एकादश अंगो को पढ़कर, **बहुपडि-पुण्णाइं**–बहुत प्रतिपूर्ण, **पञ्चवासाइं**–पांच वर्ष, **सामण्णपरियाए**–श्रामण्य पर्याय पालकर, **मासियाए सलेहणाए**–एक मास का अनशन करके, **सटिं्ठ भत्ताइं**– साठ भक्त का छेदन कर, **आणुपुव्वीए**–अनुक्रम से उसने, **कालगए**–काल किया, **थेरा**–स्थविर, **ओइन्ना**–विपुलगिरि पर्वत से उतर आए, **भगवं**–भगवान, **गोयमो**–गौतम ने, **पुच्छइ**–पूछा,

सामी कहेइ—भगवान महावीर ने उत्तर दिया, **जाव**—यावत्, **सट्ठिं भत्ताइं**—साठ भक्त, **अणसणाए**—अनशनो का, **छेदित्ता**—छेदन कर, **आलोइय**—आलोचना प्रतिक्रमण कर, **उड्ढं**—ऊंचे, **चंदिम०**—चन्द्र से, **सोहम्मे कप्पे**—सौधर्म कल्प में, **देवत्ताए**— देव रूप मे, **उववन्ने**—उत्पन्न हुआ—**दो सागराइं**—जिसकी स्थिति दो सागरोपम की है।

मूलार्थ—पद्म अनगार ने तथारूप स्थविरों के समीप सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंग शास्त्र पढ़कर प्रतिपूर्ण पांच वर्ष संयम-पर्याय पाला। फिर एक मास की सलेखना से साठ भक्तों के अनुक्रम से काल-धर्म को प्राप्त हुआ। स्थविर पर्वत से नीचे उतर आए, उसके भण्ड उपकरण भगवान महावीर को दिखाए। गणधर गौतम ने प्रश्न किया—हे भगवन्! पद्म अनगार काल करके कहां उत्पन्न हुआ है ? भगवान महावीर ने उत्तर दिया ''हे गौतम । पद्म अनगार अपनी संयम-क्रिया का पूर्णत: पालन कर आलोचना प्रतिक्रमण करके शल्यों से शुद्ध होकर एक मास की संलेखना से प्रथम देवलोक में दो सागरोपम की स्थिति वाले देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि पद्म अनगार ने तथारूप श्रुतज्ञ स्थविरो के समीप आचाराग आदि ग्यारह अगों का अध्ययन किया। पाच वर्षो तक साधु-जीवन का पालन किया। एक मास की सलेखना की। साठ (६०) भक्तों का छेदन कर अनुक्रम से काल-धर्म को प्राप्त हुआ। तब स्थविर विपुल गिरि से उतर कर नीचे भगवान के समीप उपस्थित हुए। उन्होंने पद्म अनगार के भण्डोपकरण दिखाकर उसके समाधि-मरण की सूचना दी। गणधर गौतम ने जब पद्म अनगार का भविष्य पूछा, तो श्रमण भगवान ने बताया कि पद्म अनगार यहां से काल करके सौधर्म देवलोक मे दो सागरोपम की आयु वाला देव बना है। जिस प्रकार मेघ कुमार का वर्णन श्री ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र में आया है पद्म मुनि का साधनामय जीवन भी वैसा ही जान लेना चाहिए।

पद्म अणगार का भविष्य

मूल—से णं भंते पउमे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं पुच्छा, गोयमा! महाविदेहे वासे जहा दढपइन्नो जाव अंतं काहिइ। तं एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्तिबेमि ॥ ६ ॥

छाया—स: खलु भदन्त ! पद्मो देवस्ततो देवलोकाद् आयु:-क्षयेण पृच्छति, गौतम ! महाविदेहे वर्षे यथा दृढप्रतिज्ञो यावदन्तं करिष्यति। तदेवं खलु जम्बू !

श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कल्पावतंसिकानां प्रथमस्याध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, इति ब्रवीमि ॥ ६ ॥

पदार्थान्वयः—से णं भंते—हे भगवन् ! वह, **पउमे देवे**—पद्मदेव, **ताओ देवलोगाओ**—उस देवलोक से, **आउक्खएण**—आयु क्षय करके, कहां उत्पन्न होगा ? **पुच्छा**—इस प्रकार गणधर गौतम ने प्रश्न किया, भगवान ने उत्तर दिया, **गोयमा**—हे गौतम, **महाविदेहे वासे**—महाविदेह क्षेत्र में, **जहा**—जैसे, **दढपइन्नो जाव**—दृढ़प्रतिज्ञ कुमार का वर्णन है यावत्, **अंतं काहिइ**—सब दुःखों का अंत करेगा, **तं एवं खलु जंबू**—इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू ! **समणेणं जाव संपत्तेणं**—श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को सम्प्राप्त ने, **कप्पवडिंसियाणं**—कल्पावतसिका के, **पढमस्स**—प्रथम, **अज्झयणस्स—**अध्ययन का, **अयमट्ठे पन्नत्ते**—यह अर्थ प्रतिपादन किया है, **त्तिबेमि**—इस प्रकार मैं कहता हू।

मूलार्थ—हे भगवन् ! वह पद्मदेव, देवलोक की आयु पूर्ण करके कहा उत्पन्न होगा? इस प्रकार का प्रश्न गौतम स्वामी ने किया। इसके उत्तर में भगवान महावीर ने कहा— "हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र मे जैसे दृढप्रतिज्ञ का वर्णन है यावत् सब दुःखो का अन्त करेगा। (आर्य सुधर्मा कहते हैं) हे जम्बू ! निश्चय ही श्रमण भगवान मोक्ष-संप्राप्त ने कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। इस प्रकार मैं कहता हूं।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे भगवान महावीर ने सूचित किया है कि पद्म मुनि देवलोक की आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा, वह दृढ़प्रतिज्ञ अनगार की तरह से सिद्ध होकर मोक्ष को प्राप्त करेगा।

॥ प्रथम अध्ययन संपूर्ण ॥

द्वितीय से दशम अध्ययन

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, पुन्नभद्दे चेइए, कूणिए राया, पउमावई देवी। तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था। तीसे णं सुकालीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे। तस्स णं सुकालस्स कुमारस्स महापउमा नामं देवी होत्था, सुकुमाला०।

तए णं सा महापउमा देवी अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसि एवं तहेव महापउमे नामं दारए, जाव सिज्झिहिइ, नवरं ईसाणे कप्पे उववाओ उक्कोसट्ठिइओ। तं एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं०। एवं सेसा वि अट्ठ नेयव्वा। मायाओ सरिसनामाओ। कालादीणं दसण्हं पुत्ताणं आणुपुव्वीए—दोण्हं च पंच चत्तारि, तिण्हं तिण्हं च होंति तिन्नेव। दोण्हं च दोण्णि वासा, सेणिय-नत्तूण परियाओ।

उववाओ आणुपुव्वीए, पढमो सोहम्मे विइओ ईसाणे, तइओ सणंकुमारे, चउत्थो माहिंदे, पंचमओ बंभलोए, छट्ठो लंतए, सत्तमओ महासुक्के, अट्ठमओ सहस्सारे, नवमओ पाणए, दसमओ अच्चुए। सव्वत्थ उक्कोसट्ठिई भाणियव्वा, महाविदेहे सिज्झिहिइ ॥ १ ॥

॥ कप्पवडिंसियाओ बिइओ वग्गो समत्तो ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन कल्पावतंसिकानां प्रथमस्याऽध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगरी आसीत्, पूर्णभद्रं चैत्यं, कूणिको राजा, पद्मावती देवी। तत्र खलु चम्पायां नगर्यां श्रेणिकस्य राज्ञो भार्या कूणिकस्य राज्ञो लघुमाता सुकाली नाम देवी आसीत्। तस्याः खलु सुकाल्याः पुत्रः सुकालो नाम कुमारः, तस्य खलु सुकालस्य कुमारस्य महापद्मा नाम देवी आसीत्, सुकुमारा०।

ततः खलु सा महापद्मा देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन् तादृशे एवं तथैव महा-पद्मो नाम दारकः, यावत् सेत्स्यति, नवरमीशानकल्पे उपपातः उत्कृष्टस्थितिकः। एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन० एवं शेषाण्यपि अष्टौ ज्ञातव्यानि, मातरः सदृशनाम्न्यः कालादीनां दशानां पुत्राणामानुपूर्व्या—(व्रतपर्यायः)—द्वयोश्च पञ्चचत्वारि, त्रयाणा त्रयाणां च भवन्ति त्रीण्येव। द्वयोश्च द्वे वर्षे, श्रेणिकनप्तृणां पर्यायः।

उपपातः आनुपूर्व्या—प्रथमः सौधर्मे, द्वितीयः ईशाने, तृतीयः सनत्कुमारे, चतुर्थो माहेन्द्रे, पञ्चमो ब्रह्मलोके, षष्ठो लान्तके, सप्तमो महाशुक्रे, अष्टमः सहस्रारे, नवमो प्राणते, दशमोऽच्युते। सर्वत्र उत्कृष्टा स्थितिर्भणितव्या, महाविदेहे सेत्स्यति ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—**जइणं भंते**—यदि हे भगवन्, **समणेणं भगवया**—श्रमण भगवान, **जाव**—यावत्, **संपत्तेणं**—मोक्ष को सप्राप्त ने, **कप्पवडिसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते**—कल्पावतसिका के (द्वितीय वर्ग के) प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, **दोच्चस्स णं भते अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते**—तो भगवान ने दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है, **एवं खलु जंबू !**—इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू ! **तेणं कालेण तेणं समएणं**—उस काल उस समय, **चंपा नामं नयरी होत्था**—चम्पा नाम की नगरी थी, **पुन्नभद्दे चेइए**—वहां पूर्णभद्र नामक चैत्य था, **कूणिए राया, पउमावई देवी**—कोणिक राजा था, पद्मावती रानी थी, **तत्थ णं चंपाए नयरीए**— उस चम्पा नगरी मे, **सेणियस्स रन्नो भज्जा**—श्रेणिक राजा की भार्या, **कोणियस्स रन्नो चुल्लमाउया**—कोणिक राजा की छोटी माता, **सुकाली नामं देवी होत्था**—सुकाली नाम की महारानी थी, **तीसे णं सुकालीए पुत्ते**—उस सुकाली के पुत्र, **सुकाले नामं कुमारे**—सुकाल नाम का कुमार था, **तस्स णं सुकालस्स कुमारस्स**—उस सुकाल कुमार के, **महापउमा नाम देवी होत्था**—महापद्मा नाम की देवी थी, **सुकुमाला०**—जो सुकोमल थी।

तए णं सा महापउमा देवी—तत्पश्चात् वह महापद्मा देवी, **अन्नया कयाइं**—अन्य

किसी समय, **तंसि तारिसगंसि**—उसके समान शैय्या पर, **एवं तहेव महापउमे नामं दारए**—वैसे ही महापद्म नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, **जाव**—यावत्, **सिज्झिहिइ**—मोक्ष पद प्राप्त करेगा, **नवरं ईसाणे कप्पे उववाओ**—इतना विशेष है कि उसकी ईशान देव-लोक में उत्पत्ति (जन्म) होगी, **उक्कोसट्ठिइओ**—उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिए, **तं एव खलु जंबू**—इस प्रकार हे जम्बू। **समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं०**—श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को सप्राप्त ने द्वितीय अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, **एवं सेसा वि अट्ठ नेयव्वा**—इस प्रकार शेष आठ अध्ययनों के विषय में भी जान लेना चाहिए, **मायाओ सरिसनामाओ**—सबके नाम माताओ के नामो पर है, **कालादीणं पुत्ता आणुपुव्वीए**—अनुक्रम से कालादि दसों कुमारो की चारित्र पर्याय इस प्रकार है, **दोण्हं च पंच**—प्रथम दो की पांच वर्ष, **चत्तारि तिण्हं**—फिर तीन की चार वर्ष, **तिण्ह च होंति तिण्णेव**—फिर तीन कुमारो की तीन वर्ष, **दोण्हं च दोण्णि वासा**—फिर दो की दो वर्ष, **सेणिय नत्तूण परियाओ**—श्रेणिक राजा के पौत्रों का चारित्र पर्याय है।

उववाओ आणुपुव्वीए—उपपात अनुक्रम से, **पढमो सोहम्मे**—प्रथम सौधर्म मे, **बिइओ ईसाणे**—द्वितीय का ईशान कल्प मे, **तइओ सणंकुमारे**—तीसरा सनत्कुमार देवलोक मे, **चउत्थो माहिंदे**—चतुर्थ माहेन्द्र कल्प देवलोक मे, **पंचमओ बंभलोए**—पांचवां ब्रह्म देवलोक मे, **छट्ठो लंतए**—छठा लातक कल्प मे, **सत्तमओ महासुक्के**—सातवें का महाशुक्र मे, **अट्ठमओ सहस्सारे**—आठवां सहस्रार देवलोक में, **नवमओ पाणए**—नौवां प्राणत देवलोक मे, **दसमओ अच्चुए**—दशवा अच्युत देवलोक में उत्पन्न हुआ, **सव्वस्स उक्कोसट्ठिई**—सब की उत्कृष्ट स्थिति, **भाणियव्वा**—कहनी चाहिए। **महाविदेहे सिज्झिहिइ**—और यावत् सब ही महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध गति प्राप्त करेगे, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करके सब दुःखों का अंत करेंगे। **कप्पवडिसियाओ बिइयो वग्गो समत्तो**—कल्पावतंसिका नामक शास्त्र द्वितीय वर्ग समाप्त हुआ।

मूलार्थ—अब आर्य जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—हे भगवन् ! श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने अगर कल्पावतसिका के द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तो हे भगवन् ! (उन श्रमण भगवान महावीर ने) दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? गणधर सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! उस काल एवं उस समय में चम्पा नाम की एक नगरी थी। (वहां) कोणिक नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पद्मावती नाम की देवी (महारानी) थी।

उस चम्पा नगरी में राजा श्रेणिक की भार्या एवं राजा कोणिक की छोटी माता सुकाली नाम की देवी थी। उस सुकाली का पुत्र सुकाल नाम का कुमार था। उस

सुकाल कुमार की महापद्‌मावती नाम की रानी थी जो सुकोमल थी।

तत्पश्चात् वह महापद्मावती देवी, किसी समय महल में सो रही थी (जैसे कि पहले वर्णन किया जा चुका है)। उसकी कुक्षि से महापद्म नाम का कुमार उत्पन्न हुआ, यावत् वह निर्वाण-पद प्राप्त करेगा। इतना विशेष है कि उसका उपपात (देवलोक में जन्म) होगा और वह ईशान-कल्प नामक देवलोक में उत्कृष्ट स्थिति वाला देव बनेगा। इस प्रकार हे जंबू ! श्रमण भगवान महावीर ने यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने द्वितीय अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार शेष आठ अध्ययनो का अर्थ भी जानना चाहिए। सब के नाम माताओं के नामो के सदृश है। अनुक्रम से कालादि दसो ही पुत्रों की दीक्षा-पर्याय इस प्रकार है, प्रथम दो की पाच वर्ष, तीन की चार वर्ष, तीन की तीन वर्ष, दो की दो वर्ष, यह सब महाराजा श्रेणिक के पौत्रों की दीक्षा-पर्याय है। अनुक्रम से इन सबका उपपात इस प्रकार हुआ—

प्रथम का सौधर्म देवलोक, द्वितीय का ईशान देवलोक, तृतीय का सनत्कुमार देवलोक, चौथे का माहेन्द्र देवलोक, पांचवें का ब्रह्म देवलोक, छठे का लांतक देवलोक, सातवे का महाशुक्र देवलोक, आठवें का सहस्रार देवलोक, नौवें का प्राणत, दसवे का अच्युत देवलोक। सबकी देवलोक में उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिए, यावत् ये सब महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होंगे।

टीका—इस सूत्र मे राजा श्रेणिक के पौत्रों का वर्णन है, इन सब राजकुमारो ने मुनि-जीवन ग्रहण किया, तप किया और देवलोक प्राप्त किया। फिर महाविदह क्षेत्र मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे, इनकी माताओ के नाम पर ही इनके नाम जानने चाहिएं। अन्तर इनके नामों, दीक्षा-पर्यायों व देवलोक के नामो मे है। इस अध्ययन से सिद्ध होता है कि सम्यग्-ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र व सम्यग् तप की आराधना से श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। देव-लोक में देव रूप में जन्म, शुभ कर्मोदय से ही होता है। महाविदेह क्षेत्र से इन सभी चारित्रशील आत्माओ ने मोक्ष पधारना है। सभी अध्ययनों में घटनाक्रम एक तरह का है।

इस प्रकार कल्पावतंसिका नामक द्वितीय वर्ग में निम्नलिखित मुनियों का वर्णन है, काल, सुकाल के पुत्र पद्म—महापद्म अनगार ने पांच वर्ष संयम पालन किया, तदनन्तर पद्‌म सौधर्म नामक प्रथम देवलोक में उत्कृष्ट दो सागरोपम आयु वाला, महापद्म ईशान देवलोक मे दो सागरोपम से कुछ अधिक आयु वाला देव बना। महाकाल, कृष्ण और

सुकृष्ण के पुत्र भद्र, सुभद्र और पद्मभद्र ने चार वर्ष सयम पर्याय का पालन किया। भद्र मुनि सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक में उत्कृष्ट सात सागरोपम की आयु वाला, सुभद्रमुनि माहेन्द्र नामक चतुर्थ देवलोक में उत्कृष्ट सात सागरोपम और पद्म भद्रमुनि ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक मे उत्कृष्ट दस सागरोपम की आयु वाला देव बना। महाकृष्ण और रामकृष्ण के पुत्र पद्मसेन और पद्मगुल्म मुनि हुए। पद्मसेन मुनि लातक नामक छठे देवलोक में उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की स्थिति वाला देव बना। पद्मगुल्म मुनि महाशुक्र नाम के सातवें देवलोक मे सत्रह सागरोपम की आयु वाले देव बने। इन्होंने तीन वर्ष सयम का पालन किया। नलिनी-गुल्म सहस्रार देवलोक मे १९ सागरोपम आयु वाले देव बने। पितृसेनकृष्ण व महासेनकृष्ण के पुत्र आनन्द मुनि व नन्दन मुनि ने दो-दो वर्ष सयम पालन किया। आनन्द मुनि प्राणत नाम के नवमे देवलोक में उत्कृष्ट २० सागरोपम आयु वाला व नन्दन मुनि बारहवे अच्युत देवलोक मे २२ सागरोपम स्थिति वाला देव बना।

॥ कल्पावतंसिका समाप्त ॥

॥ द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

(तृतीय-वर्ग)

अह पुप्फियाओ तइओ वग्गो

अथ पुष्पिताख्यस्तृतीयो वर्गः

उत्थानिका—आर्य जम्बू पचम गणधर सुधर्मा स्वामी से निरयावलिका सूत्र के द्वितीय वर्ग का अर्थ ग्रहण करने के पश्चात् इस उपांग के पुष्पिता नामक तृतीय वर्ग का अर्थ सुनने की जिज्ञासा अपने गुरुदेव से करते है। विनीत शिष्य के प्रश्न के उत्तर मे आर्य सुधर्मा ने क्या उत्तर दिया, उसी का वर्णन इस अध्ययन मे है।

तृतीय वर्ग के दस अध्ययनों के नाम

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवंगाणं दोच्चस्स वग्गस्स कप्पवडिंसियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते। तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स उवंगाणं पुप्फियाणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवंगाणं तच्चस्स वग्गस्स पुप्फियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता तं जहा—

१. चंदे, २. सूरे, ३. सुक्के, ४. बहुपुत्तिय, ५. पुन्ने, ६. माणभद्दे य।

७. दत्त, ८. सिवे, ९. वलेया, १०. अणाढिए चेव बोद्धव्वे ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन उपांगानां द्वितीयस्य वर्गस्य कल्पावतंसिकानामयमर्थः प्रज्ञप्तः, तृतीयस्य खलु भदन्त ! वर्गस्य उपांगानां पुष्पितानां कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन उपांगानां तृतीयस्य वर्गस्य पुष्पितानां दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चन्द्रः, १. सूरः, २. शुक्रः, ३. बहुपुत्रिकः, ४. पूर्णः, ५. मानभद्रश्च। ६. दत्तः, ७. शिवः, ८. वलेपकः, ९. अनादृतः, १०. चैव बोद्धव्याः ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—जइण भंते—यदि हे भगवन्, **समणेण भगवया जाव सपत्तेणं**—श्रमण भगवान महावीर यावत् मोक्ष संप्राप्त ने, **उवंगाणं दोच्चस्स वग्गस्स**—दूसरे उपाग के द्वितीय वर्ग, **कप्पवडिसियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते**—कल्पावतसिका का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, **तच्चस्स णं भंते**—तो हे भगवन्! तीसरे, **वग्गस्स उवगाणं पुप्फियाणं के अट्ठे पण्णत्ते**—वर्ग के उपाग पुष्पिता का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

एव खलु जम्बू—इस प्रकार हे जम्बू, **समणेण जाव संपत्तेणं**—श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को सम्प्राप्त ने, **उवगाणं तच्चस्स वग्गस्स**—उपांग के तीसरे वर्ग, **पुप्फियाणं**—पुष्पिता के, **दस अज्झयणा पन्नत्ता**—दस अध्ययन प्रतिपादन किए है, **तं जहा**—जैसे कि, **चंदे, सूरे, सुक्के, बहुपुत्तिय, पुन्ने, माणभद्दे य**—चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बहुपुत्रिका, पूर्ण, मानभद्र, **दत्ते, सिवे, वलेया, अणाढिए, चेव बोद्धव्वे**—दत्त, शिव, वलेपक और अनादृत का वर्णन जानना चाहिए।

मूलार्थ—दूसरे वर्ग का अर्थ सुनकर आर्य जम्बू अपने गुरु आर्य सुधर्मा स्वामी से तीसरे वर्ग के बारे मे प्रश्न करते है—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर यावत् मोक्ष को सप्राप्त ने द्वितीय वर्ग कल्पावतसिका का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो तीसरे उपाग पुष्पिका का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

(आर्य सुधर्मा उत्तर देते है) हे जम्बू ! श्रमण भगवान यावत् मोक्ष सम्प्राप्त ने उपांगो में तृतीय वर्ग पुष्पिका के दश अध्ययन प्रतिपादन किए है जो इस प्रकार जानने चाहिएं—१. चन्द्र, २. सूर्य, ३. शुक्र, ४. बहुपुत्रिका, ५. पूर्ण, ६. मानभद्र, ७ दत्त, ८. शिव, ९. वलेपक, १० अनादृत।

टीका—इस सूत्र मे कल्पावतसिका और पुष्पिका का आपसी सम्बन्ध स्थापित किया गया है। तीसरे वर्ग पुष्पिका के भी दस अध्ययन हैं। प्रत्येक अध्ययन का निक्षेप प्रारभ व अन्त मे स्वयं जोड़ लेना चाहिए। इस सम्बन्ध मे वृत्तिकार का कथन है—**अथ तृतीय वर्गोऽपि दशाध्ययनात्मक· 'निक्खेवओत्ति निगमनवाक्यं यथा एवं खलु जम्बू समणेण भगवया महावीरेण आइगरेणं, इत्यादि जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाण, संपाविउकामेणं तइयस्स वग्गस्स पढम अज्झयणस्स पुप्फियाभिहाणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, एवमुत्त-रेष्वप्यध्ययनेषु सूरशुक्रबहुपुत्रिकादिषु निगमनं वाच्यं तत्तदभिलापेन।**

इसी प्रकार प्रत्येक अध्ययन के साथ सम्बन्ध जोड लेना चाहिए। सभी वर्गो के नाम ऊपर लिखे जा चुके हैं।

चन्द्र द्वारा नाट्य प्रदर्शन / चन्द्र देव का पूर्वभव: अंगति गाथापति

उत्थानिका—अब सूत्रकार प्रथम अध्ययन का विषय कहते हैं—

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पुप्फियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स पुप्फियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा निग्गया। तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव विहरइ। इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे-२ पासइ, पासित्ता समणं भगवं महावीरं जहा सूरियाभे आभिओगे देवे सद्दावित्ता जाव सुरिंदाभिगमणजोग्गं करेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणइ। सूसरा घंटा, जाव विउव्वणा नवरं (जाणविमाणं) जोयणसहस्सवित्थिण्णं अद्धत्तेवट्ठि-जोयणसमूसियं महिंदज्झओ पणुवीसं जोयणमूसिओ, सेसं जहा सूरियाभस्स जाव आगओ नट्टविही तहेव पडिगओ। भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं, पुच्छा, कूडागारसाला, सरीरं अणुपविट्ठा पुव्वभवो।

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नाम नयरी होत्था, कोट्ठए चेइए। तत्थणं सावत्थीए नयरीए अंगई नामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए। तएणं से अंगई गाहावई सावत्थीए नयरीए बहूण नयरनिगम० जहा आणंदो ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन पुष्पिताना दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य पुष्पितानां श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह नाम नगरं, गुणशिलं चैत्यं, श्रेणिको राजा। तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसृतः। परिषत् निर्गता। तस्मिन् काले तस्मिन् समये चन्द्रो ज्योतिष्केन्द्रः ज्योतिराजः चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां चन्द्रे सिंहासने चतसृभिः सामानिकसाहस्रीभिः यावद् विहरति। इमं च खलु केवलकल्पं जम्बूद्वीपं द्वीपं विपुलेन अवधिना आभोगयमानः आभोगयमानः पश्यति, दृष्ट्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं यथा सूर्याभः आभियोग्यान् देवान् शब्दयित्वा यावत् सुरेन्द्रादिगमनयोग्यं कृत्वा तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयति। सुस्वरा घण्टा यावत्

विकुर्वणा नवरं (यानविमानं) योजनसहस्रविस्तीर्णम् अर्धत्रिषष्टियोजनसमुच्छ्रितम्, महेन्द्रध्वजः पञ्चविंशतियोजनमुच्छ्रितः शेषं यथा सूर्याभस्य यावदागतो नाट्यविधिस्तथैव प्रतिगतः। भदन्त इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं पृच्छा, कूटागारशाला, शरीरमनुप्रविष्टा, पूर्वभवः।

एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'श्रावस्तिः' नाम नगरी आसीत्, कोष्ठकं चैत्यम्। तत्र खलु श्रावस्त्यां नगर्याम् अंगति नामा गाथापतिरासीत् आढ्यो यावदपरिभूतः। ततः खलु सः अंगतिर्गाथापतिः श्रावस्त्यां नगर्यां बहूनां नगरनिगम० यथा आनन्दः ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः–जइ णं भंते !–यदि हे भगवन् ! **समणेणं जाव संपत्तेणं**–श्रमण भगवान यावत् मोक्ष सप्राप्त ने, **पुप्फियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता**–पुष्पिका के दश अध्ययन प्रतिपादन किए हैं, **पढमस्स णं भते**–तो हे भगवन् ! प्रथम, **अज्झयणस्स पुप्फियाणं**–अध्ययन पुष्पिका के, **समणेणं जाव संपत्तेणं**–श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने, **के अट्ठे पन्नत्ते**–क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

एवं खलु जम्बू–इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू, **तेणं कालेणं तेणं समएणं**–उस काल उस समय मे, **रायगिहे नामं नयरे**–राजगृह नामक नगर था, **गुणसिलए चेइए**–गुणशील नामक चैत्य था, **सेणिए राया**–श्रेणिक राजा था, **तेण कालेणं, तेणं समएणं**–उस काल उस समय मे, **सामी समोसढे**–(भगवान महावीर) स्वामी गुणशील चैत्य में पधारे, **परिसा निग्गया**–परिषद् दर्शनार्थ आई, **तेणं कालेणं तेणं समएणं**–उस काल उस समय मे, **चदे जोइसिंदे**–चन्द्र ज्योतिषी देवों का इन्द्र, **जोइसराया**–ज्योति राजा था, **चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए**–चन्द्रावतसक विमान की सौधर्म सभा मे, **चंदंसि सीहासणंसि**–चन्द्र नामक सिंहासन पर, **चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव विहरइ**–चार हजार सामानिक देवों से सपरिवृत (घिरा हुआ) विचरता है, **इमं च ण केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं**–उस समय सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को, **विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे पासइ पासित्ता**–विपुल प्रधान अवधिज्ञान के उपयोग से देखता है और देखकर, **समणं भगवं महावीरं**–श्रमण भगवान महावीर को देखकर, **जहा सूरियाभे**–जैसे सूर्याभदेव ने किया था, यावत्, **आभिओगे देवे सद्दावित्ता**–आभियोगिक (सेवक) देवों को बुलाकर, **जाव सुरिंदाभिगमणजोग्गं करेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणइ**–यावत् सुरेन्द्र के जाने योग्य विमान की रचना कर, उसकी आज्ञा का पालन किया अर्थात् चन्द्र देव को सूचित किया कि विमान तैयार है, **सुसरा घंटा जाव विउव्वणा**–सुस्वर घंटे यावत् सब की विकुर्वणा कर, उनको बताया, **नवरं जाणविमाणं, जोयणसहस्सवित्थिण्णं**–इतना विशेष है कि उस का विमान एक हजार योजन चौड़ा, **अद्धत्तेवट्ठिजोयणसमूसियं**–और साढे बासठ योजन ऊचा था, **महिंदज्झओ पणवीसं**

जोयणमूसिओ– महेन्द्र ध्वजा २५ योजन ऊंची, **सेसं जहा सूरियाभस्स जाव आगओ**–शेष सूर्याभदेव के समान यावत् आ गया, **नट्टविही तहेव पडिगओ**–उसी तरह नाट्य विधि (नाटक) दिखाकर वापिस स्वस्थान पर चला गया, **भंते ! त्ति भगवं गोयमे**–हे भगवन् ! भगवान गौतम जी ने, **समणं भगवं महावीरं पुच्छा**–श्रमण भगवान महावीर से पूछा यावत् प्रश्न किया, **कूडागारसाला सरीरं अणुपविट्ठा**–कूटागारशाला की तरह वह देव के शरीर में ही अनुप्रविष्ट हो गई, **पुव्वभवो**–गौतम स्वामी ने चन्द्रमा का पूर्वभव भगवान से पूछा, भगवान ने उत्तर दिया, **एवं खलु गोयमा**–इस प्रकार हे गौतम, **तेणं कालेणं तेणं समएणं**–उस काल उस समय मे, **सावत्थी नाम नयरी होत्था**–श्रावस्ती नाम की नगरी थी, **कोट्ठए चेइए**–वहां ईशान कोण में कोष्ठक नामक चैत्य था, **तत्थणं सावत्थीए नयरीए**–उस श्रावस्ती नगरी मे, **अंगई नाम गाहावई होत्था**–अंगति नामक एक गाथापति था, **अड्ढे जाव अपरिभूए**–वह ऋद्धिवान यावत् अपरिभूत था, **तएणं से गाहावई**–तत्पश्चात् वह गाथापति, **सावत्थीए नयरीए**–श्रावस्ती नगरी में, **बहूणं नयरनिगम**–बहुत नगर निगमों में यावत्, **जहा आणंदो**–जैसे आनन्द था।

मूलार्थ–(आर्य जम्बू प्रश्न करते है) हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने पुष्पिका नामक वर्ग के यदि १० अध्ययनों का प्रतिपादन किया है तो हे भगवन् ! श्रमण भगवान यावत् मोक्ष संप्राप्त ने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

(उत्तर में आर्य सुधर्मा कहते हैं) हे जबू ! निश्चय ही उस काल, उस समय में राजगृह नामक नगर था, उस नगर में गुणशील नामक एक चैत्य था। श्रेणिक नामक राजा वहां राज्य करता था। उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर उस राजगृह नगर के गुणशील चैत्य नाम के उद्यान में पधारे। परिषद दर्शन करने आई अर्थात् परिषद ने भगवान् की पर्युपासना की।

उस काल, उस समय मे चन्द्र ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्क देवों का राजा था, जो चार हजार सामानिक देवों से संपरिवृत (घिरा) हुआ, सुधर्मा सभा में, चन्द्रावतंसक नामक विमान पर, चन्द्र नामक सिंहासन पर बैठा हुआ यावत् विचरता था। वह अपने विपुल अवधि-ज्ञान की शक्ति से समस्त जम्बूद्वीप को देखता है, देखकर श्रमण भगवान महावीर को देखते ही जैसे सूर्याभ देव ने किया था, उस प्रकार आभियोगिक देवों को बुलाता है। वे आभियोगिक देव सुरेन्द्र के गमन करने योग्य विमान की विकुर्वणा कर, चन्द्र देव की आज्ञा का पालन कर, उसको (चन्द्र देव को) सूचित करते हैं। फिर पदातिसेनानायक देव ने सुस्वर घंटों को बजाया और विमान की विकुर्वणा की। इतना

विशेष है कि उस (चन्द्र) का विमान एक हजार योजन विस्तार वाला, साढ़े बासठ योजन ऊंचा था। महेन्द्र ध्वजा २५ योजन ऊची थी। शेष जैसे सूर्याभदेव का वर्णन है, वैसे ही इस (चन्द्र) का है यावत् नाट्य-विधि की। उसे दिखाकर वापिस देवलोक लौट गया।

(इस वर्णन के अनन्तर) भगवान गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से प्रश्न किया-"हे भगवन् ! वह रचना कहा गई ?" भगवान महावीर ने उत्तर दिया, गौतम ! "कूटागार शाला के समान ही देव के शरीर में प्रविष्ट हो गई।" गणधर गौतम ने चन्द्र का पूर्वभव पूछा। भगवान ने उत्तर दिया-हे गौतम ! उस काल, उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। वहां कोष्ठक नाम का एक चैत्य था, वहा अंगति नामक गाथापति रहता था, जो धन-धान्य से समृद्ध यावत् पराभव से रहित था। वह अंगति गाथापति श्रावस्ती नगरी में बहुत नगर-निगमों में यावत् आनन्द की तरह समृद्धियों से युक्त था।

टीका-प्रस्तुत सूत्र पुष्पिका नामक वर्ग के १० अध्ययनों मे से प्रथम का अर्थ आर्य जम्बू की जिज्ञासा का समाधान करते हुए सुधर्मा सुना रहे हैं। उस काल उस समय राजगृही नगरी मे श्रमण भगवान महावीर ग्रामानुग्राम धर्म-प्रचार करते हुए पधारे। गुणशील चैत्य मे राजा श्रेणिक व समस्त नागरिक प्रभु का धर्म उपदेश सुनने, दर्शन वन्दन करने आए। उसी सभा मे ज्योतिष देवों का इन्द्र चन्द्रमा, अपने चन्द्र सिहासन पर बैठा अवधि-ज्ञान के उपयोग से ये सब देखता है। अपने चार हजार सामानिक देवों से घिरा, सुधर्मा सभा के चन्द्रावतसक विमान में बैठा, अपने अधीनस्थ सेवक देवों को बुलाता है, उन्हे सुरेन्द्र के गमन योग्य विमान की विकुर्वणा करने का आदेश देता है, सेवक देव एक हजार विस्तार व साढे बासठ योजन ऊंचा विमान तैयार करते है और फिर देवों ने सुस्वर घंटा बजा कर अन्य देवो को सूचित किया। सेवक देव विमान की विकुर्वणा कर आज्ञा पूरी करके चन्द्रदेव को सूचित करते है। चन्द्रदेव अपने समस्त परिवार, देव परिवार व १६०० आत्मरक्षक देवो के साथ समस्त ऋद्धियों का प्रदर्शन करता हुआ, भगवान महावीर को प्रणाम करने आ रहा है। उसके आगे २५ योजन ऊंची महेन्द्र ध्वजा चल रही है। चन्द्र देव भगवान के सामने सूर्याभदेव की तरह नाटक विधि का प्रदर्शन करता है और धर्म-उपदेश सुनने के पश्चात् चला जाता है।

चन्द्रमा के चले जाने के पश्चात् गणधर गौतम प्रश्न करते है कि हे भगवन् ! इस देव ने अपनी ऋद्धि को विस्तृत करके दिखाया, अब यह ऋद्धि कहा चली गई ? फिर शरीर मे कैसे प्रविष्ट हो गई ?

भगवान महावीर ने उत्तर में कूटाकारशाला का दृष्टात देकर स्पष्ट किया-जैसे किसी

उत्सव मे फैला जनसमूह वृष्टि के भय से किसी विशाल घर में प्रवेश करता है उसी प्रकार चन्द्रदेव ने अपनी वैक्रिय शक्ति से देवताओं की रचना कर नाटक दिखाया और फिर उसको समेट कर अपने ही देव-शरीर मे प्रविष्ट कर लिया।

केवलकप्पं का भाव है अपना कार्य करने में समर्थ, अर्थात् स्व गुण सम्पूर्ण। वृत्तिकार इस प्रकार लिखते हैं–

केवलकप्पं ति केवलः–परिपूर्णः स चासौ कल्पश्च केवलकल्पः–स्वकार्य-करण समर्थः केवल कल्पः तं स्वगुणेन संपूर्णमित्यर्थः।

गौतम का ऐसा प्रश्न सुनकर भगवान ने कहा–हे गौतम । उस काल उस समय मे श्रावस्ती नाम की नगरी थी। उस नगरी मे कोष्ठक नामक चैत्य था। उस श्रावस्ती नगरी में अंगति नामक एक गाथापति रहता था। वह गाथापति बहुत बड़ी ऋद्धि आदि से युक्त था, कीर्ति से उज्ज्वल था। उसके पास बहुत से घर, शैय्या, आसन, गाडी, घोडे आदि थे और वह बहुत-सा धन तथा बहुत सोना-चांदी आदि का लेन-देन करता था। उसके घर मे खाने के बाद बहुत-सा अन्न-पान आदि खाने पीने का सामान रहता था जो अनाथ-गरीब मनुष्यों को व पशु-पक्षियो को दिया जाता था। उसके यहां दास-दासिया बहुत सी थी और बहुत सी गाय, भैंसे वे भेडें थीं, तथा वह अपरिभूत-प्रभावशाली था।

'आढ्य, दीप्त और अपरिभूत' इन तीन विशेषणो से अगति गाथापति के लिए दीपक का दृष्टान्त दिया जाता है, वह इस प्रकार है–जैसे दीपक तेल, बत्ती और शिखा (लौ) से युक्त होकर वायु-रहित स्थान में सुरक्षित रहकर प्रकाशित होता है, वैसे ही अंगति गाथापति भी तेल और बत्ती के समान आढ्य अर्थात् ऋद्धि से, शिखा की जगह उदारता, गंभीरता आदि से और दीप्ति से युक्त होकर, वायु-रहित स्थान के समान मर्यादा का पालन आदि रूप सदाचार से तथा पराभव-रहितपन से सयुक्त होकर तेजस्विता धारण करता था। अतः आढ्यता, दीप्ति और अपरिभूतता, इन तीनो मे रहने वाला हेतुताऽवच्छेदक धर्म एक ही है, इस कारण तृणारणिमणि-न्याय से प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम शब्दों मे प्रमाणता के समान प्रत्येक (सिर्फ आढ्यता, सिर्फ दीप्ति, या सिर्फ अपरिभूतता) को हेतु नहीं मानना चाहिए।

जिस प्रकार आनन्द गाथापति धन-धान्य आदि से युक्त वाणिज्य ग्राम में निवास करता था। उसी प्रकार अंगति गाथापति भी श्रावस्ती नगरी में निवास करता था। आनन्द का वर्णन श्री उपासकदशांगसूत्र के प्रथम अध्याय में देखना चाहिए।

वह अंगति गाथापति राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाहो के द्वारा बहुत से कार्यों में, कारणों

(उपायों) में, मत्र (सलाह) में, कुटुम्बों में, गुह्यों में, रहस्यों मे, निश्चयों में और व्यवहारों मे एक बार और बार-बार पूछा जाता था और वह अपने कुटुम्ब का भी मेधि, प्रमाण, आधार आलम्बन, चक्षु, मेढ़िभूत यावत् समस्त कार्यों को बढाने वाला था। यावत् शब्द से राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह का ग्रहण होता है। माण्डलिक नरेश को राजा और ऐश्वर्य वालों को ईश्वर कहते हैं। राजा सतुष्ट होकर जिन्हें पट्टबन्ध देता है, वे राजा के समान पट्टबन्ध से विभूषित लोग तलवर कहलाते है। जो बस्ती छिन्न-भिन्न हो उसे मण्डव और उसके अधिकारी को माण्डविक कहते हैं। 'माडबिय' की छाया यदि 'माडम्बिक' की जाए तो माडम्बिक का अर्थ 'पाच सौ गावो का स्वामी' होता है। अथवा ढाई-ढाई कोस की दूरी पर जो अलग गांव बसे हों, उनके स्वामी को 'माडम्बिक' कहते हैं। जो कुटुम्ब का पालन-पोषण करते हैं, या जिनके द्वारा बहुत से कुटुम्बो का पालन होता है, उन्हें 'कौटुम्बिक' कहते है। हाथी और हाथी के बराबर द्रव्य जिसके पास हो उसे 'इभ्य' कहते है। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से इभ्य तीन प्रकार के हैं। जो हाथी के बराबर मणि, मुक्ता, प्रवाल (मूंगा), सोना, चांदी आदि द्रव्य–राशि के स्वामी हो वे जघन्य इभ्य है। जो हाथी के बराबर हीरा और माणिक की राशि के स्वामी हो वे मध्यम इभ्य है। जो हाथी के बराबर केवल हीरों की राशि के स्वामी हो वे उत्कृष्ट इभ्य है। लक्ष्मी की जिस पर पूरी-पूरी कृपा हो और उस कृपाकोर के कारण जिनके लाखों के खजाने हो, तथा सिर पर उन्हीं को सूचित करने वाले चादी का विलक्षण पट्ट शोभायमान हो रहा हो, जो नगर के प्रधान व्यापारी हों, उन्हें श्रेष्ठी कहते है।

चतुरंगी सेना के स्वामी को सेनापति कहते है। जो गणिम, धरिम, मेय और परिछेद्य रूप खरीदने-बेचने के योग्य वस्तुओ को लेकर लाभ के लिए देशान्तर जाने वाले को साथ ले जाते हैं, योग (नयी वस्तु की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) के द्वारा उनका पालन करते है, गरीबो की भलाई के लिए उन्हें पूंजी देकर व्यापार द्वारा धनवान बनाते हैं उन्हें सार्थवाह कहते है। एक, दो, तीन, चार आदि संख्या के हिसाब से जिनका लेन-देन होता हो उसे 'गणिम' कहते है, जैसे नारियल, सुपारी, केला आदि। तराजू पर तोलकर जिसका लेन-देन हो उसे 'धरिम' कहते हैं, जैसे धान, जौ, नमक, शक्कर आदि। सराव छोटे-छोटे बर्तन आदि से नाप कर जिसका लेन-देन होता है, उसे मेय कहते है, जैसे–दूध, घी, तेल आदि। सामने कसौटी आदि पर परीक्षा करके जिसका लेन-देन होता है, उसे परिच्छेद्य कहते है। जैसे मणि, मोती, मूंग, गहना आदि।

वह अगति गाथापति इन राजा, ईश्वर आदि के द्वारा बहुत से कार्यों में, कार्य को सिद्ध करने के उपायों में, कर्तव्य को निश्चित करने के गुप्त विचारों में, बान्धवों में, लज्जा

के कारण गुप्त रखे जाने वाले विषयों मे, एकान्त में होने वाले कार्यों मे, पूर्ण निश्चयों में, व्यवहार के लिए पूछे जाने योग्य कार्यों में, अथवा बान्धवों द्वारा किए गए लोकाचार से विरुद्ध कार्यों के प्रायश्चित्तों (दंडों) मे, अर्थात् उल्लिखित सब मामले में एक बार और बार-बार पूछा जाता था—इन सब बातों में राजा आदि समस्त बड़े-बड़े आदमी अंगति की सम्मति लेते थे।

इन सब विशेषणों से सूत्रकार ने यह प्रकट किया है कि अगति गाथापति को सभी लोग मानते थे, वह अत्यन्त विश्वासपात्र था विशाल बुद्धिशाली था और सबको उचित सम्मति देता था।

धान, जौ, गेहू आदि की दाय करने (आटा-दाने-निकालने) के लिए गढ़ा खोदकर लकड़ी का एक बांस का स्तम्भ गाड़ा जाता है। उसके चारों ओर एक पंक्ति मे लांक (धान) को कुचलने के लिए बैल घूमते है उस स्तम्भ को मेधि-मेढ़ी कहते हैं। बैल आदि उस समय उसी पर निर्भर रहते है। यदि वह स्तम्भ न हो तो कोई बैल कहीं चला जाए, कोई कहीं, सब व्यवस्था भग हो जाए। गाथापति अगति अपने कुटुम्ब की मेधि-मेढी के समान थे, अर्थात् कुटुम्ब उन्ही के सहारे था। वही उसके व्यवस्थापक थे। मूल-पाठ मे 'वि' (अपि) शब्द है, उसका तात्पर्य यह है कि वे केवल कुटुम्ब के ही आश्रय नहीं थे, अपितु समस्त लोगों के आश्रय थे, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। आगे जहां-जहा 'वि' (अपि-भी) शब्द आया है वहां सर्वत्र यही तात्पर्य समझना चाहिए। अंगति गाथापति अपने कुटुम्ब के भी प्राण थे। अर्थात् जैसे प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाण सदेह आदि को दूर करके हेय (त्याग करने योग्य) पदार्थों से निवृत्ति और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों को जानते है उसी प्रकार अंगति भी अपने कुटुम्बियो को बताते थे कि अमुक कार्य करने योग्य है, अमुक कार्य करने योग्य नहीं है, यह पदार्थ ग्राह्य है, यह अग्राह्य है।

तथा अंगति गाथापति अपने कुटुम्ब के आधार (आश्रय) थे, तथा आलम्बन थे, अर्थात् विपत्ति में पड़ने वाले मनुष्य के लिए रस्सी या स्तम्भ के समान सहारे थे।

अगति अपने कुटुम्ब के चक्षु थे, अर्थात् जैसे चक्षु मार्ग को प्रकाशित करता है वैसे ही अंगित कुटुम्बियों के भी समस्त अर्थों के प्रदर्शक (सन्मार्गदर्शक) थे।

दूसरी बार 'मेधिभूत' आदि विशेषण स्पष्ट बोध के लिए है। "जाव" शब्द से प्रमाणभूत, आधारभूत, आलम्बनभूत, चक्षुभूत इनका सग्रह होता है। यहां स्पष्टता के लिए 'भूत' शब्द अधिक दिया है, इसका तात्पर्य यह है कि अंगति गाथापति मेढी अर्थात् मेढी के सदृश थे, प्रमाण अर्थात् प्रमाण के सदृश थे, आधार अर्थात् आधार के सदृश, आलम्बन अर्थात् आलम्बन

के सदृश थे, चक्षु अर्थात् चक्षु के सदृश थे, अंगति समस्त कार्यों के सम्पादन करने वाले भी थे।

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासेणं अरहा पुरिसा-दाणीए आदि-गरे जहा महावीरो, नवुस्सेहे सोलसेहिं समणसाहस्सीहिं, अट्ठतीसा जाव कोट्ठए समोसढे, परिसा निग्गया !

तए णं से अंगई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठे जहा कत्तिओ सेट्ठी तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ, धम्मं सोच्चा निसम्म० जं नवरं देवाणुप्पिया ! जेट्ठपुत्ते कुडुंबे ठावेमि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं जाव पव्वयामि, जहा गंगदत्तो तहा पव्वइए जाव गुत्तबंभयारी।

तए णं से अंगई अणगारे पासस्स अरहओ तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव भावेमाणे बहूइं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता विराहिय-सामन्ने कालमासे कालं किच्चा चंदवडिंसए विमाणे उववायसभाए देव-सयणिज्जंसि देवदूसंतरिए चंदे जोइसिंदत्ताए उववन्ने।

तए णं से चंदे जोइसिंदे जोइसराया अहुणोववन्ने समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहा—आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए सासोसासपज्जत्तीए भासा-मणपज्जत्तीए।

चंदस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरन्नो केवइयं कालं ठिई पन्नता? गोयमा ! पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं। एवं खलु गोयमा ! चंदस्स जाव जोइसरन्नो सा दिव्वा देविड्ढी०। चंदेणं भंते ! जोइसिंदे जोइसराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ३ चइत्ता कहिं गच्छिहिइ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५, एवं खलु जम्बू ! समणेणं० निक्खेवओ ॥ ३ ॥

॥ पढमं अज्झयणं समत्तं ॥ १ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वः खलु अर्हन् पुरुषादानीय आदिकरो यथा महावीरः, नवहस्तोच्छ्राय षोडशभिः श्रमणसाहस्त्रीभिः अष्टात्रिंशद् यावत् कोष्ठके समवसृतः, परिषत् निर्गता।

ततः खलु सः अंगतिर्गाथापतिः अस्याः कथाया लब्धार्थः सन् हृष्टो यथा कार्तिकश्रेष्ठी तथा निर्गच्छति यावत् पर्युपास्ते, धर्म श्रुत्वा निशम्य० यत् नवरं देवानुप्रिय ! ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयामि, ततः खलु अहं देवानुप्रियाणां यावत् प्रव्रजामि गंगदत्तस्तथा प्रव्रजितो यावद् गुप्तब्रह्मचारी।

ततः खलु स अंगतिः अनगारः पार्श्वस्य अर्हतः तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीते, अधीत्य बहुभिश्चतुर्थ० यावद् भावयन् बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति पालयित्वा अर्धमासिक्या संलेखनया त्रिंशद् - भक्तानि अनशनया छित्वा विराधितश्रामण्यः कालमासे कालं कृत्वा चन्द्रावतंसके विमाने उपपातसभायां देवशयनीये देवदूष्यान..रिते चन्द्रो ज्योतिरिन्द्रतया उपपन्नः।

ततः खलु स चन्द्रो ज्योतिरिन्द्रो ज्योतिराजः अधुनोपपन्नः सन् पंचविधया पर्याप्त्या पर्याप्तिभावं गच्छति, तद्यथा–आहारपर्याप्त्या शरीरपर्याप्त्या इन्द्रियपर्याप्त्या श्वासोच्छ्वासपर्याप्त्या भाषामनःपर्याप्त्या।

चन्द्रस्य खलु भदन्त ! ज्योतिरिन्द्रस्य ज्योतिराजस्य कियत्कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? गौतम ! पल्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकम्। एवं खलु गौतम ! चन्द्रस्य यावत् ज्योतिराजस्य सा दिव्या देवऋद्धि०। चन्द्रः खलु भदन्त ! ज्योतिरिन्द्रो ज्योतिराजस्तस्माद्देवलोकादायुःक्षयेण ३ च्युत्वा कुत्र गमिष्यति २ ? गौतम ! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति ५। एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन निक्षेपकः ॥ ३ ॥

॥ इति प्रथमाध्ययनम् ॥

पदार्थान्वय.–तेणं कालेणं तेणं समएणं–उस काल उस समय, **पासेणं अरहा**–पार्श्व अर्हन्, **पुरिसादाणीए आदिगरे**–पुरुषों मे आदरणीय, अपने समय में चारों तीर्थ के संस्थापक, **जहा महावीरो**–जैसे भगवान महावीर हैं, **नवुस्सेहे**–नव हाथ शरीर की ऊंचाई वाले, **सोलसेहिं समणसाहस्सीहिं**–सोलह हजार श्रमण निर्ग्रन्थो के, **अट्ठतीस**–अठत्तीस हजार श्रमणी परिवार के साथ, **जाव**–यावत्, **कोट्ठए समोसढे**– कोष्ठक नामक उद्यान में समवसृत हुए, **परिसा निग्गया**–परिषद् दर्शनार्थ घरों से निकल कर आई।

तएणं से अंगई गाहावई–तत्पश्चात् वह अंगति गाथापति, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे**–इस कथा को सुन लेने पर, **हट्ठे**–हर्षित हुआ, **जहा**–जैसे, **कत्तिओ सेट्ठी**–जैसे कार्तिक सेठ दर्शनार्थ निकला था, **तहा निग्गच्छइ**–उसी प्रकार दर्शन करने निकला, **जाव**–यावत्, **पज्जुवासइ**–उसने पर्युपासना की, **धम्मं सोच्चा निसम्म०**–धर्मकथा सुनकर, **जं नवरं**–जो इतना विशेष है, **देवाणुप्पिया**–हे देवानुप्रिय, **जेट्ठपुत्ते कुडुंबे ठावेमि**–बड़े पुत्र को घर का भार सौंपकर, **तएणं अहं**–तत्पश्चात् मैं, **देवाणुप्पियाणं जाव पव्वयामि**–देवानुप्रिय

के पास यावत् प्रव्रजित होता हूं, **जहा गंगदत्तो**—जैसे गगदत्त दीक्षित हुआ था, **तहा पव्वइए**—ऐसे ही प्रव्रजित हुआ, **जाव गुत्तबंभयारी**—यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हुआ।

तए णं से अगई अणगारे—तत्पश्चात् वह अंगति अनगार, **पासस्स अरहओ**—पार्श्वनाथ अर्हत के पास, **तहारूवाणं**—तथारूप, **थेराणं अंतिए**—स्थविर भगवंतों के समीप, **सामाइय-माइयाइं**—सामायिक आदि, **एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ**—ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करता है, **अहिज्जित्ता**—अध्ययन करके, **बहूहिं चउत्थ**—बहुत प्रकार के चतुर्थ भक्त (व्रत), **जाव**—यावत्, **भावेमाणे-बहूइ वासाइं**—बहुत वर्षों तक भावित, **सामण्णपरियागं पाउणइ**—श्रामण्य पर्याय का पालन करता है, **पाउणित्ता**—पालन करके, **अद्धमासियाए संलेहणाए**—अर्धमासिक सलेखना के द्वारा, **तीसं भत्ताइं**—तीस भक्त, **अणसणाए छेदित्ता**—अनशन से छेदन करके, **विराहियसामण्णे**—श्रामण्य पर्याय का विराधक होकर, **कालमासे कालं किच्चा**—काल मास मे काल करके, **चंदवडिंसए विमाणे**—चन्द्रावतंसक विमान में, **उववाय-सभाए**—उपपात सभा में, **देवसयणिज्जंसि**—देव शैय्या के ऊपर, **देवदूसंतरिए**—देवदूष्य नामक वस्त्र के मध्य मे, **चंदे जोइसिंदत्ताए उववन्ने**—चन्द्र नामक ज्योतिष देवों के इन्द्र रूप मे उत्पन्न हुआ।

तए णं—तत्पश्चात्, **से चंदे**—वह चन्द्रमा, **जोइसराया**—ज्योतिष देवो का राजा, **अहुणोववन्ने समाणे**—वर्तमान मे ही उत्पन्न हुआ, **पंच विहाए**—पाच प्रकार की, **पज्जत्तीए**—पर्याप्तियों से, **पज्जत्तिभावं गच्छइ**—पर्याप्ति भाव को प्राप्त हुआ, **तं तहा**—जैसे कि, **आहार-पज्जत्तीए**—आहार पर्याप्ति, **सरीरपज्जत्तीए**—शरीर पर्याप्ति, **इंदियपज्जत्तीए**—इन्द्रिय पर्याप्ति, **सासोसासपज्जत्तीए**—श्वासोश्वास पर्याप्ति, **भासामणपज्जत्तीए**—भाषा-मन पर्याप्ति—इन से पर्याप्त हुआ।

चंदस्स णं भंते—भगवन्! चन्द्र की, **जोइसिंदस्स**—ज्योतिषेन्द्र की, **जोइसरन्नो**— ज्योतिराज की, **केवइयं काल ठिई पन्नत्ता**—कितने काल की स्थिति कही गई है, **गोयमा**—हे गौतम । **पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं**—एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की, **एवं खलु गोयमा**—इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम, **चंदस्स**—चन्द्रमा, **जाव**—यावत्, **जोइसरन्नो**—ज्योतिषराज ने, **सा दिव्वा देविड्ढी०**—यह दिव्य देवऋद्धि प्राप्त की है, **चंदेणं भंते**—हे भगवन्। चन्द्र, **जोइसिंदे जोइसराया**—ज्योतिष इन्द्र, ज्योतिष राजा, **ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं**—उस देवलोक की आयु क्षय करके, **चइत्ता कहिं गच्छिहिइ०**—च्यवन होकर कहां जाएगा कहा उत्पन्न होगा! **गोयमा**—हे गौतम, **महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ**—महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध गति को जाएगा, **एवं खलु जंबू**—इस प्रकार हे जंबू! निश्चय ही, **समणेणं०**—श्रमण भगवान यावत् मोक्ष संप्राप्त ने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन

किया है, **निक्खेवओ**–सम्पूर्ण हुआ, **पढमं अज्झयणं समत्त**–प्रथम अध्ययन समाप्त हुआ।

मूलार्थ–उस काल उस समय में श्री पार्श्व अर्हत् पुरुषों में आदरणीय अपने समय के चारों तीर्थों के व्यवस्थापक थे, जैसे भगवान महावीर हैं (सर्व वर्णन उसी तरह है)। इतना विशेष है कि उनका शरीर नव हाथ ऊंचा था। उनके सोलह हजार साधु और अट्ठत्तीस हजार साध्वियों का धर्म-परिवार था यावत् वह कोष्ठक उद्यान में (समवसृत हुए) पधारे, परिषद् दर्शनार्थ आई। धर्म उपदेश सुना।

तत्पश्चात् वह अंगति गाथापति, इस कथा के लब्धार्थ होने पर अति प्रसन्न हुआ। जैसे कार्तिक सेठ का वर्णन है वैसे ही वह भी प्रभु के दर्शनार्थ आया। यावत् पर्युपासना की। धर्म उपदेश सुनकर उस पर विचार किया, विचार करने के पश्चात् साधु बनने की इच्छा व्यक्त करने लगा। इतना विशेष है कि बड़े पुत्र को कुटुम्ब का भार सम्भाला। तत्पश्चात् हे देवानुप्रिय । (भगवान पार्श्वनाथ के) सान्निध्य में यावत् दीक्षा ग्रहण करूंगा और दीक्षा ग्रहण की जैसे गगदत्त का वर्णन है उसी प्रकार अंगति का भी समझ लेना चाहिए।

तत्पश्चात् वह अगति अनगार अरिहंत भगवान श्री पार्श्वनाथ के तथारूप स्थविरो के पास आचारांग आदि एकादश अंगों का अध्ययन करता है। अध्ययन करने के पश्चात् वह चतुर्थ भक्त आदि करते हुए यावत् आत्मा को संयमादि से भावित करता है। बहुत वर्षो तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करता है, पालन करने के पश्चात् अर्ध-मास की संलेखना के साथ तीस (३०) भक्तों का छेदन कर श्रामण्य-पर्याय का विराधक बनता है, फिर काल मास में यहां से काल करके चन्द्रावतंसक विमान की उपपात सभा में देव-शय्या पर, देवदूष्य वस्त्र के मध्य मे चन्द्र ज्योतिष्क इन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ है।

तत्पश्चात् वह चन्द्र ज्योतिष्क इन्द्र, ज्योतिष्क राजा तत्काल उत्पन्न होते ही पाच प्रकार की पर्याप्तियों को प्राप्त हुआ, जैसे आहार-पर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रिय-पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा तथा मन-पर्याप्ति।

अब गणधर गौतम ने चन्द्र देव का भविष्य पूछने की दृष्टि से कहा–हे भगवन्! ज्योतिष्क इन्द्र, ज्योतिष्क देवों के राजा चन्द्र देव की कितनी स्थिति वर्णन की गई है ?

हे गौतम ! लाख वर्ष अधिक पल्योपम की। इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम ! ज्योतिष्क राजा यावत् चन्द्रदेव की यह देव-ऋद्धि है।

गणधर गौतम ने पुनः प्रश्न किया—हे भगवन्! चन्द्र ज्योतिष्क राजा ज्योतिष देवो का इन्द्र, इस देवलोक की आयु सम्पूर्ण करके कहां उत्पन्न होगा ?

भगवान महावीर ने उत्तर दिया—"हे गौतम। यह भी महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध गति की प्राप्ति करेगा।" गणधर सुधर्मा अपने प्रिय शिष्य आर्य जंबू से कहते हैं—'हे जंबू! श्रमण भगवान यावत्-मोक्ष सप्राप्त ने पुष्पिका नामक सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम अध्ययन का वर्णन करते हुए बताया है कि जब चन्द्र देव अपनी नाट्य-विधि दिखाकर अपनी ऋद्धिया प्रदर्शित कर जाने की तैयारी करने लगा तो उसने समस्त ऋद्धिया अपने शरीर मे समेट लीं। भगवान महावीर ने गणधर गौतम को चन्द्रदेव की इस अपूर्व-ऋद्धि का कारण बताया कि किसी समय श्रावस्ती नगरी का अंगति गाथापति पुरुषादानीय तीर्थकर श्री पाश्र्वनाथ का शिष्य बन गया। साधु बनकर उसने स्थविरो से एकादश अंगो का अध्ययन किया। बहुत लम्बे समय तक तप किया। अर्धमास की संलेखना कर सयम का विराधक बना। मर कर यही चन्द्र देव बना है।

पुरिसादाणीए का अर्थ पुरुषो मे आदरणीय है। जैसे कि वृत्तिकार का कथन है—**पुरुषैरादीयते पुरुषदानीयः। नवुस्सेहे** इसका अर्थ वृत्तिकार ने **नवहस्तोच्छ्रायः नवहस्तोच्च** किया है। गगदत्त के बारे मे वृत्तिकार का कथन है यथा **गंगदत्तो भगवत्यङ्गोक्तः, स हि किंपाकफलोवमं मुणिय-विसयरसं जलबुब्बुयसमाण, कुसग्गबिंदुचंचलं जीवियं च नाऊण, चइत्ता हिरण्ण-विपुल-धणकणगरयणमणि-मोतियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइयं विच्छड्डइत्ता दाण दाइयाणं परिभाइत्ता, आगाराओ अणगारियं पव्वइओ जहा तहा अगई वि गिहनायगो परिच्चइय सव्वं पव्वइओ जाओ य पंचसमिओ, तिगुत्तो, अममो अकिंचणो गुत्तिंदिओ गुत्तबंभयारी इत्येवं यावच्छब्दात् ज्ञातव्यम्।**

इसका भावार्थ यह है कि मूल गुणो की विराधना न करता हुआ, उत्तर गुणों की विराधना करने से आहारादि की शुद्धि न की गई तथा अभिग्रह आदि का सम्यक् प्रकार से पालन न किया गया।

इन बातो से सिद्ध होता है कि मूल गुणो का सर्वाधिक महत्त्व है। उत्तर गुणों की विराधना से ही चन्द्र देव की उत्पत्ति हुई। पर्याप्तियां पूर्ण होने पर, सब क्रियाएं सूर्याभदेव की तरह समझनी चाहिए। यहां भाषा और मन की पर्याप्ति को एक मानकर पाच पर्याप्तिया बताई है। देवताओं की सूत्रकार ने इस प्रकार षट की जगह पांच पर्याप्तिया बताई है। चन्द्र देव ज्योतिष्क देवो का इन्द्र है इसका विस्तृत वर्णन चन्द्र-प्रज्ञप्ति व व्याख्या-प्रज्ञप्ति में

देखना चाहिए।

उपसंहार में चन्द्र देव की आयु लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम बताई गई है। भविष्य में वह महाविदेह के धनाढ्य कुल में जन्म लेकर साधु बनेगा। फिर निर्वाण प्राप्त करेगा।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

द्वितीय अध्ययन

सूर्यदेव की नाट्यविधि तथा पूर्वापरभव वर्णन

मूल—जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव पुप्फियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स पुप्फियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया समोसरणं जहा चदो तहा सूरोऽवि आगओ जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगओ। पुव्वभवपुच्छा, सावत्थी नगरी, सुपइट्ठे नामं गाहावई होत्था, अड्ढे, जहेव अंगई जाव विहरति, पासो समोसढे, जहा अंगई तहेव पव्वइए, तहेव विराहियसामन्ने जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव अंतं काहिइ, एवं खलु जंबू ! समणेणं निक्खेवओ ॥ २ ॥

॥ बीयं अज्झयणं समत्तं ॥ २ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् पुष्पितानां प्रथमस्य अध्ययनस्य यावत् अयमर्थः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य पुष्पितानां श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरं, गुणशिलकचैत्यं, श्रेणिको राजा, समवसरणं यथा चन्द्रः तथा सूरोऽपि आगतो यावत् नाट्यविधिमुपदर्श्य प्रतिगतः। पूर्वभव-पृच्छा—श्रावस्ती नगरी सुप्रतिष्ठो नाम गाथापतिरभवत् आढ्यः यथैव अंगतिर्यावद् विहरति, पार्श्वः समवसृतः, यथा अंगतिस्तथैव प्रव्रजितः तथैव विराधितश्रामण्यो यावत् महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् अन्तं करिष्यति, एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन० निक्षेपकः ॥ २ ॥

पदार्थान्वयः—जइणं-भंते—यदि हे भगवन् ! **समणेणं भगवया जाव**—श्रमण भगवान यावत् मोक्ष संप्राप्त ने, **पुप्फियाणं पढमस्स अज्झयणस्स**—पुष्पिका सूत्र के प्रथम अध्ययन

का, **जाव अयमट्ठे पन्नत्ते**–यह अर्थ प्रतिपादन किया है, **दोच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स पुप्फियाणं**–दूसरे पुष्पिका अध्ययन का, **समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं**–श्रमण भगवान यावत् मोक्ष संप्राप्त ने, **के अट्ठे पन्नत्ते**–क्या अर्थ प्रतिपादन किया है, **एवं खलु जंबू**–इस प्रकार निश्चय ही हे जंबू ! **तेणं कालेणं तेणं समएणं**–उस काल उस समय में, **रायगिहे नामं नयरे**–राजगृही नामक नगर था, **गुणसिलए चेइए**– गुणशील चैत्य था, **सेणिए राया**–श्रेणिक राजा था, **समोसरणं**–भगवान महावीर का समवसरण हुआ अर्थात् धर्म उपदेश हुआ, **जहा चंदो**–जैसे चन्द्र देव, **तहा**–वैसे ही, **सूरोऽवि आगओ**–सूर्य देव भी दर्शनार्थ आया, **जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता**–उसी प्रकार नाट्य-विधि दिखा कर, **पडिगओ**–लौट गया, **पुव्वभवपुच्छा**–गणधर गौतम ने सूर्य का पूर्वभव पूछा, **सावत्थी नयरी**–(भगवान महावीर ने उत्तर दिया) श्रावस्ती नगरी थी, **सुपइट्ठे नामं गाहावई होत्था**–वहां सुप्रतिष्ठ नाम का गाथापति रहता था, **अड्ढे**–ऋद्धिवान था, **जहेव अंगई**–जैसे अगति था, **जाव विहरति**–जैसे यावत् विहरता था, **पासो समोसढे**–भगवान पार्श्वनाथ धर्म परिवार से घिरे पधारे, **जहा अंगई तहेव पव्वइए**–जैसे अगति प्रव्रजित हुआ था वैसे ही वह भी मुनि बना, **तहेव विराहियसामन्ने**–उसी प्रकार श्रामण्य भाव का विराधक हुआ, **जाव**–यावत्, **महाविदेहे वासे**–महाविदेह में उत्पन्न होगा, **सिज्झिहिइ**–सिद्ध होगा, **जाव अंतं काहिइ**–सब दु:खो का अन्त करेगा, **एवं खलु जंबू**–इस प्रकार निश्चय ही हे जबू, **समणेणं**–श्रमण भगवान ने द्वितीय अध्ययन का अर्थ बताया है, **निक्खेवओ**–द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ।

मूलार्थ–आर्य जंबू प्रश्न करते है–हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान यावत् मोक्ष संप्राप्त ने पुष्पिका के पहले अध्ययन का यह अर्थ कहा है, तो हे भगवन् ! पुष्पिका के दूसरे अध्ययन का श्रमण भगवान यावत् मोक्ष को संप्राप्त ने क्या अर्थ कहा है ? आर्य- सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया–हे जबू ! उस काल तथा उस समय में राजगृही नामक नगरी थी, गुणशील चैत्य था, श्रेणिक नामक राजा था, वहां भगवान ग्रामानुग्राम विहार करते हुए पधारे। समवसरण लगा अर्थात् धर्म-उपदेश हुआ। जैसे चन्द्रदेव दर्शन करने आया था, वैसे ही सूर्य देव भी दर्शन करने आया। उसी तरह नाट्य-विधि दिखाकर चला गया। गणधर गौतम ने सूर्य का पूर्वभव पूछा।

भगवान ने फरमाया–उस काल और उस समय मे श्रावस्ती नामक नगरी थी, वहां सुप्रतिष्ठ नामक गाथापति रहता था, जो ऋद्धिमान था, जैसे अंगति का वर्णन किया जा चुका है वैसे ही वह विचरता था। वहां ग्रामानुग्राम धर्म-प्रचार करते हुए भगवान पार्श्वनाथ धर्म-परिवार से घिरे हुए पधारे, जैसे अंगति मुनि बना था वैसे वह

भी मुनि बना। वह सुप्रतिष्ठ मुनि भी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा, सिद्ध होगा यावत् सब दु:खो का अंत करेगा।

इस प्रकार हे जंबू ! निश्चय ही मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने द्वितीय अध्ययन का यह अर्थ बताया है। यह द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ।

टीका–प्रस्तुत सूत्र के दूसरे अध्ययन में–सूर्यदेव के सपरिवार भगवान महावीर के दर्शन की घटना का संक्षिप्त विवरण है। साथ मे सूर्यदेव के पूर्वभव का उल्लेख करते हुए, श्रमण भगवान महावीर कहते है कि यह सूर्यदेव अपना देव-आयुष्य पूर्ण करके सिद्ध-बुद्ध मुक्त होगा। सब दु:खो का अत करेगा। सूर्यदेव के बारे मे और विवरण प्रज्ञापना सूत्र से जानना चाहिए। वहां स्पष्ट किया गया है कि पिछले जन्म में श्रावस्ती नगरी मे सुप्रतिष्ठ गाथापति सयम ग्रहण करके भगवान पार्श्वनाथ के सान्निध्य में मुनि बना। संयम पालन करने से वह ज्योतिष्क देवों में सूर्यों का इन्द्र यावत् ऋद्धि का स्वामी बना।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन

शुक्र की नाट्यविधि / सोमिल कथानक

मूल–जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उक्खेवओ भाणियव्वो, रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समोसढे, परिसा निग्गया। तेणं कालेणं तेणं समएणं सुक्के महग्गहे सुक्कवडिंसए विमाणे सुक्कंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहेव चंदो तहेव आगओ, नट्ट-विहिं उवदंसित्ता पडिगओ। भंते ! त्ति कूडागारसाला। पुव्व-भवपुच्छा।

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए रिउव्वेय–जाव सुपरिनिट्ठिए। पासे समोसढे। परिसा पज्जुवासइ ॥ ३ ॥

छाया–यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन उत्क्षेपको भणितव्यः। राजगृहं नगरम्। गुणशिलकं चैत्यम्। श्रेणिको राजा। स्वामी समवसृतः।

परिषत्-निर्गता। तस्मिन् काले तस्मिन् समये शुक्रो महाग्रहः शुक्रावतंसके विमाने शुक्रे सिंहासने चतसृभिः सामानिकसाहस्त्रीभिः यथैव चन्द्रस्तथैवागतः, नाट्यविधि-मुपदर्श्य प्रतिगतः। भदन्त ! इति कूटाकारशाला। पूर्वभवपृच्छा।

एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये वाराणसी नाम नगरी अभवत्। तत्र खलु वाराणस्यां नगर्या सोमिलो नाम ब्राह्मणः परिवसति, आढ्यो यावत् अपरिभूतः, ऋग्वेद० यावत् सुप्रतिष्ठितः। पार्श्वः समवसृतः। परिषत् पर्युपास्ते ॥ ३ ॥

पदार्थान्वयः—जइणं भंते—यदि हे भगवन्, **समणेणं भगवया जाव**—श्रमण भगवान महावीर यावत्, **संपत्तेणं**—सप्राप्त ने, **उक्खेवओ भाणियव्वो**—उत्क्षेप कहना चाहिए, **रायगिहे नयरे**—राजगृह नगर था, **गुणसिलए चेइए**—गुणशील चैत्य था, **सेणिए राया**—श्रेणिक राजा था, **सामी समोसढे**—स्वामी समवसृत हुए, **परिसा निग्गया**—परिषद् दर्शनार्थ आई, **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल उस समय में, **सुक्के**—शुक्र, **महग्गहे**—महाग्रह, **सुक्कवडिं-सए विमाणे**—शुक्रावतंसक विमान मे, **सुक्कंसि सीहासणंसि**—शुक्र सिंहासन पर, **चउहिं सामाणियसाहस्सीहि**—चार हजार सामानिक देवों के साथ, **जहेव चंदो तहेव आगओ**—जैसे चन्द्र देव आया था वैसे आया, **नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगओ**—नाट्य विधि दिखाकर वापिस लौट गया, **भंते ! त्ति**—हे भगवन्! शुक्र देव की ऋद्धि कहां प्रविष्ट हो गई, भगवान ने उत्तर दिया, **कूडागारसाला**—कूटागार शाला का दृष्टात जानना चाहिए, **पुव्वभवपुच्छा**—हे भगवन्! शुक्र महाग्रह का जीव पूर्वभव में कौन था, भगवान् ने उत्तर दिया—

एवं खलु गोयमा—इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम, **तेणं कालेणं तेणं समएणं**— उस काल उस समय में, **वाणारसी नामं नयरी होत्था**—वाराणसी नामक नगरी थी, **तत्थ णं**—उस, **वाणारसीए नयरीए**—वाराणसी नगरी मे, **सोमिले नामं माहणे परिवसइ**—सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था, **अड्ढे**—ऋद्धि युक्त, **जाव**—यावत्, **अपरिभूए**—अपरिभूत था, **रिउव्वेय० सुपरिनिट्ठिए**—ऋग्वेद आदि में सुप्रतिष्ठित था, **पासे समोसढे**—भगवान पार्श्वनाथ समवसृत हुए, **परिसा पज्जुवासइ**—परिषद् सेवा करने आई।

मूलार्थ—गणधर सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—"हे जंबू ! मोक्ष को सप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने इस प्रकार कहा है, उस काल तथा उस समय राजगृह नामक एक नगर था, गुणशील चैत्य था, श्रेणिक राजा था, वहां श्रमण भगवान महावीर पधारे, समवसरण में धर्म-उपदेश हुआ। परिषद् दर्शनार्थ आई। उस काल उस समय शुक्र नामक महाग्रह शुक्रावतंसक विमान के शुक्र सिंहासन पर, चार हजार सामानिक देवों से घिरा भगवान के दर्शन करने आया यावत् जैसे चन्द्रदेव आया था। नाट्य-विधि

दिखाकर वह भी चला गया।

गौतम स्वामी ने पूछा—हे भगवन् ! शुक्र देव की ऋद्धि कहां चली गई ? उत्तर में भगवान कहते हैं कि इसके लिए यावत् कूटागारशाला का दृष्टान्त जानना चाहिए। शुक्र का पूर्वभव क्या था किस कारण से उसे ऐसी ऋद्धि प्राप्त हुई ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर ने कहा—

हे गौतम ! उस काल तथा उस समय में वाराणसी नामक नगरी थी। उस वाराणसी नगरी में सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था जो ऋद्धिवान व संपन्न था। वह ऋग्वेद आदि (चार वेदों, उपनिषद् इतिहास एवं व्याकरण आदि) का ज्ञाता था। वहां भगवान श्री पार्श्वनाथ समवसृत हुए। परिषद् सेवा करने लगी।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सूर्य व चन्द्रमा के पश्चात् शुक्र महाग्रह के भगवान महावीर के दर्शनार्थ आने का वर्णन है। शुक्र अपनी समस्त देवऋद्धि सहित अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करता है। गणधर गौतम शुक्र का पूर्वभव पूछते हैं, उसी के उत्तर मे करुणा-सागर प्रभु महावीर फरमाते हैं कि शुक्र पूर्वभव में वाराणसी का सोमिल ब्राह्मण था, वह वेद, उपनिषद्, इतिहास, निघंटु, व्याकरण आदि विषयों का प्रकाण्ड पंडित था। वह सम्पन्न था और उसकी प्रतिष्ठा सारे नगर में थी। इस विषय में वृत्तिकार कहते हैं।

'रिउव्वेय जाव' इति ऋग्वेद-यजुर्वेदसामवेदाथर्वणवेदानां इतिहास-पञ्चमा-नाम् इतिहासपुराणनिर्घण्टुषष्ठकानां निर्घण्टु नाम कोशः साङ्गोपाङ्गनामानि अङ्गानि—शिक्षादीनि उपाङ्गानि तदुक्तप्रपञ्चनपराः प्रबन्धाः सरहस्यानां—एतष्वर्थयुक्तानां धारकः—प्रवर्तकः वारकः—अशुद्ध पाठ विषयकवारगः, पारगामि षडङ्गवित्, षष्टितन्त्रविशारदः षष्टि तन्त्रः कापिलीयशास्त्रं षडङ्गवेदकस्तमेव व्यनक्ति, गणितस्कन्ध शिक्षाकल्पे, शिक्षाया अक्षरस्वरूपनिरूपके शास्त्रे कल्पे—तथाविधसमाचारप्रतिपादके व्याकरणे—शब्द लक्षणो छान्दस-गद्य-पद्य-वचन-लक्षणनिरूपक-प्रतिपादके ज्योतिषाख्ये ज्योतिः शास्त्रे अन्येषु च ब्राह्मणकेषु शास्त्रेषु सुपरिनिष्ठितः सोमिल नाम ब्राह्मणः।

उपरोक्त विषय का इतना तात्पर्य है कि सोमिल ब्राह्मण वैदिक साहित्य का प्रकाण्ड पण्डित था।

प्राकृत व्याकरण के वाणारसी का सस्कृत मे वाराणसी रूप बन जाता है। प्राकृत व्याकरण में 'र' और ण का व्यत्यय किया गया है।

करेणुवाराणस्यो रणो व्यत्ययः। सिद्धहेमशब्दानुशासन ॥ ८।८।११६ ॥
अनयो रेफणकारयोर्व्यत्ययः स्थिति परिवृत्तिर्भवति। कणेरू। वाणारसी।

सोमिल की उत्सुकता

उत्थानिका—अगले सूत्र में सोमिल ब्राह्मण का भगवान पार्श्वनाथ के पास जाने का वर्णन किया गया है—

मूल—तएणं तस्स सोमिलस्स माहणस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए० जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु पासे अरहा पुरिसादासाणीए पुव्वाणुपुव्विं जाव अंबसालवणे विहरइ, तं गच्छामि णं पासस्स अरहओ अंतिए पाउब्भवामि। इमाइं च णं एयारूवाइं हेऊइं जहा पण्णत्तीए। सोमिलो निग्गओ खंडियविहूणो जाव एवं वयासी ॥ ४ ॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणस्य अस्याः कथायाः लब्धार्थस्य सतः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः ४, यावत् समुदपद्यत—एवं खलु पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः पूर्वानुपूर्व्या यावत् आम्रशालवने विहरति, तद् गच्छामि खलु पार्श्वस्य अर्हतोऽन्तिके प्रादुर्भवामि, इमान् च खलु एतद्रूपान् अर्थान् हेतून् यथा प्रज्ञप्त्याम्। सोमिलो निर्गतः खण्डिकविहीनो यावत् एवमवादीत् ॥ ४ ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं**—तत्पश्चात्, **तस्स सोमिलस्स माहणस्स**—उस सोमिल ब्राह्मण के, **इमीसे कहाए**—इस कथा (समाचार) के, **लद्धट्ठस्स समाणस्स**—लब्धार्थ होने पर, **इमे एयारूवे**—इस प्रकार के, **अज्झत्थिए**—आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुए, **एवं खलु पासे अरहा**—इस प्रकार पार्श्वनाथ अर्हत, **पुरिसादाणीए**—पुरुषों मे प्रधान, **पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे**—अनुक्रम से विहार करते हुए, **जाव**—यावत् **अंबसालवणे**—आम्रशाल वन में, **विहरइ**—विचरते है, **तं गच्छामि णं**—इसलिए मै जाता हूं, **पासस्स अरहओ**—पार्श्वनाथ अर्हत् के, **अंतिए**—समीप, **पाउब्भवामि**—उपस्थित होता हू, **च**—फिर, **णं**—वाक्यालंकार, **इमाइं एयारूवाइं**—इस प्रकार के, **अट्ठाइं**—अर्थों को, **हेऊइं**—हेतुओं को, **जहा पण्णत्तीए**—जैसे व्याख्याप्रज्ञप्ति मे वर्णन किया गया है, **सोमिलो निग्गओ**—सोमिल ब्राह्मण भगवान पार्श्वनाथ के समीप गया, **खंडियविहूणो**—छात्रो से रहित गया, **जाव**—यावत्, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगा।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सोमिल ब्राह्मण के इस कथा (समाचार) को सुनकर यह भाव उत्पन्न हुए—इस प्रकार पार्श्वनाथ अर्हत् पुरुषादानीय अनुक्रम से विहार करते हुए आम्रशाल उद्यान में विचर रहे हैं। मैं पार्श्व अर्हत् के समीप जाता हूं। इस प्रकार अर्थ और हेतुओं को पूछूंगा। जिस प्रकार व्याख्या-प्रज्ञप्ति में वर्णन किया गया है उसी प्रकार यहा भी जानना चाहिए। वह (सोमिल) छात्रों से रहित भगवान के समीप आया

और इस प्रकार प्रश्न करने लगा।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे सोमिल ब्राह्मण के भगवान पार्श्वनाथ के समीप छात्रों से रहित पहुंचने का वर्णन है। भगवान पार्श्व आम्रशाल उद्यान में पधारे हैं। जब सोमिल ने यह समाचार सुना तो उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मैं क्यों न प्रभु पार्श्व से प्रश्न पूछूं।

सोमिल ब्राह्मण के प्रश्नो का वर्णन भगवती सूत्र के अठारहवें शतक के दसवें उद्देश्य मे आया है। सोमिल ब्राह्मण चाहे अपने धर्म का प्रकाण्ड पंडित है पर वह एक जिज्ञासु भी है। क्योंकि जिज्ञासु ही इस प्रकार की प्रवृत्ति के स्वामी होते है। वह अपने सब प्रश्न एकान्त मे (शिष्यों के बिना) पूछना चाहता है। ताकि उसकी किसी अज्ञानता का शिष्यों को पता न चल सके।

सोमिल के प्रश्न

मूल–जत्ता ते भंते ! जवणिज्जं च ते ? पुच्छा, सरिसवया, मासा, कुलत्था, एगे भवं, जाव संबुद्धे सावगधम्मं पडिवज्जित्ता पडिगए ॥ ५ ॥

छाया–यात्रा ते भदन्त ! यापनीयं ते ? पृच्छा सदृशवयसः, माषा, कुलत्था एको भवान् यावत् संबुद्धः श्रावकधर्म प्रतिपद्य प्रतिगतः।

पदार्थान्वयः–जत्ता–यात्रा, **ते**–क्या, **भंते**–हे भगवन्, **जवणिज्जं**–यापनीय, **च ते**–क्या है, **पुच्छा**–पूछता है, **सरिसवया**–सरसों, **मासा**–उड़द, **कुलत्था**–कुलथी धान्य, **एगे भवं**–आप एक हैं, **संबुद्धे**–बोधिलाभ प्राप्त कर, **सावगधम्मं**–श्रावक धर्म को, **पडिवज्जित्ता**–स्वीकार करके, **पडिगए**–लौट गया।

मूलार्थ–(उस सोमिल ब्राह्मण ने प्रश्न किए) भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है? आपके यापनीय क्या है ? आपका प्रासुक विहार कैसा हो रहा है ? आपके लिए सरसो, माष, कुलत्थ आदि भक्ष्य हैं या अभक्ष्य हैं ? आप एक है ? (दो है अथवा अनेक हैं ?) आदि के विषय में प्रश्न करता है। भगवान ने उसके प्रश्नों का युक्तियुक्त उत्तर दिया जिससे वह संबुद्ध होकर श्रावक धर्म का पालन करने लगा।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे (श्री पार्श्वनाथ जी के समकालीन) सोमिल ब्राह्मण के प्रश्नों के नाम दिए गए हैं। साथ मे भगवान पार्श्वनाथ का उपदेश सुनकर सोमिल के श्रावक धर्म ग्रहण करने का वर्णन है।

सोमिल ब्राह्मण (श्री महावीर कालीन ब्राह्मण) के प्रश्नो के उत्तर भगवती सूत्र के अठारहवे शतक के दसवें उद्देशक मे दिए गए हैं। हम यहां उनका सारांश देते है :–

प्रश्न—क्या आप यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार करते हैं ? आपकी यात्रा आदि क्या है ?

उत्तर—सोमिल ! मैं तप-यम-संयम-स्वाध्याय और ध्यान में रमण करता हूं, यही मेरी यात्रा है। इन्द्रिय-यापनीय, नोइन्द्रिय-यापनीय—पाचों इन्द्रिया मेरे आधीन है और क्रोध, मान आदि कषाय मैंने विच्छिन्न कर दिए हैं, इसलिए वे उदय में नहीं आते। इसलिए मैं इन्द्रिय और नो-इन्द्रिय यापनीय हू। वात, पित्त, कफ, ये शरीर सम्बन्धी दोष मेरे उपशांत हैं, वे उदय में आते ही नही, इसलिए मुझे अव्याबाध भी है।

मैं आराम, उद्यान, देवकुल, सभास्थल आदि स्थलों पर जहां स्त्री, पशु व नपुंसक का अभाव हो ऐसे निर्दोष स्थान पर आज्ञा ग्रहण कर विहार करता हू यह मेरा प्रासुक निर्दोष विहार है।

प्रश्न—सरिसवया भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

उत्तर—हे सोमिल । सरिसवया दो प्रकार का है—सदृश-वय—समवयस्क व्यक्ति तथा सरसों। सदृशवय तीन प्रकार का है—एक साथ जन्मे हुए, एक साथ पालित-पोषित हुए अथवा जो साथ-साथ क्रीड़ा करते हैं। ये तीनों श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य हैं। और धान्य सरिसव दो प्रकार का है शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत। शस्त्रपरिणत भी दो प्रकार का है—एषणीय और अनेषणीय। अनेषणीय अभक्ष्य है। एषणीय भी याचित और अयाचित दो प्रकार का है, याचित भक्ष्य है और अयाचित अभक्ष्य है।

प्रश्न—मास भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

उत्तर—मास का अर्थ महीना और सोना-चांदी मापने का परिमाण होता है। ये दोनो तो अभक्ष्य हैं। माष अर्थात् उडद जो शस्त्रपरिणत याचित हो वह श्रमणों के लिए भक्ष्य है।

प्रश्न—कुलत्था भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

उत्तर—हे सोमिल । कुलत्था शब्द के दो अर्थ हैं—एक है कुलीन स्त्री, दूसरा है धान्य विशेष (कुलत्थ)। जो धान्य विशेष शस्त्र-परिणत और याचित है वही श्रमणो के लिए भक्ष्य है शेष अभक्ष्य है।

प्रश्न—आप एक हैं या अनेक ?

उत्तर—सोमिल मै द्रव्य दृष्टि से एक हूं, ज्ञान-दर्शन रूप दो पर्यायो के प्राधान्य से दो भी हू तथा उपयोग एवं स्वभाव की दृष्टि से मैं अनेक हूं।

इस तरह सोमिल ने अव्यय, अवस्थित एवं तीन काल के परिणमन योग्य विषयों पर प्रश्न किए, जिनका समाधान भगवान ने अनेकान्त दृष्टिकोण से दिया।

अपने प्रश्नो के उत्तरों से सोमिल अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने श्रावक धर्म अंगीकार कर लिया।

मूल–तएणं पासे अरहा अन्नया कयाइं वाणारसीओ नयरीओ अम्बसालवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ ६ ॥

छाया–ततः खलु पार्श्व अर्हन् अन्यदा कदाचिद् वाराणसीतः नगरीतः आम्रशालवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्क्रमति प्रतिनिष्क्रम्य बाह्यं जनपदविहारं विहरति ॥ ६ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं–तत्पश्चात्, **पासे अरहा**–तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ, **अन्नया कयाइं**–अन्य किसी समय, **वाणारसीओ नयरीओ अम्बसालवणाओ उज्जाणाओ**–वाराणसी नगरी के आम्रशालवन उद्यान से, **पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता**–बाहर आते हैं और आकर, **बहिया जणवय**–बाह्य जनपदों में, **विहारं विहरइ**–विहार हेतु विचरण करते हैं।

मूलार्थ–तत्पश्चात् भगवान श्री पार्श्वनाथ फिर किसी समय वाराणसी नगरी के आम्रशालवन नामक उद्यान से बाहर आते हैं और फिर अन्य जनपदो मे विहार करते हैं, अर्थात् धर्म-प्रचार करते हुए विभिन्न ग्रामों, नगरों, जनपदों में विचरण करते हैं।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में तीर्थंकर पुरुषादानीय भगवान श्री पार्श्वनाथ के पुनः वाराणसी नगरी में पधारने का वर्णन है। वे आम्रशालवन उद्यान में ठहरते हैं। फिर ज्ञान, दर्शन चरित्र का उपदेश देकर अन्य जनपदों मे घूमते है।

सोमिल का सम्यक्त्व से पतन

मूल–तएणं से सोमिले माहणे अण्णया कयाइं असाहुदंसणेण य अपज्जुवासणयाए य मिच्छत्तपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं, सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं, मिच्छत्तं च पडिवन्ने।

तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे अच्चंतमाहणकुलप्पसूए। तएणं मए वयाइं चिण्णाइं, वेया य अहीया, दारा आहूया, पुत्ता जणिया, इड्ढीओ समाणीयाओ, पसुवहा कया, जन्ना जेट्ठा,

दक्खिणा दिन्ना, अतिही पूइया, अग्गी हूया, जूवा निक्खित्ता, तं सेयं खलु ममं इयाणिं कल्लं जाव जलंते वाणारसीए नयरीए बहिया बहवे अंबारामा रोवावित्तए, एवं माउलिंगा, बिल्ला, कविट्ठा, चिंचा, पुप्फारामा रोवावित्तए। एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते वाणारसीए नयरीए बहिया अंबारामे य जाव पुप्फारामे य रोवावेइ। तएणं बहवे अंबारामा य जाव पुप्फारामा य अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढियमाणा आरामा जाया, किण्हा किण्होभासा जाव रम्मा महामेहनिकुरंबभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियगरेरिज्जमाणसिरीया अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ॥ ७ ॥

छाया–ततः स सोमिलो ब्राह्मणः अन्यदा कदाचित् असाधुदर्शनेन च अपर्युपासनतया च मिथ्यात्वपर्यवैः परिवर्धमानैः परिवर्धमानैः, सम्यक्त्वपर्यवैः परिहीयमानैः परिहीयमानै मिथ्यात्वं च प्रतिपन्नः।

ततः खलु तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणस्य अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये कुटुम्बजागरिकां जाग्रतोऽयमेतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत–एवं खलु वाराणस्यां नगर्यां सोमिलो नाम ब्राह्मणोऽत्यन्तब्राह्मणकुलप्रसूतः। ततः खलु मया व्रतानि चीर्णानि, वेदाश्चाधीताः दारा आहूताः, पुत्रा जनिताः, ऋद्धयः समानीताः पशुवधाः कृताः, यज्ञा इष्टाः, दक्षिणा दत्ता, अतिथयः पूजिता, अग्नयो हुताः, यूपा निक्षिप्ताः, तच्छ्रेयः खलु ममेदानीं कल्ये यावत् ज्वलंति वाराणस्या नगर्या बहिर्बहून् आम्रारामान् रोपयितुम्, एवं मातुलिङ्गान्, बिल्वान्, कपित्थान्, चिञ्चाः, पुष्पारामान् रोपयितुम्। एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कल्ये यावत् ज्वलति वाराणस्या नगर्या बहिः आम्रारामांश्च रोपयति। ततः खलु बहवः आम्रारामाश्च यावत् पुष्पारामाश्च अनुपूर्वेण संरक्ष्यमाणाः, संगोप्यमानाः, संवर्ध्यमानाः आरामाः जाताः कृष्णा कृष्णा-वभासा यावत् रम्याः महामेघनिकुरम्बभूताः पत्रिताः पुष्पिताः फलिता हरितकराराज्य-मानश्रीकाः अतीवातीवउपशोभमाना उपशोभमानास्तिष्ठन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थान्वयः–**तएणं**–तत्पश्चात्, **से सोमिले माहणे**–वह सोमिल ब्राह्मण, **अण्णया कयाइं**–अन्य किसी समय, **असाहुदंसणेण**–असाधु दर्शनों के कारण, **य अपज्जुवासण-याए**–पर्युपासना न करने पर, **य**–और, **मिच्छत्तपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं** –मिथ्यात्व पर्यायों के बढने के कारण और, **सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं** –सम्यक्त्व-पर्यायो के घटने के कारण, **मिच्छत्तं च पडिवन्ने**–मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया।

तएणं—तत्पश्चात्, **तस्स सोमिलस्स माहणस्स**—वह सोमिल ब्राह्मण, **अण्णाया कयाइं**—अन्य किसी समय, **पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि**—अर्ध रात्रि के समय, **कुडुबजागरियं जागरमाणस्स**—कुटुम्ब की चिन्ता में जागरण करते हुए, **अयमेयारूवे** —इस प्रकार के, **अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था**—अध्यात्म विचार उत्पन्न हुए यावत्, **एवं खलु अहं**—इस प्रकार निश्चय ही मै, **वाणारसीए नयरीए**—वाराणसी नगरी में, **सोमिले नामं माहणे**—सोमिल नामक ब्राह्मण, **अच्चंतमाहणकुलप्पसूए**—अत्यन्त उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूं, **तएणं**—तत्पश्चात्, **मए**—मैने, **वयाइं चिण्णाइं**—व्रत ग्रहण कर उनका आचरण किया, **वेया य अहीया**—और वेदों का अध्ययन किया, **दारा आहूया**—स्त्री से शादी की, **पुत्ता जणिया**—पुत्र उत्पन्न किए, **इड्ढीओ समाणीयाओ**—ऋद्धियां इकट्ठी की, **पसुवहा कया**—पशुओ का वध किया, **जन्ना जेट्ठा**—ज्येष्ठ यज्ञ किए कि, अर्थात् स्वयं यज्ञ किए, **दक्खिणा दिन्ना**—ब्राह्मणों को दान दक्षिणा दी, **अतिही पूइया**—अतिथियो की पूजा की, **अग्गी हूया**—अग्नि-होत्र कर्म किया, **जूवा निक्खित्ता**—यज्ञ स्तम्भ गाड़ा, **तं सेयं**—इसलिए श्रेष्ठ है, **खलु**—निश्चय, **ममं**—मेरे लिए, **इयाणिं**—इस समय, **कल्लं जाव जलंते**—प्रभात काल के उदय होने पर, **वाणारसीए नयरीए बहिया**—वाराणसी नगरी के बाहर, **बहवे**—बहुत से, **अंबारामा**—आमो के बाग, **रोवावित्तए**—आरोपित किए, **एव**—इस प्रकार, **माउलिंगा**—मातुलिंगा—बिजौरा, **बिल्ला**—बिल्व, **कविट्ठा**—कपित्थ, **चिंचा**—इमली और, **पुप्फारामा**—फूलों के बाग, **रोवावित्तए**—आरोपित किए, **एवं संपेहेइ संपेहित्ता**—इस प्रकार विचार करता है, विचार करके, **कल्लं जाव जलंते**—कल यावत् प्रातः काल सूर्योदय होने पर, **वाणारसीए नयरीए बहिया**—वाराणसी नगरी के बाहर, **अंबारामे**—आमों के बाग, **जाव**—यावत्, **पुप्फारामे**—फूलों के बाग, **रोवावेइ**—आरोपित करवाता है, **तएणं**—तत्पश्चात्, **बहवे अंबारामा**—बहुत से आमो के बागों, **य**—और, **जाव**—यावत् **पुप्फारामा**—पुष्पों के बाग, **य**—और, **अणुपुव्वेणं**—अनुक्रम से, **सारक्खिज्जमाणा**—जीवादि के भय से रक्षा करते हुए, **संगोविज्जमाणा**—वायु आदि के भय से रक्षा करते हुए, **संवड्ढियमाणा**—सिचाई करके संवर्धित करते हुए, **आरामा जाया**—बाग पैदा हो गए, **किण्हा**—कृष्ण वर्ण वाले हुए, **किण्होभासा**—काली प्रभा वाले, **जाव**—यावत्, **रम्मा**—रमणीय लगने लगे, **महामेहनिकुरंबभूया**—महामेघ के समान काली प्रभा वाले, **पत्तिया**—पत्तों से युक्त, **पुप्फिया**—फूलों से युक्त, **फलिया**—फलों से युक्त, **हरियगरेरिज्जमाणसिरीया**—नीले रंग की लक्ष्मी से युक्त, **अईव अईव**—अतीव, **उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा**—शोभा पा रहे थे शोभा पाते हुए, **चिट्ठंति**—उत्पन्न हो गए थे।

मूलार्थ—तत्पश्चात् सोमिल ब्राह्मण किसी समय असाधु-दर्शन से और साधुओं की सम्यक् सेवा का संयोग न मिलने के कारण, मिथ्यात्व पर्याय की बुद्धि होने से,

सम्यक्त्व पर्याय के क्षीण हो जाने से मिथ्यात्व अंगीकार कर विचरने लगा।

तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण एक बार मध्यरात्रि के समय कुटुम्ब-जागरण करते हुए, इस प्रकार विचार करता है कि "निश्चय ही मैं सोमिल ब्राह्मण वाराणसी के सर्वोच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूं।

तत्पश्चात् मैंने व्रत ग्रहण किए, उनका आचरण किया, वेदों का अध्ययन किया, विवाह किया, पुत्र उत्पन्न किए, ऋद्धि प्राप्त की, यज्ञार्थ पशुवध किया, स्वयं श्रेष्ठ यज्ञ किए, अब मुझे यही श्रेयस्कर है यावत् मैं प्रात:काल सूर्योदय होते ही वाराणसी नगरी के बाहर आमों के बहुत बागो को लगाऊं। इसी प्रकार मातुलिङ्ग-बिजौरा, बेल, कपित्थ, इमली व पुष्प-उद्यान लगाना मेरे लिए श्रेयस्कर है।

इस प्रकार विचार कर वह प्रात: यावत् सूर्योदय के समय उठा और उसने वाराणसी नगरी के बाहर आमों के बाग यावत् पुष्प-वाटिकाएं लगवाईं। फिर बहुत से आमों के बाग यावत् पुष्पों के बागो की अनुक्रम से जीवो के भय से रक्षा करते हुए, वायु आदि के भय से संगोपन करते हुए जल आदि की सिंचाई की, इससे वृक्ष बढने लगे। बाग कृष्णप्रभा से युक्त रमणीक महामेघ के समान काली प्रभा वाले पत्रों, पुष्पों, फलो, नील वर्ण की प्रभा से अति मनोहर शोभा से युक्त अति उत्तम सुन्दरता को प्राप्त हुए।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सोमिल ब्राह्मण के मिथ्यात्वी होने का वर्णन है, साथ में यह भी बताया गया है कि मिथ्यात्व के अशुभ परिणाम से वह सम्यक् आचरण वाले साधु पुरुषो से दूर भागने लगा। असंयमियो द्वारा प्ररूपित देव, गुरु व धर्म के स्वरूप में श्रद्धा करने लगा। ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के १३वें अध्ययन मे नन्दन मणियार के वर्णन की तरह सोमिल का वर्णन भी जानना चाहिए जिसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

एक बार श्रमण भगवान महावीर राजगृही नगरी में पधारे। राजा श्रेणिक शाही ठाट-बाट के साथ प्रभु के दर्शन करने जा रहा था। उसके हाथी के पैर के नीचे आकर एक मेंढक मर गया।

श्रेणिक को इस बात का बहुत खेद हुआ। भगवान महावीर ने कहा कि श्रेणिक ! वह मेढक जो तुम्हारे हाथी के पैर के नीचे कुचला गया है वह मेरे दर्शन करने आ रहा था, क्योंकि उस तिर्यच को जाति-स्मरण ज्ञान हो गया था। पिछले जन्म में वह नन्दन मणियार नामक धनाढ्य गाथापति व श्रमणोपासक था। एक बार वह पौषधोपवास कर रहा था। भयानक गर्मी के कारण रात्रि में उसे प्यास सताने लगी। नंदन मणियार ने निश्चय किया कि सूर्योदय होते ही मै ऐसे सुन्दर बावडी व बाग बनाऊगा जिनका स्वच्छ ठण्डा पानी मुझे हमेशा मिले। वह सुबह उठा, बाग व बावडियां तैयार करवाने लगा। धर्म को

छोड़कर वह बाग-बावड़ियों के प्रति आसक्त हो गया। इसी कारण मर कर वह बावड़ी में मेंढक के रूप में पैदा हुआ। किन्तु अब मर कर वह शुभ भावो के कारण देव बना।

सोमिल ने भी इस तरह सम्यक्त्व छोड़ा और मिथ्यात्व ग्रहण किया। वृत्तिकार का इस संदर्भ में कथन है-

असाधुओ के दर्शन, साधुओं के न मिलने, असाधुओं से मिलाप, कदाग्रह एव साधुओं के दर्शन न होने के कारण मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है।

इसके आगे एक रात्रि सोमिल ब्राह्मण अपने भूतकाल के जीवन, अपने उत्तम वश मर्यादाओं आदि का चिंतन करते हुए सोचने लगा कि मैं वाराणसी में वेद-पाठी ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ हूं। मैने शादी की, बच्चे पैदा किए। शौच, तप, स्वाध्याय आदि ग्रहण किए। यज्ञों में पशु बलि दी। दान-दक्षिणा दी और अतिथियों की सेवा की। अब मुझे सांसारिक धर्म की साधना हेतु बहुत से फल-फूलो के बाग लगवाने उचित हैं। प्रस्तुत सूत्र से सिद्ध होता है कि यज्ञ मे पशुबलि के लिए यूप स्थापित करने की परम्परा काफी प्राचीन है।

'अज्झत्थिए जाव' इस सूत्र के बारे मे वृत्तिकार का कथन है-

'अज्झत्थिए जाव' त्ति आध्यात्मिकः आत्मविषयः चिन्तितः-स्मरणरूपः प्रार्थितः मनोगतो, मनस्येव वर्तते, यो न बहिः प्रकाशितः सकल्पो विकल्पः समुत्पन्नः प्रादुर्भूतः।

सोमिल की तापस प्रव्रज्या

मूल-तएणं तस्स सोमिलस्स माहणस्स अण्णाया कयाइ पुव्वरत्ता-वरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु अहं वाणारसीए णयरीए सोमिले नामं माहणे अच्चंतमाहणकुलप्पसूए। तए णं मए वयाइं चिण्णाइं, जाव जूवा णिक्खित्ता, तए णं मए वाणारसीए नयरीए बहिया बहवे अंबारामा जाव पुप्फारामा य रोवाविया, तं सेयं खलु ममं इयाणिं कल्लं जाव जलंते सुबहुं लोह-कडाहकडुच्छुयं तंबियं तावसभंडं घडावित्ता विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं मित्तनाइ० आमंतित्ता तं मित्तनाइणियग० विउलेणं असण० जाव संमाणित्ता तस्सेव मित्त जाव जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेत्ता तं मित्तनाइ जाव आपुच्छित्ता सुबहुं लोहकडाहकडुच्छुयं तंबियं तावसभंडगं गहाय जे इमे गंगाकूला वाणपत्था तावसा भवंति-तं जहा होत्तिया पोत्तिया कोत्तिया

जन्नई सड्ढई थालई हुंबउट्ठा दंतुक्खलिया उम्मज्जगा संमज्जगा निमज्जगा संपक्खालगा दक्खिणकूला उत्तरकूला संखधमा कूलधमा मियलुद्धया हत्थितावासा उद्दंडा दिसापोक्खिणो वक्कवासिणो बिलवासिणो जलवा-सिणो रुक्खमूलिया अंबुभक्खिणो वाउभक्खिणो सेवालभक्खिणो मूलाहारा कंदाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फाहारा फलाहारा बीयाहारा परिसडिय-कंदमूलतय-पत्तपुप्फफलाहारा जलाभिसेयकढिणगायभूया आयावणाहिं पंचग्गितावेहिं इंगालसोल्लियं कंदुसोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा विहरंति। तत्थ णं जे ते दिसापोक्खिया तावसा तेसिं अंतिए दिसापोक्खियत्ताए पव्वइत्तए। पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं-छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालेणं तवो-कम्मेणं उड्ढं-बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तएत्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते सुबहुं लोहजाव दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइए। पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता पढमं छट्टक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं० विहरइ ॥ ८ ॥

छाया-ततः खलु तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणस्याऽन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्र-कालसमये कुटुम्बजागरिकां जाग्रतोऽयमेतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत-एवं खल्वहं वाराणस्यां नगर्यां सोमिलो नाम ब्राह्मणः अत्यन्तब्राह्मणकुलप्रसूतः, ततः खलु मया व्रतानि चीर्णानि यावद् यूपः निक्षिप्तः। ततः खलु मया वाराणस्या नगर्या बहिर्बहव आम्रारामा यावत् पुष्पारामाश्च रोपितास्तच्छ्रेयः खलु ममेदानीं कल्ये यावज्ज्वलति सुबहुं लोहकटाहकटुच्छुकं ताम्रीयं तापसभाण्डं घटयित्वा विपुलमशनं पान खाद्यं स्वाद्यं मित्रज्ञाति० आमन्त्र्य तं मित्र-ज्ञाति-निजक० विपुलेन अशन० यावत् सम्मान्य तस्यैव मित्र० यावत् ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयित्वा तं मित्रज्ञाति यावत् आपृच्छ्य सुबहुं लौहकटाहकटुच्छुकं ताम्रीयं तापसभाण्डकं गृहीत्वा ये इमे गङ्गा-कूलाः वानप्रस्थास्तापसा भवन्ति तद्यथा-होत्रिकाः पोत्रिकाः, कौत्रिकाः, यज्ञयाजिनः, श्राद्धकिनः, स्थालकिनः, गृहीतभाण्डाः, हुण्डिकाश्रमणाः, दन्तोदूखलिकाः, उन्मज्जकाः, सम्मज्जकाः, निमज्जकाः, संप्रक्षालकाः, दक्षिणकूलाः, उत्तरकूलाः, शङ्खध्माः कूलध्माः मृगलुब्धकाः, हस्तितापसाः, उद्दण्डाः, दिशाप्रोक्षिणः वल्कवाससः, विलवासिनः, जलवासिनः, वृक्षमूलकाः, अम्बुभक्षिणः, वायुभक्षिणः,

शेवालभक्षिणः, मूलाहाराः, कन्दाहाराः, त्वगाहाराः, पत्राहाराः, पुष्पाहाराः, फलाहाराः, बीजाहाराः, परिशटितकन्दमूलत्वक्पत्रपुष्पफलाहाराः, जलाभिषेक-कठिनगात्रभूताः, आतापनाभिः पञ्चाग्नितापैः अङ्गारशौल्यकं, कन्दुशौल्यकमिव आत्मानं कुर्वाणा विहरन्ति। तत्र खलु ये ते दिशाप्रोक्षकास्तापसास्तेषामन्तिके दिशाप्रोक्षकतया प्रव्रजितम्। प्रव्रजितोऽपि च खलु सन् इममेतद्रू पमभिग्रह-मभिग्रहीष्यामि–कल्पते मे यावज्जीवं षष्ठ-षष्ठेनानिक्षिप्तेन दिक्चक्रवालेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य प्रगृह्य सूराभिमुखस्याऽऽतापनभूम्यामातापयतो विहर्त्तुम्।

इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कल्ये यावज्ज्वलति सुबहुं लोह० यावत् दिशाप्रोक्षकतापसतया प्रव्रजितः। प्रव्रजितोऽपि च खलु सन् इममेतद्रूपमभिग्रहमभिगृह्य प्रथमं षष्ठक्षपणमुपसंपद्य खलु विहरति ॥ ८ ॥

पदार्थान्वयः–**तए**–उसके अनन्तर, **णं**–यह अव्ययपद है, जो वाक्य की सुन्दरता के लिए प्रयुक्त किया जाता है, **तस्स**–उस, **सोमिलस्स**–सोमिल नामक, **माहणस्स**–ब्राह्मण के, **अण्णया कयाइ**–किसी अन्य समय, **पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि**–रात्रि के मध्य भाग में, **कुडुम्बजागरियं जागरमाणस्स**–कुटुम्ब जागरणा–कुटुम्ब के हानि-लाभ का चिन्तन करते हुए, **अयमेयारूवे**–इस प्रकार, **अज्झत्थिए**–आध्यात्मिक, आत्मा सम्बन्धी, आत्मा या मन से सम्बन्ध रखने वाला, **जाव**–यावत् विचार, **समुप्पज्जित्था**–उत्पन्न हुआ, **खलु**–निश्चय ही, **एवं**–इस प्रकार, **अह**–मैं, **सोमिले नामं माहणे**–सोमिल नामक ब्राह्मण, **वाणारसीए णयरीए**–वाराणसी नगरी मे, **अच्चंतमाहणकुलप्पसूए**–ब्राह्मणों में अत्यन्त उच्च कुल मे पैदा हुआ हूं। **तए**–तदनन्तर, **णं**–वाक्यसौन्दर्यार्थक है, **मए**–मैने, **वयाइं**–व्रतो का, **चिण्णाइं**–आराधन किया, **जाव**–यावत्, **जूवा निक्खित्ता**–यूप–यज्ञस्तम्भ या स्तम्भ-विशेष स्थापित किए, **तए**–उस के बाद, **णं**–वाक्य सुंदरता के लिए है, **मए**–मैंने, **वाणारसीए णयरीए**–वाराणसी नगर के, **बहिया**–बाहिर, **बहवे**–अनेकों, **अंबारामा**–आमों के बाग, **जाव**–यावत्, **पुप्फारामा य**–और फूलों के बाग, **रोवाविया**–लगवाए हैं, **तं**–सो, **खलु**–निश्चय ही, **ममं सेयं**–मेरे लिए यही श्रेष्ठ है, **इयाणिं**–अब, **कल्लं**–प्रातःकाल ही, **जाव**–यावत्, **जलंते**–सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर, **सुबहुं**–बहुत से, **लोह-कडाह-कडुच्छुयं**–लोहे के कडाहे और लोहे की कड़छी-चमची आदि डोई (प्राकृत शब्द-महार्णव कोष), **तंबियं**–ताम्रक (परिव्राजकों के पहनने का एक उपकरण), **तावसभंडं**–तपस्वियों के उपयोग में आने वाले, भाण्ड-पात्र, **घडावित्ता**–बनवा कर, **विउलं**–विपुल-पर्याप्त, **असणं**–अशन–अन्न, **पाणं**–पेय पदार्थ, **खाइमं**– खादिम–बादाम और पिस्ते आदि मेवे, **साइमं**–मुख को स्वादिष्ट बनाने वाले चूर्ण आदि पदार्थ बनवा कर, **मित्त**–मित्र, **नाइ०**–समान जाति आदि वाले लोगों को, **आमंतित्ता**–आमंत्रित करके, **तं मित्तनाइणियग०**–उन मित्रो,

समान जाति वालो तथा निजक-आत्मीय, अपने सम्बन्धी जनों को, **विउलेणं**—पर्याप्त, **असण०**—भोजनादि से, **जाव संमाणित्ता**—यावत् सम्मानित करके, **तस्सेव मित्त जाव**—उन मित्र आदि के सामने, **जेट्ठपुत्तं**—ज्येष्ठ पुत्र, बड़े लड़के को, **कुडुंबे ठावेत्ता**—कुटुम्ब का दायित्व सभाल कर, **तं मित्तनाइ जाव**—उन मित्र आदि सम्बन्धियों को, **आपुच्छित्ता**—पूछकर, **सुबहुं लोहकडाह-कडुच्छुयं**—बहुत से लोहे के कड़ाहे और कड़छियो को, **तंबियं**—ताम्रकों को, **तावसभंडगं**—तापसो के पात्रों को, **गहाय**—ग्रहण करके, **जे**—जो, **इमे**—ये, **गंगाकूला**—गंगा के किनारे पर रहने वाले, **वाणपत्था तावसा**—वानप्रस्थ—वन में रहने वाले तपस्वी, **भवंति**—विराजमान है, **तंजहा**—जैसे कि, **होत्तिया**—अग्निहोत्री (वानप्रस्थ तापसों का एक वर्ग) **पोत्तिया**—वस्त्रधारी वानप्रस्थ, **कोत्तिया**—भूमि पर शयन करने वाले वानप्रस्थ, **जन्नई**—यज्ञ अर्थात् यज्ञ करने वाले तापस, **सड्ढई**—श्राद्ध करने वाले वानप्रस्थ, **थालई**—पात्र धारण करने वाले वानप्रस्थ, **हुंबउट्ठा**—हुम्बउष्ट (वानप्रस्थ तापसों की एक जाति), **दंतुक्खलिया**—दातो से चबाकर खाने वाले तापस, **उम्मज्जगा**—उन्मज्जक उन्मज्जन (गोते) लगाकर ही स्नान करने वाले तापस, **संमज्जगा**—सम्मज्जक बार-बार हाथ से पानी को उछालकर स्नान करने वाले, **निमज्जगा**— निमज्जक पानी में डूबकर स्नान करने वाले, **सपक्खालगा**— संप्रक्षालक—मिट्टी मल कर शरीर का स्नान करने वाले। **दक्खिणकूला**—गगा के दक्षिण तट पर रहने वाले, **उत्तरकूला**—गगा के उत्तर तट पर रहने वाले, **संखधमा**—शंखध्मा—शख बजाकर भोजन करने वाले, **कूलधमा**—तट पर स्थित होकर आवाज करते हुए भोजन करने वाले, **मियलुद्धया**—मृग को मार कर उसी के मांस से जीवन व्यतीत करने वाले, **हत्थितावसा**—हस्ति-तापस—हाथी की तरह स्नान करके शरीर पर भस्म आदि लगा कर जीवन बिताने वाले, **उद्दंडा**—उद्दण्ड—डण्डे को ऊंचा उठाकर चलने वाले, **दिसापोक्खिणो**—दिशाप्रोक्षी—दिशा को जल से सीचकर उस मे पुष्प फल आदि चुनकर रखने वाले अथवा, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दिशाओं को देखकर तपस्या करने वाले तापस, **वक्कवासिणो**—वल्कलवासस—वृक्षों की छाल को धारण करने वाले, **बिलवासिणो**—बिलवासी—भूमि के नीचे बिल जैसे स्थान में रहने वाले, **जलवासिणो**—जलवासी—जल मे रहने वाले, **रुक्खमूलिया**—वृक्षमूलक—वृक्ष के मूल में रहने वाले, **अंबुभक्खिणो**—केवल जल का सेवन करने वाले, **वाउभक्खिणो**—वायुभक्षी—केवल वायु का सेवन करने वाले, **सेयालभक्खिणो**—शैवालभक्षी—केवल शैवाल नामक जलीय घास का सेवन करने वाले, **मूलाहारा**—मूलाहार—मूल—जड़ों का सेवन करने वाले, **कंदाहारा**—कन्द का सेवन करने वाले (गूदेदार बिना रेशे की जड, जमीकन्द, शकरकन्द, गाजर, लहसुन आदि का सेवन करने वाले), **तयाहारा**—त्वचाहारा—नीम आदि वृक्षो की त्वचा का सेवन करने वाले, **पत्ताहारा**—पत्राहार-वृक्षों के पत्तो का सेवन करने वाले, **पुप्फाहारा**—पुष्पाहारा—गुलाब आदि

फूलों का सेवन करने वाले, **फलाहारा**—फलाहार—केले आदि फलों का सेवन करने वाले, **बीयाहारा**—बीजाहारा—बीजों का सेवन करने वाले, **परिसडिय—कंद-मूल-तय-पत्त-पुप्फफलाहारा**—परिशटित—अर्थात् सडे हुए कन्द, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प और फलों का सेवन करने वाले, **जलाभिसेय-कडिणगायभूया**—जलाभिषेक-जल के अभिषेक अर्थात् अधिक सिंचन से जिनका शरीर कठोर हो गया है ऐसे तापस, **आयावणाहिं पंचग्गितावेहिं**—सूर्य की आतापना और पञ्चाग्नि-तप के कारण, **इंगालसोल्लियं**—अंगारशौल्य अर्थात् अगारों पर रक्खे शूल से पकाए हुए मांस एव, **कंदुसोल्लियं**—कन्दुशौल्य अर्थात् चावल आदि भूनने का पात्र कन्दु होता है उसमें घृत डालकर शूल पर पकाए गए मांस के, **पिव**—समान, **अप्पाणं करेमाणा**—अपने शरीर को कष्ट देते हुए, **विहरंति**—जीवन व्यतीत कर रहे हैं, **तत्थ**—उनमें, **जे ते**—जो तापस, **णं**—वाक्यसौन्दर्यार्थक है, **दिसापोक्खिया**—दिशाप्रोक्षक अर्थात् दिशाएं प्रोक्षित कर जीवन-यात्रा चलाने वाले, **तावसा**—तापस हैं, **तेसिं अतिए दिसापोक्खियत्ताए**—उन दिशाप्रोक्षक तापसों के पास अर्थात् दिशाप्रोक्षक के रूप में तापस बनना चाहता हू, **पव्वइत्तए**—प्रव्रजित होने के लिए, **पव्वइए वि य णं समाणे**—प्रव्रजित हो जाने पर, **इमं एयारूवं**—मैं इस प्रकार का, **अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि**—अभिग्रह—प्रतिज्ञा विशेष ग्रहण करूंगा, **कप्पइ मे जावज्जीवाए**—जीवन-पर्यन्त मेरा नियम रहेगा कि मैं, **छट्ठं—छट्ठेणं**—बेले-बेले तपस्या करता रहूं, **अणिक्खित्तेणं**—बिना किसी अन्तर के अर्थात् लगातार यह तपस्या, **दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं**—दिक्-चक्रवाल तपस्या करता हुआ, **उड्ढं-बाहाए पगिज्झिय**—सूर्य के सामने भुजाएं उठा-उठा कर, **सूराभि-मुहस्स**—सूर्य की ओर मुख करके, **आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए**—आतापना भूमि मे आतापना ग्रहण करता रहूगा, **त्ति कट्टु एवं संपेहेइ**—इस प्रकार सोचकर मन मे चिन्तन करता है, और दिक्चक्रवाल—तपस्या के द्वारा जीवन बिताने का निश्चय कर लेता है, **संपेहित्ता**—ऐसा निश्चय कर लेने के अनन्तर, **कल्लं जाव जलंते**—प्रात: काल यावत् सूर्य के देदीप्यमान होने पर, **सुबहु-लोह-जाव दिसापोक्खियत्तावसत्ताए**—बहुत से लोहे के कडाहे यावत् अन्य (पूर्व वर्णित) सामग्री लेकर दिशाप्रोक्षक तापस के पास आकर, **पव्वइए**—प्रव्रजित हो जाता है, **पव्वइए वि य णं समाणे**—प्रव्रजित हो जाने के पश्चात्, **इमं एयारूवं अभिग्गहं**—इस प्रकार का अभिग्रह (प्रतिज्ञाविशेष), **अभिगिण्हित्ता**—धारण करके, **पढमं छट्ठक्खमणं**—पहला षष्ठक्षपण—दो दिन का उपवास, **उवसंपज्जित्ताणं**—धारण करके, **विहरइ**—विचरण करने लगा।

मूलार्थ—उसके बाद सोमिल ब्राहाण को किसी अन्य समय रात्रि के मध्य में, कुटुम्ब (की चिन्ता) में जागरण करते हुए इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ "निश्चय ही मैं सोमिल ब्राह्मण वाराणसी नगरी के उच्च ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ हूं।

तत्पश्चात् मैने व्रतों का आराधन किया फिर यूप या यज्ञ-स्तम्भ स्थापित किए, तत्पश्चात् मैंने वाराणसी नगरी के बाहर अनेकों आमों के बाग, फूलों के बाग लगवाए हैं। अब मेरे लिए यही श्रेयस्कारी होगा कि प्रातः सूर्योदय होते ही मुझे बहुत से लोहे के कडाहे और कड़छिया, ताम्रिक (परिव्राजकों के पहनने का एक उपकरण), तपस्वियों के दैनिक प्रयोग मे आने वाले भण्डोपकरण बनवा करके, विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम–चारों प्रकार का भोजन तैयार करवाऊं और मित्रों और समान कुल वालों को आमंत्रित करके उन मित्रों एवं समान जाति के लोगों, रिश्तेदारों को पर्याप्त भोजन करवा करके, उनका सन्मान-सत्कार करूं। फिर बडे पुत्र को घर का दायित्व सभालकर उन मित्रों एवं सम्बन्धियो से पूछकर तापस-दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त करूं। फिर बहुत से कडाहों, कड़छियों व तांबे के बर्तनों को ग्रहण करके, गंगा के किनारे पर रहने वाले वानप्रस्थों के पास जाऊं।

फिर अग्निहोत्री (वानप्रस्थ तापसो का एक वर्ग), वल्कलधारी वानप्रस्थ, भूमि पर सोने वाले वानप्रस्थ, यज्ञ करने वाले तापस, श्राद्ध करने वाले वानप्रस्थ, पात्र धारण करने वाले वानप्रस्थ हुम्बडकष्ट (वानप्रस्थी तापसों की एक जाति), दातो से चबाकर खाने वाले तापस, गोता लगाकार स्नान करने वाले तापस, बार-बार हाथ से पानी उछालकर स्नान करने वाले तापस, पानी मे डुबकी लगाकर स्नान करने वाले, मिट्टी से शरीर को मल कर स्नान करने वाले, गंगा के दक्षिण तट पर रहने वाले, गंगा के उत्तरी तट पर रहने वाले, शंख बजाकर भोजन करने वाले, मृग को मार कर उसके मांस से जीवन व्यतीत करने वाले, हाथी के समान स्नान करके शरीर पर भस्म आदि लगा कर जीवन बिताने वाले, दण्ड को ऊंचा रखकर चलने वाले, दिशाओं को जल से सींचकर उन मे फल-फूल आदि चुनकर रखने वाले अथवा प्रतिज्ञा के अनुसार दिशाओं को देखकर तपस्या करने वाले, वृक्ष की छाल धारण करने वाले, बिलों में रहने वाले, पानी में रहने वाले, वृक्षो के मूल में रहने वाले, केवल जल का सेवन करने वाले, केवल वायु का भक्षण करने वाले, शैवाल एक जलीय विशेष घास खाने वाले, जड का सेवन करने वाले, कन्द-मूल का सेवन करने वाले, नीम आदि वृक्षों की त्वचा का आहार करने वाले, वृक्षो के पत्तों का भोजन करने वाले, फूलों का भोजन करने वाले, केवल फलाहार करने वाले, बीजों का आहार करने वाले, परिशटित अर्थात् सड़े हुए कन्द-मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प और फलो का आहार करने वाले, जलाभिषेक से जिनका शरीर कठोर हो गया है ऐसे तापस, सूर्य की आतापना लेने वाले, अंगारों पर रख कर शूल से पकाये मांस को ग्रहण करने वाले, कन्दुशौलक नामक चावल

पकाने के पात्र में घृत डाल कर शूल पर पकाए मांस का भोजन ग्रहण करने वाले, अपने शरीर को कष्ट देकर जो जीवन-यापन कर रहे है ऐसे तापसों के पास (वह सोमिल ब्राह्मण आता है और आकर विचार करता है) मैं इन तापसों मे जो दिशाप्रोक्षक तापस हैं उन दिशाप्रोक्षक तापसों के पास तापस बनना चाहता हूं। फिर वह दिशाप्रोक्षक तापस के पास जाकर प्रव्रजित हो जाता है, प्रव्रजित होने के पश्चात् विशेष प्रकार का अभिग्रह धारण करता है, अभिग्रह धारण करके पहला षष्ठक्षपण (दो दिन का उपवास) करता हुआ जीवन-यापन करता है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सोमिल ब्राह्मण के मिथ्यात्व के उदय के बाद की स्थिति का वर्णन किया गया है, वह किस प्रकार का तापस जीवन ग्रहण करता है, कितने प्रकार के तापस होते है, इन सभी का विस्तृत वर्णन इस सूत्र मे आया है। तापस-परम्परा के प्राचीन इतिहास पर यह सूत्र अच्छा प्रकाश डालता है। तापसों के अनेक भेद बतलाए गए हैं, सभी वानप्रस्थी तापस लोग गंगा-तट पर रहते थे। सोमिल ब्राह्मण ने मित्रो एव रिश्तेदारों की आज्ञा से पुत्र को घर का उत्तरदायित्व सभाला, उसने दिशाप्रोक्षक तापस परम्परा को चुना। सोमिल ब्राह्मण ने सात्विक तापस परम्परा को चुना, किसी मासाहारी तापस परम्परा को नहीं चुना। इस बात से सिद्ध होता है कि थोड़े से समय का सम्यक्त्व भी जीवन को हिंसा से मुक्त करने मे सहायक बन जाता है।

तपस्या के पारणे के लिए तपस्वी अपनी तपोभूमि के चारों ओर फलों को सग्रह करके रखता है। पारणे का समय आने पर पहले पारणे में पूर्व दिशा में रक्खे हुए फलो का सेवन करके पारणा करता है। दूसरे पारणे मे दक्षिण दिशा मे रक्खे फलो का सेवन करता है, तीसरे मे पश्चिम दिशा मे और चौथे में उत्तर दिशा मे रखे हुए फलों को ग्रहण करता है। इस पद्धति से जिस तपस्या में पारणा किया जाता है उस तपस्या को दिक्-चक्रवाल तपस्या के नाम से पुकारा जाता है। इस तपस्या मे पारणे के समय अलग-अलग दिशाओं का अभिग्रह करना जरूरी होता है। इस प्रकार सोमिल दिक्-चक्रवाल तपस्या करता है।

सोमिल तापस की साधना विधि

मूल—तएणं से सोमिले माहणे रिसी पढमछट्ठक्खमणपारणंसि आयावणभूमीए पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिणसंकाइयं गिण्हइ, गिण्हित्ता पुरत्थिमं दिसिं पुक्खेइ, पुक्खित्ता, पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं

अभिरक्खउ सोमिलमाहणरिसिं, जाणि य तत्थ कंदाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य बीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणउ—त्ति कट्टु पुरत्थिमं दिसं पसरइ, पसरित्ता जाणि य तत्थ कंदाणि य जाव हरियाणि य ताइं गिण्हइ, गिण्हित्ता किढिणसंकाइयं भरेइ, भरित्ता दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च समिहाकट्ठाणि य गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिणसंकाइयगं ठवेइ, ठवित्ता वेदिं वड्ढइ वड्ढित्ता उवलेवणसंमज्जणं करेइ, करित्ता दब्भकल- सहत्थगए जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गंगं महानइं ओगाहइ, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ, करित्ता जलकिड्डं करेइ, करित्ता जलाभिसेयं करेइ, करित्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए देवपिउकयकज्जे दब्भकलसहत्थगए गंगाओ महानईओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भेहिं य कुसेहिं य वालुयाए य वेदिं रएइ, रइत्ता सरयं करेइ, करित्ता अग्गिं पाडेइ, पाडित्ता अग्गिं संधुक्खेइ, समिहाकट्ठाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेइ, उज्जालित्ता अग्गिस्स दाहिणे पासे सत्तंगाइं समादहे।

तं जहा—"सकत्थं वक्कलं ठाणं, सिज्जं भंडं कमंडलुं। दंड-दारुं तहप्पाणं, अह ताइं समादहे।" महुणा य घएण य तंदुलेहिं य अग्गिं हुणइ, चरुं साहेइ, साहित्ता बलिवइस्सदेवं करेइ, करित्ता अतिहिपूयं करेइ, करित्ता तओ पच्छा अप्पणा आहारं आहारेइ ॥ ९ ॥

छाया—ततः खलु सोमिलो ब्राह्मण ऋषिः प्रथमषष्ठक्षपणपारणे आतापनभूम्या प्रत्यवरोहति प्रत्यवरुह्य वल्कलवस्त्रनिवसितः यत्रैव स्वकं उटजस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य किढिणसाङ्कायिकं गृह्णाति गृहीत्वा पौरस्त्यां दिशं प्रोक्षति, प्रोक्ष्य "पौरस्त्याया दिशः सोमो महाराजः प्रस्थाने प्रस्थितमभिरक्षेत् सोमिलब्राह्मणर्षिम्, यानि च तत्र कन्दानि च मूलानि च त्वचञ्च पत्राणि च पुष्पाणि च फलानि च बीजानि च हरितानि च तानि अनुजानातु," इति कृत्वा पौरस्त्यां दिशं प्रसरति, प्रसृत्य यानि च तत्र कन्दानि च यावत् हरितानि च तानि गृह्णाति किढिणसांकायिकं भरति, भृत्वा दर्भांश्च कुशांश्च पत्रामोटं च समित्काष्ठानि च गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव स्वक उटजस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य किढिणसांकायिकं स्थापयति, स्थापयित्वा वेदिं वर्धयति वर्धयित्वा उपलेपनसम्मार्जनं करोति, कृत्वा दर्भकलशहस्तगतो यत्रैव

गङ्गा महानदी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य गंगायां महानद्यां अवगाहते, अवगाह्य जलमज्जनं करोति, कृत्वा जलक्रीड़ां करोति, कृत्वा जलाभिषेकं करोति, कृत्वा आचान्तः स्वच्छः परमशुचिभूतः देवपितृकृतकार्यः, दर्भकलशहस्तगतो गंगातो महानदीतः प्रत्यवतरति, प्रत्यवतीर्य यत्रैव स्वकं उटजस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य दर्भैश्च कुशैश्च बालुकया च वेदिं रचयति, रचयित्वा शरकं करोति, कृत्वा अरणिं करोति, कृत्वा शरकेणारणिं मथ्नाति, मथित्वा अग्निं पातयति, पातयित्वा अग्निं संधुक्षते संधुक्ष्य समित्काष्ठानि प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य अग्निमुज्ज्वालयति, उज्ज्वाल्य, अग्नेर्दक्षिणे पार्श्वे सप्ताङ्गानि समादधति, तद्यथा १. "सकत्थं, २. वल्कलं, ३. स्थानं, ४. शय्याभाण्डं, ५. कमण्डलुम्, ६. दारुदण्डं, ७. तथाऽऽत्मानम्, अथ तानि समादधीत।

ततो मधुना घृतेन च तण्डुलैश्चाग्निं जुहोति, चरुं साधयति। साधयित्वा बलिवैश्वदेवं करोति, कृत्वाऽतिथिपूजां करोति, कृत्वा ततः पश्चात् आत्मना आहारमाहारयति ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः–**तएणं से सोमिले माहणे रिसी**–तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण ऋषि, **पढमं छट्ठक्खमणपारणंसि**–प्रथम षष्ठ भक्त के पारणे के दिन, **आयावणभूमीए**–आतापना भूमि से, **पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता**–उतरता है, उतर कर, **वागलवत्थनियत्थे**–वल्कल अर्थात् वृक्ष की छाल के वस्त्र पहनकर, **जेणेव सए**–जहां उसकी अपनी, **उडए**–झोंपड़ी थी, **तेणेव**–वहां, **उवागच्छइ उवागच्छित्ता**–आता है, आकर, **किढिणसंकाइयं गिण्हइ**–वह बास की बनी कांवड़ ग्रहण करता है, **गिण्हित्ता**–ग्रहण करके, **पुरत्थिमं दिसिं**–पूर्व दिशा मे, **पुक्खेइ, पुक्खित्ता**–जल सींचता है और सींच कर (प्रार्थना करता है), **पुरत्थिमाए दिसाए**–पूर्व दिशा के, **सोमे महाराया** –सोम महाराज, **पत्थाणे पत्थियं**–वह सोम नामक दिक्पाल के मार्ग मे चलते हुए मेरी, **अभिरक्खेउ**–रक्षा करें, **सोमिलं माहण-रिसिं**–सोमिल ब्राह्मण इस प्रकार बार-बार प्रार्थना कर, **जाणि य तत्थ**–और वहा पूर्व दिशा में जो भी, **कंदाणि य**–कंद, **मूलाणि य**–मूल, **तयाणि य**–त्वचा (वृक्षों की छाल), **पत्ताणि य**–पत्र, **पुप्फाणि य**–पुष्प, **बीयाणि य**–बीज, **हरियाणि**–हरी घास आदि थे, **ताणि**–उनको, **गिण्हइ गिण्हित्ता**–ग्रहण करने की आज्ञा लेता है और आज्ञा लेकर जो उस दिशा में तृण आदि पदार्थ थे उनसे अपने, **किढिणसंकाइयं भरेइ भरित्ता**–बांस की कांवड़ भरता है और भरकर, **दब्भे य**–दूब, **कुसे य**–कुशा, **पत्तामोड च**–पत्रामोड़, **समिहाकट्ठाणि य गिण्हइ, गिण्हित्ता**–समिधा रूप काष्ठ ग्रहण करता है, ग्रहण करके, **जेणेव सए उडए**–जहां उसकी अपनी झोंपड़ी थी, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता**–वहां आता है और आकर, **किढिणसंकाइयगं ठवेइ, ठवित्ता**–बांस की कांवड़ को नीचे रखता है और रखकर, **वेदिं वड्ढेइ वड्ढित्ता**–वेदी बनाता है और बनाकर, **उवलेवणंसंमज्जणं**

करेइ, करित्ता–गोबर का लेप करता है संमार्जन करता है और करने के पश्चात्, **दब्भकल-सहत्थगए**–हाथ मे दूब और कलश को लेकर, **जेणेव गंगा महानई**–जहां गगा महानदी थी, **तेणेव उवागच्छइ: उवागच्छित्ता**–वहा आता है और आकर, **गंगं महानइं ओगाहइ, ओगाहित्ता**–गंगा महानदी मे प्रवेश करता है, करने के पश्चात्, **जलमज्जणं करेइ करित्ता**–जल में स्नान करता है और स्नान करके, **जलकिड्ड करेइ, करित्ता**–जल-क्रीड़ा करता है और करने के पश्चात्, **जलाभिसेयं करेइ, करित्ता**–जलाभिषेक करता है और करके, **आयंते चोक्खे परमसुइभूए**–आचमन आदि करके परम शुचिभूत होकर, **देवपिउकय-कज्जे**–देव-पितृ कार्य करता है, **दब्भकलसहत्थगए**–कुशा और कलश हाथ मे ग्रहण कर, **गंगाओ महानईओ पच्चुत्तरइ पच्चुत्तरित्ता**–गंगा महानदी से बाहर निकला और निकल कर, **जेणेव सए उडए**–जहा उसकी झोपडी थी, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता**–वहा आता है और आकर, **दब्भेहिं य**–दूब, **कुसेहि य**–कुशा, **वालुयाए य**–(और) बालुका से, **वेदि रएइ, रइत्ता**–वेदी की रचना करता है और रचना करने के पश्चात्, **सरयं करेइ, करित्ता**–सरक (अग्नि उत्पन्न करने का काष्ठ) को घिसता है घिसने के पश्चात्, **अग्गिं करेइ**–अग्नि उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है, **करित्ता**–प्रयत्न करके, **सरएणं अरणिं महेइ**–सरक से अग्नि मन्थन करता है, **अग्गिं पाडेइ**–अग्नि कुण्ड मे डालता है, **पाडइत्ता**–डाल कर, **अग्गि सधुक्खेइ**–अग्नि जलाता है और जला कर, **समिहाकट्ठाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता**–उस अग्नि में समिधा रूप लकडियां डालता है और डालकर, **अग्गिं उज्जालेइ, उज्जालित्ता**–अग्नि को जाज्वल्यमान करता है और जाज्वल्यमान करके, **अग्गिस्स दहिणे पासं**–अग्नि की दाहिनी ओर, **सत्तंगाइं समादहे**–सात अंग–वस्तुओ को स्थापित करता है।

तं जहा–जैसे कि, **सकत्थं वक्कलं**–सक्थ और वल्कल, **ठाणं**–स्थान, **सिज्जं भंड कमंडलुं**–शैय्या, बर्तन और कमडलु, **दड-दारुं तहप्पाणं**–स्वयं को, **अह ताइं समादहे**–अब उन्हे रखता है, इन सात अंगो को स्थापित करने के पश्चात्, **महुणा य घएण य**–मधु और घृत से, **तंदुलेहिं य अग्गिं हुणइ**–तदुलों से अग्नि मे होम करता है, **चरुं साहेइ**–चरु से बलि देता है, **साहित्ता**–बलि देकर, **बलिवइस्सदेवं करेइ, करित्ता**–बलि से वैश्वानरदेव की पूजा करता है और पूजा करके, **अतिहिपूयं करेइ, करित्ता**–अतिथि-पूजन करता है और करके, **तओ पच्छा अप्पणा आहारं आहारेइ**–तत्पश्चात् स्वयं भोजन करता है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण ऋषि प्रथम बेले के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरता है उतरकर वल्कल वस्त्र धारण करता है, धारण करके जहां उसकी अपनी झोंपड़ी थी वहा आता है, आकर बांस की कांवड़ (वंहगी) को ग्रहण करता है ग्रहण करके पूर्व दिशा की ओर जल छिड़कता है। पूर्व दिशा में जो सोम

महाराज है वह सोम नामक दिक्पाल मार्ग मे चलते हुए सोमिल ब्राह्मण ऋषि की रक्षा करें, इस प्रकार की प्रार्थना करता है, प्रार्थना करके वह जो पूर्व दिशा में कंद, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, बीज, हरित घास है उनको ग्रहण करने की आज्ञा लेता है, आज्ञा लेकर वह पूर्व दिशा के तृणादि पदार्थ अपनी बांस की कांवड़ में भरता है। भरकर दाभ, कुश, पत्रामोड़ समिधा रूप काष्ठ ग्रहण करके जहा उसकी झोंपड़ी थी वहां आता है, आकर बास की कांवड़ यथास्थान रख देता है, फिर वेदिका बनाता है, वेदी बनाकर उसको गोबर आदि से लीपता है और समार्जन करता है। फिर यह जल छिड़कता है, छिडककर हाथ मे कुशा और कलश लेकर जहां गंगा महानदी थी वहा आया। आकर उसने गंगा नदी में स्नान के लिए प्रवेश किया। (स्नान के समय वह) जल-क्रीड़ा करता है, जलाभिषेक करता है, आचमन करता है फिर परम शुचिभूत अर्थात् पवित्र हो कर देवो और पितरों के निमित्त तर्पण आदि करता है, हाथ में कलश और दूब रखता हुआ गंगा नदी से बाहर आया। बाहर आकर वह अपनी झोंपडी के पास पहुंचा। वहां पहुच कर उसने दर्भ कुशा व बालु से वेदिका का निर्माण किया। सरक लिया, अरणि ली, सरक और अरणि का मंथन किया। मथन करके उसमें से आग उत्पन्न करता है, फिर अग्नि को जलाता है जलाकर उसमें समिधा रूप काष्ठादि का प्रक्षेप किया, अग्नि के देदीप्यमान होने पर अग्नि की दक्षिण दिशा की ओर सात वस्तुएं स्थापित करता है। ये सात वस्तुएं इस प्रकार हैं—१. सक्थ, २ वल्कल, ३. स्थान, ४. शैय्या-भाण्ड, ५. कमंडलु, ६. दण्ड-दारु, ७. और स्वयं। इन सातो वस्तुओ को स्थापित कर उसने मधु-घृत और चावलो से हवन किया। चरु से बलि प्रदान की। बलि से वैश्वानर की पूजा की और फिर अतिथि-पूजा करता है उसके बाद वह स्वयं भोजन करता है।

टीका—प्रस्तुत प्रकरण में सोमिल ब्राह्मण द्वारा तापसो के उपकरणों सहित पूर्व दिशा के स्वामी सोमदेव की पूजा का वर्णन विधि-सहित किया गया है। साथ मे अतिथि-पूजा एवं वैश्वानर देव को बलि देने का कथन है।

प्रस्तुत सूत्र में सोमिल के पारणे का विस्तार से वर्णन है। वृत्तिकार ने निम्नलिखित शब्दों के अर्थ इस प्रकार किए हैं—

उडए त्ति—उटज:—तापसाश्रमगृह—अर्थात् तापसों के रहने की कुटिया।

किढिणसंकाइयं त्ति—वंशमय तापस-भाजन विशेष ततश्च तस्य संकायिकं—"भारोद्वहनयन्त्रम् किंढिणसंकायिकम्"—अर्थात् बांस की लकड़ी से बने एक भाजन-विशेष (बंहगी) को किढिण और शेष भाण्डोपकरण को "संकाइ" कहते हैं।

पत्थाणे पत्थियं त्ति–प्रस्थाने परलोक साधन-मार्गे प्रस्थितं प्रवृत्तं फलाद्याहरणार्थं गमने वा प्रवृत्तम्–परलोक साधना के मार्ग पर चलते हुए अथवा फलादि लाने के लिए गमन करते हुए।

दर्भ और कुशा में अन्तर इतना ही है कि दर्भ समूल होती है और कुशा मूल-रहित होती है।

वेदिं वड्ढेइ वड्ढिता–वेदिका देवार्चन-स्थानम् वर्धनी बहुकारिका तां प्रयुक्ते इति वर्धयति प्रमार्जयति इत्यर्थः–पूजा के स्थान को झाडू से स्वच्छ किया।

चरुं साहेइ–बलि वइस्स देवं करोति त्ति–चरुः भाजन-विशेषः, तत्र पच्यमान द्रव्यमपि चरुरेव त चरुबलिमित्यर्थः साधयति, बलि वइस्सदेवं त्ति–बलिना वैश्वानरं पूजयति, इत्यर्थः। चरु एक भाजन का नाम है, उसमें जो पकाया जाए उसे भी चरु ही कहते हैं, अर्थात् चरु बलि का दूसरा नाम है, वह उसको तैयार करता है फिर पकाकर वैश्वानर की पूजा करता है।

देव-पिउ-कयकज्जेत्ति–देवानां पितृणां कयकज्जं–कृतकार्य–जलाञ्जलि-दानेन–अर्थात् देव और पितरों के निमित्त अंजलि से जल-दान किया।

स्थान–शब्द से ज्योति-स्थान व पात्र-स्थान जानना चाहिए।

उवलेवणं–से गोबर का लेप और "आयते" से जलद्वारा कूडा-करकट को दूर करना जानना चाहिए।

चोक्खे–शब्द से अशुचि द्रव्य दूर करना है।

अतिथि-पूजा से आगन्तुको का आदर-सत्कार है।

पत्तामोडं–अर्थात् तरुशाखा मोडित पत्राणि। शब्द से वनस्पति अथवा वृक्ष की शाखा के पत्तों को तोड़ना जानना चाहिए।

सक्थ–यह सन्यासियों का एक विशेष उपकरण जानना चाहिए।

शय्या-भाण्ड–शब्द से शय्या उपकरण जानने चाहिएं।

उत्थानिका–अब सूत्रकार द्वितीय षष्ठक्षपण के विषय मे कहते हैं–

मूल–तए णं से सोमिले माहणरिसी दोच्चंसि छट्ठखमणपारणगंसि तं चेव सव्वं भाणियव्वं, जाव आहारं आहारेइ, नवरं इमं नाणत्तं दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सोमिलं माहणरिसिं जाणि य तत्थ कंदाणि य जाव अणुजाणउ त्ति कट्टु दाहिणं दिसिं पसरइ। एवं पच्चत्थिमे वरुणे महाराया जाव पच्चत्थिमं दिसिं पसरइ। उत्तरेणं वेसमणे

महाराया जाव उत्तरं दिसिं पसरइ। पुव्वदिसागमेणं चत्तारि विदिसाओ भाणियव्वाओ जाव आहारं आहारेइ ॥ १० ॥

छाया—ततः खलु स सोमिल ब्राह्मणऋषिर्द्वितीये षष्ठक्षपणपारणके तदेव सर्वं भणितव्यं यावद् आहारमाहारयति। नवरमिदं नानात्वम्—दक्षिणस्यां दिशि यमो महाराजः प्रस्थाने प्रस्थितमभिरक्षतु सोमिलं ब्रह्मर्षिं, ये च तत्र कन्दाश्च यावत् अनुजानातु, इति कृत्वा दक्षिणां दिशं प्रसरति। एवं पश्चिमे खलु वरुणो महाराजो यावत् पश्चिमां दिशं प्रसरति। उत्तरे खलु वैश्रमणो महाराजो यावद् उत्तरां दिशं प्रसरति। पूर्वदिग्गमेन चतस्रो विदिशो भणितव्वा यावद् आहारमाहारयति ॥ १०॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **सोमिले माहणरिसी**—सोमिल नामक ब्रह्मर्षि, **दोच्चंसि छट्ठखमणपारणगसि**—दूसरे षष्ठ क्षपण के पारणे मे, **तं चेव सव्वं भाणियव्वं**—पहले के समान सब कहना चाहिए, **जाव०**—यावत्, **आहारं आहारेइ**—आहार ग्रहण किया, **नवरं इमं नाणत्तं**—इतना विशेष है, **दाहिणाए दिसाए**—दक्षिण दिशा के, **जमे महाराया**—महाराज यम से, **पत्थाणे पत्थिय**—प्रस्थान मार्ग मे चलते हुए (प्रार्थना करता है कि वे), **अभिरक्खउ**—रक्षा करें, **सोमिलं माहणरिसिं**—सोमिल ब्रह्मर्षि की, **जाणि य तत्थ कंदाणि**—जो वहा कन्द आदि हैं, **जाव०**—यावत्, **अणुजाणउ**—उनको ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करें, **त्ति कट्टु**—ऐसी प्रार्थना करके, **दाहिणं दिसिं पसरइ**—वह दक्षिण दिशा की ओर चला गया।

एवं पच्चत्थिमेणं—इस प्रकार पश्चिम दिशा मे, **वरुणे महाराया**—महाराज वरुण की आज्ञा लेकर, **जाव०**—यावत्, **पच्चत्थिमं दिसिं पसरइ**—पश्चिम दिशा मे चला गया।

उत्तरेणं—उत्तर दिशा में, **वेसमणे महाराया**—महाराज वैश्रमण की आज्ञा ग्रहण कर, **जाव०**—यावत्, **उत्तरं दिसिं पसरइ**—उत्तर दिशा की ओर चल पडा।

पुव्वदिसागमेणं—पूर्व दिशा में गमन की तरह, **चत्तारि वि दिसाओ**—चारो विशाओं के सम्बन्ध में भी, **भाणियव्वाओ**—कहना चाहिए, **जाव०**—यावत्, **आहारं आहारेइ**—जब तक कि आहार ग्रहण करता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सोमिल ब्रह्मर्षि ने दूसरे षष्ठखमण व्रत के पारणे के लिये जो कुछ किया वह पहले किए हुए वर्णन जैसा जानना चाहिए। यहां इतना ही विशेष ज्ञातव्य है कि इस बार सोमिल ब्राह्मण दक्षिण दिशा की ओर मुख करके महाराज यम से प्रार्थना करता है कि मार्ग में चलते हुए सोमिल ब्राह्मण की रक्षा करें। ऐसी प्रार्थना करके वह दक्षिण दिशा की ओर चल देता है।

इसी प्रकार वह पश्चिम दिशा में महाराज वरुण की प्रार्थना करके चला गया।

उत्तर दिशा में वह महाराज वैश्रमण की प्रार्थना करके चला गया।

पूर्व दिशा की भांति चारों दिशाओं के स्वामियों की आज्ञा लेकर उसने स्वयं भोजन किया।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे सोमिल नामक ब्रह्मर्षि द्वारा विभिन्न दिशाओ के लोकपालों से ग्रहण की गई प्रार्थना एवं आज्ञा का वर्णन है। वह दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में जाकर अपनी तपस्या को पूर्ण कर पारणा करता है।

दक्षिण दिशा के दिग्पाल यम, पश्चिम दिशा के वरुण और उत्तर दिशा के दिग्पाल वैश्रमण माने गए है। वह उन दिशाओ के दिग्पालों से कन्द-मूल आदि ग्रहण करने की आज्ञा लेता है। सभी कृत्य वह प्रत्येक दिशा में एक समान करता है, अन्तर दिशाओं और लोकपालों का है, उसके धर्मकृत्यो मे कोई अन्तर नहीं पडा।

सोमिल का मारणान्तिक अभिग्रह

मूल–तए णं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता-वरत्तकालसमयंसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणरिसी अच्चंतमाहणकुलप्पसूए, तएणं मए वयाइं चिण्णाइं जाव जूवा निक्खित्ता। तएणं मए वाणारसीए जाव पुप्फारामा य जाव रोविआ। तएणं मए सुबहु लोह० जाव घडावित्ता जाव जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावित्ता जाव जेट्ठपुत्तं आपुच्छित्ता सुबहु लोह० जाव गहाय मुंडे जाव पव्वइए वि य णं समाणे छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामि, तं सेयं खलु मम इयाणिं कल्लं पाओ जाव जलंते बहवे तावसे दिट्ठा-भट्ठे य पुव्वसंगइए य परियाय-संगइए य आपुच्छित्ता आसमसंसियाणि य बहूइं सत्तसयाइं अणुमाणइत्ता वागलवत्थनियत्थस्स किढिणसंकाइयगहियसभंडोवगरणस्स कट्ठमुद्दाए मुहं बंधित्ता उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहस्स महापत्थाणं पत्थावेत्तए। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते बहवे तावसे य दिट्ठा-भट्ठे य पुव्वसंगइए य तं चेव जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, जत्थेव णं अहं जलंसि वा एवं थलंसि वा दुग्गंसि वा निन्नंसि वा पव्वयंसि वा विसमंसि वा गड्डाए वा दरीए वा पक्खलिज्ज वा पवडिज्ज

वा, नो खलु मे कप्पइ पच्चुट्ठित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, अभिगिण्हित्ता उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहमहापत्थाणं पत्थिए से सोमिले माहणरिसी पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागए। असोगवरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेदिं वड्ढइ, वड्ढित्ता उवलेवणसंमज्जणं करेइ, करित्ता दब्भकलसहत्थगए जेणेव गंगा महानई जहा सिवो जाव गंगाओ महानईओ पच्चुत्तरइ पच्चुत्तरित्ता जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भेहिं य कुसेहिं य वालुयाए य वेदिं रएइ, रइत्ता सरगं करेइ, करित्ता जाव बलिवइस्सदेवं करेइ, करित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधेइ, तुसिणीए संचिट्ठइ ॥ ११ ॥

छाया–ततः खलु तस्य सोमिलब्रह्मर्षेरन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये अनित्यजागरिकां जाग्रतोऽयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुदपद्यत, एवं खलु अहं वाराणस्यां नगर्या सोमिलो नाम ब्राह्मणऋषिरत्यन्तब्राह्मणकुलप्रसूतः, ततः खलु मया व्रतानि चीर्णानि यावत् यूपाः निक्षिप्ताः, ततः खलु मया वाराणस्यां यावत् पुष्पारामाश्च यावद् रोपिताः, ततः खलु मया सुबहुलोह० यावद् घडयित्वा यावत् ज्येष्ठपुत्र कुटुम्बे स्थापयित्वा यावद् ज्येष्ठपुत्रमापृच्छ्य सुबहुलोह यावद् गृहीत्वा मुण्डो यावत् प्रव्रजितोऽपि च खलु सन् षष्ठषष्ठेन यावत् विहरामि, तच्छ्रेयः खलु ममेदानीं कल्ये प्रादुर्यावज्ज्वलति बहून् तापसान् दृष्ट–भ्रष्टांश्च पूर्वसंगतिकांश्च पर्यायसंगतिकांश्च आपृच्छ्य आश्रमसंश्रितानि च बहूनि सत्त्वशतानि अनुमान्य वल्कलवस्त्रनिवासितस्य किढिणसंकायिकगृहीतसभाण्डोपकरणस्य काष्ठमुद्रया मुखं बध्वा उत्तरदिशि उत्तराभिमुखस्य महाप्रस्थानं प्रस्थापयितुम्, एवं संप्रेक्ष्य कल्ये यावत् ज्वलति बहून् तापसांश्च दृष्ट–भ्रष्टांश्च पूर्वसंगतिकांश्च तदेव यावत् काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, बध्वा इममेतद्रूपमभिग्रहमभिगृह्णाति–यत्रेव खलु अहं जले वा, एवं स्थले वा दुर्गे वा निम्ने वा पर्वते वा विषमे व गर्ते वा दर्या वा प्रस्खलेयं वा प्रपतेयं वा नो खलु मे कल्पते प्रत्युत्थातुं, इति कृत्वा इममेतद्रूपमभिग्रहमभिगृह्णाति उत्तरस्यां दिशि उत्तराभिमुखमहाप्रस्थानं प्रस्थितः। स सोमिलो ब्रह्मर्षिः पूर्वापराह्ण-कालसमये यत्रैव अशोकवरपादपस्तत्रैवोपागतः। अशोकवरपादपस्याधः किढिण-संकायिकं स्थापयति, स्थापयित्वा वेदिं वर्धयति, वर्धयित्वा उपलेपनसम्मार्जनं करोति, कृत्वा दर्भकलशहस्तगतो यत्रैव गंगा महानदी यथा शिवो यावद् गङ्गातो महानदीतः प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तीर्य यत्रैव अशोकवरपादपस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य दर्भैश्च कुशैश्च बालुकया च वेदिं रचयति रचयित्वा शरकं करोति, कृत्वा यावद् बलिवैश्वदेवं

करोति, कृत्वा काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति तूष्णीकः संतिष्ठते ॥ ११ ॥

पदार्थान्वयः-तएणं-तत्पश्चात्, **तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स**-उस सोमिल ब्रह्मर्षि के मन में, **अण्णया कयाइ**-एक बार, **पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि**-पूर्व रात्रि और अपर रात्रि के बीच के समय मे अर्थात् अर्ध रात्रि में, **अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स** -अनित्य भावना में लीन होकर जागते हुए, **अयमेयारूवे**-इस प्रकार का, **अज्झत्थिए**- आध्यात्मिक संकल्प, **जाव०**-यावत्, **समुप्पज्जित्था**-उत्पन्न हुआ, **एवं खलु**-इस प्रकार निश्चय ही, **अहं**-मैं, **वाणारसीए नयरीए**-वाराणसी नगरी मे, **सोमिले नामं माहणरिसी**- सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि, **अच्चंतमाहणकुलप्पसूए**-अत्यन्त उत्तम ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ हूं, **तएणं मए**-तत्पश्चात् मैने, **वयाइं चिण्णाइं**-व्रतों का आचरण किया, **जाव०**-यावत्, **जूवा निक्खित्ता**-यज्ञ-स्तम्भ स्थापित किए, **तएणं मए**-तत्पश्चात् मैंने, **वाणारसीए**-वाराणसी नगर के बाहर, **जाव०**-यावत्, **पुप्फारामा य जाव रोविआ**-पुष्पों-फलों के बाग आदि लगवाए, **तएणं**-तत्पश्चात्, **मए**-मैने, **सुबहु० लोह घडावित्ता**-बहुत से लोहे के कड़ाहे कडछिया आदि बनवा कर, **जाव०**-यावत्, **जेट्ठपुत्त**-अपने बड़े पुत्र को, **कुडुबे ठावित्ता**-कुटुम्ब का भार सौप कर, **जाव०**-यावत्, **जेट्ठपुत्तं आपुच्छित्ता**-बड़े पुत्र से पूछ कर, **सुबहु लोह० जाव गहाय**-बहुत से लोहे के भाण्डोपकरण ग्रहण कर, **मुंडे जाव पव्वइए**-मुण्डित होकर प्रव्रजित हो गया, **वि य ण समाणे**-और प्रव्रजित हो जाने पर, **छट्ठं छट्ठेण**-षष्ठ भक्त उपवास तप करता हुआ, **जाव विहरामि**-विचरण करता हू, **त सेय खलु**-अतः मेरे लिए यही श्रेयस्कर है, **मम इयाणिं**-कि मुझे अब, **कल्लं पाओ**-कल प्रातःकाल ही, **जाव जलंते**-सूर्य के निकलने पर, **बहवे तावसे**-बहुत से तापसो को, **दिट्ठा-भट्ठे**-जिन्हे मैंने आखों से दूर होते देखा है, **य पुव्वसंगइए**-जो दीक्षा से पूर्व के मेरे मित्र हैं, **य परियायसंगइए**-एवं दीक्षा-काल से बाद भी मेरे मित्र रह चुके है, **य आपुच्छित्ता**-उन सबसे पूछकर, **आसमसंसियाणि**-और आश्रम मे ठहरे हुए, **य बहूइ**-जो बहुत से, **सत्त-सयाइ**-सैंकडो की तादाद मे है, **अणुमाणइत्ता**-उन सबका आदर-सम्मान करके, **वागलवत्थनियत्थस्स**-वल्कल वस्त्र धारण करके, **किढिणसंकाइय-गहिय-सभंडोवगरणस्स**-अपनी वहगी में रखे हुए अनेकविध भण्डोपकरण लेकर, **कट्ठमुद्दाए**-काष्ठ की मुद्रा से, **मुहं बंधित्ता**-मुख को बांध कर, **उत्तरदिसाए**-उत्तर दिशा में, **उत्तराभिमुहस्स**-उत्तर दिशा की ओर मुख करके, **महापत्थाणं पत्थावेत्तए**-महापथ अर्थात् मृत्यु मार्ग पर चलता रहूं। **एवं संपेहेइ**-इस प्रकार विचार करता है (और) **संपेहित्ता**-विचार करके, **कल्लं जाव जलंते**-प्रातःकाल सूर्योदय होते ही, **बहवे तावसे य**-बहुत से तापसो को जिन्हे पहले, **दिट्ठा-भट्ठे य**-जो आखों से दूर हो चुके थे, **पुव्वसंगइए**-जो पहले साथ-साथ रह चुके थे, **तं चेव**-उन सबको, **जाव०**-जैसा कि पहले वर्णन किया

जा चुका है, **कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ**–काष्ठ की मुद्रा से अपना मुह बांध लेता है, **बंधित्ता**–और मुख बांध कर **अयमेयारूवं**–इस प्रकार का, **अभिग्गह अभिगिण्हइ**–अभिग्रह धारण करता है, **जत्थेव णं**–जहा कही भी, **अहं**–मै, **जलंसि वा**–जल में, **एवं थलंसि वा**–अथवा शुष्क भूमि पर, **दुग्गंसि वा**–अथवा किसी भी दुर्गम प्रदेश में, **निन्नंसि वा**–किसी निम्न स्थान पर, **पव्वयंसि वा**–किसी पर्वत पर, **विसमसि वा**–विषम मार्ग पर, **गड्डाए वा**–किसी गड्ढे मे, **दरीए वा**–किसी पर्वत की दरार में, **पक्खलिज्ज वा पवडिज्ज वा**–फिसल कर गिर जाऊ तो, **नो खलु मे कप्पइ पच्चुट्ठित्तए**–मेरे लिए वहा से उठना उचित न होगा, **त्ति कट्टु**–ऐसा निश्चय करके, **अयमेयारूवं**–इस प्रकार का, **अभिग्गहं अभिगिण्हइ**–अभिग्रह धारण कर लेता है, **अभिगिण्हित्ता**–ऐसा अभिग्रह धारण करके, **उत्तराए दिसाए**–उत्तर दिशा मे, **उत्तराभिमुहमहापत्थाणं पत्थिए**–उत्तराभिमुख होकर, महापथ (मृत्यु मार्ग) पर चल पडा, **से सोमिले माहणरिसी**–वह सोमिल नामक ब्राह्मण-ऋषि, **पुव्वावरण्ह-कालसमयंसि**–दिन के तीसरे प्रहर मे, **जेणेव असोगवरपायवे**–जहां पर अशोक नामक श्रेष्ठ वृक्ष था, **तेणेव उवागए**–वहीं पर आ गया, **असोगवरपायवस्स अहे**–उस सुन्दर अशोक वृक्ष के नीचे, **किढिणसंकाइयं**–अपनी बहंगी को, **ठवेइ**–रख देता है, **ठवित्ता वेदिं वड्ढेइ**–वेदिका बनवाता है, **वड्ढित्ता उवलेवणसंमज्जण करेइ**–उपलेपन एव समार्जन करता है, **करित्ता**–और करके, **दब्भकलसहत्थगए**–दूब और कलश आदि हाथ मे लेकर, **जेणेव गगा महानई**–जहा गंगा महानदी थी, **जहा सिवो**–और शिवराज ऋषि के समान, **जाव०**–यावत्, **गंगाओ महानईओ**–महानदी गंगा में, **पच्चुत्तरइ**–स्नानादि के लिये प्रवेश करता है, **पच्चुत्तरित्ता**–और प्रवेश करके, **जेणेव असोगवरपायवे**–जहां पर अशोक नामक वृक्ष था, **तेणेव उवागच्छइ**–वही पर आता है, **उवागच्छित्ता**–और वहां आकर, **दब्भेहिं य कुसेहिं य वालुयाए**–दर्भ, कुशा और बालुका से, **वेदिं रएइ**–वेदिका की रचना करता है, **रइत्ता सरग करेइ**–सरग और अरणि से अग्निमन्थन करता है, **करित्ता जाव० बलिवइस्सदेव करेइ**–और अग्नि मन्थन करके बलिवैश्वदेव करता है, **करित्ता कट्ठमुद्दाए मुह बंधेइ**–और फिर काष्ठ की मुद्रा से अपना मुह बांधता है, **तुसिणीए सचिट्ठइ**–और मौन धारण करके बैठ जाता है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् उस सोमिल ब्राह्मण ऋषि के हृदय में एक बार अर्धरात्रि के समय अनित्यता का विचार उत्पन्न हुआ, उसके मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक (आन्तरिक) संकल्प उत्पन्न हुआ, मै वाराणसी नगरी में सोमिल नामक ब्राह्मण अत्यन्त महान् कुल में उत्पन्न हुआ हू। मैंने अनेक प्रकार के व्रतों का आचरण किया है और अनेक यज्ञ-स्तम्भ स्थापित किए हैं। तत्पश्चात् वाराणसी नगरी के बाहर मैंने अनेक फूलों-फलों आदि के बाग लगवाए हैं। और फिर मैंने बहुत से लोहे के

कड़ाहे और कड़छियां आदि बनवाये और फिर अपने बड़े पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर और उस ज्येष्ठ पुत्र से पूछ कर बहुत से लोहे आदि के भाण्डोपकरणों का निर्माण करवाया और स्वयं मुण्डित होकर प्रव्रजित हो गया। प्रव्रजित होकर षष्ठ-भक्त अर्थात् बेले-बेले तप करते हुए विचरण करने लगा। इसलिए अब मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल प्रात:काल सूर्योदय होते ही जो बहुत से तापस अब मेरी दृष्टि से ओझल हो चुके हैं, अथवा पहले मेरे संगी-साथी रह चुके हैं उन सबसे परामर्श करके तथा अपने आश्रम में रह रहे सैंकड़ो प्राणियों को सम्मानित करके वल्कलवस्त्र-धारी बनकर बहंगी मे अनेक भाण्डोपकरणों को लेकर तथा काष्ठ-मुद्रा से अपना मुंह बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा की ओर महापथ (मृत्यु मार्ग में) प्रस्थान करूं। वह इस प्रकार विचार करता है और विचार करके दूसरे दिन सूर्योदय होने पर उन सब तापसों को जो उसकी दृष्टि से दूर हो चुके थे, जो पहले साथ-साथ रह चुके थे उनसे परामर्श करके काष्ठ मुद्रा से अपना मुंह बांधकर वह इस प्रकार का अभिग्रह धारण कर लेता है कि मैं जहां पर भी होऊंगा—जल में, थल में, किसी कठिन मार्ग में, किसी निम्न स्थान पर, किसी पर्वत पर, किसी विषम मार्ग मे, किसी गड्ढे में, पर्वत की दरार में, कहीं पर भी फिसल जाऊं अथवा गिर पडू तो मेरे लिए यही उचित होगा कि मै वहा से उठूं नहीं। इस प्रकार वह ऐसा अभिग्रह धारण कर लेता है और अभिग्रह धारण करके उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा मे महापथ अर्थात् मृत्यु-मार्ग पर चल पड़ता है। अब वह सोमिल ब्रह्मर्षि दिन के अन्तिम प्रहर में जहां पर एक उत्तम जाति का अशोक वृक्ष था वही पर आ पहुचा और उस श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे उसने अपनी बहंगी रख दी और रखकर एक वेदिका बनाई, उस वेदिका में उपलेपण-संमार्जन किया और ऐसा करके हाथ में दूब और कलश लेकर जहां पर महानदी गंगा थी वहां शिवराज ऋषि के समान वह गंगा नदी में स्नानार्थ उतरा और उतर कर स्नानादि से निवृत्त हुआ और जहां अशोक वृक्ष था वहां पर आ गया। आकर दूब, कुशा और बालुका से उसने वेदिका बनाई और बनाकर सरक और अरणि से अग्नि- मन्थन किया तथा अग्नि-मन्थन करके बलिवैश्वदेव करता है और फिर काष्ठ-मुद्रा से अपना मुंह बांध लेता है और मौन धारण करके बैठ जाता है।

टीका—सूत्रकार के कुछ शब्द वृत्तिकार के मत में विचारणीय हैं—**कट्ठमुद्दाए बंधित्ता**—काष्ठमुद्रा मुह पर मौनवृत्ति के चिन्ह के रूप मे बांधी जाती थी। वृत्तिकार इस विषय मे लिखते है—**कट्ठमुद्दाए मुहं बंधित्ता**—यथा काष्ठमयी पुत्तलिका न भाषते एवं

सोऽपि मौनावलम्बी भविष्यति। यद्वा मुखरन्ध्राच्छादकं काष्ठखण्डमुभयपार्श्व छिद्रद्वय-प्रेषितदोरकान्वित मुखबन्धनं, काष्ठमुद्रया मुख बध्नाति–मुख विवर के ढकने के लिए काष्ठ-खण्ड के दोनों ओर छिद्र किए और दोनो छिद्रो मे धागा डालकर मुख पर बाधा। इसी काष्ठ-खण्ड को "काष्ठमुद्रा" कहा जाता है।

महापत्थाणं पत्थावेत्तए–यह पद मृत्यु की अपेक्षा रखकर दिया गया है। वृत्तिकार ने इस संदर्भ में कथन किया है कि महाप्रस्थान पदं इति मरणकाल: तत: प्रस्थित:।

"शिव" शब्द का भाव यह कि जैसे शिव राजर्षि ने किया था अर्थात् वह राज्य त्याग कर तापस बना था। सोमिल ने भी वैसा ही किया। राजा शिव भगवान् महावीर का उपदेश सुनकर श्रमण बन गया था। इसका वर्णन भगवती सूत्र के ग्यारहवे शतक मे प्राप्त होता है।

देव द्वारा प्रतिबोध

मूल–तएणं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए। तएणं से देवे सोमिलं माहणं एवं वयासी–हं भो सोमिलमाहणा ! पव्वइया ! दुप्पव्वइयं ते। तएणं से सोमिले तस्स देवस्स दोच्चंपि तच्चंपि एयमट्ठं नो आढाइ नो परिजाणइ जाव तुसिणीए संचिट्ठइ। तएणं से देवे सोमिलेणं माहणरिसिणा अणाढाइज्जमाणे जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। तएणं से सोमिले कल्लं जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे किढिणसंकाइयं गहाय गहियभंडोवगरणे कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता उत्तराभिमुहे संपत्थिए। तएणं से सोमिले बिइयदिवसम्मि पच्छावरण्हकाल-समयंसि जेणेव सत्तवन्ने तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सत्तवण्णस्स अहे किढिण–संकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ, वड्ढित्ता जहा असोगवर-पायवे जाव अग्गिं हुणइ कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, तुसिणीए संचिट्ठइ ॥ १२ ॥

छाया–तत: खलु तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणऋषे: पूर्वरात्रापररात्रकालसमये एको देवोऽन्तिकं प्रादुर्भूत:। तत: खलु स देव: सोमिलं ब्राह्मणमेवमवादीत्–हे भो सोमिल ब्राह्मण ! प्रव्रजित ! दुष्प्रव्रजितं ते। तत: खलु स: सोमिलस्तस्य देवस्य द्वितीयमपि तृतीयमपि एतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति यावत् तूष्णीक: संतिष्ठते। तत: खलु स देव: सोमिलेन ब्राह्मणर्षिणा अनाद्रियमाण: यस्या दिश: प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगत:। तत: खलु स सोमिल: कल्ये यावत् ज्वलति वल्कलवस्त्रनिवसित:

किढिणसांकायिकं गृहीत्वा गृहीतभाण्डोपकरणः काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, बद्ध्वा उत्तराभिमुखः संप्रस्थितः।

ततः खलु स सोमिलो द्वितीयदिवसे पश्चादपराह्णकालसमये यत्रैव सप्तपर्णः तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सप्तपर्णस्य अधः किढिणसांकायिकं स्थापयति, स्थापयित्वा वेदिं वर्धयति, वर्धयित्वा यथा अशोकवरपादपे यावत् अग्निं जुहोति, काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, तूष्णीकः संतिष्ठते ॥ १२ ॥

पदार्थान्वय.—**तएणं**—तत्पश्चात्, **तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स**—उस सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि के, **पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि**—पूर्व और अपर रात्रि के मध्य भाग में—अर्थात् मध्य रात्रि के समय, **एगे देवे**—एक देवता, **अंतियं**—उसके समक्ष, **पाउब्भूए**—प्रकट हुआ। **तएणं से देवे**—तब उस देवता ने, **सोमिलं माहणं**—सोमिल नामक ब्राह्मण से, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहा, **ह भो सोमिल माहणा ! पव्वइया**—हे प्रव्रजित सोमिल ब्राह्मण ! **दुप्पव्वइयं ते**—तेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है। **तएणं से सोमिले**—तब वह सोमिल ब्राह्मण, **तस्स देवस्स**—उस देवता के द्वारा, **दोच्चपि तच्चंपि**—दो तीन बार कहे जाने पर भी, **एयमट्ठं**—उसकी बात का, **नो आढाइ नो परिजाणइ**—न तो उसकी बात का आदर करता है और न ही उसकी बात पर कोई ध्यान देता है, **जाव०**—यावत्, **तुसिणीए संचिट्ठइ**—अपितु मौन धारण करके अपने स्थान पर ही बैठा रहता है। **तएणं से देवे**—तब वह देवता, **माहणरिसिणा**— ब्राह्मण ऋषि द्वारा, **अणाढाइज्जमाणे**—तिरस्कृत होकर, **जामेव दिसिं पाउब्भूए**—जिस दिशा मे प्रकट हुआ था, **तामेव दिसिं पडिगए**—उसी दिशा में लौट गया।

तएण से सोमिले—तदनन्तर वह सोमिल, **कल्लं जाव जलंते**—दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होते ही, **वागलवत्थनियत्थे**—वल्कलवस्त्र धारण किए हुए, **किढिणसंकाइयं गहाय**—अपनी बहगी को उठाकर, **गहियभडोवगरणे**—और अपने भाण्डोपकरण लेकर, **कट्ठमुद्दाए मुह बंधइ**—काष्ठ मुद्रा से अपना मुख बांध लेता है, (और) बांधकर, **उत्तराभिमुहे संपत्थिए**—उत्तर की तरफ मुह करके चला जाता है, **तएणं से सोमिले**— तत्पश्चात् वह सोमिल, **बिइयदिवसम्मि**—दूसरे दिन, **पच्छावरणहकालसमयंसि**—अपराह्न काल के अन्तिम प्रहर मे, **जेणेव सत्तवन्ने**—जहां सप्तवर्ण नामक वृक्ष था, **तेणेव उवागच्छइ**—वहां पर आ जाता है, (और), **उवागच्छित्ता**—वहा आकर, **सत्तवण्णस्स अहे**—उस सप्त पर्ण वृक्ष के नीचे, **किढिणसंकाइयं ठवेइ**—अपनी बहंगी को रख देता है, **ठवित्ता**—और रख कर, **वेइं वड्ढइ**—वेदी की रचना करता है, **वड्ढित्ता**—और वेदिका की रचना करके, **जहा असोगवर-पायवे**—जैसे पहले अशोक वृक्ष के नीचे, **जाव**—यावत् अर्थात् पूर्ववत् स्नानादि करके, **अग्गिं हुणइ**—अग्नि मे हवन करता है, **कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ**—काष्ठ मुद्रा से अपना मुंह बांध लेता है, **तुसिणीए संचिट्ठइ**—और मौन होकर वही बैठ जाता है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सोमिल ब्राह्मण ऋषि के सामने अर्धरात्रि में एक देव प्रकट हुआ और उस देवता ने उस सोमिल नामक ब्राह्मण से इस प्रकार कहा—हे प्रव्रजित सोमिल ब्राह्मण ! तेरे द्वारा धारण की गई प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है। किन्तु सोमिल ब्राह्मण ने उस देवता के द्वारा दो-तीन बार कहने पर भी उसकी बात का कोई सम्मान नहीं किया और न ही उसकी ओर कोई ध्यान दिया, अपितु चुपचाप अपने ही स्थान पर बैठा रहा। तत्पश्चात् वह देवता सोमिल ब्राह्मण ऋषि द्वारा तिरस्कृत होकर जिस दिशा से प्रकट हुआ था उसी दिशा में लौट गया।

तत्पश्चात् वह सोमिल दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होते ही वल्कल वस्त्र धारण करके अपनी बहंगी (कांवड़) एवं अपने भाण्डोपकरण आदि लेकर काष्ठमुद्रा से अपना मुंह बांध लेता है और मुख को बांधकर उत्तर की ओर मुख करके वहां से चल देता है। तब वह सोमिल दूसरे दिन सूर्यास्त से कुछ पूर्व ही जहां पर सप्तपर्ण नामक एक वृक्ष था वहां पर पहुंच जाता है और पहुंच कर सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे अपनी बहंगी रख देता है और रखकर वेदिका का निर्माण करता है और निर्माण करके जैसे पहले दिन अशोक वृक्ष के नीचे पूर्ववत् स्नानादि करके अग्नि में हवन करता है और पुनः अपने मुख पर काष्ठ-मुद्रा बांधकर मौन धारण करके बैठ जाता है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे सभी व्याख्येय प्रकरण अत्यन्त सरल है।

उत्तर दिशा मे सोमिल सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे विश्राम एवं अपने हवन कृत्य करता है यही विशेष है।

मूल—तए णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए। तएणं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने जहा असोगवरपायवे जाव पडिगए। तएणं से सोमिले कल्लं जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे किढिणसंकाइयं गिण्हइ, गिण्हित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए ॥ १३ ॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलस्य पूर्वरात्रापररात्रकालसमये एको देवोऽन्तिकं प्रादुर्भूतः। ततः खलु स देवोऽन्तरिक्षप्रतिपन्नः यथा अशोकवरपादपे यावत् प्रतिगतः। तत खलु स सोमिलः कल्ये यावत् ज्वलति वल्कलवस्त्रनिवसितः किढिण-साङ्कायिकं गृह्णाति, गृहीत्वा काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति, बद्ध्वा उत्तराभिमुखः संप्रस्थितः ॥ १३ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **तस्स सोमिलस्स माहणस्स**—उस सोमिल ब्राह्मण

के, **पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि**—अपराह्न काल अर्थात् दिन के अन्तिम प्रहर में, **एगे देवे**—एक देवता, **अंतियं पाउब्भूए**—सामने प्रकट हुआ, **तएणं से देवे**—तब वह देवता, **अंतलिक्ख- पडिवन्ने**—आकाश में खडे-खड़े ही, **जहा असोगवरपायवे**—और जैसे अशोक वृक्ष के नीचे उसने पहले कहा था वैसे ही कह कर, **जाव पडिगए**—(सोमिल द्वारा उपेक्षा करने पर वह) लौट गया था, वैसे ही लौट गया। **तएणं से सोमिले**—तत्पश्चात् वह सोमिल, **कल्लं जाव जलंते**—दूसरे दिन सूर्योदय होने पर, **वागलवत्थनियत्थे**—वल्कल वस्त्र धारण करके, **किढिणसकाइयं गिण्हइ**—अपनी बहंगी उठा लेता है (और), **गिण्हित्ता**—उठाकर, **कट्ठमुद्दाए मुह बंधइ**—काष्ठ-मुद्रा से अपना मुह बाधकर, **उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए**—उत्तर दिशा की ओर मुख करके उत्तर दिशा मे चल दिया।

मूलार्थ—तदनन्तर उस सोमिल के सामने सूर्यास्त से कुछ ही पूर्व एक देवता प्रकट हुआ। तब वह देवता अन्तरिक्ष में खड़े-खड़े जैसे अशोक वृक्ष के नीचे बोला था (वैसे ही बोला और) तिरस्कृत होकर जिधर से आया था उधर ही लौट गया। तत्पश्चात् वह सोमिल दूसरे दिन प्रात:काल के समय सूर्योदय होते ही वल्कल वस्त्र धारण कर अपनी बहगी उठाता है और उठा कर काष्ठमुद्रा से अपना मुख बाध लेता है और उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा मे ही चल देता है।

टीका—सम्पूर्ण वर्णन अत्यन्त सरल है।

मूल—तएणं से सोमिले तइयदिवसम्मि पच्छावरणहकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ जाव गंगं महानइं पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेइं रएइ, रइत्ता जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठइ। तएणं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अंतियं पाउब्भूए तं चेव भणइ जाव पडिगए। तएणं से सोमिले जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे किढिणसंकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए ॥ १४ ॥

छाया—ततः खलु स सोमिलस्तृतीयदिवसे पश्चादपराह्णकालसमये यत्रैवा-शोकवरपादपस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अशोकवरपादपस्याधः किढिणसाङ्कायिकं स्थापयति, वेदिं वर्धयति, यावद् गङ्गामहानदीं प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तीर्य यत्रैवाशोकवर-पादपस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य वेदिं रचयति, यावत् काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति,

बद्ध्वा तूष्णीकः संतिष्ठते। ततः खलु तस्य सोमिलस्य पूर्वरात्रापररात्रकाले एको देवोऽन्तिकं प्रादुर्भूतः तदेव भणति यावत् प्रतिगतः। ततः खलु स सोमिलो यावत् ज्वलति वल्कलवस्त्रनिवसितः किढिणसाङ्कायिकं यावत् काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति बद्ध्वा उत्तरस्यां दिशि उत्तराभिमुखं संप्रस्थितः ॥ १४ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से सोमिले**—वह सोमिल, **तइयदिवसम्मि**—तीसरे दिन, **पच्छावरण्हकालसमयंसि**—दिन के चौथे प्रहर में, **जेणेव असोगवरपायवे**—जहा पर अशोक नामक वृक्ष था, **तेणेव उवागच्छइ**—वही पर आ जाता है, **उवागच्छित्ता**—वहां आकर, **असोगवरपायवस्स अहे**—उस अशोक वृक्ष के नीचे, **किढिणसंकाइयं**—अपनी बहगी को, **ठवेइ**—रख देता है, **ठवित्ता**—रखकर, **वेइं वड्ढेइ**—वेदी बनाता है, **जाव**—पहले की तरह सभी धर्मिक अनुष्ठान करके, **गंगं महानइं पच्चुत्तरइ**—गगा महानदी मे स्नान करके बाहर आता है, **पच्चुत्तरित्ता**—और बाहर आकर, **जेणेव असोगवरपायवे**—जहां वह अत्युत्तम अशोक नामक वृक्ष था, **तेणेव उवागच्छइ**—वही पर आ जाता है, **उवागच्छित्ता**—वहां आकर, **वेइ रएइ रइत्ता**—वेदिका का निर्माण करता है निर्माण करके, **जाव**—और अग्निहोत्र आदि करके, **कट्ठमुद्दाए मुहं बधइ**—काष्ठ की मुद्रा से अपना मुह-बाध लेता है, **बधित्ता**—और बाध कर, **तुसिणीए संचिट्ठइ**—मौन धारण करके बैठ जाता है।

तएण—तत्पश्चात्, **तस्स सोमिलस्स**—उस सोमिल नामक ब्राह्मण के, **पुव्वरत्ता-वरत्तकाले**—आधी रात के समय, **एगे देवे**—एक देवता, **अंतियं पाउब्भूए**—उसके समीप आकर प्रकट हुआ, **तं चेव भणइ जाव०**—उसने पुनः उससे पहले की तरह ही कहा, **पडिगए**—और पहले की तरह ही लौट गया, **तएण**—तत्पश्चात्, **से सोमिले**—वह सोमिल, **जाव जलते**—प्रातःकाल सूर्योदय होने पर, **वागलवत्थनियत्थे**—वल्कल वस्त्र पहन कर, **किढिणसंकाइयं**—अपनी बहंगी (कावड़ को उठाकर), **कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ बंधित्ता**—काष्ठ की मुद्रा से मुह को बाधता है और बाधकर, **उत्तराए दिसाए**—उत्तर दिशा मे, **उत्तराभिमुहे**—उत्तराभिमुख होकर, **संपत्थिए**—उसने प्रस्थान कर दिया।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल नामक ब्राह्मण सायंकाल के समय जहां पर अशोक नामक वृक्ष था वहां पर पहुच जाता है. पहुंचकर उस अशोक वृक्ष के नीचे अपनी बहंगी (कांवड) को रख देता है और एक वेदिका का निर्माण करता है, फिर अपनी आस्था के अनुरूप धार्मिक कृत्य करके गंगा महानदी मे स्नान करके बाहर आता है और आकर जहां पर अशोक वृक्ष था पुनः वहीं लौट आता है और लौटकर वेदिका का निर्माण कर अग्निहोत्रादि कर्म करता है तथा काष्ठमुद्रा से अपना मुंह बांध कर मौन धारण करके बैठ जाता है।

तत्पश्चात् उस सोमिल ब्राह्मण के समक्ष अर्ध-रात्रि में एक देव प्रकट होकर पूर्ववत् "तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है" कह कर जहां से आया था वहीं लौट जाता है। तदनन्तर वह सोमिल प्रातःकाल सूर्योदय होने पर वल्कल वस्त्र धारण करता है, अपनी कांवड उठाता है और काष्ठमुद्रा से अपना मुंह बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में ही चल देता है।

टीका—सोमिल उत्तर दिशा मे आगे ही आगे बढ रहा था। दूसरे दिन उस यात्रा में वह सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे ठहरा था, तीसरे दिन के विश्राम मे वह अशोक वृक्ष के नीचे ठहरा है।

काष्ठ-मुद्रा से मुंह बांधकर चलने की बात का स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है। अब पुनः वह उत्तर दिशा में ही चला। देव ने इस बार भी उसकी प्रव्रज्या को दुष्प्रव्रज्या बतलाया, किन्तु देव-वचनो की उपेक्षा करके वह अपने अपनाए हुए मार्ग पर ही चलता रहा।

मूल—तएणं से सोमिले चउत्थे दिवसे पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव वडपायवे तेणेव उवागए, वडपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ, उवलेवणसंमज्जणं करेइ जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, तुसिणीए संचिट्ठइ। तएणं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अंतियं पाउब्भूए तं चेव भणइ जाव पडिगए। तएणं से सोमिले जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे किढिणसंकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए ॥ १५ ॥

छाया—ततः खलु स सोमिलः चतुर्थे दिवसे पश्चादपराह्णकालसमये यत्रैव वटपादपस्तत्रैवोपागतः वटपादपस्याधः किढिणमाङ्कायिकं स्थापयति, स्थापयित्वा वेदिं वर्धयति, उपलेपनसंमार्जनं करोति, यावत् काष्ठ-मुद्रया मुखं बध्नाति तूष्णीकः संतिष्ठते। ततः खलु तस्य सोमिलस्य पूर्वरात्रापररात्रकाले एको देवोऽन्तिकं प्रादुर्भूतः। तदेव भणति यावत् प्रतिगतः। ततः खलु स सोमिलो यावज्ज्वलति वल्कलवस्त्र-निर्वसितः किढिणसाङ्कायिकं यावत् काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति बद्ध्वा उत्तरस्यां दिशि उत्तराभिमुखः संप्रस्थितः ॥ १५ ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं से सोमिले**—तत्पश्चात् वह सोमिल, **चउत्थे दिवसे**—चौथे दिन, **पच्छावरण्हकालसमयंसि**—दिन के अन्तिम प्रहर मे (सायं काल के समय), **जेणेव वडपायवे**—जहा पर एक वटवृक्ष था, **तेणेव उवागए**—वहीं पर आ पहुंचा, **वडपायवस्स**

अहे–उस वटवृक्ष के नीचे, **किढिणसंकाइयं ठवेइ**–अपनी कांवड रख देता है, **ठवित्ता**–और रखकर, **वेइं वड्ढेइ**–वेदी बनाता है, **उवलेवणसंमज्जणं करेइ**–गोबर आदि से लीपता है और जलादि छिड़क कर स्थान को शुद्ध करता है, **जाव०**–अन्य धार्मिक कृत्य करके, **कट्ठमुद्दाए मुंह बंधइ, तुसिणीए संचिट्ठइ**–काष्ठ की मुद्रा से अपना मुह बांधकर मौन होकर बैठ जाता है, **तएणं तस्स सोमिलस्स**–तदनन्तर उस सोमिल के, **अंतियं**–समक्ष, **पुव्वरत्तावरत्तकाले**– अर्धरात्रि के समय, **एगे देवे**–एक देवता, **पाउब्भूए**–प्रकट हुआ, **तं चेव भणइ**–उसने फिर पहले की तरह ही कहा, **जाव**–कि तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है, **पडिगए**–और यह कहकर वह वापिस लौट गया, **तएणं से सोमिले**–तत्पश्चात् वह सोमिल, **जाव जलंते**–प्रात:काल सूर्योदय होते ही, **वागलवत्थनियत्थे**–वल्कल वस्त्र धारण करके, **किढिणसंकाइयं जाव०**–कावड उठाकर, **कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ बंधित्ता**–काष्ठ की मुद्रा से मुंह बांध लेता है और बांधकर, **उत्तराभिमुहे**–उत्तर की ओर मुख करके, **उत्तराए दिसाए**–पुन: उत्तरदिशा में ही, **संपत्थिए**–प्रस्थान कर देता है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह सोमिल चौथे दिन सायंकाल के समय जहां पर एक बड़गद का वृक्ष था वहीं पर आ पहुचा, और बड़गद वृक्ष के नीचे अपनी कांवड़ रख देता है और रखकर वेदी बनाता है, वेदी के स्थान को गोबर आदि से लीप कर सिंचित करता है और अपनी पूर्व आस्था के अनुरूप धर्म-कृत्य करता है, फिर काष्ठमुद्रा से अपना मुख बांधकर मौन धारण करके बैठ जाता है। तदनन्तर उस सोमिल के समक्ष अर्धरात्रि के समय एक देवता आकर प्रकट होता है और पहले की तरह "तेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है" कह कर जहा से आता है वहीं लौट जाता है। उसके बाद सोमिल प्रात:काल सूर्योदय होते ही वल्कल वस्त्र धारण कर अपनी कांवड उठाता है और काष्ठमुद्रा से अपना मुह बाधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में ही पुन: प्रस्थान कर देता है।

टीका–सोमिल उत्तरदिशा में ही निरन्तर बढ़ रहा है। चौथे दिन वह बड़गद के वृक्ष के नीचे विश्राम करता है।

ज्ञात होता है वेदिं वड्ढई–का भाव वेदिका का स्थान निश्चित कर उसे लेपन आदि द्वारा शुद्ध बनाता है और "वेदिं रएइ"–से ज्ञात होता है कि वह स्नानादि से निवृत्त होकर वेदिका को विश्राम के योग्य बना लेता है।

काष्ठमुद्रा से मुख बाधने का भाव पहले स्पष्ट किया जा चुका है।

मूल–तएणं से सोमिले पंचमदिवसम्मि पच्छावरणहकाणसमयंसि जेणेव

उंबरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उंबरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, वेइं वड्ढेइ जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ जाव तुसिणीए संचिट्ठइ।

छाया—ततः खलु स सोमिलः पञ्चमदिवसे पश्चादपराह्णकालसमये यत्रैव उदुम्बरपादपस्तत्रैवोपागच्छति, उदुम्बरपादपस्याधः किढिणसाङ्कायिकं स्थापयति, वेदिं वर्धयति यावत् काष्ठमुद्रया मुखं बध्नाति यावत् तूष्णीकः संतिष्ठते ॥ १६ ॥

पदार्थान्वय.—**तएणं से सोमिले**—तदनन्तर वह सोमिल, **पंचमदिवसम्मि**—यात्रा करते हुए पांचवे दिन, **पच्छावरण्हकालसमयंसि**—दिन के चतुर्थ प्रहर अर्थात् सायंकाल के समय, **जेणेव उंबरपायवे**—जहां पर उदुम्बर अर्थात् एक गूलर का वृक्ष था, **तेणेव उवागच्छइ**—वहीं पर आता है, **उंबरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ**—और उस गूलर के वृक्ष के नीचे अपनी कावड रख देता है और रखकर, **वेइं वड्ढेइ**—वेदिका का निर्माण करता है, **जाव**—और पूर्ववत् स्नानादि से निवृत्त होकर, **कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ जाव तुसिणीए सचिट्ठइ**—काष्ठ की मुद्रा से अपना मुख बाधकर पूर्ववत् मौन धारण करके बैठ जाता है।

मूलार्थ—अपनी यात्रा के पांचवें दिन सायंकाल के समय सोमिल जहां पर एक गूलर का वृक्ष था वहां पहुंच जाता है और पहुंचकर गूलर के नीचे अपनी कावड़ रखकर एक वेदिका का निर्माण करता है और फिर अपने समस्त धार्मिक कृत्यों से निवृत्त होकर काष्ठ-मुद्रा से अपना मुंह बांधकर मौन धारण करके बैठ जाता है।

टीका—इस सूत्र मे संक्षेप शैली का प्रयोग करते हुए सूत्रकार ने कुछ शब्दो मे ही वह सब कुछ कह दिया है जो वे कहना चाहते है।

पाचवें दिन उसका विश्राम-स्थल गूलर का वृक्ष रहा, यही विशेष है।

मूल—तएणं तस्स सोमिलमाहणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे जाव एवं वयासी—हं भो सोमिला ! पव्वइया ! दुप्पव्वइयं ते पढमं भणइ, तहेव तुसिणीए संचिट्ठइ। देवो दोच्चंपि तच्चंपि वदइ-सोमिला ! पव्वइया दुप्पव्वइयं ते। तेणं से सोमिले तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे तं देवं एवं वयासी—कहण्णं देवाणुप्पिया ! मम दुप्पव्वइयं ? ॥ १७ ॥

छाया—ततः खलु तस्य सोमिलब्राह्मणस्य पूर्वरात्रापररात्रकाले एको देवः यावत् एवमवादीत्—हं भो सोमिल ! प्रव्रजित ! दुष्प्रव्रजितं ते, प्रथमं भणति तथैव तूष्णीकः संतिष्ठते ! देवो द्वितीयमपि तृतीयमपि वदति-सोमिल ! प्रव्रजित ! दुष्प्रव्रजितं ते। ततः खलु स सोमिलस्तेन देवेन द्वितीयमपि तृतीयमप्येवमुक्तः सन् तं देवमेव-

मवादीत्–कथं खलु देवानुप्रिय ! मम दुष्प्रव्रजितम् ॥ १७ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं–तत्पश्चात्, **तस्स सोमिलमाहणस्स**–उस सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि के समक्ष, **पुव्वरत्तावरत्तकाले**–अर्ध रात्रि के समय, **एगे देवे**–एक देवता, **जाव**–प्रकट हुआ और, **एवं वयासी**–इस प्रकार बोला, **हं भो सोमिला ! पव्वइया !**–हे प्रव्रजित सोमिल ! **दुप्पव्वइयं ते**–तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है, **पढमं भणइ**–ऐसा उसने पहली बार कहा (किन्तु यह सुनकर भी वह सोमिल), **तहेव तुसिणीए संचिट्ठइ**–पहले की तरह ही मौन धारण करके बैठा रहा, **देवो दोच्चपि तच्चंपि वदइ**–तब उस देवता ने दूसरी और तीसरी बार भी यही कहा, **सोमिला ! पव्वइया दुप्पव्वइयं ते**–सोमिल ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है, **तएणं से सोमिले**–तब उस सोमिल ने, **तेणं देवेणं**–उस देवता के द्वारा, **दोच्चंपि तच्चंपि**–दूसरी और तीसरी बार भी, **एव वुत्ते समाणे**–ऐसा कहने पर, **तं देव**–उस देवता से, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहा, **कहण्णं देवाणुप्पिया ! मम दुप्पव्वइयं**–यह मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या क्यों है ?

मूलार्थ–तत्पश्चात् उस सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि के समक्ष आधी रात के समय एक देवता प्रकट हुआ और उससे कहने लगा–हे प्रव्रजित सोमिल ! तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है। उसके पहली बार ऐसा कहने पर सोमिल पहले की तरह ही मौन धारण करके बैठा रहा, किन्तु उस देवता ने दूसरी और तीसरी बार भी यही कहा–सोमिल ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।

तब सोमिल ने उस देवता के द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी उसकी प्रव्रज्या को दुष्प्रव्रज्या बतलाने पर उस देवता से कहा–हे देवानुप्रिय ! यह मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या कैसे है ? क्यो है ? ।

मूल–तएणं से देवे सोमिलं माहणं एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया! तुमं पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियं पंचाणुव्वए सत्तसिक्खावए दुवालसविहे सावगधम्मे पडिवन्ने, तएणं तव अण्णया कयाइ असाहुदंसणेण पुव्वरत्ता० कुडुंब जाव पुव्वचिंतियं देवो उच्चारेइ जाव जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता किढिणसंकाइयं जाव तुसिणीए संचिट्ठसि। तएणं पुव्वरत्तावरत्तकाले तव अंतियं पाउब्भवामि हं भो सोमिला ! पव्वइया! दुप्पव्वइयं ते तह चेव देवो नियवयणं भणइ जाव पंचमदिवसम्मि पच्छावर-ण्हकालसमयंसि जेणेव उंबरवरपायवे तेणेव उवागए किढिणसंकाइयं ठवेसि, वेइं वड्ढेसि, उवलेवणं संमज्जणं करेसि, करित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधेसि,

बंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठसि, तं चेव देवाणुप्पिया! तव पव्वइयं दुप्पव्वइयं ॥ १८ ॥

छाया—ततः खलु स देवः सोमिलं ब्राह्मणमेवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रिय! त्वं पार्श्वस्यार्हतः पुरुषादानीयस्यान्तिकं पञ्चाणुव्रतानि सप्तशिक्षाव्रतानि द्वादशविधं श्रावकधर्मः प्रतिपन्नः, ततः खलु तवाऽन्यदा कदाचित् असाधुदर्शनेन पूर्वरात्रा० कुटुम्ब० यावत् पूर्वचिन्तितं देव उच्चारयति यावत् यत्रैवाऽशोकवरपादपस्त-त्रैवोपागच्छसि, उपागत्य किढिणसाङ्कायिकं यावत् तूष्णीकः संतिष्ठसे, ततः पूर्वरात्रापररात्रकाले तवान्तिकं प्रादुर्भवामि—हं भो सोमिल! प्रव्रजित ! दुष्प्रव्रजितं ते, तथैव देवो निजवचनं भणति यावत् पञ्चमदिवसे पश्चादपराह्णकालसमये यत्रैव उदुम्बरपादपस्तत्रैवोपागतः किढिणसाङ्कायिकं स्थापयसि, वेदीं वर्धयसि, उपलेपनं संमार्जनं करोषि, कृत्वा काष्ठमुद्रया मुखं बध्नासि, बद्ध्वा तूष्णीकः संतिष्ठसे, तदेवं खलु देवानुप्रिय ! तव प्रव्रजितं दुष्प्रव्रजितम् ॥ १८ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं से देवे—तदनन्तर वह देव, **सोमिलं माहणं**—उस सोमिल ब्राह्मण से, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोला, **एवं खलु देवाणुप्पिया!**—हे देवानुप्रिय ! **तुमं पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स**—तुमने मुमुक्षु जनो द्वारा सेवित अर्हत् भगवान श्री पार्श्वनाथ के, **अंतियं**—पास पहुंच कर, **पंचाणुव्वए**—पांच अणुव्रत, **सत्त सिक्खावए**—सात शिक्षा व्रत, **दुवालसविहे सावगधम्मे**—इस प्रकार बारह प्रकार के श्रावक धर्म को, **पडिवन्ने**—ग्रहण किया था, **तएणं तव अण्णया कयाइ**—तदनन्तर तुमने एक बार, **असाहुदंसणेण**—असाधुओं का दर्शन करने पर, **पुव्वरत्ता० कुडुंब जाव**—अर्ध रात्रि के समय अपने कुटुम्ब के विषय मे सोचते हुए तुमने विचार किया कि "मै गंगा-तट पर तपस्या करने वाले दिशाप्रोक्षक तापसो के पास जाऊं और दिशा-प्रोक्षक तापस बनू, **पुव्वचिंतियं देवो उच्चारेइ**—सोमिल ब्राह्मण के द्वारा पूर्व चिन्तित विचारों को देवता ने उससे कहा, (और देवता ने यह भी कहा कि), **जाव जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छसि**—फिर दिशा प्रोक्षक तापस बन कर जहा अशोक नामक वृक्ष था वहां पहुंचे, **उवागच्छित्ता**—वहां पहुचकर, **किढिणसंकाइयं जाव**—अपनी कांवड़ रख कर अपने सभी धर्म-कृत्य किए, **तुसिणीए संचिट्ठसि**—(मेरे द्वारा प्रतिबोध देने पर भी उसे अनसुना करके) तुम चुपचाप बैठे रहे, **तएणं**—तत्पश्चात्, **पुव्वरत्तावरत्तकाले**—इस प्रकार चार बार अर्धरात्रि के समय, **तव अंतियं पाउब्भवामि**—तुम्हारे सामने आकर प्रकट हुआ, (और तुम्हें समझाया कि), **हं भो सोमिला!** —हे प्रव्रजित सोमिल, **दुप्पव्वइयं ते!**—तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है, **तह चेव देवो नियवयणं भणइ जाव**—पुनः उस देवता ने अपने वचन दोहराते हुए उससे कहा, **पंचमदिवसम्मि**—आज पांचवें दिन, **पच्छावरण्हकालसमयंसि**—सायंकाल के समय, **जेणेव उंबरवरपायवे**—जहां

यह उदुम्बर वृक्ष था, **तेणेव उवागए**–वहां पर भी आ पहुचा हूं, **किढिणसंकाइयं ठवेसि**–यहां तुमने अपनी कांवड़ रखी, **वेइं वड्ढेसि**–वेदी बनाई, **उवलेवणं संमज्जणं करेसि**–उसे गोबर आदि से लीपा, संमार्जन किया, **करित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधेसि**–काष्ठ-मुद्रा से तुमने अपना मुंह बाधा, **बंधित्ता**–(और) बांधकर, **तुसिणीए**–मौन धारण करके, **संचिट्ठसि**–बैठ गए हो, **तं चेव खलु देवाणुप्पिया**–(किन्तु हे देवानुप्रिय! इस प्रकार निश्चय ही, **तव पव्वइयं**–तुम्हारी यह प्रव्रज्या, **दुप्पव्वइयं**–दुष्प्रव्रज्या है।

मूलार्थ–तदनन्तर वह देवता सोमिल ब्राह्मण से इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रिय (पहले तुमने) सर्व-जन-सेव्य भगवान श्री पार्श्वनाथ जी से पाच महाव्रतों और सात शिक्षा व्रतों इस प्रकार बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार किया था। फिर कुछ समय बाद असाधु-दर्शन (सम्पर्क) के कारण अर्धरात्रि के समय अपने कुटुम्ब की चिन्ता करते हुए तुमने सोचा कि मैं दिशा-प्रोक्षक वानप्रस्थ बन जाऊं। इस प्रकार तुम दुष्प्रव्रज्या के मार्ग पर चलते हुए दिशा प्रोक्षक वानप्रस्थ बन गए। उस देव ने फिर कहा–फिर तुम चलते-चलते जहां एक अशोक वृक्ष था वहां पहुंचे और वहां आकर तुमने अपनी कांवड़ रख कर वे कृत्य किए जिन्हें तुम धर्म मानते थे। धर्मकृत्य करके मौन धारण करके तुम बैठ गए। तब एक दिन मै पुन: अर्धरात्रि के समय तुम्हारे सामने प्रकट हुआ और तुम्हें सावधान करते हुए कहा "हे सोमिल–इस प्रकार तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है। देव ने उसे फिर से अपने वचन कहे कि आज पुन: पांचवें दिन सायंकाल के समय जहा उदुम्बर का वृक्ष है तुम वहां पहुंचे और उसके नीचे आकर अपनी कांवड़ रखी, वेदिका बनाई और उसे गोबर आदि से लीपकर वहा जल छिड़का और जल आदि सींचकर काष्ठ-मुद्रा से अपना मुंह बाध कर बैठ गए, इस प्रकार हे देवानुप्रिय! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।

टीका–प्रस्तुत पाठ मे जाव० शब्द का बहुत अधिक प्रयोग करके शास्त्रकार ने पुनरावृत्ति दोष न होने देने का प्रयास किया है। हमने मूलार्थ मे "जाव" शब्द से गृहीत पदों को ग्रहण करके पूर्वापर सम्बन्ध को मिलाने का कुछ प्रयास किया है।

वेइं वड्ढेसि–का अर्थ पूजास्थान की सीमाएं बांधकर उस पूजा-स्थान को निश्चित करना है, निश्चित होने के बाद ही उपलेपन संमार्जन होता है।

सोमिल चार दिनों तक देव के वचनों की उपेक्षा करता रहा, किन्तु देव ने अपने प्रयास में शिथिलता नहीं आने दी, अत: पांचवीं बार वह सोमिल को समझाने के प्रयास में सफल हो ही गया।

सोमिल द्वारा पुनः श्रावक-धर्म ग्रहण

मूल–तएणं से सोमिले तं देवं एवं वयासी–कहण्णं देवानुप्पिया ! मम सुप्पव्वइयं ? तएणं से देवे सोमिलं एवं वयासी, जइणं तुमं देवाणुप्पिया! इयाणिं पुव्वपडिवण्णाइं पंच अणुव्वयाइं सत्तसिक्खाव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरसि, तो णं तुज्झ इदाणिं सुपव्वइयं भविज्जा, तएणं से देवे सोमिलं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए जाव पडिगए ॥ १९ ॥

छाया–ततः खलु स सोमिलस्तं देवमेवमवादीत्–कथं खलु देवानुप्रिय ! मम सुप्रव्रजितं ? ततः खलु स देवः सोमिलमेवमवादीत्–यदि खलु त्वं देवानुप्रिय ! इदानीं पूर्वप्रतिपन्नानि पञ्चानुव्रतानि सप्तशिक्षा-व्रतानि स्वयमेव उपसंपद्य खलु विहरसि तर्हि खलु तवेदानीं सुप्रव्रजितं भवेत्। ततः खलु स देवः सोमिलं ब्राह्मण वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्या दिशः प्रादुर्भूतः यावत् प्रतिगतः ॥ १९ ॥

पदार्थान्वय.–तएणं से सोमिले–तदनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण, **त देवं एवं वयासी**–उस देव से इस प्रकार बोला, **कहण्णं देवाणुप्पिया-मम सुप्पव्वइयं ?**–हे देवानुप्रिय ! अब आप ही बतलाए कि मेरी प्रव्रज्या सुप्रव्रज्या कैसे हो सकती है ?, **तएणं से देवे**–तब वह देवता, **सोमिलं एवं वयासी**–सोमिल से इस प्रकार बोला, **जइणं तुमं देवाणुप्पिया!**–हे देवानुप्रिय। यदि तुम, **इयाणि पुव्वपडिवण्णाइं**–अब भी (भगवान पार्श्वनाथ से) ग्रहण किए हुए, **पंच अणुव्वयाइं**–पांच अणुव्रतों, **सत्तसिक्खावयाइं**–(और) सात शिक्षा व्रतो को, **सयमेव उवसंपज्जित्ताणं**–स्वयं ही (पुनः) ग्रहण करके, **विहरसि**–जीवन-यात्रा पर चलोगे, **तो णं तुज्झ इदाणिं**–तब तेरी प्रव्रज्या अब भी, **सुपव्वइयं**–सुप्रव्रज्या, **भविज्जा**–हो सकती है, **तएण से देवे**–तब वह देवता, **सोमिलं वंदइ नमंसइ**–(सोमिल द्वारा देव के कथन के अनुरूप बारह व्रतों का पालन करते हुए विचरने लगा, यह देखकर वह देवता) सोमिल को वदना-नमस्कार करता है, **वंदित्ता नमंसित्ता**–वन्दना-नमस्कार करके, **जामेव दिसिं पाउब्भूए**–जिस दिशा से प्रकट हुआ था, **जाव पडिगए**–उसी दिशा में लौट गया।

मूलार्थ–तदनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण उस देव से इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रिय! अब आप ही बतलाए कि मेरी प्रव्रज्या सुप्रव्रज्या कैसे हो सकती है ? तब उस देवता ने उस सोमिल से इस प्रकार कहा–''हे देवानुप्रिय! यदि तुम अब भी भगवान श्री पार्श्वनाथ जी से ग्रहण किए हुए पांच अणुव्रतो और सात शिक्षाव्रतों को ग्रहण करके अपनी जीवन-यात्रा पर चलोगे तो तुम्हारी प्रव्रज्या अब भी सुप्रव्रज्या हो सकती है।

(सोमिल ने देवता के कथनानुसार श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिए) तब उस देवता ने सोमिल को वन्दना-नमस्कार किया और वन्दना-नमस्कार करके वह जिस दिशा में प्रकट हुआ था (अर्थात् दिशा से आया था) उसी दिशा में लौट गया।

टीका—समस्त प्रकरण सरल है। समास शैली के कारण कुछ शब्दों का अध्याहार कर लेना चाहिए।

मूल—तएणं से सोमिले माहणरिसी तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे पुव्वपडिवन्नाइं पंच अणुव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥ २० ॥

छाया—ततः खलु सोमिलो ब्राह्मणः ऋषिस्तेन देवेन एवमुक्तः सन् पूर्वप्रतिपन्नानि पञ्चाणुव्रतानि स्वयमेव उपसंपद्य खलु विहरति ॥ २० ॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सोमिले माहणरिसी—तत्पश्चात् वह सोमिल नामक ब्रह्मर्षि, **तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे**—उस देव के द्वारा पूर्वोक्त वचन कहने पर, **पुव्वपडि-वन्नाइं**—पहले ग्रहण किए हुए, **पंच अणुव्वयाइं**—पांच अणुव्रतो (और सात शिक्षा व्रतों को), **सयमेव**—स्वयं ही (स्वेच्छा से), **उवसंपज्जित्ताणं विहरइ**—स्वीकार कर जीवन व्यतीत करने लगा।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल नामक ब्रह्मर्षि उस देव के द्वारा पूर्वोक्त वचन कहने पर पहले भगवान श्री पार्श्वनाथ जी से गृहीत पांच अणु-व्रतों का स्वयं ही पालन करते हुए अपनी जीवन-यात्रा पर चलने लगा।

टीका—"**पंच अणुव्वयाइं**" इस शब्द के बाद "**सत्त सिक्खा-वयाइं**" इस शब्द का अध्याहार कर लेना चाहिए, क्योंकि पूर्व सूत्र में "**दुवालविहं**" शब्द द्वारा बारह व्रतों का संकेत पहले ही किया जा चुका है।

शुक्रावतंसक विमान में सोमिल का जन्म

मूल—तएणं से सोमिले बहूहिं चउत्थ छट्ठट्ठम जाव मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोवहाणेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता, अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते विराहियसम्मत्ते कालमासे कालं किच्चा सुक्कवडिंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि जावओगाहणाए सुक्कमहग्गहत्ताए उववन्ने। तएणं से सुक्के महग्गहे अहुणोववन्ने समाणे जाव भासामणपज्जत्तीए० ॥ २१ ॥

छाया—ततः खलु स सोमिलो बहुभिश्चतुर्थषष्ठाष्टमयावन्मासार्द्धमास-क्षपणैर्विचित्रैस्तपउपधानैरात्मनं भावयन् बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्धमासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयति, जोषयित्वा त्रिंशद् भक्तानि अनशनेन छित्त्वा तस्य स्थानस्यानालोचिताऽप्रतिक्रान्तः विराधितसम्यक्त्वः कालमासे कालं कृत्वा शुक्रावतंसके विमाने उपपातसभायां देवशयनीये यावताऽव- गाहनया शुक्रमहाग्रहतया उपपन्नः। ततः खलु स शुक्रो महाग्रहः अधुनोपपन्नः सन् यावद् भाषामनःपर्याप्त्या० ॥ २१ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं से सोमिले—तत्पश्चात् वह सोमिल, **बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव मासद्धमासखमणेहिं**—बहुत से—चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि और आधे मास (१५ दिन) और मासखमण रूप, **विचित्तेहिं तवोवहाणेहिं**—नाना प्रकार के तप उपधानों द्वारा, **अप्पाण भावेमाणे**—अपने आपको भावित करता हुआ (अर्थात् बेले, तेले आदि से लेकर अर्धमास और एक मास आदि की तपस्या करता हुआ), **बहूइं वासाइं**—बहुत वर्षों तक, **समणोवासग-परियाग पाउणइ**—श्रमणोपासक पर्याय का पालन करता रहा (अर्थात् श्रमणोपासक चर्या का पालन करता रहा, **पाउणित्ता**— और पालन करके, **अद्धमासियाए संलेहणाए**—१५ दिन की सलेखना द्वारा, **अत्ताणं झूसेइ**—अपने आपको लगाए रखता है, **झूसित्ता**—इस प्रकार अपने आपको (तप) मे लगाकर, **तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ**—तीस भक्त (आहार) का त्याग करता है, **छेदित्ता**—और त्याग करके, **तस्स ठाणस्स**—अपने पूर्वकृत पाप स्थानों की, **अणालोइयपडिक्कंते**—आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए बिना, **विराहियसम्मत्ते**—सम्यक्त्व की विराधना के कारण, **कालमासे कालं किच्चा**—कालमास में काल करके (अर्थात् मृत्यु समय आने पर), **सुक्कवडिंसए विमाणे**—शुक्रावतंसक नाम के विमान मे, **उववायसभाए**—उपपात सभा में (देवों के उत्पत्ति स्थान में), **देवसयणि-ज्जंसि**—देव-शयनीय शय्या मे, **जावओगाहणाए**—प्रमाणोपेत अवगाहना से, **सुक्क-महग्ग-हत्ताए**—शुक्रमहाग्रह के रूप मे, **उववन्ने**—उत्पन्न हुआ, **तएणं से सुक्के महग्गहे अहुणोववन्ने समाणे**—तदनन्तर शुक्रमहाग्रह के रूप में उत्पन्न होकर, **जाव भासामणपज्जत्तीए**—भाषा पर्याप्ति मनःपर्याप्ति आदि पांचों प्रकार की पर्याप्तिओं से परिपूर्ण हो गया।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल नामक ब्राह्मण बहुत से चतुर्थ षष्ठ अष्टम आदि एवं अर्धमास (१५ दिन) और मास खमण रूप नाना प्रकार के तप उपधानों द्वारा अपने आपको भावित करता हुआ (अर्थात् बेले तेले आदि से लेकर मासखमण आदि की तपस्या में लीन रहते हुए), श्रमणोपासक की जीवन-चर्या का पालन करता रहा और पालन करते हुए उसने अपने आप को तपस्या में लगाए रखा और ऐसा करके तीस समय के भोजन का त्याग करके (आधे महीने तक भोजन छोड़कर) १५ दिन

की संलेखना में अपने आपको लगाए रखता है। किन्तु अपने पूर्वकृत पापों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए बिना ही सम्यक्त्व की विराधना के कारण मृत्यु-समय आने पर मर कर शुक्रावतंसक नाम के देव-विमान की उपपात सभा (देवों के उत्पत्ति- स्थान में) देव-शय्या पर प्रमाणोपेत अवगाहना से शुक्रग्रह के रूप में उत्पन्न हुआ और शुक्रग्रह के रूप में उत्पन्न होते ही भाषा-पर्याप्ति मन:-पर्याप्ति, आदि सर्वविध पर्याप्तियो से वह परिपूर्ण हो गया।

टीका—देवो की उत्पत्ति गर्भ से नहीं होती, वे उपपात (जन्म-स्थान) में रखी देवो की शय्या पर उत्पन्न होते हैं, अत: वह सोमिल शुक्र ग्रह के रूप में देव-शय्या पर उत्पन्न हुआ।

'अवगाहना' का अर्थ है शरीर का परिमाण। उत्पत्ति के समय देवों का शरीर परिमाण अगुल के असख्यातवें भाग से लेकर अधिक से अधिक सात हाथ परिमाण वाला होता है। **'जावओगाहणाए'** का भाव यह है कि वह प्रमाणोपेत शरीर से उत्पन्न हुआ।

भासामणपज्जत्तीए—सभी प्राणी जन्म के समय तक अपर्याप्त दशा (अपूर्ण दशा) मे उत्पन्न होते है। उत्पत्ति के बाद वह प्राकृतिक रूप से स्वत: ही छहों पर्याप्तिया प्राप्त कर लेता है, जैसे कि—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छवास पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति, मन:पर्याप्ति। आत्मा के संयोग से तैजस और कार्मण शरीर द्वारा ग्रहण किया गया उपर्युक्त छ: प्रकार की पौद्गलिक शक्तियों का जो संचय होता है वही पर्याप्ति कहलाता है।

सोमिल का भविष्य

मूल—एवं खलु गोयमा ! सुक्केणं महग्गहेणं सा दिव्वा जाव अभि-समन्नागया, एगं पलिओवमं ठिई। सुक्के णं भंते ! महग्गहे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ३ कहिं गच्छिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५। एवं खलु जंबू ! समणेणं निक्खेवओ ॥ २२ ॥

॥ तइयं अज्झयणं समत्तं ॥ ३ ॥

छाया—एवं खलु गौतम ! शुक्रेण महाग्रहेण सा दिव्या यावत् अभिसमन्वागता। एकं पल्योपमं स्थिति:। शुक्र: खलु भदन्त ! महाग्रहस्ततो देवलोकात् आयु:क्षयेण ३ कुत्र गमिष्यति, ? गौतम ! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति ५ ! एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन० निक्षेपक: ॥ २२ ॥

॥ इति पुष्पितायास्तृतीयमध्ययनं समाप्तम् ॥

पदार्थान्वयः—एवं खलु गोयमा—इस प्रकार हे गौतम !, **सुक्केणं महग्गहेणं**—उस शुक्र नामक महाग्रह ने, **सा दिव्वा**—वह दिव्य, **जाव अभिसमन्नागया**—सभी प्रकार की देव-समृद्धि को प्राप्त किया। **एवं पलिओवमं ठिई**—शुक्र महाग्रह की स्थिति एक पल्योपम की है, **सुक्केणं भंते ! महग्गहे**—भगवन् ! वह शुक्र महाग्रह, **ताओ देव लोगाओ**—उस देवलोक से, **आउक्खएण ३**—आयु पूर्ण होने पर, **कहिं गच्छिहिइ**—देवलोक से च्यवकर कहां जाएगा ?, **गोयमा ! महाविदेहे वासे**—यह शुक्र महाग्रह विदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर, **सिज्झिहिइ ५**—यावत् सिद्ध होगा, **एवं खलु जंबू** !—(सुधर्मा स्वामी कहते हैं) इस प्रकार हे जम्बू !, **समणेणं निक्खेवओ**—श्रमण भगवान महावीर ने) पुष्पिता के इस तृतीय अध्ययन मे) यह निरूपण किया है।

मूलार्थ—इस प्रकार हे गौतम ! उस शुक्र नामक महाग्रह ने वह दिव्य सभी प्रकार की देव-समृद्धि प्राप्त की। शुक्र महाग्रह की स्थिति एक पल्योपम की है।

(गौतम पूछते है) यह शुक्र महाग्रह उस देव-लोक से आयु पूर्ण होने पर देवलोक से च्यव कर कहां जाएगा ?

गौतम ! यह शुक्र महाग्रह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर यावत् सिद्ध होगा।

सुधर्मा स्वामी कहते हैं इस प्रकार हे जम्बू ! प्रभु महावीर ने पुष्पिता के तृतीय अध्ययन मे यह निरूपण किया है।

टीका—आउक्खएणं के आगे जो ३ का अक है वह आयु, भव और स्थिति का परिचायक है अर्थात् आयु, भव और स्थिति को पूर्ण कर।

"**सिज्झिहिइ**" पद के आगे ५ का अक है, उसका अभिप्राय यह है कि वह १. प्राण त्याग करेगा, २. सिद्ध होगा, ३ बुद्ध होगा, ४. मुक्त होगा और ५ सभी दुःखों का अन्त करेगा।

॥ पुष्पिता का तृतीय अध्ययन पूर्ण ॥

अथ बहुपुत्रिकाख्यं चतुर्थमध्ययनम्

बहुपुत्रिका नामक चतुर्थ अध्ययन

बहुपुत्रिका देवी कथानक

मूल—जइणं भंते ! उक्खेवओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समोसढे, परिसा निग्गया। तेणं कालेणं तेणं समएणं बहुपुत्तिया देवी सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तिए विमाणे सभाए सुहम्माए बहुपुत्तियंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं जहा सूरियाभे जाव भुंजमाणी विहरइ।

इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी पासइ, पासित्ता समणं भगवं महावीरं जहा सूरियाभो जाव णमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा सन्निसन्ना। आभियोगा जहा सूरियाभस्स, सूसरा घंटा, आभिओगियं देवं सद्दावेइ, जाणविमाणं जोयणसहस्सवित्थिण्णं, जाणविमाणवण्णओ, जाव उत्तरिल्लेणं निज्जाणमग्गेणं जोयणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं आगया जहा सूरियाभे। धम्मकहा समत्ता ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! उत्क्षेपकः। एवं खलु जम्बूः ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरं, गुणशिलकं चैत्यं, श्रेणिको राजा, स्वामी समवसृतः। परिषद् निर्गता। तस्मिन् काले तस्मिन् समये बहुपुत्रिका देवी सौधर्मे कल्पे बहुपुत्रिके विमाने सभायां सुधर्मायां बहुपुत्रिके सिंहासने चतसृभिः सामानिकसाहस्त्रीभिः चतसृभिः महत्तरिकाभिः यथा सूर्याभो यावद् भुञ्जमाणा विहरति।

इमं च खलु केवलकल्पं जम्बूद्वीपं द्वीपं विपुलेन अवधिना आभोगयन्ती आभोगयन्ती पश्यति, दृष्ट्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं यथा सूर्याभो यावद् नमस्यित्वा सिंहासनवरे पौरस्त्याऽभिमुखी संनिषण्णा। आभियोगा यथा सूर्याभस्य सुस्वरा घण्टा आभियोगिकं देवं शब्दयति यानविमानं योजनसहस्रविस्तीर्णं, यानविमानवर्णकः, यावत् उत्तरीयेण निर्याणमार्गेण योजनसाहस्त्रिकैः विग्रहैरागता यथा सूर्याभः। धर्मकथा समाप्ता ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—जइणं भंते—यदि हे भगवन्, **उक्खेवओ**—उत्क्षेपक, **एवं**—इस प्रकार, **खलु जंबू**—हे जम्बू, **तेणं कालेणं, तेणं समएणं**—उस काल, उस समय में, **रायगिहे नयरे**—राजगृह नगर में, **गुणसिलए चेइए**—गुणशील चैत्य था (वहां), **सेणिए राया**—राजा श्रेणिक था, **सामी समोसढे**—भगवान महावीर पधारे, **परिसा निग्गया**—परिषद् धर्मदेशना सुनने आई, **तेणं कालेणं, तेणं समएणं**—उस काल उस समय मे, **बहुपुत्तिया देवी**—बहुपुत्रिका देवी, **सोहम्मे कप्पे**—सौधर्म कल्प मे, **बहुपुत्तिए विमाणे**—बहुपुत्रिका विमान की, **सभाए सुहम्माए**—सुधर्म सभा मे, **बहुपुत्तियंसि सीहासणंसि**—बहुपुत्रिका सिंहासन पर विराजित, **चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं**—चार हजार सामानिक देवियो तथा, **चउहिं महत्तरियाहिं**—चार महत्तरिका देवियों के साथ, **जहा सूरियाभे**—सूर्याभ देव के समान, **जाव**—यावत्, **भुंजमाणी विहरइ**—भोगोपभोगो को भोगती हुई विचर रही थी।

इमं च णं—इस, **केवलकप्प**—अपने गुणों से युक्त, **जंबुद्दीवं**—जम्बूद्वीप नामक, **दीवं**—दीप को, **विउलेणं ओहिणा**—अपने विशाल अवधिज्ञान द्वारा, **आभोएमाणी आभोएमाणी पासइ**—उपयोग लगाकर देख रही थी इस प्रकार, **समणं भगवं महावीरं**—श्रमण भगवान महावीर को देखा, **जहा सूरियाभे**—जैसे सूर्याभ देव ने, **जाव**—यावत्, **णमंसित्ता**—सात-आठ हाथ आगे होकर नमस्कार किया, **सीहासणवरंसि**—फिर सिंहासन के ऊपर, **पुरत्थाभिमुहे**—पूर्व की ओर मुख करके, **सन्निसन्ना**—बैठ गई, **आभियोगा जहा सूरियाभस्स**—सूर्याभदेव की तरह आभियोगिक देव ने जाना, **सूसरा घंटा**—सुस्वर नामक घंटा बजाया और, **आभिओगियं देवं**—अपने आभियोगिक देव को, **सद्दावेइ**—बुलाया, **जोयणसहस्सवित्थिण्णं**—हजार योजन के विस्तार का, **जाणविमाणं**—विमान बनाने की आज्ञा प्रदान की, **जाणविमाणवण्णओ**—यान विमान का वर्णन जान लेना, **जाव**—यावत्, **उत्तरिल्लेणं निज्जाणमग्गेणं**—उत्तर की ओर जाने वाले मार्ग से, **जोयणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं**—एक हजार योजन का शरीर धारण करके, **आगया**—भगवान महावीर के समीप आई, **जहा सूरियाभे**—जैसे सूर्याभदेव, **धम्मकहा समत्ता**—धर्म-कथा समाप्त हुई।

मूलार्थ—तीसरे अध्ययन का अर्थ सुनने के पश्चात् आर्य जम्बू अपने गुरु आर्य सुधर्मा से चौथे अध्ययन का अर्थ पूछते हैं। शिष्य की जिज्ञासा को शान्त करते हुए

गुरु आर्य सुधर्मा कहते हैं–

हे जम्बू ! भगवान ने इस अध्ययन का अर्थ इस प्रकार कहा है–उस काल, उस समय में राजगृही नगरी थी, वहां गुणशील चैत्य था, वहां राजा श्रेणिक राज्य करता था। उस नगर में स्वामी (भगवान महावीर) पधारे। परिषद धर्मदेशना सुनने आई।

उस काल, उस समय मे बहुपुत्रिका देवी सौधर्म कल्प के बहुपुत्रिका विमान की सुधर्म सभा में बहुपुत्रिका सिंहासन पर विराजित हुई। चार हजार सामायिक देवियों और चार हजार महत्तरिकाओं के साथ सूर्याभ देव की तरह भोग-उपभोग करती विचर रही थी।

वह इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को अपने विशाल अवधि-ज्ञान द्वारा (उपयोग लगाकर) देख रही थी। उसने अपने ज्ञान के बल से श्रमण भगवान महावीर को देखा, जैसे सूर्याभदेव ने देखा था। बहुपुत्रिकादेवी ने सात-आठ कदम आगे आकर (श्रमण भगवान महावीर के चरणों में) नमस्कार किया और वह अपने सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठ गई। सूर्याभ देव की तरह उसने आभियोगिक देव को बुलवाया और उसने आकर सुस्वर नामक घंटा बजाकर आभियोगिक देवों को बुलाया। बुलाकर एक हजार योजन विस्तार वाला और साढे बासठ योजन ऊंचा विमान बनाने की आज्ञा दी। यह वर्णन सूर्याभ देव की तरह जान लेना चाहिए।

वह उत्तर दिशा की ओर जाने वाले मार्ग से हजार योजन का शरीर धारण कर श्रमण भगवान महावीर के समीप आई। जैसे सूर्याभ देव आया था। इस प्रकार धर्म-कथा समाप्त हुई, अर्थात् जनता ने धर्म-कथा सुनने के बाद सम्यक्ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र को ग्रहण किया।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में बहुपुत्रिका देवी के प्रभु महावीर के दर्शनार्थ समोसरण में आने का वर्णन सूर्याभदेव की तरह है। बहुपुत्रिका देवी ने भी अपने सामानिक देवों को हजार योजन लम्बा और बासठ योजन ऊंचा विमान बनाने की आज्ञा दी। फिर देवी अपने विमान में देव परिवार से युक्त होकर आई।

यहां **'उक्खेवओ'** पद का अर्थ प्रारम्भ का वाक्य है जो पुष्पिका नामक सूत्र के चौथे अध्ययन में आया है। **चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं**–पद से सिद्ध होता है कि देवियों का स्व शासन होने पर भी उनके मत्री रूप सामानिक देव भी होते हैं।

'चउहिं महत्तरियाहिं' पद से सिद्ध होता है कि बहुपुत्रिका देवी की चार महत्तरिका

देवियां थीं जो बहुपुत्रिका देवी को हर समय न्याय की शिक्षा देती थीं।

विउलेणं ओहिणा—यह सूत्र विपुल अवधिज्ञान का सूचक है। इस ज्ञान के द्वारा दूर के पदार्थ देखे जा सकते है। धम्मकहा के लिए औपपातिक सूत्र और सुस्वर घंटा के लिए जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र का स्वाध्याय करना चाहिए।

बहुपुत्रिका की नाट्यविधि / गौतम की जिज्ञासा

उत्थानिका—उसके बाद बहुपुत्रिका देवी ने क्या किया, इसी का वर्णन सूत्रकार ने किया है—

मूल—तएणं सा बहुपुत्तिया देवी दाहिणं भुयं पसारेइ देवकुमाराणं अट्ठसयं, देवकुमारियाण य वामाओ भुयाओ अट्ठसयं, तयाणंतरं च णं बहवे दारगा दारियाओ य डिंभए य डिंभियाओ य विउव्वइ, नट्टविहिं जहा सूरियाभो उवदंसित्ता पडिगया। भंतेत्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, कूडागारसाला०। बहुपुत्तियाए णं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी पुच्छा जाव अभिसमण्णागया ॥ २ ॥

छाया—ततः खलु सा बहुपुत्रिकादेवी दक्षिणं भुजं प्रसारयति देवकुमाराणामष्टशतम्, देवकुमारिकाणां च वामतो भुजतोऽष्टशतम्, तदनन्तरं च खलु बहून् दारकांश्च दारिकाश्च डिम्भकांश्च डिम्भिकाश्च विकुरुते, नाट्यविधिं यथा सूर्याभः, उपदर्श्य प्रतिगता। भदन्त ! इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, कूटागारशाला०। बहुपुत्रिकया खलु भदन्त ! देव्या सा दिव्या देवर्द्धिः पृच्छा यावत् अभिसमन्वागता ॥ २ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **सा बहुपुत्तिया देवी**—उस बहुपुत्रिका देवी ने, **दाहिणं भुयं**—दक्षिण भुजा को, **पसारेइ**—लम्बा किया, **देवकुमाराणं अट्ठसयं**—उस के बाद एक सौ आठ देवों की विकुर्वणा को किया, **देवकुमारियाण य वामाओ भुयाओ अट्ठसयं**—बाई भुजा पर एक सौ आठ देव कुमारियो की विकुर्वणा की, **तयाणंतरं च णं**—तदनन्तर, **बहवे दारगा या दारियाओ**—बहुत से दारक (आठ वर्ष की आयु वाले) और दारिकाओं की, **डिंभए य**—और डिम्भो (आठ वर्ष से अधिक आयु वाले) की, **डिंभियाओ य**—और डिंभिकाओ की, **विउव्वइ**—विकुर्वणा की, **नट्टविहिं**—नाट्य-विधि, **जहा सूरियाभो**—सूर्याभ देव की तरह, **उवदंसित्ता**—दिखाकर, **पडिगया**—चली गई। **भगवं गोयमे**—भगवान गौतम ने, **समणं भगवं महावीरं**—श्रमण भगवान महावीर को, **वंदइ नमंसइ**—वन्दना-नमस्कार करके पूछा, **भंते त्ति**—हे भगवन् ! वह नाट्य-रचना कहां समा गई ? भगवान ने, **कूडागार-**

साला—कूटागार शाला का दृष्टांत सुनाया, गौतम ने पुनः प्रश्न किया, **बहुपुत्तियाए णं देवीए**—बहुपुत्रिका देवी ने, **भंते !**—हे भगवन्, **सा**—वह, **दिव्वा**—दिव्य, **देविड्ढी**—देव-ऋद्धि, **जाव अभिसमण्णागया**—किस प्रकार प्राप्त की ?

मूलार्थ—तत्पश्चात् बहुपुत्रिका देवी ने अपनी दाईं भुजा को लम्बा किया और उस पर एक सौ आठ देव-कुमारों की विकुर्वणा करके दिखाई। इसी प्रकार बाईं भुजा पर एक सौ आठ देव-कुमारियों की विकुर्वणा करके दिखाई। फिर बहुत से आठ वर्ष के बालक एवं बालिकाओं की विकुर्वणा करके दिखाई। इस प्रकार बहुत से डिम्भों व डिंभिकाओं की विकुर्वणा करके दिखाई। सूर्याभ देव की तरह नाट्य-विधि सम्पन्न करके वह चली गई।

श्री गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दना-नमस्कार करके प्रश्न किया "हे भगवन् ! वह नाट्य-विधि रचना कहा समा गई ?" भगवान् ने कूटागार शाला का दृष्टान्त सुनाया। गौतम ने पुनः प्रश्न किया कि उस बहुपुत्रिकादेवी ने वह ऋद्धि किस प्रकार प्राप्त की ?

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे बहुपुत्रिका द्वारा भगवान महावीर के समवसरण मे नाट्य-विधि दिखाने का विस्तृत वर्णन है। बहुपुत्रिका द्वारा अपनी देव-शक्ति से अपने हाथ पर एक सौ आठ देवकुमारो और एक सौ आठ देव कुमारियों के निर्माण करने का वर्णन है। **डिम्भए व दारगाए** ये दोनो शब्द बालक के वाचक हैं। श्री गौतम स्वामी जी ने बहुपुत्रिका को देव-ऋद्धियां प्राप्त होने का कारण पूछा है।

सुभद्रा की कथा

उत्थानिका—गणधर गौतम के प्रश्न का श्रमण भगवान महावीर जो समाधान करते हैं उसी का उल्लेख शास्त्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में किया है :—

मूल—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं, तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी, अंबसालवणे चेइए। तत्थ णं वाणारसीए नयरीए भद्दे नामं सत्थवाहे होत्था, अड्ढे अपरिभूए। तस्स णं भद्दस्स य सुभद्दा नामं भारिया सुकुमाला० वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाता यावि होत्था। तए णं तीसे सुभद्दाए सत्थवाहीए अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले कुडुंबजागरियं जागरमाणीए इमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि, तं धन्नाओ णं ताओ अम्मगाओ जाव सुलद्धे णं तासिं

अम्मगाणं मणुयजम्मजीवियफले, जासिं मन्ने नियकुच्छिसंभूयगाइं थण-दुद्धलुद्धगाइं महुरसमुल्लावगाणि मंजुल (मम्मण) प्पजंपियाणि थणमूल-कक्खदेसभागं अभिसरमाणगाणि पण्हयंति, पुणो य कोमल-कमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊणं उच्छंगनिवेसियाणि देंति, समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मम्मण-(मंजुल) प्पभणिए अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एगमवि न पत्ता, ओहय० जाव झियाइ ॥ ३ ॥

छाया—एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये वाराणसी नाम नगरी, आम्रशालवनं चैत्यम्। तत्र खलु वाराणस्यां नगर्यां भद्रो नाम सार्थवाहोऽभवत् आढ्योऽपरिभूतः। तस्य खलु भद्रस्य च सुभद्रा नाम भार्या सुकुमारपाणिपादा वन्ध्या अविजनयित्री जानुकूर्परमाता चापि अभवत्। ततः खलु तस्याः सुभद्रायाः सार्थ-वाहिकायाः अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकाले कुटुम्बजागरिकां जाग्रत्या अयमेतद्रूपो यावत् संकल्पः समुदपद्यत—एवं खलु अहं भद्रेण सार्थवाहे सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहरामि, नो चैव खलु अहं दारकं वा दारिकां व प्रजनयामि, तद् धन्याः खलु ताः अम्बिकाः (मातरो) यावत् सुलब्धं खलु तासाम् अम्बिकानां (मातृणां) मनुजजन्मजीवितफलम्, यासां मन्ये निजकुक्षिसंभूतकाः स्तनदुग्धलुब्ध काः मधुरसमुल्लापकाः मञ्जुल (मम्मण) प्रजल्पिताः स्तनमूलकक्ष-देशभागम् अभिसरन्तः प्रस्नुवन्ति। पुनश्च कोमलकमलोपमाभ्यां हस्ताभ्यां गृहीत्वा उत्सङ्ग-निवेशिताः (सन्तः) ददति समुल्लापकान् सुमधुरान् पुनः पुनर्मम्मण (मञ्जुल) प्रभणितान्, अहं खलु अधन्या अपुण्या अकृतपुण्या (अस्मि यदहं) एततः (एतेषां मध्यात्) एकमपि न प्राप्ता (एवं) अपहतमनः—संकल्पा यावत् ध्यायति ॥ ३ ॥

पदार्थान्वयः—**एवं खलु गोयमा**—इस प्रकार हे गौतम, **तेणं कालेणं, तेणं समएणं**—उस काल, उस समय, **वाणारसी नामं नयरी**—वाराणसी नामक नगरी थी, **अंबसालवणे चेइए**—अम्रशालवन नामक चैत्य था, **तत्थ णं वाणारसीए नयरीए**—उस वाराणसी नगरी मे, **भद्दे नामं सत्थवाहे होत्था**—भद्र नामक सार्थवाह रहता था, **अड्ढे अपरिभूए**—जो धन-धान्य से युक्त व प्रतिष्ठित था, **तस्स णं**—उस, **भद्दस्स य सुभद्दा नामं भारिया**—उस भद्र सार्थवाह की सुभद्रा नाम की भार्या थी, **सुकुमाला०**—सुकोमल थी, किन्तु, **वंझा**—बांझ थी, **अवियाउरी**—संतान उत्पन्न करने के अयोग्य थी, **जाणुकोप्परमाता**—खाली गोद वाली अर्थात् जानु की ही माता, **यावि होत्था**—थी, **तएणं**—तत्पश्चात्, **तीसे सुभद्दाए सत्थवाहीए**—उस सुभद्रा सार्थवाही को, **अन्नया कयाइं**—अन्य किसी दिन, **पुव्वरत्तावरत्तकाले**—अर्धरात्रि के समय मे, **कुडुंबजागरियं**—कुटुम्ब जागरण के समय, **इमेयारूवे**—इस प्रकार का, **जाव**—

यावत्, **संकप्पे**–संकल्प, **समुप्पज्जित्था**–उत्पन्न हुआ, **एवं खलु**–निश्चय ही, **अहं**–मैं, **भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं**–भद्र सार्थवाह के साथ, **विउलाइं**–विपुल, **भोगभोगाइं**–भोगों उपभोगों में, **भुंजमाणी**–भोगती हुई, **विहरामि**–विचर रही हूं, **नो चेव णं**–इस पर भी, **अहं दारगं वा दारियं वा पयामि**–मैंने किसी बालक व बालिका को उत्पन्न नहीं किया, **तं धन्नाओ णं ताओ अम्मगाओ**–वे माताएं धन्य हैं, **जाव**–यावत्, **सुलद्धे**–सुलभ हैं, **णं तासिं अम्मगाणं**–उन माताओ ने ही, **मणुयजम्मजीवियफले**–मनुष्य-जन्म का फल पाया है, **जासिं**–जिन्होंने, **मन्ने नियकुच्छिसंभूयगाइं**–अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुई संतान को, **थण- दुद्धलुद्धगाइं**–स्तनपान की इच्छा है, **महुरसमुल्लावगाणि**–उन बच्चों के मधुर स्वर सुनती हैं, **मंजुल (मम्मण) प्पजंपियाणि**–उन बच्चों के मनोहर वाक्य सुनती हैं और, **थणमूलकक्खदेसभागं**–उन बच्चो को अपने स्तनमूल मे उठा-उठाकर अर्थात् छाती से लगाकर, **अभिसरमाणगाणि पण्हयंति**–घूमती हैं, **पुणो य**–तथा, **कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं**–कमल तुल्य कोमल हाथों से, **गिण्हिऊणं**–ग्रहण कर, **उच्छंग- निवेसियाणि**–अपनी गोद में बिठाती हैं, **देंति**–देती हैं, **समुल्लावए**–समुल्लाप–मीठे वचनों से, **सुमहुरे**–मीठे, **पुणो पुणो**–बार-बार, **मम्मण (मंजुल) प्पभणिए**–मनोहर लोरियां बच्चों को देती हैं, **अहं णं**–मैं, **अधण्णा**–अधन्य, **अपुण्णा**–पुण्यहीन, **अकयपुण्णा**–पूर्व जन्म के पुण्य उपार्जन से रहित हूं, और, **एत्तो एगमवि**–एक भी सन्तति को, **न पत्ता**–नहीं प्राप्त किया, **ओहय०**–नजर झुका कर, **जाव**–यावत्, **झियाइ**–आर्त्त ध्यान अर्थात् दुःख भरा जीवन यापन करने लगी।

मूलार्थ–भगवान महावीर ने बताया कि इस प्रकार हे गौतम ! उस काल, उस समय मे वाराणसी नाम की एक नगरी थी, वहां आम्रशालवन नामक चैत्य था, उस वाराणसी नगरी मे भद्र नाम का एक सार्थवाह रहता था, जिसकी सुभद्रा नामक भार्या थी। वह सुकोमल थी, किन्तु बांझ थी, सतान उत्पन्न करने के अयोग्य थी। उसकी गोद खाली थी, वह जानुकूर्परमाता थी अर्थात् सोते समय उसके उदर के साथ जानु ही होता था, कोई बालक नहीं। तत्पश्चात् किसी समय अर्धरात्रि में कुटुम्ब जागरण करते हुए, उसके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुए–मैं (वर्षो से) निश्चय ही भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगों-उपभोगों का सेवन करते हुए जीवन-यापन कर रही हूं, परन्तु मेरे घर में एक भी बालक या बालिका का जन्म नहीं हुआ। वे माताएं धन्य हैं, सुलभ हैं। उन माताओं ने ही मनुष्य-जन्म का फल पाया है जिन्होंने अपनी कुक्षि से संतान उत्पन्न की है, संतान को दूध पिलाया है, अपने बच्चों के मधुर स्वर सुने हैं, मनोहर वाक्य सुने हैं, बच्चों को छाती से लगाकर घुमाती हैं, फिर बच्चों के

कमल तुल्य कोमल हाथों को पकड़कर बच्चे को गोदी में बिठाती हैं, अपने मीठे-मीठे वचनों व समुल्लापों के साथ बार-बार मनोहर लोरियां देती हैं।

अहो ! मै कितनी अधन्य हू, पुण्यहीन हू, पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के पुण्य से रहित हूं कि मेरी एक भी सन्तान नहीं है।

इस प्रकार (वह) नजर झुका (शीश निवाकर) यावत् आर्तध्यान करती है, दुःख-भरा जीवन-यापन करती है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में मां की सतान के प्रति ममता का मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया गया है। सुभद्रा हर बाझ स्त्री का प्रतिनिधित्व कर रही है। सासारिक मनुष्य पुत्र-प्राप्ति को ही सुख का मार्ग मानते हैं, क्योकि वे मानते हैं कि पुत्र ही वश-परम्परा का प्रतिनिधि है। इसीलिए सुभद्रा बहुत दुःखी है, क्योकि वह बाझ है, संतान उत्पन्न करने के अयोग्य है। यह सूत्र माता की सतान के प्रति सहज चिंता का चित्रण भी करता है।

वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था—वह सुभद्रा केवल वंध्या ही न थी, यदि कोई संतान पैदा भी हो जाती तो वह मृतक होती थी, इस कारण वह सुभद्रा सन्तान-हीन ही थी। रात्रि को सोते समय उसके उदर के साथ केवल जानु का ही स्पर्श होता था, न कि बच्चे का। इसलिए उसे "जानुकूपर माता" कहा गया है।

प्रस्तुत सूत्र में सुभद्रा उन माताओ के सुख का चिंतन कर रही है जो बच्चों को दूध पिलाती है, गोद मे उठाकर छाती से लगाती है, मीठे वचनो से उन्हे लोरियां देती है। दूसरी बात यह है कि किसी पूर्व कृत अशुभ कर्म के कारण उसे बच्चे का मुंह देखना नसीब नही हुआ। इस सूत्र मे सुभद्रा अपने आप को कोसती है।

बांझ का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है।

'वंझा' त्ति अपत्यफलणलाभे क्षया निष्फला अवियाउरि त्ति प्रसवानन्तरमपत्यमरणी वापि फलतो वन्ध्या भवति, अत उच्यते-अवियाउरि त्ति अजननशीलाऽपत्यानाम् तदेवाहं।

आर्या सुव्रता का पदार्पण तथा सुभद्रा का निवेदन

उत्थानिका:—अब आगे नगरी मे सुव्रता आर्या के आगमन का वर्णन व सुभद्रा द्वारा साध्वी जीवन ग्रहण करने का उल्लेख शास्त्रकार ने विस्तार पूर्वक किया है—

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ णं अज्जाओ इरियासमियाओ भासासमियाओ एसणासमियाओ आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमि-

याओ उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपारिट्ठावणासमियाओ मणगुत्तीओ वयगुत्तीओ कायगुत्तीओ गुत्तिंदियाओ गुत्तबंभयारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणीओ गामाणुगामं दूइज्जमाणीओ जेणेव वाणारसी नयरी तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता, अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरंति।

तएणं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए वाणारसीनयरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे भद्दस्स सत्थवाहस्स गिहं अणुपविट्ठे।

तएणं सुभद्दा सत्थवाही ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभित्ता एवं वयासी—एवं खलु अहं अज्जाओ! भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं दारियं वा पयामि, तं धन्नाओ णं ताओ अम्मगाओ जाव एत्तो एगमवि न पत्ता, तं तुब्भे अज्जाओ ! बहुणायाओ बहुपढियाओ बहूणि गामागरनगर० जाव सण्णिवेसाइं आहिंडह, बहूणं राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईणं गिहाइं अणुपविसह, अत्थि से केइ कहिं चि विज्जापओए वा मंतप्पओए वा वमणं वा विरेयणं वा वत्थिकम्मं वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धे, जेणं अहं दारगं वा दारियं वा पयाएज्जा ॥ ४ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये सुव्रताः खलु आर्याः ईर्यासमिताः, भाषासमिताः, एषणासमिताः, आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिताः, उच्चारप्रस्त्रवणश्लेष्मजल्लसिंघाणपरिष्ठापनासमिताः, मनोगुप्तिकाः, वचोगुप्तिकाः, कायगुप्तिकाः, गुप्तेन्द्रियाः, गुप्तब्रह्मचारिण्यः, बहुश्रुताः बहुपरिवाराः पूर्वानुपूर्व चरन्त्यः ग्रामानुग्रामं द्रवन्त्यः यत्रैव वाराणसी नगरी तत्रैवोपागताः, उपागत्य यथाप्रतिरूपम् अवग्रहं अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन्त्यो विहरन्ति।

ततः खलु तासां सुव्रतानामार्याणाम् एकः सङ्घाटको वाराणसीनगर्या उच्चनीचमध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायै अटन् भद्रस्य सार्थवाहस्य गृहमनुप्रविष्टः।

ततः खलु सुभद्रा सार्थवाहिका ता आर्याः एजमानाः पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टा यावत् क्षिप्रमेव आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति, अनुगत्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा विपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन प्रतिलभ्य एवमवादीत्– एवं खलु अहम् आर्याः ! भद्रेण सार्थवाहेन सार्द्ध विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहरामि, नो चेव खलु अहं दारकं दारिकां वा प्रजनयामि, तद् धन्याः खलु ताः अम्बिकाः (मातरः) यावत्–एततः (अहं) एकमपि न प्राप्ता, तद् यूयम् आर्या! बहुज्ञात्र्यः बहुपठिताः बहून् ग्रामाऽऽकरनगर० यावत् सन्निवेशान् आहिण्डध्वे बहूनां राजेश्वरतलवर० यावत् सार्थवाहप्रभृतीनां गृहान् अनुप्रविशथ, अस्ति स कश्चित् क्वचित् विद्याप्रयोगो वा मन्त्रप्रयोगो वा वमनं वा विरेचनं वा वस्तिकर्म वा औषधं व भैषज्यं वा उपलब्धं येनाहं दारकं वा दारिकां वा प्रजनयामि ॥ ४ ॥

पदार्थान्वयः–तेणं कालेणं तेणं समएणं–उस काल, उस समय में, **सुव्वयाओ णं अज्जाओ**–सुव्रता नामक आर्या अर्थात् साध्वी, **इरियासमियाओ**–ईया समिति, **भासासमियाओ**– भाषा समिति, **एसणासमियाओ**–एषणा समिति, **आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमियाओ**–आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपण समिति, **उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपारिट्ठावणासमियाओ**–उच्चार प्रस्रवणश्लेष्मसिंघाण परिष्ठापनासमिति, **मणुगुत्तिओ**–मन गुप्ति, **वयगुत्तीओ**–वचन गुप्ति, **कायगुत्तीओ**–काया गुप्ति, **गुत्तिंदियाओ**– प्रत्येक इन्द्रिय पर नियन्त्रण रखने वाली, **गुत्तबभयारिणीओ**–गुप्त ब्रह्मचारी, अर्थात् इन्द्रियो को गुप्त रखने वाली, जिससे ब्रह्मचर्य का ठीक ढंग से पालन हो सके, **बहुस्सुयाओ**–बहुश्रुता, **बहुपरिवाराओ**–बहुत शिष्य परिवार वाली, **पुव्वाणुपुव्विं**–क्रम पूर्वक, **चरमाणीओ**–विचरती हुई, **गामाणुगामं**–ग्रामानुग्राम, **दूइज्जमाणीओ**–भ्रमण करती हुई, **जेणेव**–जहां, **वाणारसी**–वाराणसी, **नयरी**–नगरी थी, **तेणेव उवागया**–वहां आई, **उवागच्छित्ता**–आकर, **अहापडिरूवं**–विधि-पूर्वक, **ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं**–शैय्या आदि उपकरण ग्रहण करने की आज्ञा लेकर, **संजमेणं तवसा**–सयम और तप से अपनी आत्मा को पवित्र करती हुई, **विहरंति**–विचरती थी।

तएणं–तत्पश्चात्, **तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं**–उस सुभद्रा आर्या का, **एगे संघाडए**–एक सिंघाड़ा अर्थात् दो साध्वियों का समूह, **वाणारसीनयरीए**–वाराणसी नगरी के, **उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं**–उच्च, नीच, मध्यम कुलों के, **घरसमुदाणस्स**–घरों के समूह में, **भिक्खायरियाए**–भिक्षा के लिए, **अडमाणे**–विचरण करते हुए, **भद्दस्स सत्थवाहस्स**–भद्रसार्थवाह के, **गिहं**–घर में, **अणुपविट्ठे**–प्रवेश किया।

तएणं–तत्पश्चात्, **सुभद्दा सत्थवाही**–सुभद्रा सार्थवाही, **ताओ अज्जाओ**–उन साध्वियों (आर्याओ) को, **एज्जमाणीओ**–आते हुए, **पासइ पासित्ता**–देखा और देखकर, **हट्ठ**–प्रसन्न

किया, **जाव**–यावत्, **खिप्पामेव**–शीघ्र ही, **आसणाओ**–आसनों से, **अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता**–उठी और उठकर, **सत्तट्ठपयाइं**–सात आठ कदम आगे होकर, **अणुगच्छइ**–लेने आई और, **अणुगच्छित्ता**–और अन्दर बुलाकर, **वंदइ नमंसइ**–वंदन-नमस्कार करती है, **वंदित्ता नमंसित्ता**–वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात्, **विउलेणं**–विपुल, **असणपाणखाइम-साइमेणं**–अशन-पान, स्वादि व खादिम चारों प्रकार का भोजन, **पडिलाभित्ता**–उनको देने का लाभ लेकर, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगी, **एवं खलु**–इस प्रकार निश्चय ही, **अहं**–मैं, **अज्जाओ**–साध्वियो ! **भद्देणं सत्थवाहेणं**–भद्र सार्थवाह के, **सद्धिं**–साथ, **विउलाइं भोगभोगाइं**–विपुल भोग उपभोग भोगती हुई, **विहरामि**–विचर रही हूं, **नो चेव णं**–फिर भी अभी तक, **अहं**–मैं, **दारगं दारियं वा**–पुत्र या पुत्री, **नो पयामि**–पैदा नहीं कर सकी, **तं**–अतः, **धन्नाओ**–धन्य है वे, **ताओ अम्मगाओ**–जो बच्चों की माताए हैं, **जाव**– यावत्, **एत्तो एगमवि**–किन्तु मैं एक भी बच्चे को, **न पत्ता**–पैदा न कर सकी, **तं तुब्भे अज्जाओ**–हे साध्वियो । मैं आप से प्रार्थना करती हू कि आप, **बहुणायाओ**–बहुत ज्ञानवान हो, **बहुपढियाओ**–बहुत पढ़ी-लिखी हो, **बहूणि गामागरनगर०**–बहुत से ग्राम नगरों में भ्रमण, **जाव**–यावत्, **सण्णिवेसाइं**–सन्निवेशो, **आहिंडह**–विचरती हो, **बहूणं राईसरतलवर जाव सत्थवाह- प्पभिईणं**–बहुत से राजाओं, तलवर, सेठों यावत् सार्थवाहो के, **गिहाइं**–घरो मे, **अणुपविसह**–प्रवेश करती हो, **अत्थि से केइ**–क्या कोई, **कहिं चि**–किसी भी जगह, **विज्जापओए वा**–विद्या प्रयोग से, **मंतप्पओए वा**–मंत्र प्रयोग से, **वमणं वा विरेयणं वा वत्थिकम्मं वा**–वमन, विरेचन, बस्तिकर्म तथा, **ओसहे वा भेसज्जे वा**–औषधि भेषज, **उवलद्धे**–उपलब्ध की है, **जेणं**–जिसके प्रयोग से, **अहं**–मैं, **दारगं वा दारियं वा पयाएज्जा**–लड़का व लड़की उत्पन्न कर सकू ।

मूलार्थ–उस काल और उस समय में आर्या (साध्वी) सुव्रता ईर्या-भाषा-एषणा, आदान भण्डमात्रनिक्षेप-उच्चार प्रस्रवण श्लेष्मसिंघाण परिष्ठापना आदि समितियों से युक्त, मन-गुप्ति, वचन-गुप्ति व काय-गुप्ति से युक्त, इन्द्रियों को वश में रखने वाली गुप्त ब्रह्मचारिणी, बहुश्रुता, अपनी बहुत-सी शिष्याओं के धर्म परिवार के साथ, गांव-गांव में धर्म-प्रचार करती हुई जहां वाराणसी नगरी थी वहां पधारीं, आकर विधिपूर्वक स्वामी की आज्ञा से स्थान व शैय्या आदि उपकरण ग्रहण किए। फिर संयम व तप से अपनी आत्मा को पवित्र किया।

तत्पश्चात् आर्या सुव्रता की साध्वियों का एक संघाड़ा भिक्षा के लिए वाराणसी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गवेषणा करता हुआ भिक्षा के लिए भद्रसार्थवाह के घर पहुंचा।

तत्पश्चात् सुभद्रा सार्थवाही उन साध्वियों को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। अपना आसन छोडकर वह उन्हें लेने के लिए सात-आठ कदम आगे आई। वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् विपुल (लेने योग्य विशाल) अशन-पान-खादिम-स्वादिम चारों प्रकार का भोजन देकर लाभान्वित हुई। भोजन देने के पश्चात् वह साध्वियों से इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—हे आर्याओ ! मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोग उपभोग भोगती हुई आनन्द से जीवन-यापन कर रही हूं किन्तु मेरे एक भी बालक या बालिका उत्पन्न नहीं हुई। वे माताएं धन्य हैं जो किसी बच्चे को उत्पन्न करती है, हे आर्याओ ! आप तो बहुत ज्ञान वाली हैं, आपने बहुत कुछ पढ़ा-लिखा है। बहुत से ग्राम, नगर आकर व सन्निवेश घूमे हैं, बहुत से राजा, तलवर सेठ और सार्थवाहो के यहां (घरो में) आप आती-जाती रहती हैं। क्या कोई ऐसी विद्या है, कोई मंत्र प्रयोग है, वमन, विरेचन या बस्तिकर्म आदि क्रिया है, औषध-भेषज उपलब्ध है, जिसके प्रयोग से मैं बालक या बालिका को जन्म देने के योग्य हो सकूं।

टीका—प्रस्तुत सूत्रों में माता की सन्तान के प्रति सहज चिन्ता का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। साथ मे साध्वी सुव्रता के वाराणसी मे आगमन का वर्णन है। साध्वी सुव्रता साधु-जीवन के पाच महाव्रतों से युक्त हैं, पाच समितियों व तीन गुप्तियों से युक्त है, वह स्वामी की आज्ञा से धार्मिक उपकरण लेकर ठहरती हैं। आर्या सुव्रता जी का विशाल शिष्या-परिवार है, उनके ज्ञान व श्रुत की चर्चा देश-देशान्तरों तक फैली हुई है। सम्भवत: इसी कारण उनका विहार क्षेत्र भी विशाल है। उन साध्वियों में दो साध्वियां अपनी गुरुणी की आज्ञा से वाराणसी के उच्च-नीच व मध्यम कुलों आदि अज्ञात कुलों में भिक्षा के लिए घूम रही हैं, क्योकि साधु हर घर से भिक्षा नहीं ले सकता। उसे भिक्षा सभी दोष टाल कर लेनी होती है।

उन साध्वियो से वह सुभद्रा अपनी मनो-व्यथा वर्णन करती है कि कोई विद्या, मंत्र, यत्र, औषधि, भस्म ऐसी बताओ जिससे मेरे भी सतान उत्पन्न हो जाए। संतान न होने के कारण सुभद्रा स्वयं को हीन मान रही है। इसी हीन भावना के आधीन होकर उसने अपनी सारी जीवन-गाथा साध्वियों के सामने स्पष्ट की। लगता है कि सुभद्रा हर समय संतान की चिंता में डूबी रहती थी।

कुल समुदाणिस्स भिक्खायरियाए गृहेषु सुदानं भिक्षाटनं गृहसमुदानं भैक्षं तद्धि भिक्षाटनम्—अर्थात् साधु को उच्च, नीच, मध्यम, अमीर, गरीब सभी के यहां बिना कुल पूछे जाना चाहिए।

सिंघाडए अर्थात **साध्वीसंघाटक** से तात्पर्य है कि भिक्षा के लिए कम से कम दो

साध्वियां अवश्य जाएं, जैसे सूत्रकृतांग सूत्र में षट् साधुओं के तीन संघाटक माने गए हैं।

यद्यपि संतान प्राप्ति पूर्व कर्मों के पुण्य से होती है, फिर भी सूत्रकृतांग सूत्र के द्वितीय स्कन्ध में **गब्भाकरे** अर्थात् गर्भ धारण विद्या का उल्लेख है, जिसके द्वारा गर्भ धारण किया जा सकता था। **सत्तट्ठपयाइं**—इस सूत्र से गुरु-भक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है।

साध्वियों का उत्तर

उत्थानिका—तब उन साध्वियो के सिंघाड़े ने क्या उत्तर दिया, उसी का वर्णन सूत्रकार आगे करते हैं—

मूल—तएणं ताओ अज्जाओ सुभद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—अम्हे णं देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ जाव गुत्तबंभयारिणीओ नो खलु कप्पइ अम्हं एयमट्ठं कण्णेहिं वि णिसामित्तए, किमंग ! पुण उद्दिसित्तए वा समायरित्तए वा, अम्हे णं देवाणुप्पिए ! णवरं तव विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहेमो ॥ ५ ॥

छाया—ततः खलु ता आर्यिकाः सुभद्रां सार्थवाहीमेवमवादिषुः—वयं खलु देवानुप्रिये ! श्रमण्यो निर्ग्रन्थिण्यः ईर्य्यासमिता यावत् गुप्तब्रह्मचारिण्यः, नो खलु कल्पते अस्माकम् एतमर्थं कर्णाभ्यामपि निशामयितुं किमङ्ग ! पुनरुपदेष्टुं वा समाचरितुं वा, वयं खलु देवानुप्रिये ! नवरं तव विचित्रं केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं परि-कथयामः ॥ ५ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **ताओ अज्जाओ**—वे आर्याएं, **सुभद्दं सत्थवाहिं**— सुभद्रा सार्थवाही से, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहने लगीं, **अम्हे णं देवाणुप्पिए**—हे देवानुप्रिय हम, **समणीओ निग्गंथीओ**—श्रमणी है निर्ग्रन्थनी है, **इरियासमियाओ**—ईर्या-समिति की पालन करने वाली है, **जाव गुत्तबंभयारिणीओ**—यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी है, **नो खलु कप्पइ**—नहीं कल्पता, **अम्हं**—हमें, **एयमट्ठं**—इस प्रकार की बात, **कण्णेहिं वि णिसा-मित्तए**—कानो से सुनना भी, **किमंग पुण**—तब फिर, **उद्दिसित्तए वा समायरित्तए वा**—उपदेश करने के लिए और आचरण करने के लिए, **अम्हे णं**—हम लोग, **देवाणुप्पिए !**—हे देवानुप्रिये। **णवरं**—हां इतना कह सकती हैं, **तव**—तुम्हारे लिये, **विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं**—अपूर्व केवली प्ररूपित धर्म को, **परिकहेमो**—कह-सुन सकती है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे साध्वियां सुभद्रा सार्थवाही से इस प्रकार कहने लगीं—हे देवानुप्रिये ! हम श्रमणी हैं, निर्ग्रन्थनी हैं, ईर्या आदि समितियों यावत् तीन गुप्तियो (मन, वचन, काया) द्वारा ब्रह्मचर्य आदि पांच महाव्रतों का पालन करती हैं, हमें इस

प्रकार का कथन कानों से सुनना भी नहीं कल्पता, अर्थात् हमारे लिए यह बात सुनना पाप है, फिर ऐसी बात का कहना व करना तो एक तरफ रहा।

हे देवानुप्रिये ! हम आपको केवली-प्ररूपित धर्म जो कि अपूर्व है, सुना सकती हैं।

टीका–प्रस्तुत सूत्रों मे बताया गया है कि जब साध्वियों ने भद्रा सेठानी की बातें सुनीं तो उन्होंने जैन धर्म के साधु-जीवन का सार उसे समझाया कि जैन साधु-साध्वी पांच महाव्रत, पांच समितियों व तीन गुप्तियों का कठोरता से पालन करते हैं। उन्हें इस तरह की सासारिक बातों से कुछ लेना-देना नहीं। वे तो वीतराग सर्वज्ञ केवलियों द्वारा प्ररूपित शाश्वत धर्म सुना सकती हैं, जिसे सुनकर इहलोक और परलोक में कल्याण होता है।

सुभद्रा द्वारा श्रावक धर्म ग्रहण

मूल–तएणं सुभद्दा सत्थवाही तासिं अज्जाणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा ताओ अज्जाओ तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–सद्दहामिणं अज्जाओ ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामिणं० रोएमिणं अज्जाओ ! निग्गंथं पावयणं ! एवमेयं, तहमेयं, अवितहमेयं, जाव सावगधम्मं पडिवज्जित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेह। तएणं सा सुभद्दा सत्थवाही तासिं अज्जाणं अंतिए जाव पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ पडिविसज्जेइ ॥ ६ ॥

छाया–ततः खलु सुभद्रा सार्थवाही तासामार्याणामन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा ता आर्यास्त्रिकृत्वा वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–श्रद्दधामि खलु आर्याः ! निर्ग्रन्थं प्रवचनं, प्रत्येमि खलु, रोचयामि खलु आर्याः ! निर्ग्रन्थं प्रवचनम् एवमेतत्, तथ्यमेतत् अवितथमेतत्, यावत् श्रावकधर्मं प्रतिपद्ये।

यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबन्धं कुरु। ततः खलु सा सुभद्रा सार्थवाही तासामार्याणामन्तिके यावत् प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य ता आर्याः वन्दते नमस्यति प्रतिविसर्जयति ॥ ६ ॥

पदार्थान्वयः–**तएणं**–तत्पश्चात्, **सुभद्दा सत्थवाही**–सुभद्रा सार्थवाही, **तासिं**–उन, **अज्जाणं**–आर्याओं के, **अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म**–धर्म सुनती है और सुन कर, **हट्ठतुट्ठा**–बहुत प्रसन्न होती है, **ताओ अज्जाओ**–उन आर्याओं को, **तिक्खुत्तो**–तीन

बार, **वंदइ नमंसइ**–वन्दना-नमस्कार करती है, **वंदित्ता नमंसित्ता**–वन्दन-नमस्कार करने के बाद, **एवं वयासी**–इस प्रकार बोली, **सद्दहामि णं अज्जाओ**–हे आर्याओं मैं श्रद्धा करती हूं, **निग्गंथं पावयणं**–निर्ग्रन्थ प्रवचन पर, **पत्तियामि णं**–प्रतीति करती हूं, **रोएमि णं**–रुचि करती हूं, **निग्गंथं पावयणं**–निर्ग्रन्थ प्रवचन पर, **एवमेयं**–जैसे कहा है, **तहमेयं**–वैसा ही सत्य है, **अवितहमेयं**–यह यथार्थ है, **जाव**–यावत्, **सावगधम्मं पडिवज्जित्तए**–कि मैं श्राविका धर्म को ग्रहण करना चाहती हूं।

अहासुहं देवाणुप्पिए–हे देवानुप्रिये ! जैसे आप को सुख हो, **मा पडिबंधं करेह**–प्रमाद मत करो, **तएणं**–तत्पश्चात्, **सा सुभद्दा सत्थवाही**–वह सुभद्रा सार्थवाही, **तासिं अज्जाणं**–उन आर्याओं के, **अंतिए**–समीप, **जाव**–यावत्, **पडिवज्जइ**–श्रावक धर्म को स्वीकार करती है, **पडिवज्जित्ता**–स्वीकार करके, **ताओ अज्जाओ**–उन साध्वियों को, **वंदइ नमंसइ**–वन्दना-नमस्कार करके, **पडिविसज्जेइ**–उन्हे विदा करती है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह सुभद्रा सार्थवाही उन साध्वियों से केवली (अर्हत्) प्ररूपित धर्म सुनकर तथा विचार कर उन्हें वन्दना-नमस्कार करती हुई इस प्रकार कहने लगी–हे साध्वियो ! मै निर्ग्रन्थ-प्रवचन मैं श्रद्धा करती हूं, प्रतीति करती हूं, रुचि करती हूं, जैसा आपने कथन किया है वह (तथ्य है) वैसा ही है, सर्वथा सत्य है, उसमें जरा सा भी असत्य नहीं है, यावत् मैं श्राविका-धर्म को स्वीकार करना चाहती हूं।

साध्वियो ने कहा–जैसे आपकी आत्मा को सुख हो, वैसा करो, पर अच्छे कार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए। तत्पश्चात् वह सुभद्रा सार्थवाही उन आर्याओं (साध्वियों) के समीप श्रावक-धर्म ग्रहण करती है, यावत् ग्रहण करने के पश्चात् उन्हें वन्दना-नमस्कार करके लौट जाती है। (तब से वह) श्रमणोपासिका का जीवन व्यतीत करने लगती है।

सुभद्रा का वैराग्य

मूल–तएणं सुभद्दा सत्थवाही समणोवासिया जाया जाव विहरइ। तएणं तीसे सुभद्दाए समणोवासियाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमए कुडुंबजागरियं जागरमाणीए समाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु अहं भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणी जाव विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि, तं सेयं खलु ममं कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते भद्दस्स आपुच्छित्ता सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए अज्जा भवित्ता अगाराओ जाव पव्वइत्तए, एवं संपेहेइ,

संपेहित्ता, कल्लं जेणेव भद्दे सत्थवाहे तेणेव उवागया, करतल०—जाव एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं सद्धिं बहूइं वासाइं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी जाव विहरामि, नो चेव णं दारगं वा दारियं वा पयामि! तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वइत्तए ॥ ७ ॥

छाया—ततः खलु सुभद्रा सार्थवाही श्रमणोपासिका जाता यावद् विहरति। ततः खलु तस्याः सुभद्रायाः श्रमणोपासिकाया अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्र-काले कुटुम्बजागरिकां जाग्रत्या सत्याः अयमेतद्रूपो—आध्यात्मिकः यावत् संकल्पः समुत्पद्यत्—एवं खलु अहं भद्रेण सार्थवाहेन सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जमाना यावद् विहरामि, नो चैव खलु अहं दारकं वा दारिकां वा प्रजनयामि, तत् श्रेयः खलु मम कल्ये प्रादुर्यावत् ज्वलति भद्रमापृच्छ्य सुव्रतानामार्याणामन्तिके आर्या भूत्वा अगाराद् यावत् प्रव्रजितुम्। एवं संप्रेक्षते संप्रेक्ष्य कल्ये यत्रैव भद्रः सार्थवाहस्तत्रैवोपागता, करतल०—यावत् एवमवादीत्—एवं खलु अहं देवानुप्रियाः! युष्माभिः सार्द्धं बहूनि वर्षाणि विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना यावद् विहरामि, नो चैव खलु दारकं वा दारिकां वा प्रजनयामि, तत् इच्छामि खलु देवानुप्रियाः ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती सुव्रतानामार्याणामन्तिके यावत् प्रव्रजितुम् ॥ ७ ॥

पदार्थान्वय—**तएणं**—तत्पश्चात्, **सुभद्दा सत्थवाही समणोवासिया जाया**—सुभद्रा सार्थवाही श्रमणोपासिका बन कर, **जाव**—यावत्, **विहरइ**—विचरण करने लगी, **तएणं**—तत्पश्चात्, **तीसे सुभद्दाए समणोवासियाए**—उस सुभद्रा श्रमणोपासिका को, **अण्णया कयाइ**—अन्य किसी समय, **पुव्वरत्तावरत्तकालसमए**—मध्य रात्रि में, **कुडुंबजागरियं जागर-माणीए समाणीए**—कुटुम्ब जागरण करते हुए, **अयमेयारूवे अज्झत्थिए**—इस प्रकार के विचार उत्पन्न हुए, **जाव**—यावत्, **संकप्पे समुप्पज्जित्था**—सकल्प उत्पन्न हुआ, **एवं खलु**—निश्चय ही, **अहं**—मैं, **भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं**—भद्र सार्थवाह के साथ, **विउलाइं भोग-भोगाइं भुञ्जमाणी**—विपुल भोग-उपभोग भोगती हुई, **जाव**—यावत्, **विहरामि**—विचर रही हूं, **नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि**—मेरे यहां कोई भी बालक व बालिका का जन्म नहीं हुआ, **तं सेयं खलु**—इसलिए मुझे उचित है कि, **ममं कल्लं पाउप्पभायाए**—कल दिन होते ही, **जाव**—यावत्, **जलंते**—सूर्योदय के समय, **भद्दस्स**—भद्र सार्थवाह को, **आपुच्छित्ता**—पूछकर, **सुव्वयाणं अज्जाणं**—सुव्रता आर्या के, **अंतिए**—समीप, **अज्जा भवित्ता अगाराओ**—आर्या बनकर अनगार होने के हेतु, **जाव पव्वइत्तए**—यदि प्रव्रज्या ग्रहण करूं, **एवं संपेहेइ संपेहित्ता**—इस प्रकार विचार किया और विचार करके, **कल्लं जेणेव भद्दे**

सत्थवाहे–दूसरे दिन जहां भद्र सार्थवाह था, **तेणेव उवागया**–वह वहां आई, **करतल० जाव**–हाथ जोड़कर यावत्, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगी, **एवं खलु**–इस प्रकार निश्चय ही, **अहं देवाणुप्पिया**–हे देवानुप्रिय मुझे, **तुब्भेहिं सद्धिं**–तुम्हारे साथ, **बहूइं वासाइं**–बहुत वर्षो से, **विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी जाव**–विपुल भोग भोगती हुई यावत्, **विहरामि**–रह रही हू, **नो चेव णं दारगं वा दारियं वा पयामि**–मेरे कोई बालक या बालिका का जन्म नही हुआ, **तं**–इसलिए, **इच्छामि णं**–मेरी इच्छा है, **देवाणुप्पिया**–हे देवानुप्रिय ! **तुब्भेहिं**–आप से, **अब्भणुण्णाया समाणी**–आज्ञा पाकर, **सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वइत्तए**–सुव्रता आर्या के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर लूं।

मूलार्थ–तत्पश्चात् उस सुभद्रा श्रमणोपासिका को किसी दिन अर्ध-रात्रि के समय कुटुम्बजागरण करते हुए इस प्रकार आध्यात्मिक संकल्प पैदा हुआ कि मुझे भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोग भोगते काफी समय व्यतीत हो गया है, फिर भी मेरे कोई लडका या लड़की उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए मुझे यही उचित है कि प्रातः सूर्योदय होते ही मैं भद्र सार्थवाह की आज्ञा लेकर साध्वी सुव्रता के समीप जाकर आर्या (साध्वी) बन जाऊं, अर्थात् दीक्षा अंगीकार कर लूं।

इस प्रकार विचार करके प्रातः ही जहां भद्र-सार्थवाह था वहां आई और दोनो हाथ जोड़कर इस प्रकार विनय करने लगी–हे देवानुप्रिय ! आपके साथ विपुल भोग भोगते हुए मुझे लम्बा समय व्यतीत हो गया है, फिर भी मेरे बालक या बालिका उत्पन्न नहीं हुआ। हे देवानुप्रिय ! मेरी इच्छा है कि आपकी आज्ञा लेकर मैं सुव्रता आर्या के चरणो में दीक्षा अंगीकार करूं।

टीका–सुभद्रा यह सोचने लगी कि संसार के भोग भोगते हुए लम्बा समय गुजर चुका है मेरे कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, मैं कल प्रातः ही अपने पति से आज्ञा लेकर साध्वी सुव्रता जी के पास पांच महाव्रतों को धारण करूंगी। अगली सुबह वह अपने पति के पास आई, उसने पति को नमस्कार किया और अपने मनोगत भाव इस प्रकार प्रकट किए–हे देवानुप्रिय ! मुझे आपके साथ विपुल भोग-उपभोग भोगते लम्बा समय व्यतीत हो गया है किन्तु मेरे यहां एक भी बालक व बालिका उत्पन्न नहीं हुई। इसलिए मैं आपकी आज्ञा से साध्वी बनना चाहती हूं। सुभद्र सेठ ने अपनी पत्नी को बहुत तर्क, वितर्क तथा प्रलोभनों द्वारा सांसारिक सुखो का वास्ता दिया, पर सुभद्रा अपने निश्चय पर अडिग रही। लम्बी वार्तालाप के बाद भद्र सेठ को न चाहते हुए भी आज्ञा देनी पडी। प्रस्तुत सूत्र में सुभद्रा सेठानी की गुणग्राहिता, विनम्रता, शालीनता एव शिष्टाचार का दिग्दर्शन

कराया गया है। साथ में उसकी दीक्षा का कारण उसका बांझपन है जिससे दु:खी होकर एक माता होने के नाते उसे सारे सुख बेकार लगते हैं।

इस सूत्र से यह सिद्ध होता है कि धर्म सुनने से निश्चित ही लाभ होता है। धर्म (धार्मिक विचार) सुनकर जीव निर्ग्रन्थ-प्रवचन के प्रति श्रद्धावान हो जाता है। कहा भी है–

जीवदया सच्चवयणं परधणवज्जणं सुसीलं च ।
खंतियपंचिंदियनिग्गहो य धम्मस्स मूलाइं ॥

अर्थात्–जीवदया, सत्य वचन, पराए धन का त्याग, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, क्षमा व पचेन्द्रिय निग्रह ही धर्म का मूल हैं। ये धर्म-प्राप्ति के श्रद्धा-वाचक शब्द हैं।

एवमेयं, तहमेयं, अवितहमेयं, असंदिद्धमेयं–अर्थात् जो आप (साध्वियों) ने कहा है वह यथार्थ है, सत्य है, शका रहित है, पूर्ण तथ्य है। **धम्मं सोच्चा निसम्म**–धर्म को सुनकर हर्ष हुआ अर्थात् धर्म सुन कर विचार उत्पन्न होता है।

पति-पत्नी के परस्पर वार्तालाप में "**देवाणुप्पिया**" शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द प्रत्येक व्यक्ति द्वारा ग्रहण करने योग्य है। 'देवानुप्रिय' शब्द जैन शास्त्रों में सामान्य जन से लेकर तीर्थकर तक प्रयुक्त हुआ है।

सुभद्रा की पति से दीक्षार्थ आज्ञा प्राप्ति

मूल–तएणं से भद्दे सत्थवाहे सुभद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी–मा णं तुमं देवाणुप्पिए ! इयाणिं मुंडा जाव पव्वयाहि, भुंजाहि ताव देवाणुप्पिए! मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं, तओ पच्छा भुत्तभोई सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वयाहि। तएणं सुभद्दा सत्थवाही भद्दस्स० एयमट्ठं नो आढाइ नो परिजाणइ दोच्चं पि तच्चंपि भद्दा सत्थवाही एवं वयासी-इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी जाव पव्वइत्तए ! तए णं से भद्दे सत्थवाहे जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य एवं पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा जाव विण्णवित्तए वा ताहे अकामए चेव सुभद्दाए निक्खमणं अणुमण्णित्था ॥ ८ ॥

छाया–ततः खलु स भद्रः सार्थवाहः सुभद्रां सार्थवाहीं एवमवादीत्–मा खलु एवं देवानुप्रिये ! इदानीं मुण्डा यावत् प्रव्रज। भुङ्क्ष्व तावद् देवानुप्रिये ! मया सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान् ततः पश्चात् भुक्तभोगिनी (सती) सुव्रतानामार्याणामन्तिके

यावत् प्रवज। ततः खलु सुभद्रा सार्थवाही भद्रस्य० एतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति द्वितीयमपि तृतीयमपि भद्रा सार्थवाही एवमवादीत्– इच्छामि खलु देवानुप्रियाः ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती यावत् प्रव्रजितुम्। ततः खलु स भद्रः सार्थवाहो यदा नो शक्नोति–बह्वीभिराख्यापनाभिश्च एवं प्रज्ञापनाभिश्च संज्ञापनाभिश्च, विज्ञापनाभिश्च, आख्यापयितुम् वा, यावत् विज्ञापयितुं वा, तदा अकामतश्चैव सुभद्राया निष्क्रमणमन्वमन्यत ॥ ८ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं–तत्पश्चात्, **से भद्दे**–वह भद्र, **सत्थवाहे**–सार्थवाह, **सुभद्दं सत्थवाहिं**–सुभद्रा सार्थवाही से, **एवं**–इस प्रकार, **वयासी**–कहने लगा, **मा णं तुमं देवाणुप्पिए**–हे देवानुप्रिय तुम मत ग्रहण करो, **इयाणिं मुंडा**–तुम मुण्डित, **जाव**–यावत्, **पव्वयाहि**–प्रव्रजित होना, **भुंजाहि ताव**–तब तक, **देवाणुप्पिए**–देवानुप्रिये, **मए**–मेरे, **सद्धिं**–साथ, **विउलाइं भोगभोगाइं**–विपुल भोग उपभोग कर, **तओ पच्छा**–तत्पश्चात्, **भुत्तभोई**–भुक्त भोगी होकर, **सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वयाहि**–सुव्रता आर्या के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना, **तएणं**–तत्पश्चात्, **सुभद्दा सत्थवाही**–सुभद्रा सार्थवाही, **भद्दस्स**–भद्र की, **एयमट्ठं**–इस बात को सुनकर, **नो आढाइ**–उसे न आदर दिया, **नो परिजाणइ**–न ही अच्छा समझा, **दोच्चंपि**–दो बार, **तच्चंपि**–तीन बार, **भद्दा सत्थवाही**–भद्रा सार्थवाही, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगी, **इच्छामि णं देवाणुप्पिया**–हे देवानुप्रिय मेरी इच्छा है कि, **तुब्भेहिं**–आप से, **अब्भणुन्नाया समाणी**–आज्ञा पाकर, **जाव**–यावत्, **पव्वइत्तए**–दीक्षा स्वीकार करूं, **तएणं**–तत्पश्चात्, **से भद्दे सत्थवाहे**–वह भद्र सार्थवाह, **जाहे**–जब, **नो संचाएइ**–असमर्थ रहा, **बहूहिं**–बहुत से, **आघवणाहि य**– सामान्य वचनो से, **एवं**–और, **पन्नवणा हि य**–विशेष वचनों से, **सन्नवणाहि य**–प्रलोभनो से, **विण्णवणाहि य**–प्रेमपूर्वक वचनों से, **आघवित्तए वा जाव विण्णवित्तए वा**–प्रलोभन देने से, प्रेमपूर्वक समझाने से, **ताहे**–तब, **अकामए चेव**–इच्छा न होने पर भी, **सुभद्दाए निक्खमण**–उसने सुभद्रा को दीक्षित होने की हां कर दी, **अणुमण्णित्था**–भद्र सार्थवाह ने अपनी पत्नी सुभद्रा सार्थवाही को आज्ञा प्रदान कर दी।

मूलार्थ–तत्पश्चात् (सुभद्रा की बात को सुनकर) भद्र सार्थवाह इस प्रकार कहने लगा ! हे देवानुप्रिये ! इस समय तुम मुण्डित यावत् साध्वी मत बनो, अपितु पहले की तरह मेरे साथ विपुल-भोग उपभोग भोगो। फिर भुक्तभोगी होकर सुव्रता आर्या के समीप जाकर यावत् दीक्षित हो जाना। ऐसी बात सुनकर भद्रा सार्थवाही ने उन वचनों को अच्छा नहीं माना। भद्रसार्थवाह को दो तीन बार इस प्रकार कहा–"हे देवानुप्रिय ! मैं आपकी आज्ञा से दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं। तत्पश्चात् जब भद्र सार्थवाह विशेष

वचनों, प्रलोभनों, स्नेह वाक्यों से समझाने में असमर्थ रहा, तब इच्छा न होते हुए भी उसने सुभद्रा को दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान कर दी।

टीका—प्रस्तुत सूत्र द्वारा भद्र सेठ के पत्नी के प्रति स्नेह का भी पता चलता है। तभी तो वह न चाहते हुए भी उसे दीक्षा की आज्ञा दे देता है। सुभद्रा सार्थवाही को दो-तीन बार ऐसा कहना पडता है। भद्र सेठ की उदासी उसके राग का प्रतीक है।

इस सूत्र से यह भी सिद्ध होता है कि वैरागी को उसके घर वाले या संरक्षक अनुकूल या प्रतिकूल वचनों से समझा-बुझा तो सकते हैं, पर ऐसे कार्य में वैरागी आत्मा से मारपीट अच्छी नही होती। क्योंकि मारपीट से मन के विचारो पर कोई असर नहीं पड़ता। वैरागी का कर्त्तव्य है कि वह भी अपने माता, पिता, संरक्षको और निकट सम्बन्धियों की आज्ञा लेकर साधु-जीवन ग्रहण करे, घर से पलायन न करे।

सुभद्रा का प्रव्रज्या-पर्व

मूल—तएणं से भद्दे सत्थवाहे विउलं असणं ४ उवक्खडावेइ, मित्तनाइ जाव आमंतेइ, पच्छा भोयणवेलाए जाव मित्तनाइ० सक्कारेइ सम्माणेइ, सुभद्दं सत्थवाहिं ण्हायं जाव पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं पुरिससहस्स-वाहिणिं सीयं दुरूहेइ। तओ सुभद्दा सत्थवाही मित्तनाइ जाव संबंधि-संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं वाणारसीनयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं अज्जाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरिससहस्स-वाहिणिं सीयं ठवेइ, सुभद्दं सत्थवाहिं सीयाओ पच्चोरुहेइ ॥ ९ ॥

छाया—ततः खलु स भद्रः सार्थवाहो विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् उपस्कारयति मित्रज्ञाति यावदामन्त्रयति। ततः पश्चात् भोजनवेलायां यावत् मित्रज्ञाति० सत्करोति सम्मानयति सुभद्रां सार्थवाहीं स्नातां यावत् कृतप्रायश्चित्तां सर्वालङ्कार-विभूषितां पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकां दूरोहयति। ततः सा सुभद्रा सार्थवाही, मित्रज्ञाति० यावत् सम्बन्धिसंपरिवृता सर्वऋद्ध्या यावत् रवेण वाराणसीनगर्या मध्यमध्येन यत्रैव सुव्रतानामार्याणामुपाश्रयस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पुरुषसहस्र-वाहिनीं शिविकां स्थापयति, सुभद्रां सार्थवाहीं शिविकातः प्रत्यवरोहति ॥ ९ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **से भद्दे सत्थवाहे**—उस भद्र सार्थवाह ने, **विउलं असणं ४**—चार प्रकार का अशन आदि विपुल भोजन, **उवक्खडावेइ**—तैयार करवाया, **मित्तनाइ**—मित्रों व रिश्तेदारो, **जाव**—यावत्, **आमंतेइ**—आमन्त्रित किया, **पच्छा भोयणवेलाए**— फिर भोजन

के पश्चात्, **जाव**–यावत्, **मित्तनाइ०**–मित्र ज्ञाति जनों का, **सक्कारेइ सम्माणेइ**–उनका सत्कार सम्मान किया, **सुभद्दं सत्थवाहिं**–तब सुभद्रा सार्थवाही को, **ण्हायं जाव पायच्छित्तं सव्वालंकार- विभूसियं**–स्नान करवाया प्रायश्चित्त आदि करवाया (मंगल कार्य करवाए) फिर सब वस्त्र अलंकारों से विभूषित कर, **पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं**–एक हजार पुरुषो द्वारा उठाने योग्य शिविका (पालकी) पर, **दुरूहेइ**–बिठाया, **तओ**–तब, **सा सुभद्दा सत्थवाही**–वह सुभद्रा सार्थवाही, **मित्तनाइ**–मित्रो व रिश्तेदारों से, **जाव**–यावत्, **संबंधि-संपरिवुडा**–सम्बंधियों से घिरी हुई, **सव्विड्ढीए**–सर्व ऋद्धि से युक्त, **जाव**–यावत्, **रवेणं**–वेग पूर्वक, **वाणारसीनयरीए**–वाराणसी नगरी के, **मज्झंमज्झेणं**–बीचो बीच होती हुई, **जेणेव**–जहा, **सुव्वयाणं अज्जाणं**–सुव्रता आर्या थी, **उवस्सए**–उपाश्रय था, **तेणेव उवागच्छइ**–वहा आई और, **उवागच्छित्ता**–आकर, **पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ**–एक हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने के योग्य शिविका को नीचे रखवाया, **पच्चोरुहेइ**–और वह स्वयं नीचे उतर गई।

मूलार्थ–तत्पश्चात् उस भद्र सार्थवाह ने विपुल अशन आदि चार प्रकार का भोजन तैयार करवाया। फिर मित्रों व रिश्तेदारों को भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन कराने के पश्चात् सभी का सम्मान-सत्कार किया। फिर सुभद्रा सार्थवाही को स्नान करवाया गया। प्रायश्चित्त आदि करवाया गया, फिर उसे (सुभद्रा सार्थवाही को) वस्त्रो-अलंकारों व आभूषणों से सुसज्जित करके, एक हजार पुरुषों द्वारा उठाने योग्य पालकी में बिठाया। तब वह सुभद्रा सार्थवाही मित्रों व रिश्तेदारों से घिरी, सर्व ऋद्धि से युक्त होकर वेगपूर्वक चलती हुई और वाराणसी नगरी के बीचों-बीच होती हुई जहां सुव्रता आर्या का उपाश्रय था वहां पहुंची और पहुंच कर हजार पुरुषों द्वारा उठाई गई पालकी को नीचे रखवाया और स्वयं उससे नीचे उतरी।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में सुभद्रा सार्थवाही का अपने पति से वार्तालाप व दीक्षा प्रसग का विस्तृत वर्णन है। पति ने दीक्षा आज्ञा प्रदान कर दी। उस समय की परम्परा अनुसार भद्र सार्थवाह ने अपने रिश्तेदारों व मित्रो को इकट्ठा किया और उन्हे भोजन करवाया। फिर उनका सन्मान सत्कार किया। अपनी पत्नी सुभद्रा को स्नान करवाया, वस्त्र आभूषणों से उसे अलंकृत किया। फिर एक हजार मनुष्यों के उठाने योग्य सुन्दर शिविका पर सुभद्रा सवार हुई। वाराणसी नगरी के बीचों-बीच बड़े ठाट के साथ होती हुई साध्वी सुव्रता के उपाश्रय के समीप पहुची। पालकी को नीचे रखा गया और वह स्वय नीचे उतर गई।

मूल—तएणं भद्दे सत्थवाहे सुभद्दं सत्थवाहिं पुरओ काउं जेणेव सुव्वया अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! सुभद्दा सत्थवाही ममं भारिया इट्ठा कंता जाव मा णं वाइया पित्तिया सिंभिया सन्निवाइया विविहा रोगातंका फुसंतु, एसणं देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा, भीया जम्मणमरणाणं, देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता जाव पव्वयाइ, तं एयं अहं देवाणुप्पियाणं सीसिणीभिक्खं दलयामि, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सीसिणीभिक्खं। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ॥ १०॥

छाया—ततः खलु भद्रः सार्थवाहः सुभद्रां सार्थवाहीं पुरतः कृत्वा यत्रैव सुव्रता आर्याः तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुव्रतां आर्या वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाः! सुभद्रा सार्थवाही मम भार्या इष्टा कान्ता यावत् मा खलु वातिकाः पैत्तिका श्लैष्मिकाः सान्निपातिका विविधाः रोगातङ्काः स्पृशन्तु, एषा खलु देवानुप्रियाः ! संसारभयोद्विग्ना, भीता जन्ममरणाभ्यां, देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डा भूत्वा यावत् प्रव्रजति ! तद् एतामहं देवानुप्रियाभ्यो शिष्याभिक्षां ददामि, प्रतीच्छन्तु खलु देवानुप्रियाः ! शिष्याभिक्षाम् ! यथासुखं देवानुप्रियाः मा प्रति-बन्धम् ॥ १० ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं**—तत्पश्चात्, **भद्दे सत्थवाहे**—भद्र सार्थवाह ने, **सुभद्दं सत्थवाहि**—सुभद्रा सार्थवाही को, **पुरओ काउं**—आगे किया, **जेणेव**—जहां, **सुव्वया अज्जा**—सुव्रता आर्या थी, **तेणेव**—वहां पर, **उवागच्छइ उवागच्छित्ता**—आए और आकर, **सुव्वयाओ अज्जाओ**—सुव्रता आर्या को, **वंदइ नमसइ**—वंदन-नमस्कार किया, **वंदित्ता नमंसित्ता**—वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात्, **एवं वयासी**—इस प्रकार कहा, **एवं खलु**—इस प्रकार निश्चय ही, **देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय, **सुभद्दा सत्थवाही**—यह सुभद्रा सार्थवाही, **ममं भारिया**—मेरी पत्नी है मुझे, **इट्ठा**—इष्ट है, **कंता**—प्रिय है, **जाव मा णं**—यावत् न, **वाइया**—वात, **पित्तिया**—पित्त, **सिंभिया**—कफ, **सन्निवाइया**—सन्निपात, **विविहा**—विविध, **रोगातंका**—रोगों की पीडा, **फुसंतु**—सताए, इस बात का ध्यान रखा है कि, **एसणं**—इस प्रकार, **देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिये, **संसारभउव्विग्गा**—सांसारिक भय से, **भीया**—डरी हुई है, **जम्मणमरणाणं**—जन्म-मरण के दु:खों से, **देवाणुप्पियाणं**—हे देवानुप्रिये, **अंतिए**—यह आपके समीप, **मुंडा भवित्ता**—मुण्डित होकर, **जाव**—यावत्, **पव्वयाइ**—प्रव्रज्या ग्रहण करना

चाहती है, **तं एयं**–इसलिए, **अहं**–मैं, **देवाणुप्पियाणं**–देवानुप्रिये, **सीसिणीभिक्खं**–शिष्या की भिक्षा, **दलयामि**–आपको देता हूं, **पडिच्छंतु णं**–आप इसे स्वीकार करें, **देवाणुप्पिया**–हे देवानुप्रिये ! **सीसिणीभिक्खं**–इस शिष्या को भिक्षा के रूप मे स्वीकार करें, **अहासुहं देवाणुप्पिया**–हे देवानुप्रिय ! जैसी आप की आत्मा को सुख हो वैसा करो ! **मा पडिबंधं**–शुभ-काम में विलम्ब नही करना चाहिए।

मूलार्थ–पालकी से उतरते ही, भद्र सार्थवाह ने सुभद्रा सार्थवाही को आगे किया। वे (सभी) वहीं पहुचे जहा सुव्रता आर्या विराजमान थी। सुव्रता आर्या को वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् भद्र सार्थवाह इस प्रकार कहने लगा–"हे देवानुप्रिये। सुभद्रा सार्थवाही मेरी धर्मपत्नी है जो मुझे इष्ट है, प्रिय है, यावत् मैने इसका वात, पित्त, कफ, सन्निपात आदि विविध रोगों से सुरक्षित रखने का ध्यान रखा है, अर्थात् रोगों से इसकी रक्षा की है। अब यह संसार के भय से, जन्म-मरण के दु:खो से डरी हुई है। हे देवानुप्रिये ! यह सुभद्रा सार्थवाही आप के समीप मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती है, अत: हे देवानुप्रिये ! मैं आपको सुभद्रा सार्थवाही को शिष्या के रूप में भिक्षा के रूप में प्रदान करता हू। हे देवानुप्रिये ! आप इस भिक्षा को स्वीकार करें।

तब आर्या सुव्रता ने कहा–हे देवानुप्रिये । जैसे आप की आत्मा को सुख हो वैसे करो, पर शुभ काम में विलम्ब अच्छा नहीं।

टीका–तब सुभद्रा पालकी से उतरी तो भद्र सार्थवाह ने सुभद्रा को आगे किया, स्वयं पीछे-पीछे साध्वी जी के चरणों में पहुंचा। वन्दना-नमस्कार करने के पश्चात् भद्र सार्थवाह ने स्वयं साध्वी सुव्रता से प्रार्थना की, कि मेरी प्रिय पत्नी सुभद्रा मुझे बहुत प्रिय है पर यह जन्म-मरण रूपी दु:ख की परम्परा का अन्त करने के लिए श्रमणी बनना चाहती है। इसे मैं आपको भिक्षा के रूप मे भेंट करता हू। कृपया इसे शिष्या बना कर अनुग्रहीत करे।" ऐसे वचन सुनकर साध्वी सुव्रता ने कहा–"हे देवानुप्रिय । जैसे आपकी आत्मा को सुख हो वैसे करो।

दीक्षा की आज्ञा यहा पति से ली गई है। जब पत्नी को वैराग्य भाव उत्पन्न हो जाए, तब पति की आज्ञा से स्त्री को दीक्षा धारण करनी चाहिए। इस सूत्र में सुभद्रा सार्थवाही की वैराग्य भावना का वर्णन किया गया है और शिष्य को भिक्षा रूप कहा गया है। पत्नी को अन्य धार्मिक कार्यों में भी पति की आज्ञा लेनी चाहिए। पति का भी यह कर्त्तव्य है कि वह पत्नी को हर प्रकार से समझा-बुझा कर अच्छे काम की आज्ञा प्रदान करे। इस सूत्र में पति-पत्नी के कर्त्तव्यों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। भद्र सार्थवाह के शब्द उसके कर्त्तव्य के साक्षी हैं :–

एवं खलु देवाणुप्पिया - सुभद्दा सत्थवाही ममं भारिया इट्ठा, कंता, जाव मा णं वातिया, पित्तिया, सिंभिया, सन्निवाइया, विविहा रोगातंका फुसंतु—अर्थात् हे देवानुप्रिये ! मुझे अपनी पत्नी प्यारी है, मैंने इसकी वात, पित्त, कफ, सन्निपात के विभिन्न रोगों से रक्षा की है। इस बात से भद्र सेठ का पवित्र स्नेह व कर्त्तव्य-परायणता झलकती है। सारा समारोह साध्वी सुव्रता के उपाश्रय में सम्पन्न हुआ। प्राचीन काल में भी साधु-साध्वियों के ठहरने के स्थान को "उपाश्रय" कहा जाता था। भगवती सूत्र के आठवें शतक में लिखा है—**समणोवस्सए**—अर्थात् श्रमणों का उपाश्रय। यह संज्ञा स्वयं समझ लेनी चाहिए।

सुभद्रा की प्रव्रज्या

उत्थानिका—सुभद्रा सार्थवाही ने सुव्रता आर्या के सम्मुख दीक्षा से पूर्व जो कार्य किया, उसका वर्णन सूत्रकार ने किया है—

मूल—तएणं सा सुभद्दा सत्थवाही तुट्ठा सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणी हट्ठ० सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता, सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणेणं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्तेणं भन्ते ! जहा देवाणंदा तहा पव्वइया जाव अज्जा जाया जाव गुत्तबंभयारिणी ॥ ११ ॥

छाया—ततः खलु सा सुभद्रा सार्थवाही सुव्रताभिरार्याभिरेवमुक्ता सती स्वयमेव आभरणमाल्यालङ्कारमवमुञ्चति, अवमुच्य स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यत्रैव सुव्रता आर्या तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुव्रता आर्यास्त्रिकृत्वा आदक्षिण-प्रदक्षिणेन वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमंस्यित्वा, एवमवादीत्—आदीप्तः खलु भदन्त! यथा देवानन्दा तथा प्रव्रजिता यावत् आर्या जाता यावद् गुप्तब्रह्मचारिणी ॥ ११ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं—तत्पश्चात्, **सा सुभद्दा सत्थवाही**—उस सुभद्रा सार्थवाही ने, **तुट्ठा**—प्रसन्न होकर, **सुव्वयाहिं अज्जाहिं**—सुव्रता आर्या द्वारा, **एवं वुत्ता समाणी**—इस प्रकार कहने पर, **हट्ठ०**—प्रसन्न हुई तथा, **सयमेव**—स्वयं ही, **आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ**—आभरणों-अलकारों का त्याग करती है, **ओमुइत्ता**—और त्याग कर, **सयमेव**—स्वय ही, **पंचमुट्ठियं लोयं करेइ**—पाच मुष्टि लोच करती है, **करित्ता**—लोच करने के पश्चात्, **जेणेव**—जहां पर, **सुव्वयाओ अज्जाओ**—सुव्रता आर्या थी, **तेणेव उवागच्छइ**—वही आती है, **उवागच्छित्ता**—वहां आकर, **सुव्वयाओ अज्जाओ**—सुव्रता आर्या को, **तिक्खुत्तो**—तीन

बार, **आयाहिणपयाहिणेणं**–प्रदक्षिणा करती हुई, **वंदइ नमंसइ**–वन्दना-नमस्कार करती है, **वंदित्ता नमंसित्ता**–वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात्, **एवं वयासी**–इस प्रकार कहने लगी, **आलित्तेणं भन्ते**–हे गुरुणी जी ! यह संसार जन्म-मरण की आग में जल रहा है, **जहा**–जैसे, **देवाणंदा**–देवानदा ब्राह्मणी (भगवती सूत्र के अनुसार वर्णन जानना चाहिए), **तहा**–वैसे ही, **पव्वइया**–प्रव्रज्या ग्रहण करती है, अर्थात् साध्वी बन गई, **जाव**–यावत्, **अज्जा**–आर्या, **जाया**–बन गई, **जाव**–यावत्, **गुत्तबंभयारिणी**–गुप्त ब्रह्मचारिणी हो गई।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह सुभद्रा सार्थवाही साध्वी सुव्रता के ऐसा कहने पर प्रसन्न हुई और उसने स्वयं ही गृहस्थ वेश के वस्त्रों और अलंकारों को उतार दिया। अपने हाथों से स्वयमेव ही पंचमुष्टि लोच किया। लोच करने के पश्चात् जहां सुव्रता आर्या थी वहां आती है, आकर सुव्रता आर्या की तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना-नमस्कार करती है। फिर इस प्रकार कहने लगी, "संसार में आग लगी है, संसार दु:खों की आग में जल रहा है" जैसे देवानदा ब्राह्मणी ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी वैसे उस सुभद्रा सार्थवाही ने भी दीक्षा ग्रहण की। वह भी यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हो गई।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे सुभद्रा सार्थवाही द्वारा दीक्षा लेने का वर्णन है। यह वर्णन भगवती सूत्र मे वर्णित देवानदा ब्राह्मणी की तरह है। इस सूत्र में सुभद्रा की वैराग्य भावना का दिग्दर्शन कराया गया है। साथ मे बताया गया है कि सुभद्रा ने स्वयं ही पचमुष्टि लोच किया। फिर उसने अपनी गुरुणी आर्या सुव्रता से पांच महाव्रत धारण किए।

सुभद्रा आर्या का बाल-मोह

मूल–तएणं सा सुभद्दा अज्जा अन्नया कयाइ बहुजणस्स चेडरूवे संमुच्छिया जाव अज्झोववण्णा अब्भंगणं च उव्वट्टणं च फासुयपाणं च अलत्तगं च कंकणाणि य अंजणं च वण्णगं च चुण्णगं च खेल्लगाणि य खज्जल्लगाणि य खीरं च पुप्फाणि य गवेसइ, बहुजणस्स दारए वा दारियाओ वा कुमारे य कुमारियाओ य डिंभए य डिंभियाओ य अप्पेगइयाओ अब्भंगेइ, अप्पेगइयाओ उव्वट्टेइ, एवं अप्पेगइयाओ फासुयपाणएणं ण्हावेइ, अप्पेगइयाणं पाए रयइ, अप्पेगइयाणं उट्ठे रयइ, अप्पेगइयाणं अच्छीणि अंजेइ, अप्पेगइयाणं उसुए करेइ, अप्पेगइयाणं तिलए करेइ, अप्पेगइयाओ दिगिंदलए करेइ, अप्पेगइयाणं पंतियाओ करेइ, अप्पेगइयाइं छिज्जाइं करेइ, अप्पेगइया वन्नएणं समालभइ, अप्पेगइया चुन्नएणं समालभइ, अप्पेगइयाणं

खेल्लणगाइं दलयइ, अप्पेगइयाणं खज्जुल्लगाइं दलयइ, अप्पेगइयाओ खीरभोयणं भुंजावेइ, अप्पेगइयाणं पुप्फाइं ओमुयइ, अप्पेगइयाओ पाएसु ठवेइ, अप्पेगइयाओ जंघासु करेइ, एवं ऊरुसु, उच्छंगे, कडीए, पिट्ठे, उरसि, खंधे, सीसे य करतलपुडेणं गहाय हलउलेमाणी-हलउलेमाणी आगायमाणी-आगायमाणी परिगायमाणी-परिगायमाणी पुत्तपिवासं च धूयपिवासं च नत्तुयपिवासं च नत्तिपिवासं च पच्चणुब्भवमाणी विहरइ ॥ १२ ॥

छाया-ततः खलु सा सुभद्रा आर्या अन्यदा कदाचित् बहुजनस्य चेटरूपे संमूर्च्छिता यावद् अध्युपपन्ना अभ्यञ्जनं च उद्वर्त्तनं च प्रासुकपानं च अलक्तकं च कङ्कणानि च अञ्जनं च वर्णकं च चूर्णकं च खेलकानि च खञ्जलकानि च क्षीरं च पुष्पाणि च गवेषयति, गवेषयित्वा बहुजनस्य दारकान् दारिकाः च कुमारांश्च कुमारिकाश्च डिम्भांश्च डिम्भिकाश्च अप्येककान् अभ्यङ्गयति, अप्येककान् उद्वर्त्तयति, एवम् अप्येककान् प्रासुकपानकेन स्नपयति, अप्येककानां पादौ रञ्जयति, अप्येककानाम् ओष्ठौ रञ्जयति, अप्येककानाम् अक्षिणी अञ्जयति, अप्येककानाम् इषुकान् करोति, अप्येककानां तिलकान् करोति, अप्येककान् दिलिन्दलके करोति, अप्येककानाम् पङ्क्तीः करोति, अप्येककान् छेद्यान् (छिन्नान्) करोति, अप्येककान् वर्णकेन समालभते, अप्येककान् चूर्णकेन समालभते, अप्येककेभ्यः खेलकानि ददाति, अप्येककेभ्यः खञ्जुलकानि ददाति, अप्येककान् क्षीरभोजनं भोजयति, अप्येककानां पुष्पाणि अवमुञ्चति, अप्येककान् पादयोः स्थापयति, अप्येककान् जङ्घयोः करोति, एवं ऊर्वोः, उत्सङ्गे, कट्यां, पृष्ठे, उरसि, स्कन्धे, शीर्षे च करतलपुटेन गृहीत्वा हलउल्लयन्ती २ आगायन्ती २ परिगायन्ती २ पुत्रपिपासा च दुहितृपिपासां च नप्तृकपिपासां च नप्त्रीपिपासां च प्रत्यनुभवन्ती विहरति ॥ १२ ॥

पदार्थान्वय--**तएण**-तत्पश्चात्, **सा सुभद्दा अज्जा**-उस सुभद्रा आर्या को, **अन्नया कयाइ**-अन्य किसी समय, **बहुजणस्स**-बहुत लोगों के, **चेडरूवे**-बालको पर, **संमुच्छिया**-मूर्च्छा-आसक्ति भाव वाली, **जाव**-यावत्, **अज्झोववण्णा**-अतीव आसक्त हो गई, बालकों के निमित्त, **अब्भंगणं च**-मालिश के लिए तेल आदि, **उव्वट्टणं च**-उद्वर्तन, **फासुयपाणं च**-प्रासुक-जल, **अलत्तगं च**-अलतक, **कंकणाणि य**-कगन, **अंजणं च**-अंजन, **वण्णगं च**-चन्दन आदि, **चुण्णगं च**-चूर्णक, **खेल्लगाणि य**-खिलौने, **खज्जल्लगाणि य**-खाद्य पदार्थ खाजा आदि, **खीरं च**-खीर, **पुप्फाणि य**-पुष्पों की, **गवेसइ**-गृहस्थों के घरों से गवेषणा करती है और, **गवेसित्ता**-गवेषणा करके, **बहुजणस्स दारए वा**-बहुत लोगों के बालको को, **दारियाओ वा**-बालिकाओं को, **कुमारे य**-कुमारों को, **कुमारियाओ य**-

कुमारियों को, **डिंभए य**–छोटे बच्चों को, **डिंभियाओ य**–छोटी बच्चियों को, **अप्पेग-इयाओ**–उन में से किसी के, **अब्भंगेइ**–हाथ-पांव दबाती है, **अप्पेगइयाओ उव्वट्टेइ**–किसी के बटना मलती है, **एवं**–इस प्रकार, **अप्पेगइयाओ फासुयपाणएणं**–किसी को प्रासुक जल से, **ण्हावेइ**–स्नान कराती है, **अप्पेगइयाणं पाए रयइ**–किसी के पैरो पर रंग चढाती है, **अप्पेगइयाणं उट्ठे रयइ**–किसी के ओष्ठ रगती है, **अप्पेगइयाणं अच्छीणि अंजेइ**–किसी की आखों मे अञ्जन लगाती है, **अप्पेगइयाणं उसुए करेइ**–किसी के मस्तक पर बाण के आकार का तिलक लगाती है, **अप्पेगइयाणं तिलए करेइ**–किसी के माथे पर तिलक लगाती है, **अप्पेगइयाओ दिगिंदलए करेइ**–किसी को हिंडोले मे बिठलाती है, **अप्पेगइयाणं पंतियाओ करेइ**–किन्ही को पंक्ति में बैठाती है, **अप्पेगइयाइं छिज्जाइं करेइ**–किसी को अलग-अलग बिठलाती है, **अप्पेगइयाणं वन्नएणं समालभइ**–किसी को वर्णक विशेष प्रकार के चन्दन का लेप करती है, **अप्पेगइयाणं चुन्नएणं समालभइ**–किसी को चूर्ण का लेप करती है, **अप्पेगइयाणं खेल्लणगाइं दलयइ**–किसी को खिलौने गुडिया आदि देती है, **अप्पेगइयाणं खज्जुल्लगाइं दलयइ**–किसी को खाजा आदि खाद्य पदार्थ देती है, **अप्पेगइयाओ खीरभोयणं भुंजावेइ**–किसी को खीर का भोजन कराती है, **अप्पेगइयाणं पुप्फाइ ओमुयइ**–किसी पर फूल फैकती है, **अप्पेगइयाओ पाएसु ठवेइ**–किसी को अपने दोनो पांवो पर बिठलाती है, **अप्पेगइयाओ जंघासु करेइ**–किसी को अपनी जंघाओं पर बिठलाती है, **एवं**–इस प्रकार, **ऊरुसु**–गोडे पर, **उच्छंगे**–गोद में, **कडीए**–कटि पर, **पिट्ठे**–पीठ पर, उरसि–छाती पर, **खंधे**–कन्धे पर, **सीसे य**–सिर पर बिठलाती है, **करतलपुडेणं**–दोनों हाथो से, **गहाय**–उठाकर, **हलउलेमाणी-हलउलेमाणी**–हुलराती हुई, **आगायमाणी-आगायमाणी**–बार-बार गाती है, **परिगायमाणी-परिगायमाणी**–ऊंचे स्वर से गाती है, लोरियां गाती है, **पुत्तपिवासं च**–अपनी पुत्र की प्यास को, **धूयपिवासं च**–पुत्री की पिपासा को, **नत्तुयपिवासं च**–दोहते की इच्छा को एव, **नत्तिपिवासं च**–दोहती की प्यास को, **पच्चणुब्भवमाणी**–प्रत्यक्ष अनुभव करती हुई, **विहरइ**–विचरण करने लगी।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह सुभद्रा आर्या (साध्वी) किसी अन्य समय बहुत लोगों के बालक, बालिकाओं के प्रति मूर्च्छित भाव से आसक्त हो गई। वह बालकों को बाहर से, भिक्षा रूप में लाए हुए उबटन आदि लगाकर प्रासुक जल से स्नान कराने लगी। वह अलता, अंजन, वर्णक, चूर्णक, खिलौनों व खाद्य पदार्थों खीर और पुष्पो की गृहस्थों के घरों में गवेषणा करती है, करने के पश्चात् बहुत से लोगो के बालक, बालिकाओं, कुमार, कुमारियों, डिम्भों–छोटे बच्चे-बच्चियों में से किसी के हाथ-पांव दबाती है, किसी के उबटन लगाती है, इसी तरह किसी बालक-बालिका को प्रासुक जल से स्नान कराती है, किसी बालक के पांव पर रंग चढ़ाती है, किसी बालक के

होंठ रंगती है, किसी बालक की आंख में अंजन डालती है, किसी बालक को इषुक-बाण के आकार का तिलक लगाती है, किसी-किसी बालक के मस्तक पर तिलक लगाती है। किसी बालक को खेलने के लिए गुड़िया देती है, किसी बालक को बालकों की पंक्ति में बिठलाती है, किसी बालक को चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप करती है, किसी बालक को चूर्णक का लेप करती है, किसी बालक को खेलने के लिए खिलौने देती है, किसी बालक को खाद्य पदार्थ (खाजा) देती है, किसी बालक को अपने दोनों पांवों पर बिठलाती है, किसी बालक को जघाओं पर बिठलाती है, किसी बालक को उदर स्थल पर, किसी को गोद में ग्रहण करती है, किसी बालक को कटि प्रदेश से ग्रहण करती है, किसी बालक को पीठ पर बिठलाती है, किसी बालक को सिर पर बिठलाती है, किसी बालक को कन्धे पर बिठलाती है, किसी बालक को सिर पर बिठलाती है, किसी बालक को दोनों हाथो से पकड़कर गीत गाती है तथा किसी बालक के लिए लोरियां गाती है। इस प्रकार वह (सुभद्रा आर्या) अपनी पुत्र-पिपासा, पुत्री-पिपासा, पौत्र-पौत्री पिपासा एव दोहते-दोहतियों की प्यास का प्रत्यक्ष अनुभव करती हुई जीवन यापन करने लगी।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि सुभद्रा आर्या ने पच महाव्रत ग्रहण कर साध्वी जीवन अंगीकार तो कर लिया, पर उसकी माता बनने की अभिलाषा फिर भी जीवित रही। वह किसी भी तरह अपने को वीतराग प्ररूपति धर्म की ओर न लगा सकी। ममता के वश वह अन्य लोगो के बच्चे व बच्चियो को माता जैसा लाड़-दुलार देने लगी। वह गृहस्थो के बच्चो मे सभी सांसारिक नाते-रिश्ते देखने लगी। इस तरह सुभद्रा भाव दृष्टि से उन बच्चो पर आसक्त हो गई।

सूत्रकर्ता ने "**गवेसइ**" पद से सिद्ध किया है कि वह साध्वी-जीवन के विपरीत क्रियाए अकेली करती थी। **फासुयंपाणं**—पद से यह बताया गया है कि वह बालक बालिकाओ को प्रासुक जल से स्नान कराती थी। **पुप्फाइं ओमुई**—सूत्र से स्पष्ट होता है कि वह सचित्त पुष्पों से नहीं, बल्कि कागज के फूलों से बच्चो का मनोरंजन करती थी। ऐसे बनावटी पुष्प सुगन्धित पदार्थ लगाकर तैयार किये जाते थे। क्योंकि **ओमुई**—पद इसी ओर संकेत करता है। **करतलपुडेण गहाय हलउलमाणी**—पद से माता और पुत्र का स्वाभाविक स्नेह सिद्ध किया गया है।

सुव्रता आर्या की सुभद्रा आर्या को शिक्षा

उत्थानिका—जब सुभद्रा आर्या इस प्रकार की क्रियाएं करने लग गई तो अन्य साध्वियों

ने सुभद्रा आर्या को क्या कहा तथा सुभद्रा ने जो किया उसका वर्णन प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने किया है :-

मूल-तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ सुभद्दं अज्जं एवं वयासी-अम्हे णं देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ जाव गुत्तबंभयारिणीओ नो खलु अम्हं कप्पइ जातककम्मं करित्तए, तुमं च णं देवाणुप्पिया! बहुजणस्स चेडरूवेसु मुच्छिया जाव अज्झोववन्ना जाव नत्तिपिवासं वा पच्चणुब्भवमाणी विहरसि, तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि। तएणं सा सुभद्दा अज्जा सुव्वयाणं अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ नो परिजाणइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ ॥ १३ ॥

छाया-ततः खलु ताः सुव्रता आर्या सुभद्रामार्यामेवमवादीत्-वयं खलु देवानुप्रिये! श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्यः इर्यासमिता यावद् गुप्तब्रह्मचारिण्यो नो खलु अस्माकं कल्पते जातकर्म कर्तुम्, त्वं च खलु देवानुप्रिये ! बहुजनस्य चेटरूपेषु मूर्च्छिता यावत् अध्युपपन्ना अभ्यञ्जनं च यावत् नप्त्रीपिपासां वा प्रत्यनुभवन्ती विहरसि, तत् खलु देवानुप्रिये ! एतस्य स्थानस्य आलोचय यावत् प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यस्व। ततः खलु सा सुभद्रा आर्या सुव्रतानामार्याणामेतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानाति, अनाद्रियमाणा न परिजानन्ती विहरति ॥ १३ ॥

पदार्थान्वयः-**तएणं**-तत्पश्चात्, **ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ**-उस सुव्रता आर्या ने, **सुभद्दं अज्जं**-सुभद्रा आर्या को, **एवं वयासी**-इस प्रकार कहा, **देवाणुप्पिए**-हे देवानुप्रिये! **अम्हे णं**-हम, **समणीओ निग्गंथीओ**-श्रमणियां निर्ग्रन्थनियां हैं, **इरिया- समियाओ जाव गुत्तबंभयारिणीओ**-ईर्या समिति से युक्त गुप्तब्रह्मचारिणी हैं, **अम्हे**-हमें, **जातककम्मं करित्तए**-बच्चों के पालन-पोषण व खिलाने का कार्य, **नो खलु**-बिल्कुल नही, **कप्पइ**-कल्पता, **तुमं च णं**-और तुम, **देवाणुप्पिया**-हे देवानुप्रिये, **बहुजणस्स चेडरूवेसु**-बहुत लोगों के बच्चों में, **मुच्छिया जाव अज्झोववन्ना**-मूर्च्छित यावत् आसक्त हो और, **जाव नत्तिपिवासं वा**-अभ्यंगन आदि क्रिया करती हुई पुत्र-पुत्रियों, दोहते-दोहतियों, पौत्र-पौत्रियों की इच्छा का यावत्, **पच्चणुब्भवमाणी विहरसि**-प्रत्यक्ष अनुभव करती हुई विचर रही हो, **तं णं**-अतः, **तुमं**-तुम्हें, **देवाणुप्पिया**-हे देवानुप्रिये! **एयस्स ठाणस्स**-उस दोष युक्त स्थान की, **आलोएहि**-आलोचना करो, **जाव**-यात्, **पायच्छित्तं**-प्रायश्चित्त करो, **पडिवज्जाहि**-ग्रहण करो, **तएणं**-तत्पश्चात्, **सा सुभद्दा अज्जा**-उस सुभद्रा आर्या ने, **सुव्वयाणं**

अज्जाणं–सुव्रता आर्या की, **एयमट्ठं**–इस बात का, **नो आढाइ नो परिजाणइ**–कोई आदर सम्मान नही किया और न ही कोई महत्त्व दिया, **अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ**–गुरुणी की इस शिक्षा का आदर न करती हुई और न उसे अच्छा समझती हुई विचरने लगती है।

मूलार्थ–तत्पश्चात् वह सुव्रता आर्या, सुभद्रा आर्या के प्रति इस प्रकार कहने लगी–हे देवानुप्रिय ! हम श्रमणी हैं, निर्ग्रन्थनी हैं, ईर्या-समिति से युक्त यावत् ब्रह्मचारिणी हैं। हम लोगो को इस प्रकार लोगों के बच्चों को खिलाना आदि कार्य करने नहीं कल्पते। तुम लोगों के बच्चों में मूर्च्छित भाव यावत् अत्यंत आसक्त बन कर उनकी अभ्यगन आदि क्रियाएं करती हो, प्रत्यक्ष से पुत्र आदि की प्यास अनुभव करती हुई विचर रही हो, अत: हे देवानुप्रिये ! तुम इस दोष-युक्त स्थान की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त करो। ऐसा सुनकर सुभद्रा आर्या ने सुव्रता आर्या के कथन का न तो कोई आदर किया और न ही उसे अच्छा समझा। इस प्रकार आदर-सत्कार न करती हुई और न अच्छा समझती हुई विचरने लगी।

टीका–प्रस्तुत सूत्र मे आर्या सुव्रता ने अपनी शिष्या सुभद्रा को अपने कर्त्तव्य पहचानने की शिक्षा दी है, कि हम जैन साध्विया है, रागद्वेष से दूर है, गुप्त ब्रह्मचारिणी है, हमे बच्चो के इस प्रकार के जातक-कर्म करने शोभा नहीं देते। इस प्रकार का मूर्च्छा भाव आत्मा के लिए घातक है, तुम्हें इस कृत्य की आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए। वास्तव मे यह शिक्षा ग्रहण करने योग्य थी, पर सुभद्रा आर्या बच्चों की लीलाओं में इतनी खो चुकी थी कि उसने गुरुणी की आत्म-शुद्धि की बात न मानी। जिस प्रकार रोगी कुपथ्य की ओर ध्यान नहीं देता, वही हालत सुभद्रा की थी। उसने गुरुणी के कथन को सुना-असुना कर दिया।

सुभद्रा आर्या का विपरीत चिन्तन और अन्य उपाश्रय में गमन

उत्थानिका–जब शिक्षा देने पर भी सुभद्रा साध्वी पर कोई प्रभाव न पड़ा तो क्या हुआ, अब उसी के विषय में सूत्रकार कहते है :–

मूल–तएणं ताओ समणीओ निग्गंथीओ सुभद्दं अज्जं हीलेंति निंदंति खिंसंति गरहंति अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति। तएणं तीसे सुभद्दाए अज्जाए समणीहिं निग्गंथीहिं हीलिज्जमाणीए जाव अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारिज्जमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–जयाणं अहं अगारवासं वसामि तयाणं अहं अप्पवसा जप्पभिइं

च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तप्पभिइं च णं अहं परवसा, पुव्विं च समणीओ निग्गंथीओ आढेंति परिजाणेंति, इयाणिं नो आढायंति नो परिजाणंति, तं सेयं खलु मे कल्लं जाव जलंते सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पाडियक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। तएणं सा सुभद्दा अज्जा अज्जाहिं अणोहट्टिया अणिवारिया सच्छंदमई बहुजणस्स चेडरूवेसु मुच्छिया जाव अब्भंगणं जाव नत्तिपिवासं च पच्चणुब्भवमाणी विहरइ ॥ १४ ॥

छाया—ततः खलु ताः श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्यः सुभद्रामार्या हीलन्ति निन्दन्ति खिंसन्ति गर्हन्ते अभीक्ष्णम् २ एतमर्थं निवारयन्ति। ततः खलु तस्याः सुभद्राया आर्यायाः श्रमणीभिर्निर्ग्रन्थीभिर्हील्यमानाया यावत् अभीक्ष्णम् २ एतमर्थ निवारयन्त्या अयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुत्पद्यत—यदा खलु अहम् अगारवास वसामि तदा खलु अहम् आत्मवशा, यतः प्रभृति च खलु अहं मुण्डा भूत्वा अगारात् अनगारतां प्रव्रजिता ततः प्रभृति च खलु अहं परवशा, पूर्व च श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्य आद्रियन्ते, परिजानन्ति, इदानीं नो आद्रियन्ते नो परिजानन्ति, तत् श्रेयः खलु मे कल्ये यावत् ज्वलति सुव्रता-नामार्याणामन्तिकात् प्रतिनिष्क्रम्य प्रत्येकम् उपाश्रयम् उपसंपद्य खलु विहर्त्तुम्, एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कल्ये यावत् ज्वलति सुव्रतानामार्याणामन्तिकात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य प्रत्येकमुपाश्रयमुपसंपद्य खलु विहरति। ततः खलु सा सुभद्रा आर्या आर्याभिः अनपघट्टिका अनिवारिता स्वच्छन्दमतिः बहुजनस्य चेटरूपेषु मूर्च्छिता यावत् अभ्यञ्जनं च यावत् नप्त्रीपिपासां च प्रत्यनुभवन्ती विहरति ॥ १४ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तत्पश्चात्, **ताओ समणीओ निग्गथीओ**—उन श्रमणियो, निर्ग्रन्थनियों, **सुभद्द अज्जं**—सुभद्रा आर्या की, **हीलेंति**—अवहेलना करती हैं, **निंदंति**—निंदा करती हैं, **खिंसंति**—उससे खीजती है, **गरहंति**—घृणा करती हैं और, **अभिक्खणं अभिक्खणं**—बार-बार, **एयमट्ठं**—इस बात को करने से, **निवारेंति**—निवारण करती हैं, **तएणं**—तत्पश्चात्, **तीसे सुभद्दाए अज्जाए**—वह सुभद्रा आर्या को, **समणीहिं निग्गंथीहिं**— श्रमणियों निर्ग्रन्थनियों से इस प्रकार, **हीलिज्जमाणीए जाव अभिक्खणं अभिक्खण एयमट्ठं निवारिज्जमाणीए**—अवहेलना पाती हुई यावत् बार-बार उन चेष्टाओ से रोके जाने पर, **अयमेयारूवे**—इस प्रकार के, **अज्झत्थिए**—उसके मन मे विचार आए, **जाव समुप्पज्जित्था**—ऐसा सकल्प

उत्पन्न हुआ, **जयाणं**—जब, **अहं**—मैं, **अगारवासं वसामि**—घर में थी, **तयाणं अहं**—तब मैं, **अप्पवसा**—स्वतन्त्र थी, **जप्पभिइं च णं**—जब से, **अहं**—मैं, **मुंडा भवित्ता**—मुण्डित हुई हूं, **अगाराओ अणगारियं पव्वइया**—घर छोड़कर अणगार बनी हूं, **तप्पभिइं च णं**—तब से लेकर, **अहं**—मैं, **परवसा**—पराधीन हो गई हूं, **पुव्विं च**—और पहले ये, **समणीओ निग्गंथीओ आढेंति परिजाणेंति**—श्रमणियां निर्ग्रन्थनियां मेरा आदर-सत्कार करती थीं, **इयाणिं**—अब, **नो आढायंति नो परिजाणंति**—आदर-सत्कार नहीं करती हैं, **तं सेयं खलु**—इसलिए निश्चय ही उचित है, **मे**—मुझे, **कल्लं जाव जलंते**—कल सूर्योदय होते ही, **सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ**—सुभद्रा आर्या के समीप से, **पडिनिक्खमित्ता**—अकेले ही निकलकर, **पाडियक्कं**—पृथक् से, **उवस्सयं**—किसी अन्य उपाश्रय को, **उवसंपज्जित्ताणं**—स्वीकार करके, **विहरित्तए**—विचरण करना, अर्थात् अलग उपाश्रय में रहना, **एवं संपेहेइ**—इस प्रकार विचार करती है और, **संपेहित्ता**—विचार करके, **कल्लं जाव जलंते**—प्रातः सूर्योदय होते ही, **सुव्वयाणं अज्जाणं अंतियाओ**—सुभद्रा आर्या के समीप से, **पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता**—निकलती है और निकल कर, **पाडियक्कं उवस्सयं**—पृथक् उपाश्रय में, **उवसंपज्जित्ता णं**—स्थान स्वीकार करके, **विहरइ**—विचरण करती है, **तएणं**—तत्पश्चात्, **सा सुभद्दा अज्जा**—वह सुभद्रा आर्या, **अज्जाहिं**—अन्य आर्याओं द्वारा, **अणोहट्टिया**—निषेध करने पर भी न मानती हुई, **अणिवारिया**—निवारण न करती हुई, **सच्छंदमई**—स्वेच्छा से, **बहुजणस्स चेडरूवेसु**—बहुत लोगों के बच्चों मे, **मुच्छिया**—मूर्च्छित हुई, **जाव**—यावत्, **अब्भंगणं**—उनका अभ्यंगन आदि करती है, **जाव**—यावत्, **नत्तिपिवासं च**—पौत्र-पौत्रादि की पिपासा का, **पच्चणुब्भवमाणी**—प्रत्यक्ष अनुभव करती हुई, **विहरइ**—विचरने लगी।

मूलार्थ—(सुव्रता आर्या द्वारा समझाने पर भी सुभद्रा आर्या ने साध्वाचार के विपरीत आचार का त्याग नही किया तो) वे सुव्रता आदि आर्याएं सुभद्रा आर्या की अवहेलना, निन्दना और गर्हणा करने लगीं। तब सुभद्रा आर्या के मन में इस प्रकार का संकल्प आया—जब मैं घर में थी तब स्वतन्त्र थी। जब से मैंने गृह-त्याग कर अनगार वृत्ति ग्रहण की है तब से मै परतन्त्र हो गई हूं। पहले यह श्रमणियां निर्ग्रन्थनियां मेरा आदर-सत्कार करती थी, अब नहीं करतीं। ऐसी स्थिति मे मुझे यही श्रेयस्कर है कि मैं सुव्रता के सान्निध्य को छोड़कर, पृथक् किसी उपाश्रय में जा कर रहूं, इस प्रकार विचार कर वह सूर्योदय होते ही पृथक् उपाश्रय में जाकर रहने लगी।

तत्पश्चात् सुभद्रा आर्या अन्य आर्यिकाओं के निषेध को न मानती हुई, उन क्रियाओं को न छोड़ती हुई, स्वेच्छाचारिणी हो गई। वह बहुत से लोगों के बच्चों में मूर्च्छित यावत् अभ्यंगन आदि क्रियाएं करती हुई, पुत्र-पौत्रादि की पिपासा को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करती हुई विचरने लगी।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि जब सुव्रता आर्या ने सुभद्रा आर्या को अपना कर्त्तव्य पहचानते हुए साध्वी धर्म में स्थिर रहने का उपदेश दिया तो वह सुभद्रा आर्या नहीं मानी। वह साध्वियों की शिक्षा को बुरा समझने लगी। सुभद्रा के मन में से साध्वी-धर्म जैसे उड़ गया। वह साध्वी-जीवन को परतन्त्रता का कारण मानने लगी। गृहस्थ जीवन उस को स्वतन्त्र जीवन लगने लगा। वह सोचने लगी कि मैं तो घर मे ही अच्छी थी, स्वाधीन थी, ये साध्वियां भी पहले मेरा सन्मान-सत्कार करती थीं, पर अब जब मैं साध्वी बन गई हूं तो पराधीन हो गई हू, मुझे सुव्रता आर्या का उपाश्रय छोड़कर कल ही नये उपाश्रय में चले जाना चाहिये। ऐसा विचार कर सुभद्रा आर्या नये उपाश्रय में आ गई और वहां लोगों के बच्चो के साथ पूर्व वर्णित क्रियाएं करने लगी। यहां यह भी बताया गया है कि जैन धर्म में जोर जबरदस्ती का कोई स्थान नहीं है। प्रेरणा का स्थान है। वृत्तिकार ने कुछ महत्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की है–

'पाडियक्कं उवस्सयं उवसंपजित्ता ण विहरति' 'सा पृथक् विभिन्नमुपाश्रयं प्रतिपद्य विचरति' आदि पद से सिद्ध होता है कि एकाकी विहार शिथिल व्यक्ति व उग्रविहारी ही कर सकता है, किन्तु वह सुभद्रा आर्या शिक्षा रहित होकर स्वच्छन्दमति होकर ये क्रियाए कर रही थी। जिस समय शिक्षा अनुकूल नहीं लगती, तो अविनीत शिष्य, सुभद्रा आर्या की भांति सोचने लगता है और दूसरो में दोष निकालता है।

पुव्विं च समणीओ निग्गथीओ आढेंति परिजाणेंति इयाणिं नो आढाइंति नो परि-जाणंति–अर्थात् पहले तो ये श्रमणिया–निर्ग्रन्थिनियां मेरा मान-सम्मान करती थीं अब मुझे कोई मान-सत्कार नहीं देतीं।

आर्या सुभद्रा का बहुपुत्रिका विमान में जन्म

मूल–तएणं सा सुभद्दा अज्जा पासत्था पासत्थविहारी एवं ओसण्णा ओसण्णविहारी कुसीला कुसीलविहारी संसत्ता संसत्तविहारी अहाच्छंदा अहाच्छंदविहारी बहूइं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयप्पडिक्कंता, कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तियाविमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरियाए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्ताए ओगाहणाए बहुपुत्तिय-देवित्ताए उववण्णा ॥ १५ ॥

छाया–ततः खलु सा सुभद्रा आर्या पार्श्वस्था पार्श्वस्थविहारिणी एवमवसन्ना अवसन्नविहारिणी कुशीला कुशीलविहारिणी संसक्ता संसक्तविहारिणी यथा-

च्छन्दा यथाच्छन्दविहारिणी बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्द्धमासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयित्वा त्रिंशद् भक्तानि अनशनेन छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचिताऽप्रतिक्रान्ता कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे बहुपुत्रिकाविमाने उपपातसभायां देवशयनीये देवदूष्यान्तरिता अंगुलस्य असंख्येय-भागमात्रया अवगाहनया बहुपुत्रिकादेवीतया उपपन्ना ॥ १५ ॥

पदार्थान्वय·–**तएणं**–तदनन्तर, **सा सुभद्दा अज्जा**–वह आर्या सुभद्रा, **पासत्था पासत्थ**विहारी–साधु के गुणों से दूर होकर विचरती है, **एवं ओसण्णा**–साधु-समाचारी के पालन में खिन्न (अर्थात् साधु समाचारी से उदासीन होकर), **ओसण्णविहारी**–अवसन्न विहारिणी हो गई, **कुसीला कुसीलविहारी**–उत्तर गुणो का पालन न करने के कारण सज्वलन कषायो का उदय हो जाने से दूषित आचरण वाली, समाचारी पालन मे शिथिल होकर विचरने लगी, **संसत्ता संसत्तविहारी**–गृहस्थों के बाल-प्रेम सम्बन्धों में आसक्त होकर शिथिलाचारिणी होकर विचरने लगी, **अहाच्छंदा**–अपने अभिप्राय से कल्पित धर्म-मार्ग पर, **अहाच्छंदविहारी**–स्वच्छद होकर चलने लगी, **एवं बहूइं वासाइं**–इस प्रकार अनेक वर्षों तक, **सामन्नपरियागं**–श्रमणचर्या का, **पाउणइ**–पालन करती है, **पाउणित्ता**– और उस चर्या का पालन करके, **अद्धमासियाए**–अर्धमासिकी, **संलेहणाए**– सलेखना द्वारा, **अत्ताणं**–अपने आपको, **झूसित्ता**–सेवित करके **तीसं भत्ताइं**–तीस भक्तों (आहारों) के, **अणसणाए**–अनशन द्वारा, **छेदित्ता**–छेदन करके (आहारो) का त्याग करके, **तस्स ठाणस्स अणालोइयप्पडिक्कंता**–उस अनाचार की आलोचना न करके, **कालमासे कालं किच्चा**–मृत्यु-काल आने पर मर कर, **सोहम्मे कप्पे**–सौधर्म कल्प नामक देवलोक के, **बहुपुत्तिया-विमाणे**–बहुपुत्रिका नामक विमान की, **उववायसभाए**–उपपात सभा में, **देवसयणिज्जंसि**–देव-शय्या पर, **देवदूसंतरियाए**– देवदूष्य वस्त्रो से आच्छादित, **अंगुलस्स असंखेज्जइभाग-मेत्ताए**–अगुल के असंख्यातवे भाग मात्र की, **ओगाहणाए**–अवगाहना से (शरीर प्रमाण से), **बहुपुत्तिय-देवित्ताए**–बहुपुत्रिका देवी के रूप में, **उववण्णा**–उत्पन्न हुई।

मूलार्थ–तदनन्तर वह आर्या सुभद्रा साधु के द्वारा आचरणीय गुणो से दूर होकर साधु-समाचारी के पालन में खेदयुक्त हुई अवसन्न विहारिणी हो गई, उत्तर गुणों का पालन न करने के कारण संज्वलन कषायों का उदय हो जाने से दूषित आचरण वाली बन कर–समाचारी के पालन में शिथिल होकर विचरने लगी। वह गृहस्थों के बाल-प्रेम के सम्बन्धों में आसक्त होकर शिथिलाचारिणी बन कर अपने अभिप्राय से कल्पित धर्म-मार्ग पर स्वच्छन्दता पूर्वक विचरने लगी। इस प्रकार अनेक वर्षों तक तथाकल्पित श्रमणीचर्या का पालन करती हुई अर्धमासिकी संलेखना द्वारा अपनी आत्मा को सेवित

करके तीस भक्तों (पन्द्रह दिन तक आहार का) त्याग करके उन अनाचरणीय कार्यो के आचरण की आलोचना किए बिना ही, मृत्यु का अवसर आने पर मरकर सौधर्म कल्प नामक देवलोक के बहुपुत्रिका नामक विमान की उपपात सभा में देवदूष्य वस्त्रों से आच्छादित अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना से (शरीर-प्रमाण से) वह बहुपुत्रिका देवी के रूप में उत्पन्न हुई।

टीका—इस सूत्र में बताया गया है कि आर्या सुभद्रा सुव्रता आर्या से अलग होकर अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करने लगी। उसकी स्वच्छन्दता की अभिव्यक्ति के लिए सूत्रकार ने पांच वाक्यों का प्रयोग किया है—**पासत्था पासत्थविहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी, कुसीला कुसीलविहारी, संसत्ता संसत्तविहारी, अहाच्छन्दा अहाच्छन्द-विहारी**—अर्थात् शिथि- लाचार मे प्रवृत्त, संयम-पालन की उपेक्षा करती हुई, ज्ञानादि साधनो की विराधिका होकर केवल अपने अनुकूल अर्थात् जैसा वह चाहती थी वैसा ही आचरण करने लगी। **पासत्था** शब्द का अर्थ है—**ज्ञानादिनां पार्श्वेतिष्ठति इति पार्श्वस्था।** इसी प्रकार अन्य पांच पद भी उसकी स्वच्छन्दता की अभिव्यक्ति कर रहे हैं, क्योंकि ज्ञानादि के पास रहते हुए भी वह उनके अनुकूल आचरण करने की उसकी सामर्थ्य को सन्तान-मोह ने नष्ट कर दिया था। वह इस अनाचरण की आलोचना किए बिना ही मृत्यु को प्राप्त हुई और सौधर्म देवलोक के बहुपुत्रिका विमान में उत्पन्न हुई।

साधु-जीवन स्वीकार करने का फल तो उसे मिलना ही था और वह देव-भव की प्राप्ति के रूप में उसे प्राप्त हुआ।

'बहुपुत्रिका' नाम सम्बन्धी गौतम की जिज्ञासा

मूल—तएणं सा बहुपुत्तिया देवी अहुणोववन्नमित्ता समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए जाव भासामणपज्जत्तीए०। एवं खलु गोयमा ! बहुपुत्तियाए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागया। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ बहुपुत्तिया देवी बहु० देवी ? गोयमा ! बहुपुत्तिया णं देवी जाहे जाहे सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो उवत्थाणियं करेइ, ताहे ताहे बहवे दारए य दारियाओ य डिंभए य डिंभियाओ य विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव सक्के देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवज्जुइं दिव्वं देवाणुभागं उवदंसेइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ बहुपुत्तिया देवी ॥ १६ ॥

छाया—ततः खलु सा बहुपुत्रिका देवी अधुनोपपन्नमात्रा सती पञ्चविधया पर्याप्त्या यावद् भाषामनःपर्याप्त्या०। एवं खलु गौतम ! बहुपुत्रिकाया देव्या दिव्या देवर्द्धिः यावत् अभिसमन्वागता। अथ सा केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते बहुपुत्रिका देवी बहुपुत्रिका देवी ? गौतम ! बहुपुत्रिका खलु देवी यदा यदा शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य उपस्थानं (प्रत्यासत्तिगमनं) करोति। तदा तदा बहून् दारकांश्च दारिकाश्च डिम्भांश्च डिम्भिकाश्च विकुरुते, विकृत्य यत्रैव शक्रो देवेन्द्रो देवराजस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य दिव्यां देवर्द्धि दिव्यं देवज्योतिः दिव्यं देवानुभागमुपदर्शयति। तत्तेनाऽर्थेन गौतम ! एवमुच्यते बहपुत्रिका देवी ॥ १६ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं—तदनन्तर, **सा बहुपुत्तिया देवी**—वह बहुपुत्रिका देवी, **अहुणो-ववन्नमित्ता समाणी**—वर्तमान में उत्पन्न होते ही, (उसने), **पंचविहाए पज्जत्तीए**— पाच प्रकार की पर्याप्तियों, **जाव भासामणपज्जत्तीए**—यावत् भाषा और मनःपर्याप्तियो आदि को प्राप्त कर लिया। **एवं खलु गोयमा !**—गौतम इस प्रकार से, **बहुपुत्तियाए देवीए**—बहुपुत्रिका देवी ने, **सा दिव्वा देविड्ढी**—वह दिव्य समृद्धि, **जाव अभिसमण्णागया**—आदि उसे प्राप्त हुई थी, **से केणट्ठेणं भंते**—भगवन् ! किस कारण से, **एवं वुच्चइ**—इस नाम से पुकारा जाता है ? **बहुपुत्तिया देवी**—उसे बहुपुत्रिका देवी, **गोयमा ! बहुपुत्तिया णं देवी**—गौतम ! वह बहुपुत्रिका देवी, **जाहे-जाहे**—जब-जब, **सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो**—देवराज शक्र देवेन्द्र के, **उवत्थाणिय करेइ**—पास जाती है, **ताहे-ताहे**—तब-तब वह, **बहवे दारए य दारियाओ य**—बहुत से लडके-लड़कियों, **डिंभए य डिंभियाओ य**—छोटे-छोटे बच्चे- बच्चियों की, **विउव्वइ**—विकुर्वणा करती है, **विउव्वित्ता**—विकुर्वणा करके, **जेणेव सक्के देविंदे देवराया**—जहा देवताओ के राजा देवेन्द्र देव-सभा मे बैठे होते हैं, **तेणेव उवागच्छइ**—वहीं पर आती है, **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर, **सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो**—देवताओ के राजा देवेन्द्र शक्र के समक्ष, **दिव्वं देविड्ढिं**—अपनी दिव्य समृद्धि, **दिव्वं देवज्जुइं**—दिव्य देव ज्योति को, **दिव्वं देवाणुभागं**—दिव्य तेज को, **उवदंसेइ**—प्रदर्शित करती है, **से तेण- ट्ठेणं**—वह इसी कारण से, **गोयमा !**—हे गौतम, **एवं वुच्चइ बहुपुत्तिया देवी**—इस प्रकार वह बहुपुत्रिका देवी कहलाती है।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह बहुपुत्रिका देवी अभी-अभी उत्पन्न होते ही पांचों पर्याप्तियां—भाषा पर्याप्ति, आदि प्राप्त कर लेती है। हे गौतम इस प्रकार बहुपुत्रिका देवी ने दिव्य देव-ऋद्धियां प्राप्त कर लीं।

भगवन् ! किस कारण से वह देवी बहुपुत्रिका कहलाती है ? गौतम ! वह बहुपुत्रिका देवी जब-जब देवताओं के राजा देवेन्द्र शक्र के पास जाती है, तब-तब वह बहुत से

लड़के-लड़कियों तथा बच्चे बच्चियो की विकुर्वणा करती है-अपनी देव-शक्ति से बच्चे-बच्चिया बना लेती है, विकुर्वणा करने के अनन्तर जहां देवताओं के राजा शक्रेन्द्र विराजमान होते हैं वहां आती है और देवराज शक्रेन्द्र के समक्ष अपनी दिव्य समृद्धि दिव्य देव-ज्योति और अपना दिव्य तेज प्रदर्शित करती है। हे गौतम इसीलिए वह बहुपुत्रिका देवी कहलाती है।

टीका-प्रस्तुत सूत्र मे आर्या भद्रा का नाम बहुपुत्रिका क्यों पड़ा, इस विषय पर युक्ति-युक्त प्रकाश डाला गया है कि वह जब भी शक्रेन्द्र के सान्निध्य में जाती थी तो अनेक बच्चो की विकुर्वणा करके उनको साथ लेकर जाती थी। अत: वह बहुपुत्रिका नाम से प्रसिद्ध हो गई।

देवलोक में उसने चार पल्योपम की आयु प्राप्त की थी।

बहुपुत्रिका का आगामी भव

मूल-बहुपुत्तियाए णं भंते ! देवीए केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। बहुपुत्तिया णं भंते ! देवी ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ? गोयमा ! इहेव जंबूदीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले विभेलसंनिवेसे माहणकुलंसि दारियत्ताए पच्चायाहिइ। तएणं तीसे दारियाए अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते जाव बारसहिं दिवसेहिं विइक्कंतेहिं अयमेयारूवं नामधिज्जं करेंति, होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधिज्जं सोमा। तएणं सोमा उम्मुक्कबालभावा विण्णायपरि-णयमेत्ता जोव्वणगमणुप्पत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाव भविस्सइ। तएणं तं सोमं दारियं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं विण्णायपरिणयमित्तं जोव्वणगमणुप्पत्तं पडिकूविएणं सुक्केणं पडिरूवएणं नियगस्स भाइणिज्जस्स रट्ठकूडस्स भारियत्ताए दलइस्सइ। सा णं तस्स भारिया भविस्सइ इट्ठा कंता जाव भंडकरंडगसमाणा तेल्लकेला इव सुसंगोविआ चेलपेला (डा) इव सुसंपरिग्गहिया रणकरंडगओ विव सुसारक्खिया सुसंगोविया मा णं सीयं जाव मा णं विविहा रोगातंका फुसंतु ॥ १७ ॥

छाया-बहुपुत्रिकाया भदन्त ! देव्या: कियन्तं कालं स्थिति: प्रज्ञप्ता ? गौतम!

चतु:पल्योपमा स्थिति: प्रज्ञप्ता। बहुपुत्रिका खलु भदन्त ! देवी तस्माद्देवलोका-दायुक्षयेण स्थितिक्षयेण भवक्षयेण अनन्तरं चयं च्युत्वा क्व गमिष्यति क्व उत्पत्स्यते ? गौतम ! अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे विन्ध्यगिरिपादमूले विभेलसन्निवेशे ब्राह्मणकुले दारिकातया प्रत्यायास्यति। तत: खलु तस्या दारिकाया अम्बापितरौ एकादशे दिवसे व्यतिक्रान्ते यावद् द्वादशभिर्दिवसैर्व्यतिक्रान्तैरिदमेतद्रूपं नामधेयं कुरुत:, भवतु अस्माकमस्या दारिकाया नामधेयं सोमा। तत: खलु सोमा उन्मुक्तबाल-भावा विज्ञकपरिणतमात्रा यौवनमनुप्राप्ता रूपेण च यौवनेन च लावण्येन च उत्कृष्टा उत्कृष्टशरीरा यावत् भविष्यति। तत: खलु तां सोमां दारिकाम् अम्बापितरौ उन्मुक्तबालभावां विज्ञकपरिणतमात्रां यौवनमनुप्राप्तां प्रतिकूजितेन शुल्केन प्रतिरूपेण निजकाय भागिनेयाय राष्ट्रकूटकाय भार्यातया दास्यत:। सा खलु तस्य भार्या भविष्यति इष्टा कान्ता यावत् भाण्डकरण्डकसमाना तैलकेला इव सुसंगोपिता चेलपेटा इव सुसंपरिगृहीता रत्नकरण्डक इव सुसंरक्षिता सुसंगोपिता मा खलु शीतं यावत् मा विविधा: रोगातङ्का: स्पृशन्तु: ॥ १७ ॥

पदार्थान्वय:—(गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किया)—**बहुपुत्तियाए णं भंते! देवीए**—भगवन् ! उस बहुपुत्रिका देवी की, **केवइयं कालं**—कितने समय की (सौधर्म देवलोक मे), **ठिई पण्णत्ता**—स्थिति कही गई है ?

गोयमा !—(भगवान महावीर ने कहा) गौतम ! **चत्तारि पलिओवमाइं**—चार पल्योपम की, **ठिई पण्णत्ता**—स्थिति कही गई है।

(गौतम पुन: प्रश्न करते हैं) **बहुपुत्तिया णं भंते ! देवी**—भगवन् ! वह बहुपुत्रिका देवी, **ताओ देवलोगाओ**—उस देवलोक से, **आउक्खएणं**—आयु पूर्ण होने पर, **ठिइक्खएणं**—स्थिति पूर्ण होने पर, **भवक्खएणं**—देव-भव का क्षय होने पर, **अणंतरं**—तदनन्तर वह, **चय चइत्ता**—वहा से च्यवन करके, **कहिं गच्छिहिइ**—कहां जाएगी, **कहिं उववज्जिहिइ ?**—कहा उत्पन्न होगी ?

(भगवान महावीर ने उत्तर मे कहा)—**गोयमा ! इहेव जंबूदीवे दीवे**—इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, **भारहे वासे**—भारत वर्ष में ही, **विंज्झगिरिपायमूले**—विन्ध्य पर्वत की तलहटी मे, **विभेलसंनिवेसे**—विभेल नामक ग्राम में, **माहणकुलंसि**—ब्राह्मण-कुल में, **दारियत्ताए**—लड़की के रूप मे, **पच्चायाहिइ**—लौट आएगी अर्थात् जन्म लेगी, **तएणं**—तत्पश्चात्, **तीसे दारियाए**—उस लड़की के, **अम्मापियरो**—माता-पिता, **एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते**—ग्यारह दिन बीत जाने पर, **बारसहिं दिवसेहिं विइक्कंतेहिं**—बारहवां दिन जब बीत रहा होगा, **अयमेयारूवं नामधिज्जं करेंति**—तब उसका नामकरण करेंगे, **होउ णं अम्हं इमीसे**

दारियाए नामधिज्जं सोमा–हमारी इस लडकी का नाम होगा सोमा, **तएणं सोमा**–तदनन्तर वह सोमा, **उम्मुक्कबालभावा**–बालकपन को छोड़कर, **विण्णायपरिणयमेत्ता**–वैषयिक सुखों के परिज्ञान के साथ युवा अवस्था को प्राप्त होगी, **जोव्वणगमणुप्पत्ता**–युवती हो जाने पर, **रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य**–रूप यौवन और सुन्दरता से, **उक्किट्ठा**–उत्कृष्ट, **उक्किट्ठसरीरा**–अत्यन्त सुन्दर शरीर वाली, **जाव भविस्सइ**–वह होगी, **तएणं तं सोमं दारियं**–तत्पश्चात् उस सोमा लड़की को, **अम्मापियरो**–माता-पिता ने, **उम्मुक्क-बालभावं**–वह बचपन को पार कर गई, **विण्णायपरिणयमित्तं**–विषय-सुख से परिचित-जानकर, **जोव्वणगमणुप्पत्तं**–युवती हो जाने पर, **पडिकूविएणं**– प्रतिरूप अर्थात् मनोनुकूल वचनो द्वारा, **सुक्केणं**–शुल्क रूप देय द्रव्य देते हुए, **पडिरूवएणं**–प्रतिरूप अर्थात् मनोनुकूल वचनों द्वारा, **नियगस्स**–अपने, **भायणिज्जस्स रट्ठकूडस्स**–भानजे राष्ट्रकूट को, **भारियत्ताए**–पत्नी के रूप में, **दलइस्सइ**–प्रदान कर देगा, अर्थात् राष्ट्रकूट के साथ उसका विवाह कर देगा, **सा णं तस्स भारिया**–राष्ट्रकूट को अपनी पत्नी सोमा, **इट्ठा कंता भविस्सइ**–प्रिय एवं अत्यन्त सुन्दर लगेगी, (अत: वह), **जाव**– यावत्, **भंडकरंडगसमाणा**–आभूषण रखने के डिब्बे के समान, **तेल्लकेला इव**–तेल रखने के पात्र के समान, **सुसंगोविआ**–अच्छी प्रकार सुरक्षित, **चेलपेलो (डा) इव**–वस्त्र रखने की पेटी के समान, **सुसंपरिग्गहिया**–अच्छी प्रकार से उसकी रक्षा करेगा, **रणकरंडगओ विव**–हीरे मोती आदि रत्न रखने की तिजोरी के समान, **सुसारक्खिया**–अच्छी प्रकार से संभाल करके उसको सुरक्षित रखेगा, **मा णं सीयं जाव मा णं विविहा रोगातंका फुसंतु**–उसे शीत बाधा न सताए तथा अनेक प्रकार के रोग इसका स्पर्श भी न कर सकें (इस बात का भी वह ध्यान रखेगा)।

मूलार्थ–(गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया) कि–भगवन् ! उस बहुपुत्रिका देवी की उस सौधर्म देवलोक में कितने समय की स्थिति कही गई है ?

(भगवान महावीर ने उत्तर दिया) वहां उसकी स्थिति चार पल्योपम की होगी।

(गौतम पुन: प्रश्न करते हैं)–वह बहुपुत्रिका देवी उस सौधर्म देवलोक से अपनी देवलोक की आयु पूर्ण होने पर, उसका स्थिति काल समाप्त होने पर, देवभव का समय पूर्ण हो जाने पर वह उस देवलोक से च्यव कर कहां जाएगी–कहां उत्पन्न होगी ?

(भगवान महावीर ने गौतम के प्रश्न का पुन: समाधान करते हुए कहा–गौतम ! वह इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के एक भाग भारत वर्ष में ही विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी में बसे विभेल नामक ग्राम में एक ब्राह्मण-परिवार में लड़की के रूप में जन्म

लेगी। तत्पश्चात् उस लड़की के माता-पिता ग्यारह दिन बीत जाने पर जब बारहवां दिन व्यतीत हो रहा होगा तो वह उस लड़की का नामकरण "सोमा" करेंगे। तदनन्तर धीरे-धीरे वह सोमा अपने बचपन को पार करके जब युवती हो जाएगी, तब वह रूप यौवन और सुन्दरता में अत्यन्त उत्कृष्ट होगी। तत्पश्चात् उसके माता-पिता यह जानकर कि वह यौवन-सुखों की महत्ता जान गई है और युवती हो गई है, तब वे अपने भानजे राष्ट्रकूट को स्वीकृति-सूचक शब्दों द्वारा और शुल्क (दहेज) के रूप में देय द्रव्य देते हुए सोमा को उसे पत्नी के रूप में दे देंगे, अर्थात् उसके साथ उसका विवाह कर देंगे। राष्ट्रकूट को अपनी पत्नी सोमा प्रिय एवं अत्यन्त सुन्दर लगेगी। अत: वह आभूषण रखने के डिब्बे के समान, तेल रखने के पात्र के समान और वस्त्र रखने की पेटी के समान और हीरे मोती आदि रखने की तिजोरी के समान उसको अच्छी तरह सुरक्षित रखेगा, वह यह भी ध्यान रखेगा कि इसे शीत-बाधा न सताए और कोई भी रोग इसका स्पर्श न कर सके।

टीका-इस सूत्र मे बहुपुत्रिका देवी के भविष्य-भावी जीवन का वर्णन किया गया है कि वह भारतवर्ष मे ही विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी मे बसे विभेल नामक ग्राम मे एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लेगी। उसके माता-पिता उसके जवान हो जाने पर उसका विवाह अपने भानजे राष्ट्रकूट के साथ कर देंगे।

राष्ट्रकूट से पहले प्रिय वचनों द्वारा स्वीकृति लेंगे और फिर शुल्क अर्थात् दहेज भी देंगे। इस घटना के वर्णन से ज्ञात होता है कि उन दिनों निकट की रिश्तेदारियो मे भी कन्या दी जाती थी, उस समय भी दहेज देने की प्रथा थी। तब बाल-विवाह भी नहीं होते थे।

बत्तीस संतानों की जन्मदातृ सोमा की दुर्दशा

मूल-तए णं सोमा माहिणी रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी संवच्छरे संवच्छरे जुयलगं पयायमाणी सोलसेहिं संवच्छरेहिं बत्तीसं दारगरूवे पयायइ। तए णं सा सोमा माहणी तेहिं बहूहिं दारगेहिं य दारियाहिं य कुमारएहिं य कुमारियाहिं य डिंभएहिं य डिंभियाहिं य अप्पेगइएहिं उत्ताणसेज्जएहिं य अप्पेगइएहिं थणियाएहिं य अप्पेगइएहिं पीहगपाएहिं अप्पेगइएहिं परंगणएहिं अप्पेगइएहिं परक्कममाणेहिं, अप्पेगइएहिं पक्खो-लणएहिं अप्पेगइएहिं थणं मग्गमाणेहिं अप्पेगइएहिं खीरं मग्गमाणेहिं अप्पेगइएहिं खिल्लणयं मग्गमाणेहिं अप्पेगइएहिं खज्जगं मग्गमाणेहिं

अप्पेगइएहिं कूरं मग्गमाणेहिं अप्पेगइएहिं पाणियं मग्गमाणेहिं हसमाणेहिं रूसमाणेहिं अक्कुसमाणेहिं अक्कोस्समाणेहिं हणमाणेहिं विप्पलायमाणेहिं अणुगम्ममाणेहिं रोवमाणेहिं कंदमाणेहिं विलवमाणेहिं कूवमाणेहिं उक्कूवमाणेहिं निद्धायमाणेहिं पलंबमाणेहिं दहमाणेहिं दंसमाणेहिं वममाणेहिं छेरमाणेहिं मुत्तमाणेहिं मुत्तपुरीसवमियसुलित्तोवलित्ता मइलवसणपुच्चडा जाव असुइबीभच्छा परमदुग्गंधा नो संचाएइ रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए ॥ १८ ॥

छाया–ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूटेन सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना संवत्सरे संवत्सरे युगलं प्रजनयन्ती षोडशभिः संवत्सरैः द्वात्रिंशद् दारकरूपाणि प्रजनयति। ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी तैर्बहुभिर्दारकैश्च दारिकाभिश्च कुमारैश्च कुमारिकाभिश्च डिम्भैश्च डिम्भिकाभिश्च अप्येककै उत्तानशयकैश्च, अप्येककैः स्तनितैश्च, अप्येककैः स्पृहकपादैः, अप्येककैः पराङ्गणकैः अप्येककैः पराक्रम-माणैः, अप्येककैः प्रस्खलनकैः, अप्येककैः स्तनं मृग्यमाणैः, अप्येककैः क्षीरं मृग्यमाणैः, अप्येककैः खेलनकं मृग्यमाणैः, अप्येककैः खाद्यकं मृग्यमाणैः, अप्येककैः कूरं (भक्तं) मृग्यमाणैः, पानीयं मृग्यमाणैः हसद्भिः, रुष्यद्भिः, आक्रोशद्भिः, आक्रुश्यद्भिः, हन्यमानैः, विप्रलपद्भिः, अनुगम्यमानैः, रुदद्भिः, क्रन्दद्भिः, विलपद्भिः, कूजद्भिः, उत्कूजद्भिः, निर्धावद्भिः, प्रलम्बमानैः, दहद्भिः, दशद्भिः, वमद्भिः, छेरद्भिः, मूत्रयद्भिः, मूत्रपुरीषवान्तसुलिप्तोपलिप्ता मलिन-वमनपुच्चडा यावद् अशुचिबीभत्सा परमदुर्गन्धा नो शक्नोति राष्कूटेन सार्धं विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहर्तुम् ॥ १८ ॥

पदार्थान्वयः–**तएणं सा सोमा माहणी**–तदनन्तर (विवाहोपरान्त) वह सोमा ब्राह्मणी, **रट्ठकूडेणं सद्धिं**–राष्ट्रकूट के साथ, **विउलाइं**–अनेक विध, **भोगभोगाइं भुंजमाणी**–भोगो को भोगती हुई, **संवच्छरे-संवच्छरे**–प्रतिवर्ष, **जुयलगं पयायमाणी**–सन्तान-युगल (जोड़ी) को जन्म देती हुई, **सोलसहि संवच्छरेहिं**–सोलह वर्षों में, **बत्तीसं दारगरूवे पयायइ**–बत्तीस बच्चों को जन्म देगी। **तए णं सा सोमा माहणी**–तब वह सोमा ब्राह्मणी, **तेहिं बहूहिं दारगेहिं य दारियाहिं य**–उन बहुत से लड़के-लड़कियो, **कुमारएहिं य कुमारियाहिं य**–कुमारों एवं कुमारियों, **डिंभएहिं य डिंभियाहिं य**–अल्प वयस्क बालक-बालिकाओं में से, **अप्पेगइएहिं उत्ताणसेज्जएहिं**–कोई एक उत्तान (ऊपर की ओर मुख करके) सोते रहेंगे, **अप्पेगइएहिं थणियाएहिं य**–और कोई एक बच्चा चीख रहा होगा, **अप्पेगइएहिं पीहगपाएहिं**–कोई एक चलना चाहेगा, **अप्पेगइएहिं परंगणएहिं**–कोई बच्चा दूसरों के

आगन मे चला जाएगा, **अप्पेगइएहिं परक्कममाणेहिं**—कोई बच्चा चलने की चेष्टा करेगा, **अप्पेगइएहिं पक्खोलणएहिं**—कोई बच्चा गिर पड़ेगा, **अप्पेगइएहिं थणं मग्गमाणेहिं**—कोई बच्चा (दुग्ध-पान के लिए उसके) स्तनो को ढूंढेगा, **अप्पेगइएहिं खीरं मग्गमाणेहिं**—कोई बच्चा दूध की तलाश कर रहा होगा, **अप्पेगइएहिं खिल्लणयं मग्गमाणेहिं**—कोई बच्चा खिलौने ढूंढ रहा होगा, **अप्पेगइएहिं खज्जगं मग्गमाणेहिं**—कोई बच्चा खाद्य-पदार्थों को ढूंढ रहा होगा, **अप्पेगइएहिं कूरं मग्गमाणेहिं**—कोई बच्चा भोजन (भात) की तलाश कर रहा होगा, **अप्पेगइएहिं पाणियं मग्गमाणेहिं**—कोई बच्चा पीने के लिए पानी या अन्य पेय ढूढ रहा होगा, **हसमाणेहिं**—कोई हंस रहा होगा, **रूसमाणेहिं**—कोई रूठ रहा होगा, **अक्कोसमाणेहिं**—कोई गुस्से में भर रहा होगा, **अक्कुस्समाणेहिं**—कोई बच्चा अपनी वस्तु पाने के लिए दूसरों से लड़ रहा होगा, **हणमाणेहिं**—कोई दूसरे बच्चों को मार रहा होगा, **विप्पलापमाणेहिं**—कोई प्रलाप कर रहा होगा, **अणुगम्ममाणेहिं**—कोई किसी के पीछे भाग रहा होगा, **रोवमाणेहिं**—रुदन कर रहा होगा, **कंदमाणेहिं**—कोई क्रन्दन चीख-पुकार कर रहा होगा, **विलवमाणेहिं**—विलाप कर रहा होगा, **कूवमाणेहिं**—सुबक रहा होगा (फड़फडाते हुए होठों से अन्दर ही अन्दर रो रहा होगा), **उक्कूवमाणेहिं**—जोर-जोर से चिल्लाते हुए रो रहा होगा, **निद्धायमाणेहिं**—कोई सो रहा होगा, **पलंबमाणेहिं**—कोई मां का आंचल पकड़ कर लटक रहा होगा, **दहमाणेहिं**—कोई आग से या किसी गरम वस्तु को छूकर जल जाएगा, **दंसमाणेहिं**—कोई बच्चा किसी को दांतों से काट खाएगा, **वममाणेहिं**—कोई उल्टी (वमन) कर रहा होगा, **छेरमाणेहिं**—कोई शौच (टट्टी) कर रहा होगा, **मुत्तमाणेहिं**—कोई पेशाब कर देगा (और वह सोमा स्वयं), **मुत्तपुरीसवमिय- सुलित्तोवलित्ता**—टट्टी-पेशाब और बच्चों की उल्टी से भर जाएगी, **मइलवसणपुच्चडा**—मैले कपड़ों के कारण कान्तिविहीन अथवा गदी प्रतीत होने वाली, **असुइबीभच्छा**—गन्दगी से भर जाने के कारण वीभत्स लग रही, **परमदुग्गंधा**—अत्यन्त दुर्गन्धित, **नो संचाएइ**—अब वह इस योग्य नहीं रही थी कि वह, **रट्ठकूडेणं सद्धिं**—राष्ट्रकूट नामक अपने पति के साथ, **विउलाइं भोगभोगाइं**—अनेक-विध भोगों का, **भुंजमाणी विहरित्तए**—उपभोग करती हुई विचरण कर सके।

मूलार्थ—तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूट के साथ भोगों का आनन्द लेती हुई प्रतिवर्ष सन्तान-युगल को जन्म देती हुई सोलह ही वर्षों में बत्तीस बच्चों को जन्म देगी। तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी उन बहुत से (बत्तीस) लड़के-लड़कियों—कुमार-कुमारियों एव अल्पवयस्क बालक-बालिकाओं में से कोई तो ऊपर (आकाश की ओर) मुख करके सोते रहेंगे, कोई बच्चा चीख-पुकार मचाता रहेगा, कोई बच्चा चलना चाहेगा, कोई बच्चा पड़ोसियों के आंगन में पहुंच जाएगा, कोई बच्चा चलने की चेष्टा करेगा, कोई बालक दूध की तलाश कर रहा होगा, कोई बच्चा खिलौने ढूंढ

रहा होगा, कोई बच्चा खाद्य पदार्थों की तलाश कर रहा होगा, कोई बालक भोजन (भात) खोज रहा होगा, कोई बालक पानी अथवा अन्य पेय पदार्थ पाने को भटक रहा होगा, कोई अपनी वस्तु पाने के लिए दूसरों से लड़ रहा होगा, कोई बच्चा दूसरे बच्चे को मार रहा होगा, कोई मार खाकर प्रलाप कर रहा होगा, कोई किसी के पीछे उसे पकड़ने के लिए भाग रहा होगा, कोई रो रहा होगा, कोई क्रन्दन कर रहा होगा, कोई सुबक रहा होगा (होंठों को फड़फड़ाते हुए अन्दर ही अन्दर रो रहा होगा), कोई जोर-जोर से चिल्लाते हुए रो रहा होगा, कोई सो रहा होगा, कोई बच्चा अग्नि या किसी गरम पदार्थ को छूकर जल रहा होगा, कोई बालक दूसरे बालक को दांतों से काट रहा होगा, कोई उल्टी (वमन) कर देगा, कोई शौच (टट्टी) कर रहा होगा और कोई पेशाब कर देगा, अत: वह सोमा स्वयं बच्चों की टट्टी, पेशाब और उल्टियों से भर जाएगी, मैले कुचेले कपड़ों के कारण कान्तिविहीन प्रतीत होने लगेगी, गन्दगी से भरी रहने के कारण वीभत्स-सी एवं दुर्गन्धि से युक्त होकर वह राष्ट्रकूट के साथ भोग भोगने में सर्वथा असमर्थ हो जाएगी।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में सन्तान की अधिकता के कारण गृहस्थ उन प्यारे लगने वाले बच्चों से कैसे तग होने लगते हैं, इसका सुन्दर चित्रात्मक एवं सजीव वर्णन कर सोमा की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। और साथ ही यह भी बतलाया गया है कि पत्नी को बहुत प्यार करने वाला पति भी उन बच्चों मे उलझकर गन्दी लगती हुई पत्नी की भी उपेक्षा कर देता है, अत: ऐसी अवस्था में स्त्रिया सन्तान-सुख और पति-प्रेम दोनो से वंचित हो जाती हैं। पन्द्रह वर्ष पहले पहल उत्पन्न हुए बच्चों के लिए "दारग" शब्द का, बीच के वर्षो में होने वाले बच्चों के लिए कुमार कुमारी और पन्द्रहवे सोलहवें वर्षों में उत्पन्न होने वाले बच्चों के लिए "डिम्भ-डिम्भिका" शब्दों का प्रयोग किया गया है। अत: यहां तीनों शब्द क्रमश: सार्थक हैं।

सोमा का आर्त्त चिन्तन

मूल—तए णं तीसे सोमाए माहणीए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु अहं इमेहिं बहूहिं दारगेहिं य जाव डिंभियाहिं य अप्पेगइएहिं उत्ताणसेज्जएहिं य जाव अप्पेगइएहिं मुत्तमाणेहिं दुज्जाएहिं दुज्जम्मएहिं हयविप्पहयभग्गेहिं एगप्पहारपडिएहिं जाणं मुत्तपुरीसवमियसुलित्तोवलित्ता जाव परमदुब्भिगंधा नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धिं जाव भुंजमाणी विहरित्तए।

तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव जीवियफले जाओ णं बंझाओ अवियाउरीओ जाणुकोप्परमायाओ सुरभिसुगंधगंधियाओ विउलाइं माणुस्स-गाइं भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति, अहं णं अधन्ना अपुण्णा अकयपुण्णा नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं जाव विहरित्तए ॥ १९ ॥

छाया–ततः खलु तस्याः सोमाया ब्राह्मण्या अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रा-पररात्रकालसमये कुटुम्बजागरिकां जाग्रत्या अयमेतद्रूपो यावत् समुदपद्यत– एवं खलु अहमेभिर्बहुभिर्दारकैश्च यावद् डिम्भिकाभिश्च अप्येककैः उत्तानशयकैश्च यावद् अप्येककैर्मूत्रयद्भिः दुर्जातैः, दुर्जन्मभिः हतविप्रहतभाग्यैश्च एकप्रहारपतितैः या खलु मूत्रपुरीषवमितसुलिप्तोपलिप्ता यावत् परमदुरभिगन्धा नो शक्नोमि राष्ट्रकूटेन सार्ध यावद् भुञ्जाना विहर्तुम्। तद् धन्याः खलु ता अम्बिका यावद् जीवितफलं याः खलु वन्ध्या अविजननशीला जानुकूर्परमातरः सुरभिसुगन्धगन्धिका विपुलान् मानुष्यकान् भोग-भोगान् भुञ्जाना विहरन्ति, अहं खलु अधन्या अपुण्या नो शक्नोमि राष्ट्रकूटेन सार्द्धं विपुलान् यावद् विहर्तुम् ॥ १९ ॥

पदार्थान्वयः–तएण तीसे सोमाए माहणीए–तत्पश्चात् उस सोमा नामक ब्राह्मणी के, **अण्णया कयाइं**–किसी समय (कुछ समय बीत जाने के बाद), **पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि**–अर्धरात्रि के समय, **कुडुंबजागरियं जागरमाणीए**–पारिवारिक चिन्ताओं में निमग्न होकर जागते हुए, **अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था**–इस प्रकार के (सांसारिक उदासीनता सम्बन्धी) विचार उत्पन्न हुए, **एवं खलु अहं**–मैं निश्चित ही, **इमेहिं बहूहिं दारगेहिं**–इन बहुत से बालक-बालिकाओ, **य जाव डिंभियाहिं य**–और इन छोटे-छोटे बच्चों के कारण (जिनमें से), **अप्पेगइएहिं उत्ताणसेज्जएहिं य जाव**–कोई बालक चित (आकाश की तरफ मुह किए हुए) सोया हुआ है, **अप्पेगइएहिं मुत्तमाणेहिं**–कोई मूत्र कर रहा है, **दुज्जाएहिं**–जो जन्म से ही दुःखदायी हैं, **दुज्जम्मएहिं**–जो थोड़े-थोड़े महीनों के अन्तर से ही उत्पन्न हुए है, **हय-विप्पहय-भग्गेहि**–जो सर्वथा भाग्यहीन हैं, **एगप्पहारपडिएहिं**–जो थोड़े-थोड़े समय के अनन्तर मेरी कोख से जन्मे है, **जाणं मुत्तपुरी-सवमियसुलित्तोवलित्ता**–इनके मल-मूत्र और वमन आदि से हर वक्त मैं लिपटी सी रहती हूं, **जाव परमदुब्भिगंधा**–और दुर्गन्धि से भर कर, **नो संचाएमि रट्ठकूडेण सद्धिं**–राष्ट्रकूट के साथ भोगोपभोग सुख प्राप्त नहीं कर पाती हूं, **जाव भुंजमाणी विहरित्तए**–और न ही भोगों-उपभोगों का आनन्द लेते हुए जीवन-यापन ही कर पाती हूं, **तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ**–इसलिए वे मातायें धन्य हैं, **जाव जीवियफले**–वे ही मानव-जीवन का फल प्राप्त कर रही हैं, **जाओ णं वंझाओ**–जो कि वन्ध्या हैं, **अवियाउरीओ**–सन्तानोत्पत्ति

नही कर पाती हैं, **जाणुकोप्परमायाओ**—जो जानुकूर्पर माताए है (अर्थात् शयन करते हुए टांगें ही जिनके हृदय के साथ लगी होती हैं, बच्चा नहीं), **सुरभि-सुगंध-गंधियाओ**—जो सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित होकर, **विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं**—जो अनेक-विध मानवीय भोगों को, **भुंजमाणीओ विहरंति**—भोगती हुईं जीवन-यापन करती है, **अहं णं अधन्ना**—मैं तो अधन्य हूं, **अपुण्णा**—पुण्य-हीन हूं, **अकयपुण्णा**—मैंने मानो किसी जन्म मे भी कोई पुण्य कार्य नहीं किया है, **नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं जाव विहरित्तए**—मैं राष्ट्रकूट के साथ अनेकविध भोग भोग नहीं पाती हू।

मूलार्थ—तत्पश्चात् उस सोमा नामक ब्राह्मणी के मन में एक बार अर्धरात्रि के समय पारिवारिक चिन्ताओं में निमग्न होकर जागते हुए ये विचार उत्पन्न होंगे कि मैं निश्चित ही अपने बहुत से बालक-बालिकाओं-अल्पवयस्क बच्चे-बच्चियों के कारण जिन में से कोई बालक आकाश की ओर मुख करके लेटा रहता है, कोई मूत्र कर रहा होता है, ये सब जन्म से ही मेरे लिये दुःखदायी हैं जो सर्वथा भाग्यहीन हैं, और जो थोड़े-थोडे महीनों के अन्तर से ही मेरी कोख से जन्मे है, जिनके मलमूत्र और वमन आदि से मै हर वक्त लिपटी ही रहती हूं, और दुर्गन्धमयी होकर मैं राष्ट्रकूट के साथ भोगोपभोगों का सुख प्राप्त नहीं कर पाती हूं, और न ही भोगोपभोगों के आनन्द का अनुभव करती हुई जीवन व्यतीत कर पाती हूं। इसलिए वे माताएं धन्य हैं और वे माताएं जीवन का फल प्राप्त कर रही हैं—जो वन्ध्या हैं, सन्तानोत्पत्ति के योग्य नहीं हैं, सोते समय टांगें ही जिनके हृदय के साथ लगी रहती हैं (सन्तान नहीं), और जो सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित होकर अनेकविध मानव-जीवन सम्बन्धी भोग भोगती रहती हैं। मैं तो अधन्य हूं, पुण्यहीन हू, मैने मानों किसी पूर्व जन्म मैं कभी कोई पुण्य किया ही नहीं, जिससे मैं राष्ट्रकूट के साथ भोगों को भोग नहीं पाती हूं।

टीका—जब मनुष्य दुखी हो जाता है तब उसे अपनी सन्तान भी सुहाती नहीं है, इसीलिए सोमा अपनी सन्तान के लिए "**दुज्जाएहिं, दुजम्मएहिं, हयविप्पहय-भग्गेहिं**"—दुखदायी, दुर्जन्म वाले, हतभाग्य आदि विशेषणों का प्रयोग करती है।

भद्रा बहुपुत्रिका देवी बनी, क्योंकि उसके हृदय में प्रबल सन्तानेच्छा थी। प्रबल सन्तानेच्छा के कारण ही सोमा ब्राह्मणी के रूप में जन्म लेने पर उसके गर्भ से सोलह सालों मे ३२ सन्तानें हुईं। अत्यधिक वासना का फल ऐसा ही होता है—यहां यह दिखलाया गया है।

उसके हृदय में भोग भोगने की कामना आज भी बनी हुई थी, इसीलिए अब वह वन्ध्या नारियों एवं सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य नारियों को सौभाग्यशीला एवं धन्य मानती हुई

अफसोस प्रकट करती है कि अधिक सन्तान के कारण मै गदी एव वीभत्स होती जा रही हूं, अत: पति-सुख से वंचित रह रही हू ।। १९ ।।

सोमा की विरक्ति

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ नाम अज्जाओ इरिया-समियाओ जाव बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं जेणेव विभेले संनिवेसे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं जाव विहरंति। तएणं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए विभेले सन्निवेसे उच्चनीय जाव अडमाणे रट्ठकूडस्स गिहं अणुपविट्ठे। तएणं सा सोमा माहणी ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा० खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता वंदइ नमंसइ, विउलेणं असणं ४ पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता एवं वयासी—एवं खलु अहं अज्जाओ रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं जाव संवच्छरे-संवच्छरे जुगलं पयामि, सोलसहिं संवच्छरेहिं बत्तीसं दारगरूवे पयाया। तएणं अहं तेहिं बहूहिं दारएहिं य जाव डिंभियाहिं य अप्पेगइएहिं उत्ताणसिज्जएहिं जाव मुत्तमाणेहिं दुज्जाएहिं जाव नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए तं इच्छामि णं अज्जाओ ! तुम्हं अंतिए धम्मं निसामित्तए। तएणं ताओ अज्जाओ सोमाए माहणीए विचित्तं जाव केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहेन्ति। तएणं सा सोमा माहणी तासिं अज्जाणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं अज्जाओ ! निग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि णं अज्जाओ जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जं नवरं अज्जाओ ! रट्ठकूडं आपुच्छामि। तएणं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं। तएणं सा सोमा माहणी ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ ।। २० ।।

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये सुव्रता नाम आर्या इर्यासमिता यावद् बहुपरिवाराः पूर्वानुपूर्वी यत्रैव वेभेलः सन्निवेशस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य यथाप्रतिरूपम् अवग्रहं यावद् विहरन्ति। ततः खलु तासां सुव्रतानामार्याणाम् एकः संघाटको बेभेले सन्निवेशे उच्चनीच० यावत् अटन् राष्ट्रकूटस्य गृहमनुप्रविष्टः।

ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी ता आर्या एजमानाः पश्यति दृष्ट्वा हृष्टतुष्टा० क्षिप्रमेव० आसनादभ्युत्तिष्ठति अभ्युत्थाय सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति, अनुगत्य वन्दते नमस्यति विपुलेन अशनं० ४ प्रतिलम्भयति, प्रतिलम्भ्य एवमवादीत्–एवं खलु अहमार्याः! राष्ट्रकूटेन सार्द्धं विपुलान् यावत् संवत्सरैः द्वात्रिंशद् दारकरूपान् प्रजाता। ततः खलु अहं तैर्बहुभिदारकैश्च यावद् डिम्भिकाभिश्च अप्येककैः उत्तानशयकैः यावत् मूत्रयद्भिः दुर्जातैः यावद् नो शक्नोमि राष्ट्रकूटेन सार्द्ध विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहर्तुम्, तदिच्छामि खलु आर्याः ! युष्माकमन्तिके धर्म निशामयितुम्। ततः खलु ता आर्याः सोमायै ब्राह्मण्यै विचित्रं यावत् केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं परिकथयन्ति। ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी तासामार्याणामन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा० यावद् हृदया ता आर्या वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमंस्यित्वा एवमवादीत्–श्रद्दधामि खलु आर्याः निर्ग्रन्थं प्रवचनम्, इदमेतद् आर्याः ! यावत् यद् यथेदं यूयं वदथ, यद् नवरमार्याः राष्ट्रकूटमापृच्छामि। ततः खलु अहं देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डा यावत् प्रव्रजामि। यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबन्धम्। ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी ता आर्या वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमंस्यित्वा प्रतिविसर्जयति ॥ २० ॥

पदार्थान्वयः–**तेणं कालेणं तेणं समएणं**–उन्हीं दिनो उस समय, **सुव्वयाओ नामं अज्जाओ**–सुव्रता विशेषण से प्रसिद्ध साध्वियां, **इरियासमियाओ**–ईर्या समिति के पालन पूर्वक, **बहुपरिवाराओ**–बहुत-सी साध्वियों के साथ, **पुव्वाणुपुव्विं**–तीर्थंकर निर्दिष्ट परम्परा से विचरती हुई, **जेणेव विभेले संनिवेसे**–जहां विभेल नामक ग्राम होगा, **तेणेव उवागच्छन्ति**–वहीं पर पहुंचेंगी, **उवागच्छित्ता**–और वहां पहुंचकर, **अहापडिरूवं**– शास्त्र-प्रतिपादित साध्वी-आचरण के अनुरूप, **ओग्गहं**–अवग्रह धारण कर, **जाव विहरति**–उपाश्रय में ठहरेंगी और भिक्षा के लिए विभेल ग्राम के ऊच-नीच घरों में जाएंगी। **तएणं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं**–एक बार उन सुव्रता आर्याओं का, **एगे संघाडए**–एक संघाड़ा (साध्वियों का एक समूह), **विभेले सन्निवेसे**–विभेल ग्राम में, **उच्चनीय जाव अडमाणे**–ऊंच-नीच (अमीर-गरीब) घरों में भिक्षा के लिए विचरती हुई, **रट्ठकूडस्स गिहं अणुपविट्ठे**–राष्ट्रकूट के घर में भी प्रविष्ट होगी। **तएणं सा सोमा माहणी**–तब सोमा ब्राह्मणी, **ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ**–घर में आती हुई उन आर्याओं को, **पासइ**–देखेगी, **पासित्ता हट्ठतुट्ठा**–और देखकर प्रसन्न एव सन्तुष्ट होगी, **खिप्पामेव आसणाओ**–वह जल्दी ही अपने आसन से, **अब्भुट्ठेइ**–उठ खड़ी होगी, **अब्भुट्ठित्ता**–और उठ कर, **सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ**–सात-आठ कदम पीछे हटेगी, **अणुगच्छित्ता**–और पीछे हटकर, **वंदइ नमसइ**–वन्दना-नमस्कार करेगी, (और), **विउलेणं असणं ४**–विपुल अशन (आहार) पान आदि से, **पडिलाभेइ**–उन्हें आहार-पानी का लाभ देगी, **पडिलाभित्ता**–और लाभ देकर, **एवं**

वयासी–इस प्रकार निवेदन करेगी, **एवं खलु अहं अज्जाओ**–हे आर्याओ। मैं निश्चित ही, **रट्ठकूडेणं सद्धिं**–अपने पति राष्ट्रकूट के साथ, **विउलाइं जाव**–अनेक विध भोगों को भोगते हुए, **संवच्छरे-संवच्छरे**– प्रतिवर्ष, **जुगलं पयामि**–दो बच्चों को जन्म देती हूं, **सोलसहिं संवच्छरेहिं**– इस प्रकार मैने सोलह वर्षों में, **बत्तीसं दारगरूवे पयाया**–बत्तीस बच्चों को जन्म दिया है, **तएणं अहं**–इस प्रकार मै, **तेहिं बहूहिं दारएहिं०**–उन बहुत से बच्चों (जिनमें से), **डिंभियाहिं य**–अल्पवयस्क बच्चों मे से, **अप्पेगइएहिं उत्ताण-सिज्जएहिं**– कुछ चित्त होकर सोए रहते हैं, **मुत्तमाणेहिं**–मल-मूत्र त्यागते रहते हैं, **जाव**–उनके मलमूत्रादि से लिपटी, **दुज्जाएहिं**– उन जन्म से ही दुख देने वाले बच्चों के कारण, **नो संचाएमि**–मै नहीं प्राप्त कर सकती, **रट्ठकूडेण सद्धिं**–अपने पति राष्ट्रकूट के साथ, **विउलाइ भोगभोगाइं भुंजमाणी**–अनेक विध (गृहस्थोपयोगी) भोगों-उपभोगों का सुख भोगते हुए, **विहरित्तए**–जीवन-यापन का सुख। **तं इच्छामि णं अज्जाओ०**–हे आर्याओ ! इसलिए मैं चाहती हू कि, **सोमाए माहणीए**–यावत् सोमा ब्राह्मणी के लिए, **विचित्तं जाव केवलिपण्णत्तं**–वह सर्वथा अद्‌भुत (अद्वितीय) एव तीर्थंकर भगवान द्वारा प्ररूपित, **धम्मं परिकहेन्ति**–धर्म बतलाएगी। **तएणं सा सोमा माहणी**–तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी, **तासिं अज्जाण अंतिए**–उन साध्वियो के पास से, **धम्मं सोच्चा निसम्म**–धर्म-तत्व को सुनेगी और सुनकर, **हट्ठतुट्ठा**–हर्षित होकर सन्तुष्ट होगी, **जाव हियया**–अपने हृदय से, **ताओ अज्जाओ**–उन आर्याओं को, **वदइ नमंसइ**–वन्दना-नमस्कार करेगी, **वदित्ता नमंसित्ता**–और वन्दना-नमस्कार करके, **एवं वयासी**–इस प्रकार निवेदन करेगी, **सद्दहामि णं अज्जाओ**–हे आर्याओं। मैं केवली प्ररूपति धर्म पर श्रद्धा करती हू, **निग्गथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि णं**–मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन का आदर करती हूं, **अज्जाओ जाव से जहेयं तुब्भे वयह**–हे आर्याओं। जैसा आप कहेगी मैं वैसा ही करूंगी, **जं नवरं**–क्योंकि वही सत्य है, **अज्जाओ !**–हे आर्याओं, **रट्ठकूडं आपुच्छामि**–मैं जाकर राष्ट्रकूट से पूछती हूं (आज्ञा लेती हूं), **तएणं अहं**–तब मै, **देवाणुप्पियाणं अंतिए**–आप देवानुप्रियाओं (साध्वियों) के पास आकर, **मुंडा जाव पव्वयामि**–मुण्डित बनूगी और प्रव्रज्या ग्रहण करूगी। **अहासुहं देवाणुप्पिए**–हे देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो (वैसा करो), **मा पडिबंधं**–शुभ काम में प्रमाद नहीं करना चाहिए। **तएणं सा सोमा माहणी**–तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी, **ताओ अज्जाओ**–उन आर्याओं को, **वदइ नमंसइ**–वन्दन-नमस्कार करेगी, **वंदित्ता नमंसित्ता**–वन्दना-नमस्कार करके (वह उन्हे) **पडिविसज्जेइ**–वापिस जाने के लिए विसर्जित करेगी।

मूलार्थ–उन्हीं दिनों उस समय 'सुव्रता' नाम से प्रसिद्ध साध्वियां, ईर्या-समिति के अनुरूप चलती हुई, बहुत सी साध्वियों के साथ भगवान द्वारा निर्दिष्ट साध्वी-आचरण के अनुरूप परम्परा से विचरती हुई जहां विभेल नामक ग्राम था वहीं पर

पहुंच जाती हैं और वहां पहुंचकर, शास्त्रप्रतिपादित-साध्वी आचरण के अनुसार अवग्रह धारण कर उपाश्रय में ठहरती हैं। फिर भिक्षा के लिए विभेल ग्राम में ऊंच-नीच (अमीर-गरीब) घरों में जाती हैं। एक बार उन सुव्रता आर्याओं का एक संघाड़ा (समूह) विभेल ग्राम में अमीर-गरीब घरो में भिक्षार्थ विचरण करते हुए राष्ट्रकूट के घर में प्रविष्ट होगा। तब सोमा ब्राह्मणी घर में आती हुई उन साध्वियों को देखती है और देखते ही अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होती है। वह जल्दी ही अपने आसन से उठ खड़ी होती है और उठकर सात आठ कदम पीछे हटती है, पीछे हटकर उन्हें वन्दना-नमस्कार करती है और उन्हें आहार-पानी आदि का लाभ देती है, लाभ देकर वह आर्याओं से इस प्रकार निवेदन करेगी-"हे आर्याओं ! मैं निश्चित ही अपने पति राष्ट्रकूट के साथ अनेकविध भोगों को भोगते हुए प्रतिवर्ष दो बच्चों को जन्म देती रही हूं, इस प्रकार मैने सोलह वर्षों में बत्तीस बच्चों को जन्म दिया है। इस प्रकार मैं उन बहुत से बच्चो के (जिन मे से) कुछ चित्त होकर सोए रहते हैं, कुछ मलमूत्र त्यागते रहते हैं, उनके मल-मूत्रादि से लिपटी उन जन्म से ही दुखदायी बच्चो के कारण अपने पति राष्ट्रकूट के साथ भोगोपभोगों का सुख भोगते हुए मैं अपने जीवन का सुख नहीं प्राप्त कर पाती। इसलिए हे आर्याओं ! मैं यह चाहती हूं कि मुझ सोमा ब्राह्मणी के लिए वह सर्वथा अद्वितीय तीर्थंकर भगवान द्वारा प्ररूपति धर्म बतलाएं।" तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी उन साध्वियो के पास से धर्म-तत्व की व्याख्या सुनेगी और सुनकर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए अपने हृदय से उन आर्याओं को वन्दना-नमस्कार करेगी और वन्दना-नमस्कार करके वह इस प्रकार निवेदन करेगी कि हे आर्याओं ! मै केवली प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा रखती हूं, निर्ग्रन्थ-प्रवचन का आदर करती हूं, आज से जैसे आप कहेंगी मैं वैसा ही करूंगी, क्योंकि वही सत्य है। हे आर्याओं ! मैं जाकर राष्ट्रकूट से पूछती हूं (आज्ञा लेती हूं), आज्ञा लेकर तब मैं आपके सान्निध्य में आकर मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करूंगी।

(आर्याएं उत्तर देंगी) हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो (वैसा करो), शुभ काम में प्रमाद नहीं करना चाहिए। तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी उन आर्याओं को वन्दना-नमस्कार करेगी और वन्दना-नमस्कार करके उन्हें वापिस लौटने के लिए विसर्जित करेगी।

टीका-इस सूत्र से यह संकेत प्राप्त होता है कि गृहस्थ के घर में जब भी साधु-साध्वियां आएं उन्हें वन्दना-नमस्कार कर आहार-पानी का लाभ अवश्य देना चाहिए।

सोमा उस समय अत्यन्त खिन्न थी तब भी वह श्रद्धा-पूर्वक साध्वियों को आहार-पानी देकर पुण्यार्जन करती है। शुद्ध हृदय से श्रद्धा-पूर्वक आहार-पानी देने से गृहस्थ के हृदय में जो भी कामना होती है वह अवश्य पूर्ण हो जाती है।

सोमा को बत्तीस बच्चे प्राप्त हुए जिससे वह अधिक सन्तति होने के दुख से परिचित होकर "अधिक सन्तान दुःखदायी होती हैं" इस सत्य को समझ कर आर्याओं से पुनः प्रव्रजित होने के भाव प्रकट करेगी।

पति से दीक्षार्थ आज्ञा की मांग

मूल—तएणं सा सोमा माहणी जेणेव रट्ठकूडे तेणेव उवागया करतल० एवं वयासी—एवं खलु मए देवाणुप्पिया ! अज्जाणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य णं धम्मे इच्छिए जाव अभिरुइए, तएणं अहं देवाणुपिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वइत्तए ! तएणं से रट्ठ-कूडे सोमं माहणिं एवं वयासी—मा णं तुमं देवाणुप्पिए ! इदाणिं मुंडा भवित्ता जाव पव्वयाहि। भुंजाहि ताव देवाणुप्पिए ! मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं, तओ पच्छा भुत्तभोई सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयाहि ॥ २१ ॥

छाया—ततः खलु सोमा ब्राह्मणी यत्रैव राष्ट्रकूटस्तत्रैव उपागता करतल० एवमवादीत्—एवं खलु मया देवानुप्रिय ! आर्याणामन्तिके धर्मो निशान्तः (श्रुतः), सोऽपि च खलु धर्म इष्टो यावद् अभिरुचितः, ततः खलु अहं देवानुप्रिय ! युष्मा-भिरभ्यनुज्ञाता सुव्रतानामार्याणां यावत् प्रव्रजितुम्। ततः खलु स राष्ट्रकूटः सोमां ब्राह्मणीमेवमवादीत्—मा खलु देवानुप्रिये ! इदानीं मुण्डा भूत्वा यावत् प्रव्रज, भुङ्क्ष्व तावद् देवानुप्रिये ! मया सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान्, ततः पश्चाद् भुक्तभोगा सुव्रता-नामार्याणामन्तिके मुण्डा यावत् प्रव्रज ॥ २१ ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं सा सोमा माहणी**—तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी, **जेणेव रट्ठकूडे**—जहां पर राष्ट्रकूट होगा, **तेणेव उवागया**—वहीं पर आएगी, **करतल०**—हाथ जोड़ कर, **एवं वयासी**—इस प्रकार बोलेगी, **एवं खलु मए देवाणुप्पिया**—हे देवानुप्रिय! मैंने निश्चय ही, **अज्जाणं अंतिए**—आर्याओं के पास जाकर, **धम्मे निसंते**—धर्म का श्रवण किया है, **से वि य णं धम्मे इच्छिए**—उसी धर्म को मैं ग्रहण करना चाहती हूं (क्योंकि), **जाव अभिरुइए**—वही धर्म मेरी रुचि के अनुकूल है, **तएणं अहं देवाणुप्पिया**—इसलिए हे देवानुप्रिय । मैं, **तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया**—आपकी अनुमति (आज्ञा) प्राप्त करके, **सुव्वयाणं**

अज्जाणं–सुव्रता आर्याओं के, **जाव पव्वइत्तए !**–(पास जाकर) दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं, **तएणं से रट्ठकूडे**–तब यह सुनकर राष्ट्रकूट, **सोमं माहणिं**–सोमा ब्राह्मणी से, **एवं वयासी**–इस प्रकार बोलेगा, **मा णं तुमं देवाणुप्पिए !**–हे देवानुप्रिये ! मत करो, **इदाणिं**–अभी तुम, **मुंडा भवित्ता**–मुण्डित होकर, **जाव पव्वयाहि**–प्रव्रज्या मत ग्रहण करो, **भुंजाहि ताव देवाणुप्पिए**–हे देवानुप्रिये, अभी तुम, **मए सद्धिं**–मेरे साथ, **विउलाइं भोगभोगाइं**–अनेकविध भोगोपभोगों का (उपभोग करो), **तओ पच्छा**–तत्पश्चात्, **भुत्तभोई**–भुक्त-भोगिनी बन कर, **सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए**–सुव्रता आर्याओ के पास जाकर, **मुंडा जाव पव्वयाहि**–मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना।

मूलार्थ–तत्पश्चात् (आर्याओं के चले जाने के बाद) जहां उसका पति राष्ट्रकूट होगा वह वहीं पर आएगी और हाथ जोडकर इस प्रकार बोलेगी–हे देवानुप्रिय ! मैंने निश्चित ही आर्याओं के पास जाकर धर्म-तत्त्व का श्रवण किया है, उसी धर्म को मैं ग्रहण करना चाहती हूं, क्योंकि वही धर्म मेरी रुचि के अनुकूल है। इसलिए हे देवानु-प्रिय! मैं आपकी अनुमति (आज्ञा) प्राप्त करके, सुव्रता आर्याओं के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूं।

यह सुनकर राष्ट्रकूट अपनी पत्नी सोमा ब्राह्मणी से इस प्रकार बोलेगा कि हे देवानुप्रिये ! अभी तुम मुण्डित होकर प्रव्रज्या मत ग्रहण करो, हे देवानुप्रिये ! अभी तुम मेरे साथ अनेकविध भोगोपभोगों के साधनों का उपभोग करो, तत्पश्चात् भुक्त- भोगिनी बन कर सुव्रता आर्याओं के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना।

टीका–सांसारिक उलझनो और परेशानियों के कारण भी कभी-कभी मानव-मन में सांसारिक उदासीनता आ जाती है, तब मनुष्य सब कुछ छोडकर साधु-जीवन अपना लेना चाहता है। सोमा भी अधिक सन्तान रूप उलझन के कारण दीक्षित होना चाहती है, किसी दृष्टि से शान्ति पाने के लिए इसे उचित भी माना जा सकता है। वैसे स्वाभाविक विरक्ति ही साधुत्व अपनाने का कारण हो यही उचित होता है।

राष्ट्रकूट अब भी मोहासक्ति के कारण सोमा को साध्वी न बनने का परामर्श देता है, क्योंकि संसार में व्यक्ति स्व-सुख को ही प्रमुखता दिया करता है।

सोमा द्वारा श्रावक-धर्म ग्रहण

मूल–तएणं सा सोमा माहणी ण्हाया जाव सरीरा चेडियाचक्कवाल-परिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता विभेलं संनिवेसं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं अज्जाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, पज्जुवासइ। तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ सोमाए माहणीए विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहेन्ति, जहा जीवा बज्झंति। तएणं सा सोमा माहणी सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए जाव दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया। तएणं सा सोमा माहणी समणोवासिया जाया अभिगय० जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ॥ २२ ॥

छाया—ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूटस्य एनमर्थं प्रतिशृणोति। ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी स्नाता यावत् सर्वालङ्कारभूषितशरीरा चेटिकाचक्रवाल-परिकीर्णा स्वस्माद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य विभेलं सन्निवेशं मध्यंमध्येन यत्रैव सुव्रतानामार्याणामुपाश्रयस्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य सुव्रतां आर्यां वन्दते नमस्यति पर्युपासते। ततः खलु साः सुव्रताः आर्या सोमायै ब्राह्मण्यै विचित्रं केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं परिकथयन्ति, *यथा जीवा बध्यन्ते। ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी* सुव्रतानामा-र्याणामन्तिके यावद् द्वादशविधं श्रावकधर्मं प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य सुव्रतां आर्या वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्या एव दिशः प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता। ततः खलु सोमा ब्राह्मणी श्रमणोपासिका जाता अभिगत० यावत् आत्मानं भावयन्ती विहरति ॥ २२ ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं सा सोमा माहणी**—तत्पश्चात् (पति का परामर्श सुनने के अनन्तर) वह सोमा ब्राह्मणी, **ण्हाया**—स्नान करेगी और, **जाव सरीरा**—वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर, **चेडिया-चक्कवाल-परिकिण्णा**—अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई, **साओ गिहाओ**—अपने घर से, **पडिनिक्खमइ**—बाहर आएगी, (और), **पडिनिक्खमित्ता**—बाहर आते ही, **विभेलं संनिवेसं मज्झंमज्झेणं**—विभेल ग्राम के मध्य भाग से निकलती हुई, **जेणेव सुव्वयाणं अज्जाणं उवस्सए**—जहां पर सुव्रता आर्याओं का उपाश्रय होगा, **तेणेव उवागच्छइ**—वहीं पर पहुचेगी और, **उवागच्छित्ता**—वही पहुचकर, **सुव्वयाओ अज्जाओ**—सुव्रता साध्वियो को, **वंदइ नमंसइ**—वन्दना-नमस्कार करेगी, **पज्जुवासइ**—उनकी पर्युपासना (सेवा भक्ति) करेगी, **तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ**—तदनन्तर वे सुव्रता आर्याएं, **सोमाए माहणीए**—सोमा ब्राह्मणी को, **विचित्तं**—विचित्र अर्थात् अश्रुत-पूर्व अद्वितीय, **केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहेन्ति**—केवली-प्ररूपित धर्म कहेंगी, अर्थात् धर्म के ऐसे तत्व समझाएंगी, **जहा जीवा बज्झंति**—कि कैसे जीव कर्म-बन्धन में बंधते हैं।

तएणं सा सोमा माहणी—तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी, **सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए**—

सुव्रता आर्याओं के पास से (अर्थात् उनके मुख से), **जाव दुवालसविहं सावगधम्मं**—बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ बारह प्रकार के श्रावक धर्म को, **पडिवज्जइ**— स्वीकार करेगी, **पडिवज्जित्ता**—स्वीकार करके, **सुव्वयाओ अज्जाओ**—उन सुव्रता साध्वियों को, **वंदइ नमंसइ**—वन्दना-नमस्कार करेगी तथा, **वंदित्ता नमंसित्ता**—वन्दना-नमस्कार करके, **जामेव दिसिं पाउब्भूया**—जिस दिशा (मार्ग) से आई थी, **तामेव दिसं पडिगया**—उसी दिशा में लौट जाएगी, **तएणं सा सोमा माहणी**—तब से वह सोमा ब्राह्मणी, **समणोवासिया जाया**—श्रमणोपासिका बन गई, **अभिगय०**—सभी जीव-अजीव आदि तत्त्वो को जानकर, **अप्पाणं भावेमाणी**—अपनी आत्मा को धर्म मे लगाती हुई, **विहरइ**—विचरण करेगी—धर्ममय जीवन व्यतीत करेगी।

मूलार्थ—तत्पश्चात् (पति का परामर्श सुनने के अनन्तर) वह सोमा ब्राह्मणी स्नान करेगी और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई अपने घर से बाहर निकलेगी और बाहर आते ही विभेल ग्राम के मध्य भाग से निकलती हुई जहां पर सुव्रता साध्वियो का उपाश्रय होगा वहीं पर पहुचेगी और वहां पहुंचकर उन सुव्रता साध्वियो को वन्दना-नमस्कार करेगी, उनकी पर्युपासना (सेवा-भक्ति) करेगी। तदनन्तर वे सुव्रता आर्याएं सोमा ब्राह्मणी को अद्वितीय अश्रुतपूर्व केवली-प्ररूपित धर्म के ऐसे तत्त्व समझायेंगी कि ये जीव कर्म-बन्धनों में कैसे बन्धते हैं, इत्यादि।

तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी सुव्रता आर्याओं के पास से अर्थात् उनके मुख से बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ बारह प्रकार के श्रावक-धर्म को स्वीकार करेगी और स्वीकार करके उन सुव्रता आर्याओ को वन्दना-नमस्कार करेगी और वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा (मार्ग) से आई थी उसी मार्ग से वह अपने घर लौट जाएगी।

तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी श्रमणोपासिका (श्राविका) बन जाएगी और सभी जीव-अजीव आदि तत्त्वों को जानकर अपनी आत्मा को धर्म मे लगाती हुई विचरण करेगी अर्थात् धर्ममय जीवन व्यतीत करेगी।

टीका—इस सूत्र द्वारा यह ज्ञान प्राप्त हो रहा है कि धर्म-श्रवण के लिए श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरुजनों के पास जाना चाहिए।

स्त्रियों के लिए यह भी उचित है कि वे अपने पति के परामर्श के अनुसार ऐसे चलें जैसे सोमा अपने पति के परामर्श को मानकर साध्वी न बनकर श्राविका बनती है। श्रावक-श्राविकाओ को अपन जीवन धर्माचरण करते हुए व्यतीत करना चाहिए।

मूल—तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ अण्णया कयाइं बिभेलाओ

संनिवेसाओ पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता, बहिया जणवयविहारं विहरंति ॥ २३ ॥

छाया—ततः खलु ताः सुव्रता आर्या अन्यदा कदाचित् बेभेलात् संनिवेशात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य बाह्यं जनपद-विहारं विहरन्ति ॥ २३ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ—सोमा को श्राविका धर्म प्रदान करने के अनन्तर वे सुव्रता आर्याए, **अण्णया कयाइं**—साध्वी-मर्यादा के अनुरूप समय आने पर, **बिभेलाओ संनिवेसाओ**—बिभेल नामक ग्राम से, **पडिनिक्खमंति**—चल पड़ेंगी और, **पडिनिक्खमित्ता**—वहां से चल कर, **बहिया जणवयविहारं**—अनेक जनपदों (प्रान्तों में), **विहरंति**—विहार करती रहेंगी।

मूलार्थ—सोमा को श्राविका धर्म का उपदेश देने के अनन्तर सुव्रता आर्याएं साध्वी-मर्यादा के अनुरूप समय आने पर बिभेल नामक ग्राम से चल पड़ेंगी और वहां से चलकर अनेक जनपदो (प्रान्तों) में विहार करती रहेंगी।

टीका—सूत्र का भाव स्पष्ट है। फिर भी इस सूत्र के द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि साध्वियो को साध्वी-मर्यादा के अनुरूप दो मास से अधिक कहीं रहना कल्पता नहीं है, अतः उचित अवसर आते ही उन्हें विहार कर ही देना चाहिए।

सोमा को पति से दीक्षा की आज्ञा-प्राप्ति

मूल—तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ अन्नया कयाइं पुव्वाणुपुव्विं जाव विहरंति। तएणं सा सोमा माहणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा ण्हाया तहेव निग्गया जाव वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता धम्मं सोच्चा जाव नवरं रट्ठकूडं आपुच्छामि, तएणं पव्वयामि। अहासुहं। तएणं सा सोमा माहणी सुव्वयं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सुव्वयाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव रट्ठकूडे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करतलपरिग्गहियं० तहेव आपुच्छइ जाव पव्वइत्तए। अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं ॥ २४ ॥

छाया—ततः खलु ताः सुव्रता आर्या अन्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्व्या यावद् विहरन्ति। ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी अस्याः कथाया लब्धार्था सती हृष्टतुष्टा० स्नाता तथैव निर्गता यावद् वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा धर्मं श्रुत्वा यावद् नवरं राष्ट्रकूटमापृच्छामि, तदा प्रव्रजामि यथासुखम्०। ततः खलु सा सोमा ब्राह्मणी

सुव्रतामार्या वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा सुव्रतानामन्तिकात् प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव राष्ट्रकूटस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य करतलपरिगृहीतं० तथैव आपृच्छति यावत् प्रव्रजितुम्। यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबन्धम् ॥ २४ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ—तदनन्तर वे सुव्रता आर्याएं, **अन्नया कयाइं**—फिर किसी समय, **पुव्वाणुपुव्विं**—क्रमशः ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए, **जाव विहरन्ति**—उसी विभेल ग्राम मे आएंगी और वसति (ठहरने की आज्ञा लेकर उपाश्रय में तप-संयम से आत्मा को भावित करती हुई ठहरेंगी, **तएणं सा सोमा माहणी**—तदनन्तर वह ब्राह्मणी सोमा, **इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी**—उनके आगमन की सूचना प्राप्त करते ही, **हट्ठतुट्ठा ण्हाया**—प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर स्नान करेगी, **तहेव निग्गया**—पहले की तरह वस्त्रालंकारों से सजकर और अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई घर से निकलेगी, **जाव वंदइ नमंसइ**—और उपाश्रय में पहुंचकर आर्याओं को वन्दना-नमस्कार करेगी, सेवा भक्ति करेगी, **वंदित्ता नमंसित्ता**—वन्दना-नमस्कार करके, **धम्मं सोच्चा**—वन्दना-नमस्कार के अनन्तर उनके मुख से धर्म तत्व सुनकर, **जाव नवरं**—पहले की तरह आर्याओं से निवेदन करेगी कि मै अपने पति, **रट्ठकूडं आपुच्छामि**—राष्ट्रकूट से जाकर पूछती हूं (आज्ञा लेती हूं), **तएणं**—तत्पश्चात् लौटकर, **पव्वयामि**—दीक्षा ग्रहण करूंगी।

आर्याएं कहेगी—**अहासुहं**—जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो, **तएणं सा सोमा माहणी**—तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी, **सुव्वयं अज्जं**—(उनमें से ज्येष्ठ) साध्वी को, **वंदइ नमंसइ**—वन्दना-नमस्कार करेगी और, **वंदित्ता नमंसित्ता**—वन्दना-नमस्कार करके, **सुव्वयाणं अंतियाओ**—उन सुव्रता आर्याओं के पास से, **पडिनिक्खमइ, पडिनिक्ख-मित्ता**—उपाश्रय से बाहर आएगी और जहां पर राष्ट्रकूट होगा, **जेणेव सए गिहे**—जहां उसका अपना घर होगा, **जेणेव रट्ठकूडे**—और जहां पर राष्ट्रकूट होगा, **तेणेव उवागच्छइ**—वहीं पर पहुच जाती है और, **उवागच्छित्ता करतलपरिग्गहियं**—वहां पहुंचकर अपने दोनों हाथ जोड़कर, **तहेव**—पहले की तरह ही, **आपुच्छइ**—राष्ट्रकूट से पूछेगी, **जाव पव्वइत्तए**—कि मैं प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हू (तब राष्ट्रकूट ने भी यही कहा), **अहासुहं देवाणु-प्पिए !**—देवानुप्रिये जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो, **मा पडिबंधं**—शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।

मूलार्थ—तदनन्तर सुव्रता आर्याएं पुनः किसी समय क्रमशः ग्रामानुग्राम विहार करती हुई उसी बिभेलग्राम में आयेंगी और वसति (ठहरने) की आज्ञा लेकर उपाश्रय में तप-संयम द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरेंगी। तदनन्तर ब्राह्मणी सोमा उनके आगमन की सूचना प्राप्त होते ही प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर स्नान करेगी,

पहले की तरह वस्त्राभूषणों से सज कर एवं अपनी दासियों से घिरी हुई, अपने घर से निकलेगी और उपाश्रय में पहुंचकर आर्याओ को वन्दना-नमस्कार करेगी और वन्दना-नमस्कार करके आर्याओ के मुख से धर्म सुनकर पहले की तरह आर्याओ से निवेदन करेगी कि मैं अपने पति राष्ट्रकूट से जाकर पूछती हूं (आज्ञा लेती हूं) तत्पश्चात् लौट कर मै आपसे दीक्षा ग्रहण करूंगी।

आर्याए पुन: सोमा से कहेगी कि जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो, तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी (उनमे से ज्येष्ठ) साध्वी को वन्दना-नमस्कार करती है और वन्दना-नमस्कार करके, उन सुव्रता आर्याओं के पास से (उठकर) उपाश्रय से बाहर आती है और बाहर आकर जहां उसका अपना घर होगा जहां पर उसका पति राष्ट्रकूट (बैठा) होगा वहीं पहुच जाएगी, वहा पहुचकर दोनो हाथ जोडकर पहले की तरह ही राष्ट्रकूट से वह पूछेगी कि मै प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हू। राष्ट्रकूट भी उससे यही कहेगा कि देवानुप्रिये । जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा ही करो, शुभ कार्य मे विलम्ब मत करो।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में सोमा आर्या के भविष्य का कथन करते हुए भगवान कहते है कि सोमा ब्राह्मणी के हृदय मे साध्वियो के प्रति श्रद्धा जागृत होगी। वह साध्वियो का आगमन सुनते ही श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उपाश्रय मे साध्वी-सान्निध्य मे पहुचेगी। यह प्रत्येक श्रावक-श्राविका का कर्त्तव्य है कि वह गुरुजनो का आगमन सुनते ही उनके दर्शनार्थ वहा पहुंच जाए।

स्त्रियो को गृह त्याग कर साध्वी-जीवन अपनाने से पूर्व विवाहित होने पर अपने पति से आज्ञा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए।

पहली बार पूछने पर राष्ट्रकूट अपनी पत्नी सोमा को घर मे ही रहने का परामर्श देता है किन्तु दूसरी बार पूछने पर उसने उसकी भावना का समर्थन करते हुए उसे प्रेरणा दी कि **'मा पडिबन्धं'** शुभ कार्य मे देरी मत करो। अपने किसी भी पारिवारिक जन को धर्म-मार्ग मे प्रवृत्त होने से रोकना उचित नही होता, प्रस्तुत सूत्र का यह संकेत मननीय है।

आर्या सोमा की स्वाध्याय और साधना / देवलोक गमन

मूल–तएणं से रट्ठकूडे विउलं असणं तहेव जहा पुव्वभवे सुभद्दा जाव अज्जा जाया, इरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी। तएणं सा सोमा अज्जा सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ,

अहिज्जित्ता बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालस० जाव भावेमाणी बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सामाणियदेवत्ताए उववन्ना। तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं सोमस्स वि देवस्स दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ २५ ॥

छाया–ततः खलु स राष्ट्रकूटो विपुलमशनं तथैव यथा पूर्वभवे सुभद्रा यावद् आर्या जाता, ईर्यासमिता यावद् गुप्तब्रह्मचारिणी। ततः खलु सा सोमा आर्या सुव्रतानामार्याणामन्तिके सामायिकादीनि एकादशाङ्गानि अधीते, अधीत्य बहुभिः षष्ठाष्टमदशमद्वादश० यावद् भावयन्ती बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा मासिक्या संलेखनया षष्ठि भक्तानि अनशनेन छित्त्वा आलोचितप्रतिक्रान्ता समाधिप्राप्ता कालमासे कालं कृत्वा शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सामानिकदेवतया उत्पद्यत। तत्र खलु अस्त्येकैकेषां देवानां द्विसागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता, तत्र खलु सोमस्यापि देवस्य द्विसागरोपमा स्थिति· प्रज्ञप्ता ॥ २५ ॥

पदार्थान्वय.–तएण से रट्ठकूडे–तदनन्तर वह राष्ट्रकूट, **विउलं असणं जहा**–विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य चारों प्रकार की भोजन-सामग्री बनवाकर जातीय बन्धुओं एव मित्रो आदि को खिलाकर सन्तुष्ट करेगा, **पुव्वभवे सुभद्दा जाव अज्जा जाया**–पूर्व जन्म मे जैसे सुभद्रा आर्या बनी थी वैसे ही, **सा सोमा अज्जा**–वह सोमा भी आर्या बनेगी।

(अब उसने) **सुव्वयाणं अज्जाण अंतिए**–सुव्रता आर्याओं के सान्निध्य में बैठकर, **सामाइयमाइयाइं**–सामायिक एवं, **एक्कारस अंगाइं**–ग्यारह अंग शास्त्रों का, **अहिज्जइ**–अध्ययन करेगी, **अहिज्जित्ता**–अध्ययन करके, **बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालस० जाव**–अनेकविध छठ, अष्टम, दशम, द्वादश आदि तप साधनाओं द्वारा, **भावेमाणी**–अपनी आत्मा को भावित करती हुई, **बहूइं वासाइं**–बहुत वर्षो तक, **सामण्णपरियागं**–श्रामण्य पर्याय का, **पाउणइ**–पालन करेगी, **पाउणित्ता**–और पालन करके, **मासियाए संलेहणाए**–एक मास की सलेखना द्वारा, **सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता**–साठ दिनों के भोजन का अनशन द्वारा छेदन करके, **आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता**–अपने पाप स्थानो की आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त कर, **कालमासे कालं किच्चा**–कालमास मे काल करके, **सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो**–देवराज देवेन्द्र शक्र की, **सामाणियदेवत्ताए**–सामानिक देवता के रूप में, **उववन्ना**–उत्पन्न होगी, **तत्थणं**–वहां सौधर्म देवलोक मे, **अत्थेगइयाणं देवाणं**–कुछ एक देवो की, **दो सागरोवमाइं ठिई**–दो सागरोपम की स्थिति

कही गई है, **तत्थणं**—वहां पर, **सोमस्स वि देवस्स**—सोम नामक देव की भी, **दो सागरोवमाइं**—दो सागरोपम की, **ठिई पण्णत्ता**—स्थिति कही गई है।

मूलार्थ—तदनन्तर राष्ट्रकूट विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य—चारों प्रकार की भोजन सामग्री बनवा कर जातीय बन्धुओं एवं मित्रों आदि को खिलाकर सन्तुष्ट करेगा। पूर्व जन्म में जैसे सुभद्रा आर्या (साध्वी) बनी थी वैसे ही वह सोमा भी आर्या बन जाएगी।

तब वह सोमा आर्या सुव्रता आर्याओं के सान्निध्य में बैठकर सामायिक एवं ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करेगी और अध्ययन करके बहुत से छट्ठ, अष्टम, दशम एवं द्वादश आदि के रूप मे तप-साधनाओं के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करेगी और पालन करके एक मास की संलेखना द्वारा साठ भक्तों का अनशन द्वारा छेदन करके अपने पाप-स्थानो की आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त हो कालमास में काल करके देवराज देवेन्द्र शक्र के सोम नामक सामानिक देव के रूप में उत्पन्न होगी। वहा सौधर्म देवलोक मे कुछ देवों की दो सागरोपम की स्थिति कही गई है। वहां पर सोम नामक देव की भी दो सागरोपम की स्थिति कही गई है।

टीका—राष्ट्रकूट अपनी पत्नी के साध्वी बनने से पूर्व अपने जाति-बन्धुओं एवं मित्रो आदि का अनेकविध भोजन सामग्री द्वारा आदर-सत्कार करेगा। जैन संस्कृति साधु बनने वाले व्यक्ति द्वारा सभी मोह-सम्बन्ध तोड़कर साक्षी रूप में समस्त जातीय बन्धुओं एव मित्रों को आमन्त्रित करने का विधान करती है।

साध्वी के लिए प्रतिक्रमण आदि के अतिरिक्त शास्त्र-स्वाध्याय को भी आवश्यक एवं अनिवार्य बताया गया है।

अन्त मे संलेखना साधु-चर्या का अनिवार्य अंग है।

सोम देव का भविष्य

मूल—से णं भंते ! सोमे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे जाव अंतं काहिइ। एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ॥ २६ ॥

छाया—सः खलु भदन्त ! सोमो देवः तस्मात् देवलोकाद् आयुक्षयेण यावत्

चयं च्युत्वा क्व गमिष्यति ? क्व उत्पत्स्यते ? गौतम ! महाविदेहे वर्षे यावद् अन्तं करिष्यति। एवं खलु जम्बू! श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन चतुर्थस्याध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः ॥ २६ ॥

॥ पुष्पितायां चतुर्थमध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

पदार्थान्वयः–(गौतम स्वामी जी पूछते है) **से णं भंते !**–भगवन् ! **सोमेदेवे**– वह सोम नामक देव, **ताओ देवलोगाओ**–उस सौधर्म देवलोक से, **आउक्खएणं जाव**–आयु-क्षय, भव क्षय और स्थिति क्षय हो जाने पर, **चयं चइत्ता**–वहां से च्यव कर, **कहिं गच्छिहिइ**–कहां जाएगा, **कहिं उववज्जिहिइ ?**–कहां उत्पन्न होगा ?

(भगवान महावीर ने गौतम स्वामी जी को बतलाया)–**गोयमा**–हे गौतम ! **महा-विदेहे वासे**–महाविदेह क्षेत्र मे, **जाव अंतं काहिइ**–सब दु:खों का अन्त करेगा, **एवं खलु जंबू!** –इस प्रकार हे जम्बू ! **समणेणं जाव संपत्तेणं**–मोक्षधाम मे पहुंचने वाले श्रमण भगवान् महावीर ने, **चउत्थस्स अज्झयणस्स**–इस शास्त्र के चौथे अध्ययन के, **अयमट्ठे पण्णत्ते**–उपर्युक्त भाव निरूपित किए हैं।

मूलार्थ–श्री गौतम स्वामी जी पूछते हैं–भगवन् ! वह सोम नामक देव उस सौधर्म नामक देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय, स्थिति-क्षय हो जाने पर वहां से च्यव कर कहां जाएगा और कहां उत्पन्न होगा ?

(भगवान महावीर स्वामी ने कहा)–हे गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जाएगा और सब दु:खो का अन्त करेगा।

हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिता नामक इस शास्त्र के इस चतुर्थ अध्ययन के उपर्युक्त भाव निरूपित किए है।

टीका–सभी भाव सर्वथा स्पष्ट है।

॥ पुष्पिता का चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पञ्चम अध्ययन

(तृतीय वर्ग)

पूर्णभद्र कथानक

मूल—जइणं भंते ! समणेणं भगवया उक्खेवओ०। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समोसरिए, परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुण्णभद्दे देवे सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे सभाए सुहम्माए पुण्णभद्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहा सूरियाभो जाव बत्तीसविहं नट्टविहिं उवदंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। कूडागारसाला० पुव्वभवपुच्छा।

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बूदीवे दीवे भारहे वासे मणिवइया नामं नयरी होत्था रिद्ध०, चंदो राया ताराइण्णे चेइए। तत्थणं मणिवइयाए नयरीए पुण्णभद्दे नाम गाहावई परिवसइ अड्ढे०। तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा जाव जीवियासमरण-भयविप्पमुक्का बहुपरिवारा पुव्वाणुपुव्विं जाव समोसढा, परिसा निग्गया ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता उत्क्षेपकः०। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं गुणशिलं चैत्यम्, श्रेणिको राजा, स्वामी समवसृतः, परिषद् निर्गता ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये पूर्णभद्रो देवः सौधर्मे कल्पे पूर्णभद्रे विमाने सभायां सुधर्मायां पूर्णभद्रे सिंहासने चतुर्भिः सामानिकसहस्त्रैः यथा सूर्याभो यावद् द्वात्रिंशद्विधं नाट्यविधिमुपदर्श्य यस्या दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः, कूटागारशाला, पूर्वभवपृच्छा।

एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये अत्रैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे मणिपदिका नाम नगरी अभवत्, ऋद्धस्तिमित समृद्धा०, चन्द्रो राजा, ताराकीर्णं चैत्यम्। तत्र खलु मणिपदिकायां नगर्यां पूर्णभद्रो नाम गाथापतिः परिवसति, आढ्यः०। तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्थविरा भगवन्तो जातिसम्पन्नाः, यावत् जीविताशामरणभयविप्रमुक्ता बहुश्रुता बहुपरिवाराः पूर्वानुपूर्वी यावत् समवसृताः, परिषद् निर्गता ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः–जइणं भंते !–भगवन् ! यदि, **समणेणं भगवया**–श्रमण भगवान महावीर ने, **उक्खेवओ०**–पुष्पिता के चतुर्थ अध्ययन में पूर्वोक्त भावों का वर्णन किया है तो पचम अध्ययन मे किस विषय का निरूपण किया है ?

एव खलु जंबू ! (सुधर्मा स्वामी बोले)–हे जम्बू !, **तेणं कालेणं तेण समएणं**–उस काल और उस समय मे, **रायगिहे नामं नयरे**–राजगृह नाम का एक नगर था, **गुणसिलए चेइए**–उस नगर में गुणशील नाम का एक चैत्य (उद्यान था), **सेणिए राया**–वहां पर श्रेणिक नाम का राजा था, **सामी समोसरिए**–श्रमण भगवान महावीर नगर के उस चैत्य में पधारे, **परिसा निग्गया**–श्रमण भगवान् के दर्शनो और उपदेश श्रवण के लिए जन-समूह नगर से बाहर निकलकर गुणशील चैत्य में पहुंचा।

तेणं कालेणं तेणं समएणं–(जम्बू) उस काल और उस समय में, **पुण्णभद्दे देवे**–पूर्णभद्र नाम के देवता, **सोहम्मे कप्पे**–सौधर्म कल्प के, **पुण्णभद्दे विमाणे**–पूर्णभद्र नामक विमान की, **सुहम्माए सभाए**–सुधर्मा नाम की सभा मे, **पुण्णभद्दंसि सीहासणंसि**–पूर्णभद्र नामक सिंहासन पर, **चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं**–चार हजार सामानिक देवों के साथ बैठे हुए थे। **जहा सूरियाभो**–सूर्याभ देव के समान, **जाव बत्तीसविहं नट्टविहिं**–भगवान के समक्ष यावत् बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधिया, **उवदंसित्ता**–प्रदर्शित करके, **जामेव दिसिं पाउब्भूए**–जिस दिशा से आकर वह प्रकट हुआ था, **तामेव दिसिं पडिगए**–वह उसी दिशा (मार्ग) से लौट गया, **कूडागारसाला० पुव्वभवपुच्छा**–(जम्बू !) अब गौतम स्वामी जी ने पूर्णभद्र देव की ऋद्धि के विषय में प्रश्न किया कि वह नाट्य-विधि में प्रदर्शित वैभव कहां चला गया ? तब भगवान् महावीर ने पहले की तरह ही कूटागारशाला के उदाहरण द्वारा गौतम स्वामी जी को प्रतिबोधित किया।

(तब गौतम स्वामी जी के हृदय मे पूर्णभद्र देव के पूर्वजन्म के सम्बन्ध में जानने की इच्छा उत्पन्न हुई, उनका समाधान करते हुए भगवान ने कहा), **एवं खलु गोयमा!**—हे गौतम ! **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल और उस समय में, **इहेव जम्बूदीवे**—इसी जम्बू द्वीप के, **भारहे वासे**—भरत क्षेत्र में, **मणिवइया नामं नयरी होत्था**—मणिपदिका नाम की एक नगरी थी, **रिद्ध०**—जो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं वाले भवनो से युक्त, शत्रु-भय से रहित एवं धन-धान्यादि से सम्पन्न थी, **चंदो राया**—वहां के राजा का नाम चन्द्र था, **ताराइण्णे चेइए**—उस नगरी मे ताराकीर्ण नाम का एक चैत्य (उद्यान था), **तत्थणं मणिवइयाए नयरीए**—उस मणिपदिका नाम की नगरी में, **पुण्णभद्दे नाम गाहावई**—पूर्णभद्र नाम का एक गाथापति, **परिवसइ**—रहता था, **अड्ढे०**—जो अत्यन्त समृद्ध था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं—उसी काल में उस समय, **थेरा भगवंतो**—स्थविरपद-विभूषित एक मुनिराज पधारे जो, **जातिसंपण्णा**—जाति-सम्पन्न थे, **जाव जीवियास-मरण-भयविप्पमुक्का**—वे जीवन की इच्छा और मरने के भय से मुक्त थे, **बहुस्सुया**—बहुश्रुत, **बहुपरिवारा**—विशाल मुनि समूह के साथ, **पुव्वाणुपुव्विं**—भगवान् महावीर की आज्ञा के अनुरूप विचरते हुए, **जाव समोसढा**—उसी नगरी में पधारे, **परिसा निग्गया**—जन समुदाय रूप नागरिको की टोलियां घरों से निकल कर वहां उनके दर्शनार्थ एवं उपदेश श्रवण के लिए पहुंची।

मूलार्थ—(जम्बू स्वामी प्रश्न करते हैं) भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिता के चतुर्थ अध्ययन में पूर्वोक्त भावों का वर्णन किया है तो पञ्चम अध्ययन में किस विषय का निरूपण किया है ?

सुधर्मा स्वामी बोले—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था, उस नगर में गुणशील नाम का एक चैत्य था। वहां पर श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था। नगर के उसी चैत्य में भगवान् महावीर स्वामी पधारे, भगवान् के दर्शनों और उपदेश श्रवण के लिए, जन-समूह नगर के बाहर निकल कर उसी गुणशील चैत्य में पहुंचा।

(जम्बू!) उस काल और उस समय में सौधर्म कल्प लोक के पूर्णभद्र नामक विमान की सुधर्मा नाम से प्रसिद्ध सभा में पूर्णभद्र नामक सिंहासन पर पूर्णभद्र नाम का देव चार हजार सामानिक (सेवा में उपस्थित रहने वाले) देवों के साथ बैठा हुआ था, वह देव सूर्याभ देव के समान भगवान् के समक्ष यावत् बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधियां प्रदर्शित करके जिस दिशा से आकर वहां प्रकट हुआ था, उसी दिशा (मार्ग) में लौट गया।

तब गौतम स्वामी जी के हृदय में पूर्णभद्र के पूर्व जन्म के सम्बन्ध में जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। उनका समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में ''मणिपदिका'' नामक एक नगरी थी जो विशाल अट्टालिकाओं वाले भवनों से युक्त थी, शत्रुओं के आतंक से मुक्त और धन-धान्यादि से संपन्न थी। वहां के राजा का नाम चन्द्र था। उस नगर मे ''ताराकीर्ण'' नाम का एक उद्यान था। उस मणिपदिका नाम की नगरी में पूर्णभद्र नाम का एक गाथापति रहता था जो अत्यन्त समृद्ध था।

उसी काल में उस समय स्थविर पद-विभूषित एक ऐसे मुनिराज वहां पधारे जो जाति सम्पन्न थे (अच्छे कुल के थे), जो जीवन की इच्छा और मृत्यु का भय दोनो से मुक्त थे, बहुश्रुत थे और विशाल मुनि-समूह के साथ भगवान् महावीर की आज्ञा के अनुरूप विचरण कर रहे थे। वे उसी नगरी में पधारे। जन-समुदाय रूप नागरिकों की टोलियां घरो से निकल कर वहां उनके दर्शनार्थ एव उपदेश-श्रवण के लिए पहुंची।

टीका—पूरा वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है।

मूल—तएणं से पुण्णभद्दे गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ० जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव निग्गच्छइ, जाव निक्खंतो जाव गुत्तबंभयारी।

तएणं से पुण्णभद्दे अणगारे थेराणं भगवंताणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव भावित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि जाव भासामणपज्जत्तीए।

एवं खलु गोयमा ! पुण्णभद्देणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागया। पुण्णभद्दस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा ! दो सागरोवमा ठिई पण्णत्ता। पुण्णभद्दे णं भंते ! देवे ताओ देवलोगाओ जाव कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव अंतं काहिइ ? एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं निक्खेवओ० ॥ २ ॥

॥ पंचमं अज्झयणं समत्तं ॥ ५ ॥

छाया–ततः खलु सः पूर्णभद्रो गाथापतिः अस्याः कथायाः लब्धार्थः सन् हृष्टतुष्टो० यथा प्रज्ञप्त्यां गङ्गदत्तस्तथैव निर्गच्छति यावद् निष्क्रान्तो यावद् गुप्तब्रह्मचारी। ततः खलु स पूर्णभद्रोऽनगारो भगवतामन्तिके सामायिकादीनि एकादशाङ्गानि अधीते, अधीत्य चतुर्थषष्ठाष्टम० यावद् भावयित्वा बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा मासिक्या संलेखनया षष्ठिं भक्तानि अनशनेन छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रान्त. समाधिं प्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे पूर्णभद्रे विमाने उपपातसभायां देवशयनीये यावद् भाषामनःपर्याप्त्या।

एवं खलु गौतम ! पूर्णभद्रेण देवेन सा दिव्या देवर्द्धिः यावद् अभिसमन्वागता। पूर्णभद्रस्य खलु भदन्त ! देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! द्विसागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता। पूर्णभद्रः खलु भदन्त ! देवस्तस्माद् देवलोकाद् यावत् क्व गमिष्यति? क्व उत्पत्स्यते ? गौतम ! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावदन्तं करिष्यति। एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन निक्षेपकः ॥ २ ॥

॥ पञ्चममध्ययनं समाप्तम् ॥ ५ ॥

पदार्थान्वय.–**तएणं से पुण्णभद्दे गाहावई**–तब वह पूर्णभद्र नामक गाथापति, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे**–उनके आगमन सम्बन्धी समाचार के प्राप्त होते ही, **हट्ठ० जहा पण्णत्तीए**–अत्यन्त प्रसन्न हृदय से जैसे प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) में, **गंगदत्ते तहेव निग्गच्छइ**–गगदत्त घर-बार को त्याग कर मुनिराजो की शरण में पहुंचा था वैसे ही वह भी, **निक्खंतो**–सब कुछ छोडकर उनके पास पहुंचा (और), **जाव गुत्तबंभयारी**– ईर्यासमिति आदि का पालन करते हुए गुप्त ब्रह्मचारी हो गया।

तएणं से पुण्णभद्दे अणगारे–तदनन्तर (मुनि दीक्षा-ग्रहण कर) वह पूर्णभद्र मुनि, **थेराणं भगवंताण अंतिए**–उन स्थविर भगवन्तो के पास (रहते हुए), **सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ**–सामायिक आदि ग्यारह अग शास्त्रो का अध्ययन करता है, **अहिज्जित्ता**–और अध्ययन करके, **बहूहि चउत्थछट्ठट्ठम जाव**–बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, आदि (रूप) तप द्वारा, **भावित्ता**–अपनी आत्मा को भावित करते हुए, **बहूइं वासाइ**–अनेक वर्षो तक, **सामण्णपरियागं**–श्रामण्य-पर्याय (साधुत्व की साधना का उसने), **पाउणइ**–पालन किया, **पाउणित्ता**–और पालन करके, **मासियाए संलेहणाए**–एक मास की संलेखना द्वारा, **सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता**–साठ भक्तों को (दोपहर और सायकालीन साठ बार के भोजन) का अनशन द्वारा छेदन करके, अर्थात् एक मास तक निरन्तर उपवास तपस्या करके, **आलोइय-पडिक्कंते**–आलोचना और प्रतिक्रमण

करते हुए, **समाहिपत्ते**—समाधिपूर्वक, **कालमासे कालं किच्चा**—मृत्यु का समय आने पर प्राणत्याग करके, **सोहम्मे कप्पे**—सौधर्म कल्प नामक देवलोक के, **पुण्णभद्दे विमाणे**—पूर्णभद्र नामक विमान की, **उववायसभाए**—उपपात सभा मे, **देवसयणिज्जंसि**—देव शयनीय शय्या में देवरूप में उत्पन्न होकर, जाव **भासामणपज्जत्तीए**—आहार, शरीर, इन्द्रिय, भाषा, मनः-पर्याप्ति रूप मे पांचो पर्याप्तियो को प्राप्त कर पूर्ण देव बन गया।

एवं खलु गोयमा !—हे गौतम ! इस प्रकार, **पुण्णभद्देणं देवेणं**—उस पूर्णभद्र नामक देव को, **सा दिव्वा देविड्ढी**—वह दिव्य देव-समृद्धि, **जाव अभिसमण्णागया**— प्राप्त हो गई, **पुण्णभद्दस्स णं भंते !**—(गौतम स्वामी जी ने भगवान् महावीर से पुनः प्रश्न किया—) भगवन् ! पूर्णभद्र (सौधर्म कल्प देवलोक में), **देवस्स**—देव, **केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता**—कितने समय की स्थिति कही गई है ? **गोयमा !**—(भगवान महावीर ने कहा—) हे गौतम ! **दो सागरोवमा**—दो सागरोपम की, **ठिई पण्णत्ता**—स्थिति कही गई है।

(गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—) **पुण्णभद्दे ण भंते !**—भगवन् ! वह पूर्णभद्र, **ताओ देवलोगाओ**—उस देवलोक से, **जाव कहिं गच्छिहिइ**—च्यवकर कहां जाएगा, **कहिं उववज्जिहिइ**—कहा उत्पन्न होगा ? **गोयमा !**—(भगवान महावीर ने उत्तर मे कहा—) हे गौतम !, **महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ**—वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, **जाव अंतं काहिइ**—वह सब दुःखो का अन्त करेगा।

एवं खलु जबू !—जम्बू ! इस प्रकार, **समणेणं भगवया**—श्रमण भगवान महावीर ने, **जाव संपत्तेणं**—जो मोक्षधाम को प्राप्त हो चुके हैं, उन्होंने, **निक्खेवओ**—पुष्पिता के पंचम अध्ययन का इस प्रकार प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ—तदनन्तर वह पूर्णभद्र नामक गाथापति उनका आगमन सम्बन्धी समाचार प्राप्त होते ही अत्यन्त प्रसन्न हृदय से जैसे प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) में गगदत्त घर-बार को त्यागकर मुनि वृन्द की शरण में गया था, वैसे ही वह भी सब कुछ छोड़कर उनके पास पहुंचा और ईर्या-समिति आदि का पालन करते हुए गुप्त ब्रह्मचारी बन गया।

मुनि दीक्षा-ग्रहण करने के अनन्तर वह पूर्णभद्र मुनि उन स्थविर भगवन्तो के पास (रहते हुए) सामायिक आदि ग्यारह अंग-शास्त्रों का अध्ययन करता है और अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि (रूप) तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए अनेक वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय (साधुत्व की साधना) का उसने पालन किया, और पालन करके एक मास की संलेखना द्वारा साठ भक्तों को (दोपहर और सांयकालीन भोजन) के क्रम से साठ समयों के भोजन का अनशन

द्वारा छेदन करके अर्थात् एक मास तक निरन्तर उपवास तपस्या करके आलोचना और प्रतिक्रमण करते हुए समाधि-पूर्वक मृत्यु का समय आने पर प्राण-त्याग करके सौधर्म कल्प नामक देवलोक के पूर्णभद्र नामक विमान की उपपात सभा में देवशयनीय शय्या में देवरूप में उत्पन्न होकर उसने भाषा-मन आदि पर्याप्तियों को ग्रहण किया और इस प्रकार वह देव के रूप में वहां निवास करने लग।

गौतम ! इस प्रकार उस पूर्णभद्र नाम के उस देव को वह दिव्य देव-समृद्धि प्राप्त हो गई।

(गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया-) भगवन् ! सौधर्म कल्प नामक देवलोक मे उस पूर्णभद्र देव की कितने समय की स्थिति कही गई है ?

(भगवान महावीर ने कहा-) गौतम ! वहां पर उसकी स्थिति दो सागरोपम की कही गई है।

(गौतम स्वामी जी ने पुनः प्रश्न किया-) भगवन् ! पूर्णभद्र देव उस देवलोक से च्यव कर कहां जाएगा ? और कहां उत्पन्न होगा ? (भगवान महावीर ने उत्तर मे कहा-) वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा और जन्म-मरण आदि समस्त दुःखो का अन्त करेगा।

इस प्रकार हे जम्बू ! मोक्ष-धाम को प्राप्त भगवान महावीर ने पुष्पिता के पंचम अध्ययन का यह वर्णन किया है।

टीका-सभी प्रकरण सर्वथा स्पष्ट हैं।

॥ पञ्चम अध्ययन समाप्त ॥

षष्ठ अध्ययन

(तृतीय वर्ग)

मणिभद्र कथानक

मूल—जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उक्खेवओ०, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे, नयरे गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समोसरिए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं माणिभद्दे देवे सभाए सुहम्माए माणिभद्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहा पुण्णभद्दो, तहेव आगमणं, नट्टविही। पुव्वभवपुच्छा, मणिवया नयरी, माणिभद्दे गाहावई, थेराणं अंतिए पव्वज्जा, एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूइं वासाइं परियाओ, मासिया संलेहणा, सट्ठिं भत्ताइं०, माणिभद्दे विमाणे उववाओ, दो सागरोवमा ठिई, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। एवं खलु जंबू ! निक्खेवओ० ॥ १ ॥

॥ छट्ठं अज्झयणं समत्तं ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् सम्प्राप्तेन उत्क्षेपकः०। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं, गुणशीलं चैत्यं, श्रेणिको राजा, स्वामी समवसृतः। तस्मिन् काले तस्मिन् समये माणिभद्रो देवः सभायां सुधर्मायां माणिभद्रे सिंहासने चतुर्भिः सामानिकसहस्त्रैर्यथा पूर्णभद्रस्तथैवाऽऽगमनं, नाट्यविधिः, पूर्वभवपृच्छा, मणिपदा नगरी, माणिभद्रो गाथापतिः, स्थविराणा-

मन्तिके प्रव्रज्या, एकादशाङ्गानि अधीते, बहूनि वर्षाणि पर्यायः, मासिकी संलेखना, षष्ठिं भक्तानि० माणिभद्रे विमाने उपपातः, द्विसागरोपमा स्थितिः, महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति। एवं खलु जम्बू ! निक्षेपकः ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः–(श्री गौतम स्वामी जी ने प्रश्न किया)–**जइणं भंते !**–भगवन् ! यदि, **भगवया जाव संपत्तेणं**–मोक्षधाम मे पहुचे हुए भगवान् महावीर ने, **उक्खेवओ०**–पचम अध्ययन का पूर्वोक्त भाव बतलाया है तो फिर छठे अध्ययन में किस भाव एव किस महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे वर्णन किया है ?

सुधर्मा स्वामी कहते है कि हे जम्बू ! **तेणं कालेणं तेणं समएणं**–उस काल और उस समय मे, **रायगिहे नयरे**–राजगृह नाम का नगर था, **गुणसिलए चेइए**–जिसमे गुणशील नाम का एक चैत्य (उद्यान) था, **सेणिए राया**–वहां का राजा श्रेणिक था, **सामी समोसरिए**–भगवान महावीर वहा पधारे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं–उस काल उस समय, **माणिभद्दे देवे**–मणिभद्र नामक एक देव था, **सभाए सुहम्माए**–सौधर्म कल्प की सुधर्मा सभा मे, **माणिभद्दंसि सीहासणंसि**– माणिभद्र नामक सिंहासन था, **चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं**–चार हजार सामानिक देवो के साथ बैठे हुए थे, **जहा पुण्णभद्दो**–वह मणिभद्र देव पूर्णभद्रदेव के, **तहेव आगमणं**–समान भगवान महावीर के पास आए, **नट्टविही**–(और) नाट्यविधि दिखकार चले गए।

(श्री गौतम स्वामी जी ने भगवान् महावीर से) **पुव्वभवपुच्छा**–मणिभद्र देव के पूर्वभव के विषय में पूछा, **मणिवया नयरी**–(भगवान् ने उत्तर दिया–गौतम। बहुत समय पूर्व) मणिपदिका नाम की एक नगरी थी, **माणिभद्दे गाहावई**–(वहां पर) मणिभद्र नाम का एक गाथापति रहता था, **थेराणं अंतिए पव्वज्जा**–उसने स्थविर सन्तों के पास पहुंच कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, **एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ**–उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, **बहूइ वासाइं परियाओ**–बहुत वर्षो तक मणिभद्र मुनि ने श्रमण-पर्याय का पालन किया, **मासिया संलेहणा**–(और अन्त में) एक मास की संलेखना द्वारा, **सट्ठिं भत्ताइं०**–साठ भक्तों (साठ समय के भोजन) का उपवास द्वारा छेदन करके और पाप-स्थानो की आलोचना प्रतिक्रमण करके (मृत्यु को प्राप्त कर), **माणिभद्दे विमाणे**–सौधर्म कल्प के माणिभद्र नामक विमान की उपपात सभा में देव शयनीय शय्या पर, **उववाओ**–जन्म लिया, **दो सागरोवमा ठिई**–वहां पर उसकी दो सागरोपम की स्थिति होगी, **महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ**–वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध हो सब दुःखों का अन्त करेगा।

एवं खलु जंबू !–हे जम्बू इस प्रकार, **निक्खेवओ**–भगवान महावीर ने पुष्पिता के छठे अध्ययन के भावों का प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ–(श्री गौतम स्वामी जी ने प्रश्न किया–) भगवन् ! यदि मोक्षधाम में पहुंचे हुए भगवान् महावीर ने पुष्पिता के पंचम अध्ययन का पूर्वोक्त भाव बतलाया है तो फिर छठे अध्ययन में किस भाव एवं किस महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध में वर्णन किया है ?

सुधर्मा स्वामी कहते हैं–हे जम्बू ! उस काल उस समय मे राजगृह नाम का एक नगर था जिसमें गुणशील नामक एक (चैत्य) उद्यान था। वहां का राजा श्रेणिक था, भगवान् महावीर वहां पधारे, परिषद् आई और धर्म श्रवण कर चली गई।

उस काल एव उस समय में मणिभद्र नाम का एक देव था जो सौधर्म कल्प की सुधर्मा नामक देव-सभा मे माणिभद्र नामक सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवों के साथ बैठा हुआ था। पूर्णभद्र देव के समान वह मणिभद्र नामक देव भी भगवान् महावीर के पास आया और अपनी नाट्य-विधि प्रदर्शित कर चला गया।

श्री गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से मणिभद्र देव के पूर्वभव के विषय मे पूछा तो भगवान ने उत्तर दिया कि–गौतम ! बहुत समय पूर्व मणिपदिका नाम की एक नगरी थी जिसमें मणिभद्र नाम का गाथापति रहता था। मणिभद्र ने स्थविर मुनिराजो के सान्निध्य में पहुंच कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और ग्यारह अगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक उसने श्रमण-पर्याय (साधुत्व-साधना) का पालन किया और अन्त में एक मास की संलेखना द्वारा साठ समय के भोजन का उपवासों द्वारा छेदन करके एवं पाप स्थानों की आलोचना तथा प्रतिक्रमण करके (मृत्यु को प्राप्त कर) सौधर्म कल्प के माणिभद्र नामक विमान की उपपात सभा मे देव-शयनीय शय्या पर जन्म लिया। उसकी वहां दो सागरोपम की स्थिति होगी। वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बनेगा और जन्म-मरण सम्बन्धी सभी दु:खों का अन्त करेगा।

हे जम्बू ! इस प्रकार भगवान् महावीर ने पुष्पिता के छठे अध्ययन के भावों का प्रतिपादन किया किया है।

॥ षष्ठ अध्ययन समाप्त ॥

सात से दस अध्ययन

मूल–एवं दत्ते ७, सिवे ८, बले ९, अणाढिए १०, सव्वे जहा पुण्णभद्दे देवे सव्वेसिं दो सागरोवमाइं ठिई। विमाणा देवसरिसनामा। पुव्वभवे दत्ते चंदणाए, सिवे मिहिलाए, बलो हत्थिणपुरनयरे, अणाढिए काकंदीए, चेइयाइं जहा संगहणीए ॥ २ ॥

॥ तइओ वग्गो सम्मत्तो ॥

छाया–एवं दत्तः ७, शिवः ८, बलः ९, अनादृतः १०, सर्वे यथा पूर्णभद्रो देवः, सर्वेषां द्विसागरोपमा स्थितिः, विमानानि देवसदृशनामानि, पूर्वभवे दत्तः चन्दनायाम्, शिवो मिथिलायां, बलो हस्तिनापुरे नगरे, अनादृतः काकन्द्यां, चैत्यानि यथा संग्रहण्याम् ॥ २ ॥ ॥ इति पुष्पितायां सप्तमाष्टमनवमदशमान्यध्ययनानि समाप्तानि ॥ ७ । ८ । ९ । १० ॥

(तृतीय वर्गः समाप्तः)

पदार्थान्वयः–एवं–इसी प्रकार दत्त, शिव, बल और अनादृत आदि सभी देवो का वर्णन, **जहा पुण्णभद्दे देवे**–पूर्णभद्र देव के समान समझ लेना चाहिए, **सव्वेसिं दो सागरोवमाइं ठिई**–इन सब की देवलोक में स्थिति दो सागरोपम की ही जाननी चाहिए, **विमाणा देव-सरिसनामा**–विमानों के नाम इन देवो के नामों के समान समझने चाहिए। (इतना विशेष है कि), **पुव्वभवे दत्ते चंदणाए**–दत्त अपने पूर्व भव मे चन्दना नगरी मे, **सिवे मिहिलाए**–शिव मिथिला मे, **बलो हत्थिणपुरनयरे**–बल हस्तिनापुर नामक नगर मे, (और) **अणाढिए काकंदीए**–अनादृत काकन्दी नगरी मे उत्पन्न हुए थे। **चेइयाइं जहा संगहणीए**–उद्यान संग्रहणी गाथा के अनुसार जानने चाहिएं।

मूलार्थ–जम्बू ! इसी प्रकार दत्त, शिव, बल और अनादृत इन सभी देवों का वर्णन पूर्व वर्णित पूर्णभद्र देव के समान समझना चाहिए। इनके सौधर्म कल्प में विमानों के नाम इन देवां के नामों के अनुसार ही जान लेने चाहिएं। (इतना विशेष है कि) दत्त पूर्व जन्म में चन्दना नगरी में, शिव मिथिला में, बल हस्तिनापुर में और अनादृत काकन्दी में जन्मे थे। इन से सम्बन्धित उद्यानों के नाम संग्रहणी गाथा के अनुसार समझने चाहिए।

टीका–सग्रहणी गाथा वर्तमान मे अनुपलब्ध है।

॥ सात से दश अध्ययन समाप्त ॥ ॥ तृतीय वर्ग समाप्त ॥

(चतुर्थ-वर्ग)

अह पुप्फचूलियाओ चउत्थो वग्गो

अथ पुष्पचूलिकाख्यश्चतुर्थो वर्गः

दस अध्ययनों के नाम निर्देश / श्री देवी की नाट्यविधि

मूल—जइणं भंते ! समणेणं भगवया उक्खेवओ० जाव दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा—

"सिरि-हिरि-धिइ-कित्तीओ, बुद्धी लच्छी य होइ बोधव्वा।
इलादेवी सुरादेवी, रसदेवी गंधदेवी य ॥

जइणं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवंगाणं चउत्थस्स वग्गस्स पुप्फचूलाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! उक्खेवओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, सामी समोसढे, परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सिरी देवी सोहम्मे कप्पे सिरिवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सिरिंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं सपरिवाराहिं जहा बहुपुत्तिया जाव नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगया। नवरं (दारय) दारियाओ नत्थि ॥ १ ॥"

छाया—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता उत्क्षेपको० यावद् दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। तद् यथा—

"श्री—ह्री—धी—कीर्तयो बुद्धिलक्ष्मीश्च भवति बोद्धव्या।
इलादेवी सुरादेवी, रसदेवी गन्धदेवी च ॥ १ ॥"

तेणं कालेणं तेणं समएणं—उसी काल एवं उसी समय में, **सिरिदेवी**—श्री देवी, **सोहम्मे कप्पे**—सौधर्म नामक देवलोक के, **सिरिवडिंसए विमाणे**—श्री अवतंसक विमान मे, **सभाए सुहम्माए**—सुधर्मा नाम की सभा में, **सिरिंसि सीहासणंसि**—श्री नामक सिंहासन पर, **चउहिं सामाणियसाहस्सेहिं**—चार हजार सामानिक देवों के साथ, **चउहिं महत्तरियाहिं सपरिवाराहिं**—तथा परिवार सहित चार हजार महत्तरिकाओं के साथ (बैठी हुई थी), **जहा बहुपुत्तिया**—जैसे वह श्री देवी (पूर्व वर्णित) बहुपुत्रिका देवी के समान (प्रभु महावीर के पास आई) और, **नट्टविहिं उवदंसित्ता**—नाट्य-विधि प्रदर्शित करके, **पडिगया**—वापिस देवलोक मे ही लौट गई, **नवरं**—इतना विशेष समझना चाहिए कि, **(दारय) दारियाओ नत्थि**—उसके साथ वैक्रिय शक्ति द्वारा उत्पन्न बालक बालिकाएं नहीं थीं।

मूलार्थ—भगवन्! यदि भगवान महावीर ने पुष्पिता नामक वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है तो तदनन्तर उन्होंने क्या फरमाया है ?

सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू जी के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा—वत्स जम्बू! तदनन्तर भगवान महावीर ने पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग का निरूपण किया है, इस वर्ग में दस अध्ययन बताए हैं जैसे कि—१. श्री, २. ह्री, ३. धी, ४. कीर्ति, ५. बुद्धि, ६. लक्ष्मी, ७ इलादेवी, ८. सुरादेवी, ९. रसदेवी और १०. गन्धदेवी। जम्बू ! भगवान महावीर ने उपर्युक्त दस अध्ययनों का निरूपण किया है।

(जम्बू जी ने पुन: जिज्ञासा प्रकट की) भगवन्! मोक्ष-धाम को प्राप्त होने वाले भगवान् महावीर ने पुष्पचूलिका के चतुर्थ वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है तो इस वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या भाव फरमाया है ?

श्री सुधर्मा स्वामी जी ने उत्तर दिया हे जम्बू ! उस काल एवं उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था, उस नगर में गुणशिलक नामक एक चैत्य (उद्यान) था, उस नगर पर श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था, भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वहा पधारे। उनके दर्शनों एवं उपदेश-श्रवण के लिए श्रद्धालु नागरिकों की टोलिया वहां पहुंचने के लिए अपने-अपने घरों से निकलीं।

उसी काल और उसी समय श्री देवी सौधर्म नामक देवलोक के श्रीअवतंसक विमान में सुधर्मा नाम की सभा में श्री नामक सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवों के साथ तथा परिवार के साथ बैठी हुई थी, वह श्री (पूर्व वर्णित) बहुपुत्रिका देवी के समान (प्रभु महावीर के पास आई) और नाट्य-विधि प्रदर्शित करके, वापस देवलोक में ही लौट गई। इतना विशेष समझना चाहिए कि उसके साथ वैक्रिय शक्ति द्वारा उत्पन्न बालक-बालिकाएं नहीं थीं।

यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन उपाङ्गानां चतुर्थस्य वर्गस्य पुष्पचूलानां दशाऽध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त ! उत्क्षेपकः०, एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरं, गुणशिलं चैत्यं, श्रेणिको राजा, स्वामी समवसृतः, परिषद् निर्गता।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रीदेवी सौधर्मे कल्पे श्रीअवतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां श्रियि सिंहासने चतुर्भिः सामानिकसहस्त्रैः चतसृभिर्महत्तरिकाभिः सपरिवाराभिः यथा बहुपुत्रिका यावद् नाट्यविधिमुपदर्श्य प्रतिगता। नवरं (दारक) दारिका न सन्ति ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—जइ णं भंते !—भगवन् ! यदि, **समणेणं भगवया**—भगवान् महावीर ने, **उक्खेवओ० जाव**—पुष्पिता नामक वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है—तो तदनन्तर उन्होंने क्या फरमाया है ?

(सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू स्वामी जी के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा—''वत्स जम्बू ! तदनन्तर भगवान् महावीर ने पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग का निरूपण किया है। इस वर्ग में), **दस अज्झयणा पण्णत्ता**—दस अध्ययन बताए है, **तं जहा**—जैसे—

''सिरि-हिरि-धिइ-कित्तीओ, बुद्धी लच्छी य होइ बोधव्वा।
इलादेवी सुरादेवी, रसदेवी गंधदेवी य ॥

१. श्री, २ ह्री, ३ धी, ४. कीर्ति, ५. बुद्धि, ६. लक्ष्मी, ७. इलादेवी, ८ सुरादेवी, ९. रसदेवी और १०. गन्ध देवी—

(जम्बू ! भगवान् महावीर ने उपर्युक्त दस अध्ययनो का निरूपण किया है।)

जइणं भंते !—भगवन् ! यदि, **समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं**—मोक्ष धाम को प्राप्त होने वाले भगवान् महावीर ने, **उवंगाणं०**—पुष्पचूलिका के चतुर्थ वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है तो, **पढमस्स णं भंते! उक्खेवओ**—तो इस वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या भाव फरमाया है ?

एव खलु जंबू !—श्री सुधर्मा स्वामी जी ने उत्तर दिया हे जम्बू !, **तेणं कालेणं तेणं समएण**—उस काल एवं उस समय में, **रायगिहे नयरे**—राजगृह नाम का एक नगर था, **गुणसिलए चेइए**—उस नगर में गुणशिलक नामक एक चैत्य (उद्यान) था, **सेणिए राया**—उस नगर पर श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था, **सामी समोसढे**—भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वहां पधारे, **परिसा निग्गया**—उनके दर्शनों एवं उपदेश-श्रवण के लिए श्रद्धालु नागरिकों की टोलियां वहां पहुचने के लिए अपने-अपने घरों से निकलीं।

तेणं कालेणं तेणं समएणं–उसी काल एवं उसी समय में, **सिरिदेवी**–श्री देवी, **सोहम्मे कप्पे**–सौधर्म नामक देवलोक के, **सिरिवडिंसए विमाणे**–श्री अवतंसक विमान में, **सभाए सुहम्माए**–सुधर्मा नाम की सभा में, **सिरिंसि सीहासणंसि**–श्री नामक सिंहासन पर, **चउहिं सामाणियसाहस्सेहिं**–चार हजार सामानिक देवों के साथ, **चउहिं महत्तरियाहिं सपरिवाराहिं**–तथा परिवार सहित चार हजार महत्तरिकाओं के साथ (बैठी हुई थी), **जहा बहुपुत्तिया**–जैसे वह श्री देवी (पूर्व वर्णित) बहुपुत्रिका देवी के समान (प्रभु महावीर के पास आई) और, **नट्टविहिं उवदंसित्ता**–नाट्य-विधि प्रदर्शित करके, **पडिगया**–वापिस देवलोक मे ही लौट गई, **नवरं**–इतना विशेष समझना चाहिए कि, **(दारय) दारियाओ नत्थि**–उसके साथ वैक्रिय शक्ति द्वारा उत्पन्न बालक बालिकाएं नहीं थीं।

मूलार्थ–भगवन्! यदि भगवान महावीर ने पुष्पिता नामक वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है तो तदनन्तर उन्होंने क्या फरमाया है ?

सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू जी के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा–वत्स जम्बू! तदनन्तर भगवान महावीर ने पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग का निरूपण किया है, इस वर्ग मे दस अध्ययन बताए हैं जैसे कि–१. श्री, २. ह्री, ३. धी, ४. कीर्ति, ५. बुद्धि, ६. लक्ष्मी, ७. इलादेवी, ८. सुरादेवी, ९. रसदेवी और १०. गन्धदेवी। जम्बू ! भगवान महावीर ने उपर्युक्त दस अध्ययनों का निरूपण किया है।

(जम्बू जी ने पुनः जिज्ञासा प्रकट की) भगवन्! मोक्ष-धाम को प्राप्त होने वाले भगवान् महावीर ने पुष्पचूलिका के चतुर्थ वर्ग में दस अध्ययनों का वर्णन किया है तो इस वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या भाव फरमाया है ?

श्री सुधर्मा स्वामी जी ने उत्तर दिया हे जम्बू ! उस काल एवं उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था, उस नगर में गुणशिलक नामक एक चैत्य (उद्यान) था, उस नगर पर श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था, भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वहां पधारे। उनके दर्शनो एवं उपदेश-श्रवण के लिए श्रद्धालु नागरिकों की टोलियां वहां पहुंचने के लिए अपने-अपने घरों से निकलीं।

उसी काल और उसी समय श्री देवी सौधर्म नामक देवलोक के श्रीअवतंसक विमान में सुधर्मा नाम की सभा में श्री नामक सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवों के साथ तथा परिवार के साथ बैठी हुई थी, वह श्री (पूर्व वर्णित) बहुपुत्रिका देवी के समान (प्रभु महावीर के पास आई) और नाट्य-विधि प्रदर्शित करके, वापस देवलोक में ही लौट गई। इतना विशेष समझना चाहिए कि उसके साथ वैक्रिय शक्ति द्वारा उत्पन्न बालक-बालिकाएं नहीं थीं।

टीका—समस्त विषय अत्यन्त स्पष्ट है ॥ १ ॥

श्रीदेवी: पूर्वभव / भूतादारिका

मूल—पुव्वभवपुच्छा। एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए, जियसत्तू राया। तत्थ णं रायगिहे नयरे सुदंसणे नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे०। तस्स णं सुदंसणस्स गाहावइस्स धूया पियाए गाहावइणीए अत्तया भूया नामं दारिया होत्था, वुड्ढा वुड्ढकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपूयत्थणी वरग-परिवज्जिया यावि होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जाव नवरयणिए, वण्णओ सो चेव, समोसरणं, परिसा निग्गया।

तएणं सा भूया दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्मताओ ! पासे अरहा पुरिसादाणीए पुव्वाणुपव्विं चरमाणे जाव देवगणपरिवुडे विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ॥ २ ॥

छाया—पूर्वभवपृच्छा ! एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं, गुणशिलं चैत्यं, जितशत्रु राजा। तत्र खलु राजगृहे नगरे सुदर्शनो नाम गाथापतिः परिवसति, आढ्यः। तस्य खलु सुदर्शनस्य गाथापतेः प्रियाया गाथापतिकाया आत्मजा भूता नाम्नी दारिका—अभवत् वृद्धा वृद्धकुमारी जीर्णा जीर्णकुमारी पतितपूतस्तनी वरपरिवर्जिता चापि अभवत्। तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयो यावद् नवरत्निको वर्णकः स एव, समवसरणं, परिषद् निर्गता।

ततः खलु सा भूता दारिका अस्याः कथाया लब्धार्था सती हृष्टतुष्टा० यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य एवमवादीत्—एवं खलु अम्बतातौ ! पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयः पूर्वानुपूर्वी चरन् देवगणपरिवृतो विहरति, तद् इच्छामि खलु अम्बतातौ ! युवाभ्यामभ्यनुज्ञाता सती पार्श्वस्याऽर्हतः पुरुषादानीयस्य पादवन्दनाय गन्तुम्, यथासुखं देवानुप्रिये ! मा प्रतिबन्धम् ॥ २ ॥

पदार्थान्वयः—**एवं खलु गोयमा !**—(गौतम ने पुनः पूछा—भगवन् ! यह श्री देवी पूर्वजन्म में कौन थी ? गौतम स्वामी के प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—) हे गौतम ! **तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल एवं उस समय में, **रायगिहे**

नयरे–राजगृह नामक एक नगर था, **गुणसिलए चेइए**–वहा गुणशील नाम का एक (उद्यान) था, **जियसत्तू राया**–वहां पर जितशत्रु नाम के राजा का राज्य था, **तत्थ णं रायगिहे नयरे**–उस राजगृह नगर में, **सुदंसणे नाम गाहावई परिवसइ**–सुदर्शन नाम का एक गाथापति (व्यापारी वर्ग का प्रमुख) रहता था, **अड्ढे०**–जो कि धन-धान्यादि से अत्यन्त समृद्ध था, **तस्स णं सुदंसणस्स गाहावइस्स धूया पियाए**–उस सुदर्शन नामक गाथापति की पत्नी का नाम प्रिया था, **गाहावइणीए अत्तया भूया नामं**–उस गाथापति की पत्नी प्रिया की कोख से उत्पन्न भूता नाम की एक, **दारिया होत्था**–पुत्री थी, **वुड्ढा वुड्ढकुमारी**–जो कि बड़ी उमर की हो गई थी और वृद्धा स्त्रियों जैसी प्रतीत होती थी, **जुण्णा जुण्णकुमारी**–जीर्ण शरीर की होने के कारण जीर्ण महिला सी प्रतीत होती थी, **पडियपूयत्थणी**–उसके स्तन (जीर्णता के कारण) लटक चुके थे किन्तु पुरुष-अस्पृष्ट होने के कारण पवित्र थे, **वरग-परिवज्जिया यावि होत्था**–वह अभी तक वर-प्राप्ति से वञ्चित ही थी (अर्थात् कुंवारी ही थी)।

तेणं कालेणं तेणं समएणं–(जम्बू) उसी काल और उसी समय में, **पासे अरहा पुरिसादाणीए**–पुरुषों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी, **जाव नवरयणिए**–जो नौ हाथ की ऊंचाई वाले थे, **सो चेव**–वहां पहले जैसा ही, **समोसरणं**–उनका समवसरण लगा, **परिसा निग्गया**–उनके दर्शन और प्रवचन सुनने के लिए श्रद्धालु नागरिकों के समूह अपने-अपने घरों से निकल पड़े।

तएणं सा भूया दारिया–तदनन्तर वह भूता नाम की अत्यधिक वय वाली लड़की, **इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी**–उनके आगमन की सूचना प्राप्त होते ही, **हट्ठतुट्ठा**–अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर, **जेणेव अम्मापियरो**–जहां पर उसके माता-पिता थे, **तेणेव उवागच्छइ**–वहीं पर आ जाती है, (और), **उवागच्छित्ता**–वहां आकर, **एवं वयासी**–वह माता-पिता से इस प्रकार कहने लगी, **एवं खलु अम्मताओ**– हे माता जी, पिता जी! **पासे अरहा पुरिसादाणीए**–मनुष्यों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी, **पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे**–ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, **जाव देवगणपरिवुडे**–देवताओं से घिरे हुए (जिनके चारों ओर देव सर्वदा रहते हैं), **विहरइ**–विहार करते हुए हमारे नगर में पधारे है, **तं इच्छामि णं अम्मयाओ**–इसलिए हे मां ! मैं यह चाहती हूं कि, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी**–आप से आज्ञा प्राप्त करके, **पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स**–नौ हाथ की अवगाहना वाले पुरुषों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी के, **पायवंदिया गमित्तए**–चरण-वन्दन के लिए जाऊं, **अहासुहं देवाणुप्पिया**–हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसे करो, **मा पडिबंधं**–शुभ काम में देरी उचित नहीं होती।

मूलार्थ–(गौतम स्वामी जी ने पूछा) भगवन् ! यह श्रीदेवी पूर्व जन्म में कौन थी? गौतम स्वामी के प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान महावीर ने कहा–) हे गौतम! उस काल और उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था, वहां गुणशील नाम का एक चैत्य (उद्यान) था, वहां पर जितशत्रु नाम के राजा का राज्य था। उस राजगृह नगर में सुदर्शन नाम का एक गाथापति (व्यापारी वर्ग का प्रमुख) रहता था, जोकि धन-धान्य से अत्यन्त समृद्ध था, उस सुदर्शन नामक गाथापति की पत्नी का नाम प्रिया था, उस गाथापति की पत्नी प्रिया की अपनी ही कोख से उत्पन्न भूता नाम की एक पुत्री थी, जो कि बड़ी उमर की हो गई थी और वृद्धा स्त्रियों जैसी प्रतीत होती थी, जीर्ण शरीर वाली, जीर्ण महिला-सी प्रतीत होती थी, उसके स्तन (जीर्णता के कारण) लटक चुके थे, किन्तु पुरुष-अस्पृष्ट होने के कारण पवित्र थे। वह अभी तक वर-प्राप्ति से वञ्चित थी (अर्थात् कुंवारी ही थी)।

(जम्बू) उसी काल और उसी समय में पुरुषों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी, जो नौ हाथ की ऊंचाई वाले थे, वहा पहले जैसा ही उनका समवसरण लगा, उनके दर्शन और प्रवचन सुनने के लिए श्रद्धालु नागरिको के समूह अपने-अपने घरों से निकल पड़े।

तदनन्तर वह अत्यधिक वय वाली भूता नाम की लड़की भगवान के आगमन की सूचना प्राप्त होते ही अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर जहां पर उसके माता-पिता थे वहीं पर आ जाती है (और) वहा आकर वह माता-पिता से इस प्रकार कहने लगी, हे माता जी, पिता जी ! मनुष्यों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, देवताओं से घिरे हुए (जिनके चारों ओर देव सर्वदा रहते हैं) विहार करते हुए हमारे नगर में पधारे हैं, इसलिए हे मां ! मैं यह चाहती हूं कि आपसे आज्ञा प्राप्त करके नौ हाथ की अवगाहना वाले पुरुषों में श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी की चरण-वन्दना के लिए मैं भी जाऊं। माता-पिता ने पुत्री से कहा–हे देवानुप्रिये! जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसे करो, शुभ काम में देरी उचित नहीं होती।

टीका–भावार्थ सर्वथा स्पष्ट है।

भूता का वैराग्य

मूल–तए णं सा भूया दारिया ण्हाया० जाव सरीरा चेडीचक्कवाल-परिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।

तएणं सा भूया दारिया नियपरिवारपरिवुडा रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थयराइसए० पासइ, धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता चेडीचक्कवालपरिकिण्णा जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ। तएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए भूयाए दारियाए तीसे महइ० धम्मकहा, धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठ० वंदइ, वंदित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं से जहेतं तुब्भे वदेह, जं नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तएणं अहं जाव पव्वइत्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया ॥ ३ ॥

छाया—ततः खलु सा भूता दारिका स्नाता यावत् सर्वालङ्कार-विभूषितशरीरा चेटीचक्रवालपरिकीर्णा स्वस्माद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्योपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति उपागत्य धार्मिकं यानप्रवरं दूरूढा। ततः खलु सा भूता दारिका निजपरिवारपरिवृता राजगृहं नगरं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव गुणशिलं चैत्यं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य छत्रादीन् तीर्थङ्करातिशयान् पश्यति। धार्मिकात् यानप्रवरात् प्रत्यवरुह्य चेटीचक्रवालपरिकीर्णा यत्रैव पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य त्रिकृत्वा यावत् पर्युपास्ते। ततः खलु पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयो भूतायै दारिकायै तस्यां महातिमहत्यां. धर्मकथां०। धर्मं श्रुत्वा निशाम्य हृष्टतुष्टा० वन्दते, वन्दित्वा एयमवादीत्—श्रद्दधामि खलु भदन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनं यावद् अभ्युत्तिष्ठामि खलु भदन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनम्, तद् यथैतद् यूयं वदथ यद् नवर देवानुप्रिय ! अम्बापितरौ आपृच्छामि। ततः खलु अहम् यावत् प्रव्रजितुम्। यथासुखं देवानुप्रिये ॥ ३ ॥

पदार्थान्वयः—तए णं सा भूया दारिया—तदनन्तर उस भूता नाम की कन्या ने, **ण्हाया**—स्नान किया, **जाव सरीरा**—उसने अपने शरीर पर अच्छे वस्त्र एवं अलंकार धारण किए, **चेडीचक्कवाल-परिकिण्णा**—अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई, **साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ**—अपने घर से बाहर निकली, **पडिनिक्खमित्ता**—(और) बाहर निकल कर, **जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला**—जहां पर बाहरी उपस्थानशाला (रथ-घोड़े आदि रखने और बांधने का स्थान) थी, **तेणेव उवागच्छइ**—वही पर आ जाती है (और), **उवागच्छित्ता**—वहां आकर, **धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा**—अपने धर्म-कार्यों के लिए निश्चित श्रेष्ठ रथ पर बैठी। **तएणं सा भूया दारिया**—तदनन्तर वह भूता नाम वाली कन्या, **नियपरिवारपरिवुडा**—अपनी दासियों एवं सहेलियों आदि परिवार से घिरी हुई, **रायगिहं नयरं**—राजगृह नगर के,

मज्झं मज्झेणं—बीचों-बीच के (मध्य मार्ग से), **निग्गच्छइ**—निकलती है (और वह), **निग्गच्छित्ता**—निकल कर, **जेणेव गुणसिलए चेइए**—जहां गुणशील नामक चैत्य (उद्यान) था, **तेणेव उवागच्छइ**—वहीं पर आ पहुंचती है, **उवागच्छित्ता**—(और) वहां आकर, **छत्तादीए तित्थयराइसए**—तीर्थंकर भगवान के छत्र आदि अतिशयों के, **पासइ**—दर्शन करती है, **धम्मियाओ जाणप्पवराओ**—अपने धर्म-कार्यों के लिए निश्चित श्रेष्ठ रथ से, **पच्चोरुहइ**—नीचे उतरती है (और), **पच्चोरुहित्ता**—नीचे उतरकर, **चेडीचक्कवाल- परिकिण्णा**—अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई, **जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए**— जहां पर पुरुष श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु पार्श्व विराजमान थे, **तेणेव उवागच्छइ**—वहीं पर आ जाती है, **उवागच्छित्ता**—और वहां आकर, **तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ**—और तीन बार प्रदक्षिणा-पूर्वक वन्दना-नमस्कार करके उनकी उपासना करने लगती है।

तएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए—तदनन्तर पुरुष-श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी ने, **भूयाए दारियाए**—भूता कन्या को, **तीसे महइ० धम्मकहा**—उस महती धर्म-सभा में ही धर्मकथा सुनाकर उसे प्रतिबोधित किया, **धम्मं सोच्चा णिसम्म**—भूता दारिका उनके उपदेश को सुनकर एवं उसको हृदय में धारण कर, **हट्ठ० वंदइ**—प्रसन्न होकर उन्हें वंदना करती है, **वंदित्ता**—(और वन्दना करके) **एवं वयासी**—इस प्रकार निवेदन करने लगी, **सद्दहामि णं भंते**!—भगवन् ! मैं आपके द्वारा प्ररूपित निर्ग्रन्थ वचनों पर श्रद्धा रखती हूं, **जाव अब्भुट्ठेमि णं भन्ते** !—भगवन् ! मैं उस धर्माराधना के लिए प्रस्तुत हूं, **निग्गंथं पावयणं से जहेतं तुब्भे वदेह**—जिस निर्ग्रन्थ-प्रवचन को आपने समझाया है, **जं नवरं देवाणुप्पिया** !—भगवन् ! मैं उसका यथावत् पालन करूंगी, **अम्मापियरो आपुच्छामि**—मैं पहले घर जाकर माता-पिता से पूछती हूं (अर्थात् आज्ञा लेती हूं, **तएणं अहं जाव पव्वइत्तए**—तदनन्तर मैं आपकी शरण में आकर प्रव्रज्या ग्रहण करूंगी।

(भगवान ने कहा)—**अहासुहं देवाणुप्पिया** !—देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हे सुख हो (वैसा करो)।

मूलार्थ—तदनन्तर उस भूता नाम की कन्या ने स्नान किया, उसने अपने शरीर पर अच्छे वस्त्र एवं अलंकार धारण किए, वह अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई अपने घर से बाहर निकली और बाहर निकल कर जहां पर बाहरी उपस्थानशाला (रथ-घोड़े आदि रखने और बांधने का स्थान) थी वहीं पर आ जाती है और वहां आकर धर्मकार्यों के लिए निश्चित अपने श्रेष्ठ रथ पर बैठी। तदनन्तर वह भूता नाम काली कन्या अपनी दासियों एवं सहेलियों आदि रूप परिवार से घिरी हुई राजगृह नगर के बीचोंबीच के (मध्य मार्ग से) निकलती है (और वह) निकल कर जहां गुणशील नामक चैत्य

(उद्यान) था वहीं पर आ पहुंचती है और वहां आकर तीर्थंकर भगवान के छत्र आदि अतिशयों के दर्शन करके धर्मकार्यों के लिए निश्चित अपने श्रेष्ठ रथ से नीचे उतरती है और नीचे उतर कर अपनी दासियों के समूह से घिरी हुई जहां पर पुरुष श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु पार्श्व विराजमान थे वहीं पर आ जाती है और वहां आकर तीन बार प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दन-नमस्कार करके उनकी उपासना करने लगी।

तदनन्तर पुरुष-श्रेष्ठ अरिहन्त प्रभु श्री पार्श्वनाथ जी ने भूता कन्या को उस महती धर्म-सभा में ही धर्म-कथा सुनाकर प्रतिबोधित किया। भूता दारिका उनके उपदेश को सुनकर एवं उसको हृदय में धारण कर प्रसन्न होकर उन्हें वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन करने लगी—भगवन्! मै आपके द्वारा प्ररूपित निर्ग्रन्थ वचनों पर श्रद्धा रखती हूं, भगवन्! मैं उसका यथावत् पालन करूंगी। मै पहले घर जाकर माता-पिता से पूछती हूं (अर्थात् आज्ञा लेती हूं), तदनन्तर मैं आपकी शरण मे आकर प्रव्रज्या ग्रहण करूगी।

(भगवान ने कहा) देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो।

टीका—सर्व प्रकरण स्पष्ट है।

मूल—तएणं सा भूया दारिया तमेव धम्मियं जाणप्पवरं जाव दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागया, रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया, रहाओ पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागया, करतल० जहा जमाली आपुच्छइ। अहासुहं देवाणुप्पिए! तएणं से सुदंसणे गाहावई विउलं असणं ४ उवक्खडावेइ, जाव जिमिय-भुतुत्तरकाले सुइभूए निक्खमणमाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! भूयादारियाए पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता जाव पच्चप्पिणह। तएणं ते जाव पच्चप्पिणंति ॥ ४ ॥

छाया—ततः खलु सा भूता दारिका तदेव धार्मिकं यान-प्रवरं यावद् दुरोहति, दुरुह्य यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैवोपागता, राजगृहं नगरं मध्यमध्येन यत्रैव स्वं गृहं तत्रैवोपागता, रथात् प्रत्यवरुह्य यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैवोपागता, करतल० यथा जमालिः आपृच्छति। यथासुखं देवानुप्रिये! ततः स सुदर्शनो गाथापतिः विपुलमशनम् ४ उपस्कारयति, मित्रज्ञाति० आमन्त्रयति, आमन्त्र्य यावत् जिमितभुक्त्युत्तरकाले

शुचिभूतो निष्क्रमणमाज्ञाप्य कौटुम्बिक-पुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! भूतादारिकायै पुरुषसहस्त्रवाहिनीं शिविकामुस्थापयत, उपस्थाप्य० प्रत्यर्पयत ! ततः खलु ते यावत् प्रत्यर्पयन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थान्वयः-तएणं सा भूया दारिया-तदनन्तर वह भूता नामक कन्या, **तमेव धम्मियं जाणप्पवरं जाव दुरूहइ**-अपने उसी धर्म-यात्राओं के लिए निश्चित श्रेष्ठ रथ पर चढी, **दुरूहित्ता**-(और) चढकर, **जेणेव रायगिहे नयरे**-जहा राजगृह नगर था, **तेणेव उवागया**-वहीं पर आ गई, **रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं**-राजगृह नगर के मध्य मार्ग से, **जेणेव सए गिहे**-जहा पर उसका अपना घर था, **तेणेव उवागया**-वह अपने उसी घर में आ पहुची, **रहाओ पच्चोरुहित्ता**-रथ से उतर कर, **जेणेव अम्मापियरो**-जहा पर उसके माता-पिता थे, **तेणेव उवागया**-वह वही पर आ गई, **करतल०**-वह हाथ जोड़कर, **जहा जमाली पुच्छइ**-जैसे जमाली ने अपने माता-पिता से पूछा था वैसे ही वह अपने माता-पिता से पूछती है (आज्ञा देने की प्रार्थना करती है)।

अहासुहं देवाणुप्पिए-(तब उसके माता-पिता ने कहा) देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो, **तएणं से सुदंसणे गाहावई**-तदनन्तर वह सुदर्शन गाथापति, **विउलं असणं ४**-बडी मात्रा मे खाद्य, पेय आदि पदार्थ बनवाता है, **मित्तनाइ०**-मित्रो एव अपने जातीय बन्धुओं को बुलवाता है और सब को भोजन से सन्तुष्ट करता है, **जाव जिमियभुत्तुत्तरकाले**-सबको भोजन कराने के बाद, **सुइभूए**-पवित्र होकर, **निक्खमणमाणित्ता**-पुत्री को साध्वी-जीवन अपनाने की आज्ञा देकर, **कोडुंबियपुरिसे**-वह समस्त आज्ञाकारी अपने पारिवारिक दासों को, **सद्दावेइ**-बुलवाता है, **सद्दावित्ता**-और बुलवाकर, **एवं वयासी**-इस प्रकार कहता है, **खिप्पामेव-देवाणुप्पिया**-देवानुप्रियो । आप लोग शीघ्र ही, **भूयाए दारियाए**-मेरी पुत्री भूता के लिए, **पुरिससहस्सवाहिणिं**-एक हजार पुरुषों के द्वारा उठाई जाने वाली, **सीयं उवट्ठवेह**-एक शिविका तैयार करो, **उवट्ठवित्ता जाव पच्चप्पिणह**-और तैयार करके मेरे पास ले आओ, **तएणं ते जाव पच्चप्पिणंति**-तदनन्तर दासों ने शिविका तैयार करके सुदर्शन गाथापति को लाकर अर्पित कर दी।

मूलार्थ-तदनन्तर वह भूता नामक कन्या अपने उसी धर्म-यात्राओं के लिए निश्चित श्रेष्ठ रथ पर चढ़ी और चढ़कर जहां राजगृह नगर था वहीं पर आ गई। राजगृह नगर के मध्य मार्ग से जहां पर उसका अपना घर था, वह अपने उसी घर में आ पहुंची, रथ से उतर कर जहां पर उसके माता-पिता थे वह वहां पर आ गई। वह हाथ जोड़ कर जैसे जमाली ने अपने माता-पिता से पूछा था वैसे ही वह अपने माता-पिता से पूछती है (आज्ञा देने की प्रार्थना करती है।)

(तब उसके माता-पिता ने कहा-) देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो। तदनन्तर वह सुदर्शन गाथापति बड़ी मात्रा में खाद्य, पेय आदि पदार्थ बनवाता है। मित्रों एवं अपने जातीय बन्धुओं को बुलवाता है और सबको भोजन से सन्तुष्ट करता है। सबको भोजन कराने के बाद पवित्र होकर पुत्री को साध्वी-जीवन अपनाने की आज्ञा देकर वह अपने समस्त आज्ञाकारी पारिवारिक दासों को बुलवाता है और बुलवाकर इस प्रकार कहता है-आप लोग शीघ्र ही मेरी पुत्री भूता के लिए एक हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली एक शिविका तैयार करो और तैयार करके मेरे पास ले आओ, तदनन्तर दासों ने शिविका तैयार करके सुदर्शन गाथापति को लाकर अर्पित कर दी।

टीका-सभी प्रकरण अत्यन्त स्पष्ट हैं।

भूता द्वारा दीक्षा ग्रहण

मूल-तएणं से सुदंसणे गाहावई भूयं दारियं ण्हायं जाव विभूसिय-सरीरं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मित्तनाइ० जाव रवेणं रायगिहं नयरं मज्झं मज्झेणं जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागए, छत्ताईए तित्थयराइसए पासइ, पासित्ता सीयं ठावेइ, ठावित्ता भूयं दारियं सीयाओ पच्चोरुहेइ। तएणं तं भूयं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागया, तिक्खुत्तो वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! भूया दारिया अम्हं एगा धूया इट्ठा०, एस णं देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा भीया जाव देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयइ। तं एयं णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं। अहासुहं देवाणुप्पिए०। तएणं सा भूया दारिया पासेणं अरहया० एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठा० उत्तरपुरत्थिमं सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, जहा देवाणंदा पुप्फचूलाणं अंतिए जाव गुत्तबंभयारिणी॥ ५ ॥

छाया-ततः खलु सः सुदर्शनो गाथापतिः भूतां दारिकां स्नातां यावद् विभूषितशरीरां पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकां दूरोहयति, दूरोह्य मित्रज्ञाति० यावद् रवेण राजगृहनगरं मध्यमध्येन यत्रैव गुणशिलं चैत्यं तत्रैवोपागतः, छत्रादीन् तीर्थंकरातिशयान् पश्यति, दृष्ट्वा शिविकां स्थापयित्वा भूतां दारिकां शिविकातः प्रत्यवरोहयति।

ततः खलु तां भूतां दारिकामम्बापितरौ पुरतः कृत्वा यत्रैव पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयस्तत्रैवोपागतौ, त्रिःकृत्वो वन्देते नमस्यतः वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादिष्टाम्–एवं खलु देवानुप्रियाः! भूता दारिका अस्माकमेका दुहिता इष्टा० एषा खलु देवानुप्रियाः! संसारभयोद्विग्ना भीता यावद् देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डा यावत् प्रव्रजति, तद् एतां खलु देवानुप्रियाः ! शिष्याभिक्षां दद्मः, प्रतिच्छन्तु खलु देवानुप्रियाः! शिष्याभिक्षाम्। यथासुखं देवानुप्रियाः ! ततः खलु सा भूता दारिका पार्श्वेनार्हता० एवमुक्ता सती हृष्टा उत्तरपौरस्त्यां स्वयमेव आभरणमाल्यालङ्कारमवमुञ्चति, यथा देवानन्दा पुष्पचूलानामन्तिके यावद् गुप्तब्रह्मचारिणी ॥ ५ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं से सुदसणे गाहावई–तदनन्तर सुदर्शन गाथापति ने, **भूयं दारियं ण्हायं**–स्नान करके आई हुई, **जाव विभूसियसरीरं**–और वस्त्रालंकारों से विभूषित अपनी पुत्री भूता को, **पुरिस-सहस्स-वाहिणिं सीयं दुरूहइ**–हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने वाली शिविका पर बिठलाया, **दुरूहित्ता**–और बिठला कर, **मित्तनाइ० जाव रवेणं**–तदनन्तर वह अपने मित्रो एव जाति-बन्धुओ के साथ विविध वाद्ययन्त्रों की ध्वनियो से वातावरण को गुंजायमान करता हुआ, **रायगिहं नयरं मज्झं मज्झेणं**– राजगृह नगर के बीचों-बीच से निकलते हुए राज-मार्ग से, **जेणेव गुणसिलए चेइए**–जहां पर गुणशील नामक उद्यान था, **तेणेव उवागए**–वहीं पर आ पहुंचा, **छत्ताईए तित्थयराइसए पासइ**–(वहा पर सुदर्शन ने) तीर्थंकर भगवान के छत्रादि अतिशयों के दर्शन करते ही, **सीयं ठावेइ**–शिविका ठहरवाई, **ठावित्ता**–और ठहरवा कर, **भूयं दारियं सीयाओ पच्चोरुहेइ**–उसने अपनी पुत्री भूता को शिविका से नीचे उतारा।

तएणं–तदनन्तर, **तं भूयं दारियं**–अपनी उस पुत्री भूता को, **अम्मापियरो पुरओ काउं**–माता-पिता ने अपने आगे किया और, **जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए**– जहां पर पुरुष-श्रेष्ठ भगवान पार्श्वनाथ थे, **तेणेव उवागया**–वहीं पर आ गए, **तिक्खुत्तो वंदंति नमंसंति**–(वहां पर आकर) उनकी प्रदक्षिणा करके वंदना-नमस्कार करते हैं, **वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी**–वन्दना-नमस्कार करके सुदर्शन गाथापति ने इस प्रकार निवेदन किया, **एवं खलु देवाणुप्पिया!**–हे देवानुप्रिय भगवन् !, **भूता दारिया अम्हं एगा धूया**–यह भूता नाम की हमारी एक ही पुत्री है, **इट्ठा०**–जो हमें अत्यन्त प्रिय है, **एस णं देवाणुप्पिया!**–हे देवानुप्रिय प्रभो ! यह निश्चय ही, **संसारभउव्विग्गा**–सांसारिक भय से उद्विग्न होकर, **भीया**–अत्यन्त भयभीत हो गई है, **जाव देवाणुप्पियाणं अंतिए**–इसलिए यह आपके समीप, **मुडा जाव पव्वयइ**–मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती है, **तं एयं णं देवाणुप्पिया**–इसलिए हे देवानुप्रिये प्रभो ! हम आपको यह, **सिस्सिणिभिक्खं दलयामो**–शिष्या रूप भिक्षा देते हैं, **पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया**–इसलिए आप इसे भिक्षा रूप में स्वीकार करें।

(तब पार्श्व प्रभु बोले) **अहासुहं देवाणुप्पिया०**—हे देवानुप्रिये । जैसे आप लोगों की आत्मा को सुख हो वैसा करो।

तएणं सा भूया दारिया—तदनन्तर वह भूता नाम की कन्या, **पासेणं अरहया० एवं वुत्ता समाणी**—अरिहन्त श्री पार्श्व प्रभु के ऐसा कहने पर, **हट्ठतुट्ठा०**—अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर, **उत्तरपुरत्थिमं**—उत्तर-पूर्व दिशाओ के बीच ईशान कोण में जाकर, **सयमेव आभरणमल्लालंकारं**—स्वयं ही (अपने हाथों से) वस्त्र-आभूषण आदि, **ओमुयइ**—उतार देती है, **जहा देवानंदा पुप्फचूलाणं अंतिए**—तदनन्तर देवानन्दा के समान आर्या पुष्पचूला के पास, **जाव गुत्तबंभयारिणी**—प्रव्रज्या ग्रहण कर गुप्त ब्रह्मचारिणी बन जाती है।

मूलार्थ—तदनन्तर सुदर्शन गाथापति ने स्नान करके आई हुई और वस्त्रालंकारों से विभूषित अपनी पुत्री भूता को हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली शिविका पर बिठलाया और बिठलाकर वह अपने मित्रो एव जाति-बन्धुओं के साथ विविध वाद्ययन्त्रो की ध्वनियो से वातावरण को गुंजायमान करता हुआ राजगृह नगर के बीचोंबीच से निकलते हुए राजमार्ग से जहां पर गुणशील नामक उद्यान था वहा पर आ पहुचा, (वहां पर सुदर्शन ने) तीर्थंकर भगवान के छत्रादि अतिशयो के दर्शन करते ही शिविका ठहरवाई और ठहरवा कर उसने अपनी पुत्री भूता को शिविका से नीचे उतारा।

तदनन्तर अपनी उस पुत्री भूता को माता-पिता ने अपने आगे करके जहां पर पुरुष-श्रेष्ठ भगवान श्री पार्श्वनाथ जी थे वहां पर आ गए, (वहां पर आकर) उनकी प्रदक्षिणा करके वन्दना-नमस्कार करते हैं, वन्दना-नमस्कार करके सुदर्शन गाथापति ने इस प्रकार निवेदन किया—हे देवानुप्रिय भगवन् ! यह भूता नाम की हमारी एक ही पुत्री है, जो हमें अत्यन्त प्रिय है। हे देवानुप्रिय प्रभो ! यह निश्चय ही सांसारिक भय से उद्विग्न होकर अत्यन्त भयभीत हो गई है, इसलिए यह आपके समीप मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती है, इसलिए हे देवानुप्रिये प्रभो ! हम आपको यह शिष्या रूप भिक्षा देते हैं, आप इसे भिक्षा रूप में स्वीकार करें। (तब पार्श्व प्रभु बोले) हे देवानुप्रियो ! जैसे आप लोगों की आत्मा को सुख हो वैसा करें।

तदनन्तर वह भूता नाम की कन्या अरिहन्त श्री पार्श्व प्रभु के ऐसा कहने पर अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर उत्तर-पूर्व दिशाओं के बीच ईशान कोण में जाकर स्वयं ही (अपने हाथों से) वस्त्र-आभूषण आदि उतार देती है। तदनन्तर देवानन्दा के समान आर्या पुष्पचूला के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर गुप्त ब्रह्मचारिणी बन जाती है।

टीका—समस्त वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है। यहां "गुप्त ब्रह्मचारिणी" का अर्थ है आन्तरिक विकारो को त्याग कर मनो-गुप्ति, वचन-गुप्ति और काय गुप्ति का पालन करते हुए—वासनाओं का सर्वथा त्याग करने वाला साधक। शेष विषय स्पष्ट है।

भूता आर्या शरीर बकुशा बनी

मूल—तएणं सा भूया अज्जा अण्णया कयाइं सरीरबाओसिया जाया यावि होत्था, हत्थे धोवइ, पाये धोवइ एवं सीसं धोवइ, मुहं धोवइ, थणगंतराइं धोवइ, कक्खंतराइं धोवइ, गुज्झंतराइं धोवइ, जत्थ जत्थ वि य णं ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ तत्थ वि य णं पुव्वामेव पाणएणं अब्भुक्खेइ। तओ पच्छा ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएइ। तएणं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ भूयं अज्जं एवं वयासी—

अम्हे णं देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ जाव गुत्तबंभयारिणीओ, नो खलु कप्पइ अम्हं सरीरबाओसियाणं होत्तए, तुमं च णं देवाणुप्पिए ! सरीरबाओसिया अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवसि जाव निसीहियं चेएसि, तं णं तुमं देवाणुप्पिए ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि त्ति, सेसं जहा सुभद्दाए जाव पाडियक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तएणं सा भूया अज्जा अणोहट्टिया अणिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवइ जाव चेएइ ॥ ६ ॥

छाया—ततः खलु सा भूता आर्या अन्यदा कदाचित् शरीरवाकुशिका जाता चापि अभवत्। अभीक्ष्णमभीक्ष्णं हस्तौ धोवति, पादौ धोवति एवं शीर्षं धोवति, मुखं धोवति, स्तनान्तराणि कक्षान्तराणि धोवति, गुह्यान्तराणि धोवति, यत्र यत्रापि च खलु स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं (स्वाध्यायभूमिं) चेतयते (करोति) तत्र तत्रापि च खलु पूर्वमेव पानीयेन अभ्युक्षति। ततः पश्चात् स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेतयते। ततः खलु ताः पुष्पचूला आर्या भूतामार्यामेवमवादिषुः—

वयं खलु देवानुप्रिये ! श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्यः, ईर्यासमिता यावद् गुप्तब्रह्मचारिण्यः, नो खलु कल्पते अस्माकं शरीरबाकुशिकाः खलु भवितुम्, त्वं च खलु देवानुप्रिये! शरीरबाकुशिका अभीक्ष्णमभीक्ष्णं हस्तौ धोवसि यावद् नैषेधिकीं चेतयसि, तत् खलु त्वं देवानुप्रिये ! एतस्य स्थानस्य आलोचयेति, शेषं यथा सुभद्रायाः यावत् प्रत्येकमुपाश्रयमुपसंपद्य खलु विहरति। ततः खलु सा भूता आर्या अनपघट्टिका

अनिवारिता स्वच्छन्दमतिः अभीक्ष्णमभीक्ष्णं हस्तौ धोवति यावत् चेतयते ॥ ६ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं सा भूया अज्जा–तदनन्तर वह आर्या भूता, **अण्णया कयाइं**–कुछ वर्षों के अनन्तर, **सरीरबाओसिया जाया**–शरीर-बकुशा–शारीरिक साज-सज्जा की प्रवृत्ति वाली, **यावि होत्था**–हो गई, **हत्थे धोवइ**–वह बार-बार हाथ धोने लगी, **पाए धोवइ**–पैर धोने लगी, **एवं सीसं धोवइ**–इसी प्रकार अपना सिर धोने लगी, **मुहं धोवइ**–मुख को धोने लगी, **थणगंतराइं धोवइ**–अपने स्तनों के मध्य-भाग को धोने लगी, **कक्खंतराइं धोवइ**–अपनी कांखे धोने लगी, **गुज्झंतराइं धोवइ**–गुप्तांगो के आस-पास के भागों को (बार-बार) धोने लगी–अर्थात् साधुवृत्ति के विपरीत शारीरिक विभूषा में प्रवृत्त हो गई। **जत्थ जत्थ वि य णं ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएइ**–वह जहां कहीं भी बैठने के लिए, सोने के लिए, स्वाध्याय के लिए कोई स्थान निश्चित करती, **तत्थ तत्थ वि य णं पुव्वामेव पाणएणं अब्भुक्खेइ**–उस-उस स्थान पर वह पहले ही पानी छिड़क लेती, **तओ पच्छा**–तत्पश्चात्, **ठाणं वा सिज्जं वा निसीहियं वा चेएइ**–उस बैठने के स्थान का, शयन करने के स्थान का, स्वाध्याय-स्थान का प्रयोग करती थी।

तएणं–तत्पश्चात्, (अर्थात् उसके ऐसे आचरण को देखते हुए), **पुप्फचूलाओ अज्जाओ** (उसकी गुरुणी) पुष्पचूला आर्या ने, **भूयं अज्जं एवं वयासी**–भूता आर्या को (प्रति-बोधित करते हुए) इस प्रकार कहा, **अम्हे णं देवाणुप्पिए**–हे देवानुप्रिये ! हम निश्चित ही, **समणीओ**–श्रमणी (साध्वी हैं), **निग्गंथीओ**–निर्ग्रन्थी हैं, **इरियासमियाओ**– ईर्या समिति आदि पांचों समितियों का पालन करने वाली हैं, **जाव गुत्तबंभयारिणीओ**–हम आन्तरिक विकारो को नियन्त्रित कर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाली हैं, **नो खलु कप्पइ अम्हं**–इसलिए यह हमारे लिए सर्वथा त्याज्य है (कि हम), **सरीरबाओसियाणं होत्तए**–शारीरिक विभूषा-प्रिय बने, **तुमं च णं देवाणुप्पिए !**–हे देवानुप्रिय ! तुम तो, **सरीरबा-ओसिया**–शरीर-बकुशा (शारीरिक-विभूषा-प्रिय बनती जा रही हो), **अभिक्खणं-अभिक्खणं**–क्योंकि तुम बार-बार, **हत्थे धोवसि जाव निसीहियं चेएसि**–अपने हाथो पैरों और सिर आदि अगों को धोती रहती हो, सोने बैठने एवं स्वाध्याय करने के स्थान पर पानी छिड़कती हो, **तं णं तुमं देवाणुप्पिए !**– इस प्रकार हे देवानुप्रिये, **एयस्स ठाणस्स आलोएहि त्ति**–इस पाप स्थान की आलोचना करो, किन्तु उसने अपनी गुरुणी पुष्पचूला की बात अनसुनी कर उसकी उपेक्षा कर दी, **सेसं जहा सुभद्दाए जाव पाडियक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ**–अपितु वह सुभद्रा आर्या के समान पृथक् उपाश्रय में अकेली ही चली गई और स्वतन्त्रता-पूर्वक साध्वाचार के विरुद्ध आचरण करती हुई विचरने लगी।

तएणं सा भूया अज्जा–तदनन्तर वह आर्या भूता, **अणोहट्टिया अणिवारिया**– उसी

पापाचरण पर स्थिर रह कर बेरोकटोक, **सच्छंदमई**–सर्वथा स्वच्छन्द होकर, **अभिक्खणं-अभिक्खणं**–बारम्बार, **हत्थे धोवइ जाव चेएइ**–हाथ-पैर आदि अंगों को धोती रही और बैठने आदि के स्थान पर जल छिड़कती रही।

मूलार्थ–तदनंतर वह आर्या भूता कुछ वर्षों के अनंतर शरीर-बकुशा-शारीरिक साज-सज्जा की प्रवृत्ति वाली हो गई, वह बार-बार हाथ धोन लगी, पैर धोने लगी, इसी प्रकार अपना सिर धोने लगी, मुख को धोने लगी, अपने स्तनों के मध्य भाग को धोने लगी, अपनी कांखें धोने लगी, गुप्तांगों के आसपास के भागों को (बार-बार) धोने लगी–अर्थात् साधु-वृत्ति के विपरीत शारीरिक विभूषा में प्रवृत्त हो गई। वह जहां कहीं भी बैठने के लिए, सोने के लिए, स्वाध्याय के लिए कोई स्थान निश्चित करती उस स्थान पर वह पहले ही पानी छिड़क लेती, तब उस बैठने के स्थान का, शयन करने के स्थान का, स्वाध्याय-स्थान का प्रयोग करती थी।

तत्पश्चात् (अर्थात् उसके ऐसे आचरण को देखते हुए उसकी गुरुणी) पुष्पचूला आर्या ने भूता आर्या को (प्रतिबोधित करते हुए) इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रिये ! हम निश्चित ही श्रमणी हैं (साध्वी हैं), निर्ग्रन्थी हैं, ईर्या-समिति आदि पांचों समितियों का पालन करने वाली हैं, हम आन्तरिक विकारों को नियंत्रित कर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाली हैं, इसलिए यह हमारे लिए सर्वथा त्याज्य है (कि हम) शारीरिक विभूषा-प्रिय बनें। हे देवानुप्रिये तुम शरीर-बकुशा (शारीरिक-विभूषा-प्रिय) (बनती जा रही हो), क्योंकि तुम बार-बार अपने हाथों, पैरों और सिर आदि अंगों को धोती रहती हो, सोने, बैठने एवं स्वाध्याय करने के स्थान पर पानी छिड़कती हो, इस प्रकार हे देवानुप्रिये, तुम इस पाप-स्थान की (इस पापयुक्त आचरण की) आलेचना करो, किन्तु उसने अपनी गुरुणी पुष्पचूला की बात अनसुनी कर उसकी उपेक्षा कर दी। (अपितु वह सुभद्रा आर्या के समान पृथक् उपाश्रय में अकेली ही चली गई और स्वतन्त्रता-पूर्वक साध्वाचार के विरुद्ध आचरण करती हुई विचरने लगी।

तदनन्तर वह आर्या भूता उसी पापाचरण पर स्थिर रह कर बरोकटोक सर्वथा स्वच्छन्द होकर बारम्बार हाथ पैर आदि अंगों को धोती रही और बैठने आदि के स्थान पर जल छिड़कती रही।

टीका–प्रस्तुत प्रकरण मे भूता आर्या के माध्यम से साध्वाचार विरोधी क्रियाओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

मूल—तएणं सा भूया अज्जा बहूहिं चउत्थछट्ठ० बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सिरिवडिंसए विमाणे उववायसभाए देव-सयणिज्जंसि जाव ओगाहणाए सिरीदेवित्ताए उववण्णा पंचविहाए पज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए पज्जत्ता।

एवं खलु गोयमा ! सिरीए देवीए एसा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता। ठिई एगं पलिओवमं। सिरी णं भंते ! देवी जाव कहिं गच्छिहिइ ? महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ। एवं खलु जंबू ! निक्खेवओ। एवं सेसाण वि नवण्हं भाणियव्वं, सरिसनामा विमाणा, सोहम्मे कप्पे, पुव्वभवे नयरचेइयपिय-माईणं अप्पणो य नामादी जहा संगहणीए, सव्वा पासस्स अंतिए निक्खंता। ताओ पुप्फचूलाणं सिस्सिणियाओ सरीरबाओसियाओ सव्वाओ अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति ॥ ७ ॥

॥ पुप्फचूलिया णामं चउत्थवग्गो सम्मत्तो ॥ ४ ॥

छाया—ततः खलु सा भूता आर्या बहुभिः चतुर्थषष्ठाष्टम० बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा तस्य स्थानस्य अनालोचितप्रतिक्रान्ता कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे श्र्यवतंसके विमाने उपपातसभायां देवशयनीये यावत् तदवगा-हनया श्रीदेवीतयोपपन्ना पञ्चविधया पर्याप्त्या भाषामनःपर्याप्त्या पर्याप्ता।

एवं खलु गौतम ! श्रिया देव्या एषा दिव्या देवऋद्धिर्लब्धा प्राप्ता, स्थितिरेकं पल्योपमम्। श्रीः खलु भदन्त ! देवी यावत् क्व गमिष्यति ? महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति। एवं खलु जम्बू ! निक्षेपकः। एवं शेषाणामपि नवानां भणितव्यं सदृशनामानि विमानानि, सौधर्मे कल्पे, पूर्वभवे नगरचैत्यपित्रादीनाम् आत्मनश्च नामादिकयथा संग्रहण्याम्, सर्वाः पार्श्वस्यान्तिके निष्क्रान्ताः। ताः पुष्पचूलानां शिष्याः शरीर-बाकुशिकाः सर्वा अनन्तरं चयं च्युत्वा महाविदेहे वर्षे सेत्स्यन्ति ॥ ७ ॥

॥ पुष्पचूलिकाख्यश्चतुर्थो वर्गः समाप्तः ॥

पदार्थान्वयः—तएणं सा भूया अज्जा—तदनन्तर वह भूता आर्या, **बहूहिं चउत्थछट्ठ०**—अनेकविध चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, द्वादश आदि व्रतोपवासों का आचरण करती हुई, **बहूइं वासाइं**—अनेक वर्षों तक, **सामण्णपरियागं पाउणित्ता**—श्रामण्य पर्याय का पालन करती

रही (किन्तु), **तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता**–उन पाप-स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए बिना ही, **कालमासे कालं किच्चा**–मृत्यु समय आने पर प्राण त्याग कर, **सोहम्मे कप्पे**–सौधर्म कल्प नामक देवलोक में, **सिरिवडिंसए विमाणे**–श्री अवतंसक विमान में, **उववायसभाए देवसयणिज्जंसि**–उपपात सभा में देव शयनीय शय्या पर **जाव ओगाहणाए**–देव–अवगाहना के अनुरूप, **सिरीदेवित्ताए**–श्री देवी के रूप में, **उववण्णा**–उत्पन्न हुई, (और), **पंचविहाए पज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए पज्जत्ता**–वह भाषा-मन आदि पांचों पर्याप्तियों से युक्त हो गई।

एवं खलु गोयमा !–इस प्रकार हे गौतम ! **सिरीए देवीए**–श्री देवी ने, **एसा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता**–वह दिव्य देव-समृद्धि प्राप्त की, **ठिई एगं पलिओवमं**– देवलोक में उसकी स्थिति एक पल्योपम की है।

सिरी णं भंते ! देवी जाव कहिं गच्छिहिइ–(गौतम स्वामी पूछते हैं–) भगवन्! वह श्री देवी देवायु पूर्ण करके कहां जाकर उत्पन्न होगी ?, **महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ**– वह महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सभी जन्म-मरणादि के दु:खो का अन्त करेगी।

एवं खलु जंबू !–सुधर्मा स्वामी कहते है कि इस प्रकार हे जंबू ! **निक्खेवओ**–श्रमण भगवान महावीर ने पुष्पचूलिका के प्रथम अध्ययन के पूर्वोक्त भाव प्रकट किए हैं, **एवं सेसाण वि नवण्हं भाणियव्वं**–इसी प्रकार ही देवी आदि नवो आर्याओं के जीवन वृत्तादि को जान लेना चाहिए, **पुव्वभवे नयरचेइयपियमाईणं अप्पणो य नामादि जहा संगहणीए**–इन सबके पूर्व भव में नगर, उद्यान, माता-पिता आदि के नाम संग्रहणी गाथा के समान जान लेने चाहिए, **सव्वा पासस्स अंतिए निक्खंता ताओ पुप्फचूलाणं सिस्सिणियाओ**–ये सभी गृहत्याग कर पार्श्व प्रभु के सान्निध्य में आर्या पुष्पचूला की शिष्यायें बनीं, **सरीरवाओसियाओ**–सभी शरीर-विभूषा प्रिय बनी, **सव्वाओ अणंतरं चयं चइत्ता**–और सभी देवलोक से च्यव कर, **महाविदेहे वासे**–महाविदेह क्षेत्र में, **सिज्झिहिंति**– सब दु:खों का अन्त कर सिद्ध होगी।

॥ पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥

मूलार्थ–तदनन्तर वह भूता आर्या अनेकविध चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, द्वादश आदि व्रतोपवासों का आचरण करती हुई अनेक वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करती रही, (किन्तु) उन पाप-स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए बिना ही मृत्यु समय आने पर मर कर सौधर्म कल्प नामक देवलोक के श्री अवतंसक विमान की उपपात सभा में देव शयनीय शय्या पर देव-अवगाहना के अनुरूप श्री देवी के रूप में उत्पन्न हुई (और) वह भाषा-मन आदि पाचों पर्याप्तियों से युक्त हो गई।

इस प्रकार हे गौतम ! श्री देवी ने वह दिव्य देव-समृद्धि प्राप्त की। देवलोक में उसकी स्थिति एक पल्योपम की है।

(गौतम स्वामी पूछते हैं–) भगवन् ! वह श्री देवी देवायु पूर्ण करके कहां जाकर उत्पन्न होगी ? (प्रभु ने बतलाया कि) वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सभी जन्म-मरणादि के दुःखों का अन्त करेगी।

सुधर्मा स्वामी कहते हैं, श्रमण भगवान महावीर ने पुष्पचूलिका के प्रथम अध्ययन के पूर्वोक्त भाव प्रकट किए हैं। इसी प्रकार ह्री देवी आदि नौ आर्याओं के जीवन वृत्तादि को जान लेना चाहिए। इन नौ ही देवियों के सौधर्म कल्प में देव विमानों के नाम इनके नामों के समान समझ लेने चाहिएं। इन सब के पूर्व भव में नगर उद्यान, माता-पिता आदि के नाम संग्रहणी गाथा के समान जान लेने चाहिएं। ये सभी गृहत्याग कर पार्श्व प्रभु के सान्निध्य में आर्या पुष्पचूला की शिष्याएं बनीं, सभी शरीर-विभूषा-प्रिय बनीं और सभी देवलोक से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में सब दुःखो का अन्त कर सिद्ध होंगी ॥ ७ ॥

॥ पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥
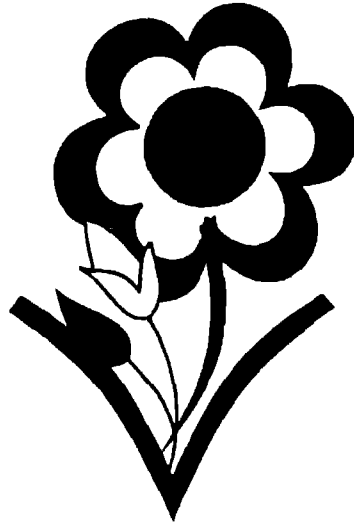
(पंचम-वर्ग)

वण्हिदसाओ पंचमो वग्गो

वृष्णिदशाः पंचम वर्ग

द्वादश अध्ययनः नाम निर्देश

मूल—जइणं भंते ! उक्खेवओ० उवंगाणं चउत्थस्स पुप्फचूलाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स उवंगाणं वण्हिदसाणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

"निसढे, मायनि, वह, वहे, पगती, जुत्ती, दसरहे, दढरहे य ।
महाधणू, सत्तधणू, दसधणू, नामे सयधणू य ॥ १ ॥

छाया—यदि खलु भदन्त ! उत्क्षेपकः, उपाङ्गानां चतुर्थस्य पुष्पचूलानामयमर्थः प्रज्ञप्तः, पञ्चमस्य खलु भदन्त ! वर्गस्य उपांगानां वृष्णिदशानां श्रमणेन भगवता यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावद् द्वादशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद् यथा—

१. निषधः, २. मायनी, ३. वहः, ४. वहे, ५. पगती, ६. ज्योतिः, ७. दशरथः, ८. दृढरथश्च, ९. महाधन्वा, १०. सप्तधन्वा, ११. दशधन्वा नाम १२. शतधन्वा च ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—(श्री जम्बू स्वामी जी पूछते हैं)—**जइ णं भन्ते !** यदि भगवन् ! **उक्खेवओ०**—भगवान महावीर ने, **उवंगाणं चउत्थस्स पुप्फचूलाणं**—चतुर्थ उपांग पुष्पचूला का, **अयमट्ठे पण्णत्ते**—यह अर्थ प्रतिपादित किया है, **पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स**—तो भगवन् ! इस पांचवें वर्ग, **उवंगाणं वण्हिदसाणं**—वन्हिदशा नामक उपांग का, **भगवया जाव संपत्तेणं**— मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने, **के अट्ठे पण्णत्ते ?**—क्या अर्थ

प्रतिपादित किया है ? **एवं खलु जंबू !**—वत्स जम्बू । **समणेणं भगवया महावीरेणं**—श्रमण भगवान महावीर ने, **जाव दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता**—इस पांचवें वृष्णिदशा नामक उपांग के बारह अध्ययन कहे हैं, **तं जहा**—जैसे कि—

निसढे, मायनि, वह, वहे, पगती, जुत्ती, दसरहे, दढरहे य।
महाधणू, सत्तधणू, दसधणू, नामे सयधणू, य ॥ १ ॥

१. निषध, २. मायनी, ३. वह, ४. वहे, ५. पगती, ६. ज्योति, ७. दशरथ, ८. दृढरथ, ९. महाधन्वा, १०. सप्तधन्वा, ११ दशधन्वा और १२. शतधन्वा, ये बारह नाम हैं।

मूलार्थ—भगवन् ! यदि भगवान महावीर ने चतुर्थ उपांग पुष्पचूला का यह अर्थ प्रतिपादित किया है, तो भगवन् ! इस पांचवें वर्ग वन्हिदशा नामक उपाग का मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ?

वत्स जम्बू । श्रमण भगवान महावीर ने इस पांचवें वृष्णिदशा नामक उपांग के बारह अध्ययन कहे हैं—जैसे कि—

१. निषध, २. मायनी, ३. वह, ४. वहे, ५. पगती, ६. ज्योति, ७. दशरथ, ८. दृढ़रथ, ९. महाधन्वा, १०. सप्तधन्वा, ११. दशधन्वा और १२. शतधन्वा ये बारह नाम हैं।

टीका—इस पांचवें वर्ग में बारह साधकों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। उक्त सूत्र के भाव सर्वथा स्पष्ट है।

द्वारिका वर्णन

मूल—जइणं भंते ! समणेणं जाव दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! उक्खेवओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था, दुवालसजोयणायामा जाव पच्चक्खं देवलोयभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं रेवए नामं पव्वए होत्था, तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे नाणाविहरुक्खगुच्छगुम्मलयावल्लीपरिगया-भिरामे हंस-मिय-मयूर-कोंच-सारस-चक्कवाग-मयणसाला-कोइल-कुलोववेए अणेग-तडकडगवियरओज्झरपवायपब्भारसिहरपउरे अच्छर-गणदेवसंघचारणविज्जाहरमिहुणसंनिविन्ने निच्चच्छणए दसारवरवीर-

पुरिसतेलोक्कबलवगाणं सोमे सुभए पियदंसणे सुरूवे पासाईए जाव पडिरूवे। तस्स णं रेवयगस्स पव्वयस्स अदूरसामंते एत्थ णं नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था, सव्वोउयपुप्फ जाव दरिसणिज्जे। तत्थ णं नंदणवणे उज्जाणे सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था चिराइए जाव बहुजणो आगम्म अच्चेइ सुरप्पियं जक्खाययणं। से णं सुरप्पिए जक्खाययणे एगेणं महया वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते जहा पुण्णभद्दे जाव सिलावट्टए ॥ २ ॥

छाया–यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावद् द्वादशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त ! श्रमणेन यावद् द्वादशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त! उत्क्षेपकः। एवं खलु जम्बू! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावती नाम्नी नगरी अभवत् द्वादशयोजनायामा यावत्-प्रत्यक्षं देवलोकभूता प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा। तस्याः खलु द्वारावत्याः नगर्याः बहिरुत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अत्र खलु रैवतो नाम पर्वतोऽभवत्, तुङ्गो गगनतलमनुलिहच्छिखरः नानाविध-वृक्षगुच्छगुल्मलतावल्लीपरिगताभिरामः हंसमृगमयूरक्रौञ्चसारसचक्रवाकमदन-शालाकोकिलकुलोपपेतः, अनेकतटकटविवरावञ्झरप्रपातप्राग्भारशिखरप्रचुरः अप्सरोगणदेवसंघ-चारणविद्याधरमिथुनसन्निकीर्णः, नित्यक्षणकः, दशार्हवर-वीरपुरुषत्रैलोक्यबलवतां सोमः सुभगः प्रियदर्शनः सुरूपः प्रासादीयो यावत् प्रतिरूपः। तस्य खलु रैवतकस्य पर्वतस्य दूरसामन्ते, अत्र खलु नन्दनवनं नाम उद्यानम् आसीत् सर्वर्तु पुष्प० यावद् दर्शनीयम्। तत्र खलु नन्दनवने उद्याने सुरप्रियस्य यक्षस्य यक्षायतनमासीत्, चिरातीतं, यावद् बहुजन आगम्य अर्चयन्ति सुरप्रियं यक्षायतनम्। तत् खलु सुरप्रियं यक्षायतनम् एकेन महता वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तम् यथा पूर्णभद्रो यावत् शिलापट्टकः ॥ २ ॥

पदार्थान्वयः–**जइणं भंते ! समणेणं जाव दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता**– भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने वृष्णिदशा नाम के पांचवें उपांग के बारह अध्ययन बतलाए हैं तो, **पढमस्स णं भंते ! उक्खेवओ**–बारह अध्ययनों में से प्रथम अध्ययन में किस विषय का प्रतिपादन किया है?

(उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं)–**एवं खलु जंबू !**–हे जम्बू ! **तेणं कालेणं तेणं समएणं**–उस काल एवं उस समय मे, **बारवई नामं नयरी होत्था**–द्वारिका नाम की एक नगरी थी, **दुवालसजोयणायामा**–जो बारह योजन लम्बी थी, (और जो), **जाव पच्चक्खं देवलोयभूया**–जो प्रत्यक्ष ही देवलोक के समान, **पासादीया**– मन को

प्रसन्न करने वाली, **दरिसणिज्जा**—देखने योग्य, **अभिरूवा**—सुन्दर छटा वाली, **पडिरूवा**—अद्वितीय शिल्पकला से सुशोभित थी, **तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया**—उस द्वारिका नगरी के बाहर, **उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए**—उत्तर पूर्व के कोण—ईशान कोण में, **एत्थ णं रेवयए नाम पव्वए होत्था**—एक रैवतक नाम का पर्वत था, **तुंगे गगण-तल-मणुलिहंत सिहरे**—जो कि बहुत ऊंचा था और उसके शिखर गगन-चुम्बी थे, **नाणाविह-रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लया-वल्ली-परिगयाभिरामे**—और नानाविध वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों और लताओं एवं बेलो से घिरकर वह नगर बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था, **हंस-मिय-मयूर-कोंच-सारस-चक्कवाग-मयणसाला-कोइल-कुलोववेए**—तथा हंस, मृग, मयूर, क्रौञ्च (कुरर), सारस, चक्रवाक (चकवा), मदनशाला (मैना) और कोयल आदि, पक्षियों के समूह से सुशोभित था, **अणेग-तडकडगवियरओज्झर-पवायपब्भारसिहरपउरे**—और उस पर्वत पर अनेक नदी नालो के सुन्दर तट कटक (वृक्षाच्छादित गोल भाग), झरने और जल-प्रपात, गुफाए और कुछ झुके हुए पर्वत-शिखर आदि बहुत बड़ी संख्या में थे, **अच्छरगण- देव-संघचारण-विज्जाहर-मिहुणसनिविन्ने**— उसी पर्वत पर अप्सराए, देवसमूह, चारण, जघाचारण आदि विशिष्ट साधु और विद्याधरों के युगल आकर क्रीडाएं कर रहे थे, **निच्चच्छणए**—और वहां नित्य नानाविध महोत्सव होते रहते थे, **दसारवरवीर पुरिसतेलोक्क-बलवगाणं सोमे सुभए**—दशार्हकुल के श्रेष्ठ वीरों एव बलवानों का वह पर्वत, श्री भगवान नेमिनाथ जी की तपस्थली होने के कारण सब के लिए शुभकारी एव शान्त स्थल था, **पियदंसणे सुरूवे**—वह नेत्रों के लिए आह्लादकारी, सुन्दर आकार-प्रकार वाला, **पासाईए जाव पडिरूवे**—प्रसन्नता पूर्ण और दर्शको के मन को आकृष्ट करने वाला था।

तस्स णं रेवयगस्स पव्वयस्स—उस रैवतक पर्वत के, **अदूरसामंते**—बहुत निकट ही, **एत्थ णं नंदणवणे नामं**—नन्दन वन नामक एक, **उज्जाणे होत्था**—उद्यान था, (जिसमें), **सव्वोउयपुप्फ**—सभी ऋतुओं के पुष्प होने से, **जाव दरिसणिज्जे**—वह अत्यन्त दर्शनीय था, **तत्थ णं नंदणवणे उज्जाणे**—उस नन्दनवन नामक उद्यान में, **सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था**—सुरप्रिय नामक यक्ष का एक यक्षायतन था, **चिराइए जाव**—जो कि बहुत प्राचीन था, **बहुजणो आगम्म अच्चेइ**—वहा आकर अनेक लोग उसकी पूजा अर्चना किया करते थे, **से णं सुरप्पिए जक्खाययणे**—वह सुरप्रिय यक्षायतन, **एगेणं महया**—एक बहुत बडे, **वणसंडेणं**—वनखण्ड द्वारा, **सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते**—चारों ओर से घिरा हुआ था, **जहा पुण्णभद्दे जाव सिलावट्टए**—जैसे शिला-पट्ट से युक्त पूर्णभद्र घिरा हुआ था।

मूलार्थ—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने वृष्णिदशा नाम के पांचवें

उपांग के बारह अध्ययन बताए हैं, तो उन बारह अध्ययनों में से प्रथम अध्ययन में किस विषय का वर्णन किया है ?

उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं–हे जम्बू ! उस काल एवं उस समय में द्वारिका नाम की एक नगरी थी, जो बारह योजन लम्बी थी, (और जो) प्रत्यक्ष ही देवलोक के समान मन को प्रसन्न करने वाली, देखने के योग्य सुन्दर छटा वाली, अद्वितीय शिल्प-कला से सुशोभित थी। उस द्वारिका नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व के कोण–ईशान-कोण में रैवतक नाम का एक पर्वत था जो कि बहुत ऊंचा था और जिसके शिखर गगन-चुम्बी थे, वह नानाविध वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों और लताओ एवं बेलों से घिरकर बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था। तथा वह मृग, मयूर, क्रौञ्च (कुरर), सारस, चक्रवाक (चकवा), मदनशाला (मैना) और कोयल आदि पक्षियों के समूहों से सुशोभित था और उस पर्वत पर अनेक नदी-नालों के सुन्दर तट कटक (वृक्षाच्छादित गोल भाग) झरने, जल-प्रपात, गुफाएं और कुछ झुके हुए पर्वत-शिखर आदि बहुत बड़ी संख्या में थे। उसी पर्वत पर अप्सराएं, देव-समूह, चारण, जंघाचारण आदि विशिष्ट साधु और विद्याधरों के युगल आकर क्रीडाएं किया करते थे और वहां नित्य नानाविध महोत्सव होते रहते थे। दशार्ह कुल के श्रेष्ठ वीरों एवं बलवानों का वह पर्वत भगवान नेमिनाथ जी की तपस्थली होने के कारण सबके लिए शुभकारी एवं शान्त स्थान था। वह नेत्रों के लिए आह्लादकारी, सुन्दर आकार-प्रकार वाला, प्रसन्नता पूर्ण और दर्शकों के मन को आकृष्ट करने वाला था।

उस रैवतक पर्वत के बहुत निकट ही नन्दन वन नामक एक उद्यान था, (जिसमें) सभी ऋतुओं के पुष्प होने से वह अत्यन्त दर्शनीय प्रतीत होता था, उस नन्दन वन नामक उद्यान में सुरप्रिय नामक एक यक्ष का यक्षायतन था, जो कि बहुत प्राचीन था, वहां आकर अनेक लोग उसकी पूजा-अर्चना किया करते थे, सुरप्रिय यक्षायतन एक बहुत बड़े वन-खण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ था, जैसे शिला-पट्ट से युक्त पूर्णभद्र उद्यान घिरा हुआ था।

टीका–कुछ विशिष्ट नामों के प्रसिद्ध नाम कोष्ठकों में दे दिए गए हैं।

श्री कृष्ण का वैभव-वर्णन

मूल–तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया होत्था जाव पसासेमाणे विहरइ। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं

रायसहस्साणं पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं सांबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंत साहस्सीणं वीरसेणपामोक्खाणं एक्कवीसाए वीरसाहस्सीणं, महासेणपामोक्खाणं छप्पन्नाए बलवगसाहस्सीणं रुप्पिणिपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईणं वेयड्ढगिरिसागरमेरागस्स दाहिणड्ढभरहस्स आहेवच्चं जाव विहरइ ॥ ३ ॥

छाया–तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्या कृष्णो नाम वासुदेवो राजाऽभवत्, यावत् प्रशासन् विहरति। स खलु तत्र समुद्रविजयप्रमुखानां दशानां दशार्हाणां, बलदेवप्रमुखानां पञ्चानां महावीराणाम्, उग्रसेनप्रमुखानां षोडशानां राजसहस्राणां, प्रद्युम्नप्रमुखानाम् अध्युष्टानां (सार्द्धतृतीयानां) कुमारकोटीनां, शाम्बप्रमुखानां षण्णां दुर्दान्तसहस्राणां, वीरसेनप्रमुखानामेकविंशत्याः वीरसहस्राणां, महासेनप्रमुखानां षट्पञ्चाशतो बलवत्सहस्राणां, रुक्मिणीप्रमुखानां षोडशानां देवीसाहस्रीणाम्, अनंगसेनाप्रमुखानामनेकासां गणिकासाहस्रीणाम्, अन्येषां च बहूनां राजेश्वर० यावत् सार्थवाहप्रभृतीनां वैताढ्यगिरिसागरमर्यादस्य दक्षिणार्द्धभरतस्याधिपत्यं यावत् विहरति॥ ३ ॥

पदार्थान्वयः–**तत्थ णं बारवईए नयरीए**–उस द्वारिका नगरी मे, **कण्हे नामं वासुदेवे राया होत्था**–वासुदेव श्री कृष्ण राजा थे, **जाव पसासेमाणे विहरइ**–जो कि शासन करते हुए वहा विचरते थे, **से णं तत्थ**–वे वासुदेव श्री कृष्ण वहा पर, **समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं**–समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्हो के, **बलदेवपामोक्खाणं पचण्हं महावीराणं**–बलदेव आदि पांच महान् वीरों के, **उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्ह रायसहस्साणं**–उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओ के, **पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं**–प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड कुमारो के, **संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं**–शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त शूरवीरों के, **वीरसेणपामोक्खाणं एक्कवीसाए वीरसाहस्सीणं**–वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीरों के, **महासेणपामोक्खाणं छप्पन्नाए बलवगसाहस्सीणं**–महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलशालियों के, **रुप्पिणिपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं**–रुक्मिणी प्रमुख-सोलह हजार देवियों के (तथा) **अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं**–अनंगसेना प्रमुख अनेक हजार गणिकाओं के, **अण्णेसिं च बहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईणं**–(और) अनेक राजेश्वरों, तलवरों, माडम्बिको, सेनापतियों एवं सार्थवाहों आदि के (तथा), **वेयड्ढगिरिसागरमेरागस्स**

दाहिणड्ढभरहस्स आहेवच्चं—वैताढ्य पर्वत एवं सागर से मर्यादित दक्षिणी अर्धभरत के ऊपर आधिपत्य करते हुए, **जाव विहरइ**—वे विचर रहे थे।

मूलार्थ—वासुदेव श्री कृष्ण उस द्वारिका नगरी के राजा थे, जो कि शासन करते हुए वहां विचरते थे। वे वासुदेव श्री कृष्ण वहां पर समुद्रविजय प्रमुख दश दशार्हों के, बलदेव प्रमुख पांच महान् वीरों के, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओं के, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमारों के, शाम्ब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त शूरवीरों के, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीरो के, महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलशालियों के, रुक्मिणी प्रमुख सोलह हजार देवियों के (तथा) अनगसेना प्रमुख अनेक हजार गणिकाओं के, (और) अनेक राजेश्वरों, तलवरों, माडम्बिकों, सेनापतियों एवं सार्थवाहों आदि के (तथा), वैताढ्य पर्वत एवं सागर से मर्यादित दक्षिणी अर्ध भरत के ऊपर आधिपत्य करते हुए विचर रहे थे।

टीका—द्वारिकाधीश श्री कृष्ण के वैभव का इस सूत्र मे विस्तृत वर्णन किया गया है।

निषध कथानक

मूल—तत्थणं बारवईए नयरीए बलदेवे नामं राया होत्था, महया जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ। तस्स णं बलदेवस्स रण्णो रेवई नामं देवी होत्था, सोमाला० जाव विहरइ। तएणं सा रेवई देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा०, एवं सुमिण-दंसणपरिकहणं, निसढे नामं कुमारे जाए जाव कलाओ जहा महाबले, पण्णासओ दाओ, पण्णासरायकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेइ, नवरं निसढे नामं जाव उप्पिं पासाए विहरइ ॥ ४ ॥

छाया—तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्यां बलदेवो नाम राजाऽभवत्, महता यावद् राज्यं प्रशासन् विहरति। तस्य खलु बलदेवस्य राज्ञो रेवती नाम्नी देव्यभवत्, सुकुमारपाणिपादा यावद् विहरति। ततः खलु सा रेवती देवी अन्यदा कदाचित् तादृशे शयनीये यावत् सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा खलु प्रतिबुद्धा एवं स्वप्नदर्शनपरिकथनं, निषधो नाम कुमारो जातः, यावत् कला यथा महाबलस्य, पञ्चाशद् दायाः, पञ्चाशद्राजकन्यकानामेकदिवसेन पाणिं ग्राहयति, नवरं निषधो नाम यावद् उपरिप्रासादे विहरति ॥ ४ ॥

पदार्थान्वयः—तत्थ णं बारवईए नयरीए—उस द्वारिका नगरी में, **बलदेवे नामं राया**

होत्था—बलदेव नाम का राजा था, **महया जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ**—बलदेव महाबली थे और राज्य का शासन करते हुए विचर रहे थे, **तस्स णं बलदेवस्स रण्णो**—उस राजा बलदेव की रानी, **रेवई नामं देवी होत्था**—रेवती नाम की देवी थी, **सोमाला० जाव विहरइ**—वह अत्यन्त सुकुमार एवं सुन्दर थी, अत: अपने राज्य में सुख-पूर्वक रह रही थी, **तएणं सा रेवई देवी अण्णया कयाइ**—तदनन्तर वह रेवती देवी एक बार, **तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि**—रानियों के शयन करने के योग्य शय्या पर सोते हुए, **जाव सीह सुमिणे पासित्ता णं**—स्वप्न में सिंह को देखकर, **पडिबुद्धा०**—वह जाग गई, **एवं सुमिण-दंसण-परिकहणं**—उसने उस स्वप्न का हाल बलदेव जी से कहा, **निसढे नामं कुमारे जाए**—(समय आने पर) उसने एक बालक को जन्म दिया जिसका नाम निषध कुमार रखा, **जाव कलाओ जहा महाबले**—वह कुमार महाबल के समान बहत्तर कलाओ में प्रवीण हो गया था, **पण्णासओ दाओ**—उसको पचास दहेज मिले, (क्योंकि), **पण्णासराय-कण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेइ**—उसने पचास राजकन्याओं का एक ही दिन में पाणिग्रहण किया था अर्थात् विवाह किया था, **नवरं निसढे नामं जाव उप्पिं पासाए विहरइ**—विशेष यह है कि वह निषध कुमार और उसकी रानिया ऊपर के राज-महल में सुखपूर्वक जीवन-यापन कर रहे थे।

मूलार्थ—उस द्वारिका नगरी में बलदेव नाम का राजा था, बलदेव महाबली थे और राज्य पर शासन करते हुए विचर रहे थे। उस राजा बलदेव की महारानी का नाम रेवती देवी था। वह अत्यन्त सुकुमार एव सुन्दर थी, अत: अपने राज्य में सुखपूर्वक रह रही थी। तदनन्तर वह रेवती देवी एक बार राज-रानियों के शयन करने के योग्य शय्या पर सोते हुए स्वप्न में सिंह को देख कर जाग गई। उसने उस स्वप्न का हाल बलदेव जी से कहा। (समय आने पर) उसने एक बालक को जन्म दिया, जिसका नाम निषध कुमार रखा। वह बालक महाबल के समान बहत्तर कलाओं में प्रवीण हो गया। उसको पचास दहेज मिले (क्योंकि) उसने पचास राज-कन्याओं का एक ही दिन में पाणिग्रहण किया था, अर्थात् विवाह किया था। वह निषध कुमार और उसकी रानियां ऊपर के राज-महल में सुख-पूर्वक जीवन-यापन कर रहे थे।

टीका—सभी भाव अपने आप में स्पष्ट है। बहु-विवाह प्रथा तत्कालीन राजाओं में प्रचलित थी।

अरिहंत अरिष्टनेमि का द्वारिका में पदार्पण

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आदिकरे दसधणूइं

वण्णओ जाव समोसरिए, परिसा निग्गया। तएणं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे० कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए सामुदाणियं भेरिं तालेह। तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाणिया भेरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं सामुदाणियं भेरिं महया महया सद्देणं तालेंति ॥ ५ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्टनेमिः आदिकरो दशधनुष्को वर्णकः यावत् समवसृतः, परिषत् निर्गता। ततः खलु सः कृष्णो वासुदेवोऽस्याः कथाया लब्धार्थः सन् हृष्टतुष्ट० कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव देवानुप्रियाः ! सभायां सुधर्मायां सामुदानिकीं भेरीं ताडयत्। ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषा यावत् प्रतिश्रुत्य यत्रैव सभायां सुधर्मायां सामुदा-निकी भेरी तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तां सामुदानिकीं भेरीं महता-महता शब्देन ताडयन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थान्वयः—**तेण कालेणं तेणं समएणं**—उस काल उस समय में, **अरहा अरिट्ठ-नेमी**—अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमि जी जो कि, **आदिकरे दसधणूइ वण्णओ जाव समोसरिए**—दस धनुष प्रमाण शरीर वाले थे और धर्म के आदि-कर थे अर्थात् जो इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथ के अनन्तर हजारों वर्षों के बाद धर्म का प्रवर्तन करने वाले थे, वे द्वारिका नगरी में पधारे। **परिसा निग्गया**—उनके दर्शनों एवं प्रवचनों के श्रवणार्थ नागरिकों के समूह अपने-अपने घरों से निकले।

तएणं से कण्हे वासुदेवे—तदनन्तर वासुदेव श्री कृष्ण, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे**—भगवान् अरिष्टनेमि जी के आगमन की सूचना प्राप्त होते ही, **हट्ठतुट्ठे०**—अत्यन्त प्रसन्न होकर, **कोडुंबियपुरिसे**—अपने पारिवारिक सेवकों को, **सद्दावेइ**—बुलवाते है, **सद्दावित्ता**—और बुलवा कर, **एवं वयासी**—उन्हें इस प्रकार आदेश दिया, **खिप्पामेव देवाणुप्पिया !**—हे देवानुप्रियो ! आप लोग शीघ्र ही, **सभाए सुहम्माए**—सुधर्मा सभा में पहुंचकर, **सामुदाणियं भेरिं**—सामुदानिक भेरी (वह भेरी जिसके बजने पर सभी अपेक्षित जन एकत्रित हो जाएं), **तालेह**—बजाओ, **तएणं ते कोडुंबियपुरिसा**—तदनन्तर वह सेवक वर्ग, वासुदेव श्री कृष्ण की आज्ञा सुनकर, **जेणेव सभाए सुहम्माए**—जहां पर सुधर्मा सभा थी, **सामुदाणिया भेरी**—और जहां सामुदानिक भेरी थी, **तेणेव उवागच्छंति**—वही पर आते है, **उवागच्छित्ता**—और वहा पहुंच कर, **तं सामुदाणियं भेरिं**—उस सामुदानिक भेरी को, **महया महया सद्देणं**—बहुत ऊंचे-ऊंचे स्वर से, **तालेन्ति**—बजाते है।

मूलार्थ—उस काल उस समय में अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमि जी जो कि दस धनुष प्रमाण शरीर वाले थे और धर्म के आदि-कर थे अर्थात् जो इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथ जी के अनन्तर हजारों वर्षों के बाद धर्म का प्रवर्तन करने वाले थे वे द्वारिका नगरी में पधारे। उनके दर्शनों एवं प्रवचनों के श्रवणार्थ नागरिकों के समूह अपने-अपने घरों से निकले।

तदनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण, भगवान अरिष्टनेमि जी के आगमन की सूचना प्राप्त होते ही अत्यन्त प्रसन्न होकर, अपने पारिवारिक सेवकों को बुलवाते हैं और बुलवा कर उन्हें इस प्रकार का आदेश देते है कि—"हे देवानुप्रियो ! आप लोग शीघ्र ही सुधर्मा सभा में पहुचकर सामुदानिक भेरी (वह भेरी जिसके बजने पर सभी अपेक्षित जन एकत्रित हो जाएं) बजाओ। तदनन्तर वह सेवक वर्ग वासुदेव श्री कृष्ण की आज्ञा सुनकर जहां सुधर्मा सभा थी और जहां सामुदानिक भेरी थी वहीं पर आते हैं और वहा पहुच कर सामुदानिक भेरी को बहुत ऊंचे-ऊंचे स्वर से बजाते हैं।

टीका—समस्त प्रकरण सरल है।

वासुदेव कृष्ण का प्रभु के दर्शनार्थ गमन

मूल—तएणं तीसे सामुदाणियाए भेरीए महया-महया सद्देणं तालियाए समाणीए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा देवीओ उण भाणियव्वाओ जाव अणंगसेणापामोक्खा अणेगा गणियासहस्सा, अन्ने य बहवे राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईओ ण्हाया जाव पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया जहाविभवइड्ढिसक्कारसमुदएणं, अप्पेगइया हयगया गयगया जाव पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता० जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता करतल० कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति। तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं कप्पेह, हयगयरहपवर जाव पच्चप्पिणंति।

तएणं से कण्हे वासुदेवे मज्जणघरे जाव दुरूढे, अट्ठट्ठमंगलगा, जहा कूणिए सेयवरचामरेहिं उद्धुयमाणेहिं उद्धुयमाणेहिं समुद्दविजय-पामोक्खेहिं दसहिं दसारेहिं जाव सत्थवाहप्पभिईहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं बारवईनयरिं मज्झं-मज्झेणं, सेसं जहा कूणिओ जाव पज्जुवासइ ॥ ६ ॥

छाया—ततः खलु तस्या समुदानिक्यां भेर्यां महता महता शब्देन ताडितायां सत्यां समुद्रविजयप्रमुखा दश दशार्हाः, देव्यः पुनर्भणितव्याः, यावद् अनंगसेना-प्रमुखानि अनेकानि गणिकासहस्राणि, अन्ये च बहवो राजेश्वर० यावत् सार्थ-वाहप्रभृतयः स्नाताः यावत् कृतप्रायश्चित्ताः सर्वालंकारविभूषिताः यथाविभव-ऋद्धिसत्कारसमुदयेन अप्येकके हयगता गयगता यावत् पुरुषवागुरापरिक्षिप्ता यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य करतल० कृष्णं वासुदेवं जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति। ततः खलु कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकपुरुषानेवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! आभिषेक्यं हस्तिरत्नं कल्पयध्वम्, हय-गज-रथप्रवरान् यावत् प्रत्यर्पयन्ति।

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो मज्जनगृहे यावद् दुरूढः अष्टाष्टमंगलकानि, यथा कूणिकः, श्वेतवरचामरैरुद्धूयमाणैः उद्धूयमाणैः समुद्रविजयप्रमुखैः दशभि-र्दशार्हैर्यावत् सार्थवाहप्रभृतिभिः सार्धं संपरिवृतः सर्वऋद्ध्या यावत् रवेण यावत् द्वारावतीनगरीमध्यमध्येन शेषं यथा कूणिको यावत् पर्युपास्ते ॥ ६ ॥

पदार्थान्वयः—**तएणं तीसे सामुदाणियाए भेरीए**—उस सामुदानिक भेरी के, **महया-महया सद्देणं**—जोर-जोर की ध्वनियों में, **तालियाए समाणीए**—बजाए जाने पर, **समुद्दविजय-पामोक्खा दस दसारा**—समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्ह क्षत्रिय, **देवीओ उणभाणियव्वाओ**—जो रुक्मिणी आदि देवियां भी बतलाई गई हैं (और), **जाव अणंगसेणापामोक्खा अणेगा गणियासहस्सा**—और अनंगसेना प्रमुख अनेक सहस्र गणिकाएं, **अन्ने य बहवे राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईओ**—राजेश्वर एव सार्थवाह आदि, **ण्हाया जाव पायच्छित्ता**—स्नानादि करके तथा प्रायश्चित्त अर्थात् मांगलिक कार्य करके, **सव्वालंकारविभूसिया**—सभी प्रकार के अलंकारों से विभूषित होकर, **जहाविभव-इड्ढि-सक्कार-समुदएणं**— अपनी-अपनी समृद्धि सत्कार एवं अभ्युदय सूचक वैभव के साथ, **अप्पेगइया हयगया गय-गया**—अनेक घोड़ों पर और अनेक हाथियो पर सवार होकर, **जाव पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता**—अपने-अपने दासों को साथ लेकर, **जेणेव कण्हे वासुदेवे**—जहां पर वासुदेव श्री कृष्ण थे, **तेणेव उवागच्छन्ति**—वहीं पर पहुच जाते हैं, **उवागच्छित्ता**—और वहां पहुंचकर, **करतल०**—दोनों हाथ जोड़कर, **कण्हं वासुदेवं**—वासुदेव श्री कृष्ण को, **जएणं विजएणं वद्धावेंति**—जय-विजय शब्दों से उनको वर्धापन देते है—उनका अभिनन्दन करते है।

तएणं से कण्हे वासुदेवे—तदनन्तर वासुदेव श्री कृष्ण ने, **कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी**—अपने पारिवारिक एवं निजी दास को यह आज्ञा दी, **खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया!**—हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही, **आभिसेक्कं हत्थिरयणं कप्पेह**—आभिषेक्य हस्तीरत्न को सजाकर तैयार करो, **हयगयरहपवर जाव**—तथा हाथी, घोड़ों और पदातियो से युक्त

यावत् चतुरंगिणी सेना को तैयार करके, **पच्चप्पिणंति**—मुझे आकर सूचित करो।

तएणं से कण्हे वासुदेवे—तदनन्तर वासुदेव श्री कृष्ण ने, **मज्जणघरे जाव दुरूढे**—स्नान-घर में प्रवेश कर (और वहां स्नान करके तदनन्तर वस्त्रालंकारों आदि से सुसज्जित होकर) वे हाथी पर सवार हो गए, **अट्ठट्ठ मंगलगा**—आठ मागलिक द्रव्य उनके आगे-आगे चले, **जहा कूणिए**—राजा कूणिक के समान, **सेयवरचामरेहिं**—श्रेष्ठतम चंवर उन पर, **उद्धुयमाणेहिं उद्धुयमाणेहिं**—डुलाए जाने लगे, **समुद्दविजयपामोक्खेहिं दसहिं दसारेहिं**—समुद्रविजय आदि दस दशार्ह क्षत्रिय, **जाव सत्थवाहप्पभिईहिं सद्धिं**—सार्थवाहों आदि के साथ, **संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं**—सर्वविध राजसी समृद्धियों और विविध वाद्यो के मधुर एवं उच्च स्वरो के साथ, **बारवईनयरिं मज्झं-मज्झेणं**—द्वारका नगरी के बीचों-बीच मध्यमार्ग से निकले और रैवतक पर्वत पर पहुच कर भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी की, **सेसं जहा कूणिओ जाव पज्जुवासइ**—शेष सब वर्णन कूणिक के समान समझते हुए श्रीकृष्ण द्वारा भगवान् की पर्युपासना आदि कार्य समझ लेने चाहिएं।

मूलार्थ—जोर-जोर की ध्वनियों वाली उस सामुदानिक भेरी के बजाए जाने पर समुद्रविजय प्रमुख दशार्ह क्षत्रिय, रुक्मणी आदि देवियां जो पीछे बतलाई गई हैं और अनेक सहस्र गणिकाएं, राजेश्वर एवं सार्थवाह आदि स्नानादि करके तथा प्रायश्चित्त अर्थात् मांगलिक कार्य करके सभी प्रकार के अलंकारों से विभूषित होकर अपनी-अपनी समृद्धि, सत्कार एवं अभ्युदय सूचक वैभव के साथ अनेक घोड़ों पर और अनेक हाथियों पर सवार होकर अपने-अपने दासों को साथ लेकर जहां पर वासुदेव श्री कृष्ण थे वही पर पहुंच जाते है और वहां पहुच कर दोनों हाथ जोड़कर वासुदेव श्री कृष्ण को जय-विजय शब्दों से वर्धापन देते हैं—उनका अभिनन्दन करते है।

तदनन्तर वासुदेव श्री कृष्ण ने अपने पारिवारिक एवं निजी दासों को यह आज्ञा दी—हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजाकर तैयार करो तथा हाथी, घोड़ो और पदातियों से युक्त यावत् चतुरंगिणी सेना को तैयार करके मुझे आकर सूचित करो।

तदनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण ने स्नानघर में प्रवेश कर (और वहां स्नान करके तदनन्तर वस्त्रालंकारों आदि से सुसज्जित होकर) वे वहां आकर हाथी पर सवार हो गए। आठ मांगलिक द्रव्य उनके आगे-आगे चले और राजा कूणिक के समान श्रेष्ठतम चंवर उन पर डुलाए जाने लगे। समुद्रविजय आदि दस दशार्ह क्षत्रिय तथा

सार्थवाहों आदि के साथ सर्वविध राजसी समृद्धियों और विविध वाद्यों के मधुर एवं उच्च स्वरों के साथ वे द्वारिका नगरी के बीचों-बीच मध्य मार्ग से निकले और रैवतक पर्वत पर पहुंचकर भगवान श्री अरिष्टनेमि जी को वन्दना-नमस्कार किया, शेष सब वर्णन कूणिक के समान समझते हुए श्री कृष्ण द्वारा भगवान की पर्युपासना आदि कार्य समझ लेने चाहिएं।

निषध कुमार द्वारा श्रावक-धर्म ग्रहण

मूल—तएणं तस्स निसढस्स कुमारस्स उप्पिं पासायवरगयस्स तं महया जणसद्दं च जहा जमाली जाव धम्मं सोच्चा निसम्म वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं जहा चित्तो जाव सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता पडिगए ॥ ७ ॥

छाया—ततः खलु तस्य निषधस्य कुमारस्योपरिप्रासादवरगतस्य तं महाजनशब्दं च यथा जमालिर्यावद् धर्म श्रुत्वा निशम्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—श्रद्धामि खलु भदन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनं यथा चित्तो० यावत् श्रावक-धर्मं प्रतिपद्यते प्रतिपद्य प्रतिगतः ॥ ७ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं तस्स निसढस्स कुमारस्स—तब उस निषध कुमार ने, **उप्पिं पासायवरगयस्स**—अपने सुन्दर महल के ऊपर बैठे हुए, **तं महया जणसद्दं**—जनता द्वारा किए जा रहे उस महान् शोर को सुना, **जहा जमाली जाव धम्मं सोच्चा निसम्म**— तो वह भी जमाली के समान राज्य-वैभव के साथ (भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी के पावन-सान्निध्य मे पहुंचा और भगवान से धर्मतत्व को सुनकर उसने उसे हृदयंगम कर लिया तब उसने भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी को, **वंदइ नमंसइ**—वन्दना-नमस्कार किया, (और), **वंदित्ता नमंसित्ता**—वन्दना-नमस्कार करके, **एवं वयासी**—इस प्रकार निवेदन किया, **सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं**—भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं, **जहा चित्तो जाव सावगधम्मं पडिवज्जइ**—चित्त नामक सारथी के समान उसने श्रावक धर्म स्वीकार किया, **पडिवज्जित्ता पडिगए**—और स्वीकार करके वह अपने राज-महल में लौट गया।

मूलार्थ—तब उस निषध कुमार ने अपने महल के ऊपर बैठे हुए जनता द्वारा किए जा रहे उस महान् शोर को सुना तो वह भी जमाली के समान राज्य-वैभव के साथ (भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी के पावन सान्निध्य में पहुंचा और भगवान से धर्म तत्व को सुनकर उसने उसे हृदयंगम कर लिया, तब उसने भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी को वन्दना-नमस्कार किया और वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन

किया–भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं, चित्त नामक सारथी के समान उसने श्रावक धर्म स्वीकार किया, और स्वीकार करके वह अपने राज–महल में लौट गया।

टीका–प्रस्तुत सूत्र में श्रमण भगवान महावीर ने निषध कुमार के वैभव पूर्ण जीवन का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया है। निषध कुमार कैसे भगवान श्री अरिष्टनेमि जी के दर्शन करने जाता है उसका वर्णन भगवती सूत्र मे वर्णित जमाली के प्रकरण की तरह जान लेना चाहिए। निषध कुमार ने भगवान अरिष्टनेमि के उपदेश से प्रभावित होकर श्रावक–व्रत चित्त श्रावक की तरह धारण किए।

भगवान द्वारा निषध कुमार का पूर्वभव कथन

मूल–तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतेवासी वरदत्ते नामं अणगारे उराले जाव विहरइ। तएणं से वरदत्ते अणगारे निसढं कुमारं पासइ, पासित्ता जायसड्ढे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी-अहो णं भंते ! निसढे कुमारे इट्ठे इट्ठरूवे कंते कंतरूवे एवं पिए० मणुन्ने० मणामे मणामरूवे, सोमे सोमरूवे पियदंसणे सुरूवे। निसढेणं भंते ! कुमारेणं अयमेयारूवा माणुसइड्ढी किण्णा लद्धा किण्णा पत्ता ? पुच्छा जहा सूरियाभस्स, एवं खलु वरदत्ता ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रोहीडए नामं नयरे होत्था, रिद्धित्थिमियसमिद्धे० मेहवन्ने उज्जाणे, मणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे। तत्थ णं रोहीडए नयरे महब्बले नामं राया, पउमावई नामं देवी, अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सीहं सुमिणे, एवं जम्मणं भाणियव्वं, जहा महब्बलस्स, नवरं वीरंगओ नामं, बत्तीसओ दाओ, बत्तीसाए रायवरकन्नगाणं पाणिं जाव उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे पाउसवरिसारत्तसरयहेमंतवसन्तगिम्हपज्जंते छप्पि उऊ जहाविभवेणं भुंजमाणे भुंजमाणे कालं गालेमाणे इट्ठे सद्दे जाव विहरइ ॥ ८॥

छाया–तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हतोऽरिष्टनेमेरन्तेवासी वरदत्तो नाम अनगारः उदारो यावद् विहरति। ततः स वरदत्तोऽनगारो निषधं कुमारं पश्यति, दृष्ट्वा जातश्रद्धो यावत् पर्युपासीनः एवमवादीत्–अहो ! खलु भदन्त ! निषधः कुमारः इष्टः इष्टरूपः, कान्तः कान्तरूपः, एवं प्रियो०मनोज्ञो० मनोऽमरूप, सोमः सोमरूपः, प्रियदर्शनः सुरूपः। निषधेन भदन्त ! कुमारेण अयमेतद्रूपा मानुषऋद्धिः

कथं लब्धा ? कथं प्राप्ता ? पृच्छा यथा सूर्याभस्य।

एवं खलु वरदत्त ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे रोहितकं नाम नगरमासीत्, ऋद्धस्तिमितसमृद्धम्० मेघवर्णमुद्यानं, मणिदत्तस्य यक्षस्य यक्षायतनम्, तत्र खलु रोहितके नगरे महाबलो नाम राजा, पद्मावती नाम देवी, अन्यदा कदाचिद् तस्मिन् तादृशे शयनीये सिंहं स्वप्ने०, एवं जन्म भणितव्यं यथा महाबलस्य, नवरं वीरंगतो नाम, द्वात्रिंशद् दायाः, द्वात्रिंशतो राजकन्यकानां पाणिं यावद् उपगीयमानः उपगीयमानः प्रावृड्वर्षारात्रशरद्धेमन्तग्रीष्मवसन्तान् षडपि ऋतून् यथाविभवेन भुञ्जानः इष्टान् शब्दान् यावद् विहरति ॥ ८ ॥

पदार्थान्वयः—**तेणं कालेणं तेणं समएणं**—उस काल और उस समय में, **अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतेवासी वरदत्ते नामं अणगारे**—अरिहन्त भगवान श्री अरिष्टनेमि जी के प्रधान शिष्य वरदत्त नामक मुनीश्वर, **उराले जाव विहरइ**—जो अत्यन्त उदार प्रकृति के थे वे विचरण कर रहे थे, **तएणं से वरदत्ते अणगारे निसढं कुमारं पासइ**—उस वरदत्त नामक मुनीश्वर ने निषध कुमार को देखा, **पासित्ता जायसड्ढे जाव पज्जुवासमाणे**—और उसे देखकर उनके हृदय में श्रद्धा जागृत हुई, यावत् उन्होंने भगवान् की पर्युपासना करते हुए, **एवं वयासी**—इस प्रकार निवेदन किया, **अहो णं भंते !**—हे भगवन् ! **निसढे कुमारे इट्ठे इट्ठरूवे**—यह निषध कुमार इष्ट है (इसे सभी चाहते हैं) क्योंकि इसे मनचाहा रूप प्राप्त हुआ है, **कंते कंतरूवे**—सुन्दर है और इसे सुन्दर रूप प्राप्त हुआ है, **एवं पिए० पियरूवे**—यह सबको प्रिय है, क्योंकि इसे सर्वजनप्रिय रूप प्राप्त हुआ है, **मणुन्ने० मणामे मणामरूवे**—यह सबको अच्छा लगने वाला है, इसका रूप अत्यन्त मनोज्ञ है, **सोमे सोमरूवे**—यह सौम्य है इसे सौम्य रूप प्राप्त हुआ है, **पियदंसणे सुरूवे**—यह प्रिय दर्शन एवं सुरूप है। **निसढेणं भंते ! कुमारेणं**—भगवन् ! इस निषध कुमार ने, **अयमेयारूवा माणुसइड्ढी**—इसे इस प्रकार की मानवीय समृद्धि, **किण्णा लद्धा किण्णा पत्ता ?** - कैसे उपलब्ध हुई है ? और कैसे प्राप्त हुई है ? **पुच्छा जहा सूरियाभस्स**—सूर्याभदेव के विषय मे श्री गौतम स्वामी जी की तरह (वरदत्त मुनिराज ने) श्री अरिष्टनेमि जी से प्रश्न किया।

एवं खलु वरदत्ता !—(भगवान श्री अरिष्टनेमि जी ने वरदत्त मुनि के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा) वत्स वरदत्त ! **तेण कालेणं तेणं समएणं**—उस काल और उस समय में, **इहेव जंबुद्दीवे दीवे**—यहीं पर जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, **भारहे वासे**—भारत वर्ष में, **रोहीडए नामं नयरे होत्था**—रोहितक नाम का एक नगर था, **रिद्धित्थिमिय-समिद्धे०**—जो कि धन-धान्यादि से अत्यन्त समृद्ध था, **मेहवन्ने उज्जाणे**—वहां पर मेघवर्ण

नाम का एक उद्यान था, **मणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे**– उस उद्यान में मणिदत्त नामक एक यक्ष का यक्षायतन (यक्ष-मन्दिर) था, **तत्थ णं रोहीडए नयरे महब्बले नामं राया**–उस रोहितक नगर में महाबल नाम का एक राजा राज्य करता था, **पउमावई नामं देवी**–उसकी पद्मावती नाम की पटरानी थी, **अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सीहं सुमिणे**–एक रात उसने राजरानी के योग्य शय्या पर शयन करते हुए स्वप्न मे एक सिंह देखा, **एवं जम्मणं भाणियव्वं, जहा महब्बलस्स**–उसके जन्म आदि का वर्णन महाबल के समान ही समझना चाहिए, **नवरं वीरंगओ नामं**–इतना विशेष है कि उस बालक का नाम वीरगत (वीरांगद) रखा गया, **बत्तीसओ दाओ, बत्तीसाए रायवरकन्नगाणं पाणिं जाव उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे**–वीरागदकुमार का (विवाह योग्य होने पर) बत्तीस कन्याओं के साथ विवाह हुआ और उसे बत्तीस-बत्तीस प्रकार के दहेज प्राप्त हुए। उसके राज-महलो के ऊपर गायक उसके गुणो का गुण-गान करते रहते थे, **पाउसवरिसारत्तसरयहेमंतवसन्तगिम्हपज्जंते छप्पि उऊ जहाविभवेणं भुंजमाणे भुंजमाणे**– वह ग्रीष्म-वर्षा आदि छहों ऋतुओ सम्बन्धी मनचाहे मानवीय भोगों का, **कालं गालेमाणे इट्ठे सद्दे जाव विहरइ**–और उपभोग करते हुए अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा था।

मूलार्थ–उस काल और उस समय में अरिहन्त भगवान श्री अरिष्टनेमि जी के प्रधान शिष्य वरदत्त नामक मुनीश्वर ने जब निषध कुमार को देखा और उन्हें देख कर उनके हृदय में श्रद्धा जागृत हुई, यावत् उन्होंने भगवान की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार निवेदन किया–"भगवन्! यह निषध कुमार इष्ट है (इसे सभी चाहते है), क्योंकि इसे मनचाहा रूप प्राप्त हुआ है, यह सुन्दर है और इसे सुन्दर रूप प्राप्त हुआ है, यह सबको प्रिय है, क्योकि इसे सर्वजन प्रिय रूप प्राप्त हुआ है, यह सबको अच्छा लगने वाला है, इसका रूप अत्यन्त मनोरम है, यह सौम्य है इसे सौम्य रूप प्राप्त हुआ है, यह प्रिय-दर्शन एवं सुरूप है। भगवन्! इस निषध कुमार को इस प्रकार की मानवीय समृद्धि कैसे प्राप्त हुई है ? सूर्याभदेव के विषय में श्री गौतम स्वामी जी की तरह (वरदत्त मुनिराज ने) भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी से प्रश्न किया।

(भगवान श्री अरिष्टनेमि जी ने वरदत्त मुनि के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा–) वत्स वरदत्त। उस काल और उस समय मे यही पर जम्बू द्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र में रोहितक नाम का एक नगर था, जो कि धन-धान्यादि से अत्यन्त समृद्ध था। वहां पर मेघवर्ण नाम का एक उद्यान था। उस उद्यान में मणिदत्त नामक यक्ष का एक यक्षायतन (यक्ष-मन्दिर) था, उस रोहितक नगर में महाबल नाम का

एक राजा राज्य करता था, उसकी पद्मावती नाम की पटरानी थी, एक रात उस रानी ने अपनी राजरानी के योग्य शय्या पर शयन करते हुए स्वप्न में सिंह देखा, उसके जन्म आदि का वर्णन महाबल के समान ही समझना चाहिए, इतना विशेष है कि उस बालक का नाम वीरंगत (वीरांगद) रखा गया। वीरंगत कुमार का (विवाह योग्य होने पर) बत्तीस कन्याओं के साथ विवाह हुआ और उसे बत्तीस-बत्तीस प्रकार के दहेज प्राप्त हुए, उसके राज-महलों के ऊपर गायक उसके गुणों का गुणगान करते रहते थे, यह ग्रीष्म-वर्षा आदि छहों ऋतुओं सम्बन्धी मनचाहे मानवीय भोगों का उपभोग करते हुए अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा था।

टीका-निषध कुमार के रूप लावण्य को देखकर भगवान अरिष्टनेमि के शिष्य गणधर वरदत्त मुनि ने निषध कुमार के पूर्वभव का परिचय पूछा। भगवान ने कहा कि पूर्वभव में रोहितक नगर में महाबल नामक राजा था, उसकी रानी पद्मावती थी। उस रानी ने सिंह का स्वप्न देखा। उनके यहा वीरगत (वीरांगद) नाम का कुमार उत्पन्न हुआ। उसका यौवन अवस्था मे ३२ राजकन्याओं के साथ तत्कालीन बहु-पत्नी प्रथा के अनुसार विवाह हुआ, अपने महलों में वह सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा, आदि।

रोहितक नगर में सिद्धार्थाचार्य का पदार्पण

मूल-तेणं कालेणं तेणं समएणं सिद्धत्था नाम आयरिया जाइ-संपन्ना जहा केसी नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा जेणेव रोहीडए नयरे जेणेव मेहवन्ने उज्जाणे जेणेव मणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया, अहापडिरूवं जाव विहरंति, परिसा निग्गया ॥ ९ ॥

छाया-तस्मिन् काले तस्मिन् समये सिद्धार्थो नाम आचार्याः जातिसम्पन्नाः यथा केशी, नवरं बहुश्रुता बहुपरिवारा यत्रैव रोहितकं नगरं यत्रैव मेघवर्णमुद्यानं यत्रैव मणिदत्तस्य यक्षस्य यक्षायतनं तत्रैवोपागतः, यथाप्रतिरूपं यावद् विहरति परिषद् निर्गता ॥ ९ ॥

पदार्थान्वयः-तेणं कालेणं तेणं समएणं-उस काल एव उस समय में, **सिद्धत्था नाम आयरिया जाइसंपन्ना**-उच्च जातीय सिद्धार्थ नाम के आचार्य, **जहा केसी**-जो कि मुनिराज केशी के समान ही थे, **नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा**-इतना विशेष है कि वे बहुश्रुत एवं विशाल शिष्य-परिवार वाले थे, **जेणेव रोहीडए नयरे**-उसी रोहितक नाम के नगर में, **मेहवन्ने उज्जाणे**-मेघवर्ण नामक उद्यान में, **जेणेव मणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे**-जहा पर मणिदत्त नामक यक्ष का यक्षायतन था, **तेणेव उवागया**-वहीं पर

आ गए, **अहापडिरूवं जाव विहरंति**—और उद्यान-पालक से आज्ञा लेकर वे वही पर विचरने लगे। **परिसा निग्गया**—दर्शनार्थ एवं प्रवचन-श्रवणार्थ श्रद्धालु नागरिको की टोलियां उनका पावन सान्निध्य प्राप्त करने के लिए घरों से निकल पड़ीं।

मूलार्थ—(वरदत्त !) उस काल एवं उस समय में उच्च जातीय सिद्धार्थ नाम के आचार्य जो कि मुनिराज केशी के समान थे, इतना विशेष है कि वे बहुश्रुत एवं विशाल शिष्य-परिवार वाले थे, उसी रोहितक नाम के नगर में मेघवर्ण नामक उद्यान में जहां पर मणिदत्त नामक यक्ष का यक्षायतन था वहां पर आ गए और उद्यान-पालक से आज्ञा लेकर वे वहीं पर विचरने लगे। दर्शनार्थ एवं प्रवचन-श्रवणार्थ श्रद्धालु नागरिकों की टोलियां उनका पावन सान्निध्य प्राप्त करने के लिए घरों से निकल पड़ीं।

टीका—प्रस्तुत सूत्र में रोहितक नगरी में आचार्य सिद्धार्थ के पधारने का वर्णन किया गया है। वे आचार्य भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य केशी की तरह बहुश्रुत एवं विशाल शिष्य परिवार वाले थे, उनका आगमन शहर के मेघवर्ण उद्यान मे हुआ। जैन साधु को बिना आज्ञा लिए किसी जगह पर ठहरना निषिद्ध है। इसीलिए आचार्य श्री सिद्धार्थ उद्यान पालक की आज्ञा लेकर ही वहां ठहरते हैं।

वीरांगद का शेष वृत्त : प्रव्रज्या-साधना-देवलोक गमनादि

मूल—तएणं तस्स वीरंगयस्स कुमारस्स उप्पिं पासायवरगयस्स महया जणसद्दं च जहा जमाली निग्गओ धम्मं सोच्चा जं नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, जहा जमाली तहेव निक्खंतो जाव अणगारे जाए जाव गुत्तबंभयारी। तए णं से वीरंगए अणगारे सिद्धत्थाणं आयरियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूइं जाव चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं पणयालीसवासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता, दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेदित्ता, आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा बंभलोए कप्पे मणोरमे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमा ठिई पण्णत्ता। तत्थणं वीरंगयस्स देवस्स वि दस सागरोवमा ठिई पण्णत्ता। से णं वीरंगए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव अणंतरं चयं चइत्ता इहेव बारवईए नयरीए

बलदेवस्स रन्नो रेवईए देवीए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववन्ने। तएणं सा रेवई देवी तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुमिणदंसणं जाव उप्पिं पासायवरगए विहरइ। तं एवं खलु वरदत्ता ! निसढेणं कुमारेणं अयमेयारूवा ओराला मणुयइड्ढी लद्धा -३ ।

पभू णं भंते ! निसढे कुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वइत्तए ? हंता पभू! से एवं भंते! इय वरदत्ते अणगारे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥ १० ॥

छाया—ततः खलु तस्य वीरंगतस्य कुमारस्य उपरिप्रासादवरगतस्य तं महाजन-शब्दं च, यथा जमालिर्निगतो धर्म श्रुत्वा यद् नवरं देवानुप्रियाः! अम्बापितरौ आपृच्छामि यथा जमालिस्तथैव निष्क्रान्तो, यावद् अनगारो जातो यावद् गुप्त-ब्रह्मचारी। ततः खलु सः वीरंगतोऽनगारः सिद्धार्थनामाचार्याणामन्तिके सामायिका-दीनि एकादशांगानि अधीत्य बहूनि यावत् चतुर्थ० यावत् आत्मानं भावयन् बहुप्रतिपूर्णानि पञ्चचत्वारिंशद् वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा द्वैमासिक्या सलेखनया आत्मानं जोषित्वा सविंशतिं भक्तशतमनशनेन छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा ब्रह्मलोके कल्पे मनोरमे विमाने देवतया उपपन्नः। तत्र खलु अस्त्येकेषां देवानां दशसागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता। तत्र खलु वीरंगतस्य देवस्यापि दशसागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता। स खलु वीरंगतो देवस्तस्माद् देवलोकात् आयु-क्षयेण यावद् अनन्तरं चयं च्युत्वा इहैव द्वारावत्यां नगर्या बलदेवस्य राज्ञो रेवत्या देव्याः कुक्षौ पुत्रतयोपपन्नः। ततः खलु सा रेवती देवी तस्मिन् तादृशे शयनीये स्वप्नदर्शनं यावद् उपरि प्रासादवरगतो विहरति।

तदेवं खलु वरदत्त ! निषधेन कुमारेण इयमेतद्रूपा उदारा मनुष्यऋद्धिर्लब्धा ३। प्रभुः खलु भदन्त ! निषधः कुमारो देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजितुम् ? हन्त प्रभुः, स एवं भदन्त ! इति वरदत्तोऽनगारो यावदात्मानं भावयन् विहरति ॥ १० ॥

पदार्थान्वयः—तएणं तस्स वीरगयस्स कुमारस्स—तदनन्तर उस वीरगत कुमार ने, **उप्पिं पासायवरगयस्स**—अपने राजमहल के ऊपर ही बैठे हुए, **महया जणसद्दं च**—जनता के महान् जय-घोषों आदि के शब्दों को सुना, **जहा जमाली निग्गओ धम्मं सोच्चा जं नवरं**—जमाली के समान वह वीरगत कुमार भी आचार्य श्री सिद्धार्थ जी के दर्शनार्थ गया और उनसे धर्मोपदेश सुन कर, उन्हे वन्दना-नमस्कार कर निवेदन करने लगा,

देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि–भगवन् ! मै माता-पिता से पूछकर आता हूं, **जहा जमाली तहेव**–जैसे जमाली प्रव्रजित हुआ था वैसे ही, **निक्खंतो जाव अणगारे जाए**–वह भी घर-बार छोड़ कर और माता-पिता की आज्ञा लेकर उनके साथ आचार्य देव के पास आया और प्रव्रजित होकर अणगार (साधु), **जाव गुत्तबंभयारी**–और गुप्त ब्रह्मचारी बन गया, **तएणं से वीरंगए अणगारे**–तदनन्तर वह वीरंगत अणगार, **सिद्धत्थाणं आयरियाणं अंतिए**–सिद्धार्थ आचार्य श्री के पावन सान्निध्य मे रह कर, **सामाइय-माइयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ**–वह सामायिक आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करता है, **अहिज्जित्ता**–(और) अध्ययन करके, **बहूइं जाव चउत्थ जाव अप्पाणं भावे-माणे**–और अनेक वर्षों तक चौला, अठाई, दस, बारह आदि व्रतो के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए, **बहुपडिपुण्णाइं**–परिपूर्ण, **पणयालीसवासाइं**– पैंतालीस वर्षों तक, **सामण्णपरियागं पाउणित्ता**–श्रामण्य (साधुत्व) पर्याय का पालन करके, **दो मासियाए संलेहणाए**–दो महीनों की सलेखना द्वारा, **अत्ताणं झूसित्ता**–अपनी आत्मा को शुद्ध करके, **सवीसं भत्तसयं**–एक सौ बीस भोजनों का, **अणसणाए छेदित्ता**–अनशन (उपवास) तपस्या द्वारा छेदन करके, **आलोइयपडिक्कंते**–आलोचना एवं प्रतिक्रमण पूर्वक, **समाहिपत्ते**–समाधि पूर्वक, **कालमासे कालं किच्चा**–मृत्यु समय आने पर प्राणों का त्याग कर, **बंभलोए कप्पे**–ब्रह्मलोक नामक देवलोक के, **मणोरमे विमाणे**–मनोरम नाम के विमान में, **देवत्ताए उववन्ने**–देवता के रूप में उत्पन्न हुआ, **तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं**–वहां पर अनेक देवों की, **दस सागरोवमा ठिई पण्णत्ता**–दस सागरोपम की स्थिति कही गई है, **तत्थणं वीरंगयस्स देवस्स वि**–वहां पर वीरगत नाम के देव की भी, **दस सागरोवमा ठिई पण्णत्ता**–दस सागरोपम की स्थिति हुई।

से णं वीरंगए देवे–जम्बू ! वह वीरंगत देव, **ताओ देवलोगाओ**–उस ब्रह्मलोक नामक देवलोक से, **आउक्खएणं**–देव-आयु के पूर्ण होने पर, **जाव अणंतरं चयं चइत्ता**–वहां से च्यवन करके, **बारवईए नयरीए**–द्वारिका नाम की नगरी में, **बलदेवस्स रन्नो**–राजा बलदेव की, **रेवईए देवीए**–महारानी रेवती की, **कुच्छिंसि**–कोख से, **पुत्तत्ताए उववन्ने**–पुत्र के रूप मे उत्पन्न हुआ है, **तएणं सा रेवई देवी**–(उसकी उत्पत्ति से पूर्व) वह रेवती देवी, **तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि**–राजरानी के योग्य सुखद शय्या पर (सोती हुई), **सुमिणदंसणं**–स्वप्न में सिंह को देखती है, **जाव उप्पिं पासायवरगए विहरइ**–यथासमय बालक का जन्म हुआ, क्रमशः उसने यौवन अवस्था प्राप्त की और बत्तीस राजकन्याओं से उसका विवाह हुआ। तदनन्तर वह एक उत्तम राज-महल के ऊपर रहने लगा और सुखद जीवन व्यतीत करता रहा। **तं एवं खलु वरदत्ता ! निसढेणं कुमारेणं**–हे वरदत्त । इस प्रकार उस निषध कुमार ने, **अयमेयारूवा ओराला मणुयइड्ढी लद्धा ३**–इस प्रकार

की अत्युत्तम मानवीय जीवन के योग्य समृद्धियां प्राप्त की हैं।

पभू णं भंते–(वरदत्त मुनि ने पुनः प्रश्न किया–) भगवन्! **निसढे कुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव० पव्वइत्तए**–वह निषध कुमार क्या आप देवानुप्रिय के पास यावत् प्रव्रजित होने के लिए समर्थ है ? **हंता पभू**–भगवान ने कहा–हा वरदत्त ! वह समर्थ है, प्रव्रजित होगा ही, **से एवं भंते ! इय वरदत्ते अणगारे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ**–भगवन्! (आप जो कहते हैं वह सत्य ही है) ऐसा कह कर वरदत्त अनगार अपनी आत्मा को तप-संयम से भावित करते हुए विचरने लगे।

मूलार्थ–तदनन्तर उस वीरंगत कुमार (वीरांगद) ने अपने राजमहल के ऊपर ही बैठे हुए जनता के महान् जयघोषों आदि के शब्दों को सुना, जमाली के समान वह वीरंगत कुमार भी आचार्य श्री के दर्शनार्थ गया और उनसे धर्मोपदेश सुनकर, उन्हें वन्दना-नमस्कार कर निवेदन करने लगा, भगवन् ! मैं माता-पिता से पूछकर आता हूं, जैसे जमाली प्रव्रजित हुआ था वैसे ही वह भी घर-बार छोड़कर और माता-पिता की आज्ञा लेकर उनके साथ आचार्य देव के पास आया और प्रव्रजित होकर अणगार (साधु) और गुप्त ब्रह्मचारी बन गया तथा सिद्धार्थ आचार्य श्री के पावन सान्निध्य में रहकर वह सामायिक आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करता है (और) अध्ययन करके अनेक वर्षों तक चौला, अठाई, दस, बारह आदि व्रतों के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए पैंतालिस वर्षों तक श्रामण्य (साधुत्व) पर्याय का पालन करके दो महीनों की संलेखना द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करके एक सौ बीस भोजनो का अनशन (उपवास) तपस्या द्वारा छेदन करके आलोचना एवं प्रतिक्रमण एव समाधि-पूर्वक मृत्यु समय आने पर प्राण-त्याग कर ब्रह्मलोक नामक देवलोक में मनोरम नाम के विमान में देवता के रूप में उत्पन्न हुआ। वहा अनेक देवों की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है, अतः वहां पर वीरंगत नाम के देव की स्थिति भी दस सागरोपम की हुई।

जम्बू ! वह वीरंगत देव उस ब्रह्मलोक नामक देवलोक से देव-आयु के पूर्ण होने पर वहां से च्यवन करके द्वारिका नाम की नगरी में राजा बलदेव की महारानी रेवती देवी की कोख से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है। (उसकी उत्पत्ति से पूर्व) वह रेवती देवी राजरानी के योग्य सुखद शय्या पर (सोती हुई) स्वप्न में सिंह को देखती है और यथासमय बालक का जन्म हुआ, क्रमशः उसने यौवन अवस्था प्राप्त की, और बत्तीस राज-कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। तदनन्तर वह एक उत्तम राजमहल के ऊपर रहने लगा और सुखद जीवन व्यतीत करता रहा। हे वरदत्त!

इस प्रकार उस निषध कुमार ने इस प्रकार की अत्युत्तम मानवीय जीवन के योग्य समृद्धियां प्राप्त की हैं।

(वरदत्तमुनि ने पुनः प्रश्न किया) भगवन् ! वह निषध कुमार क्या आप देवानुपिय के पास यावत् प्रव्रजित होने के लिए समर्थ है ? योग्य है ? भगवान ने कहा–हां वरदत्त ! वह समर्थ है (प्रव्रजित होगा ही)। भगवन् ! (आप कहते हैं वह सत्य ही है) ऐसा कहकर वरदत्त अनगार अपनी आत्मा को तप-संयम से भावित करते हुए विचरने लगे।

टीका–प्रस्तुत प्रकरण में धर्म उपदेश के श्रवणार्थ जा रही भीड़ के शोर का वर्णन है, जिससे उस नगरी के लोगो की धर्म-प्रवृत्ति का पता चलता है। वीरगत कुमार भी आचार्य श्री के उपदेश से साधु बन जाता है। साधु बनकर शास्त्रो का स्वाध्याय करता है। पैंतालिस वर्षो तक संयम पालन कर अन्तिम समय में दो मास की संलेखना द्वारा काल-धर्म को प्राप्त करता है। फिर देव रूप में जन्म लेता है। देव आयुष्य को पूरा कर राजा बलदेव की रानी रेवती के यहां पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है।

निषध द्वारा दीक्षा ग्रहण / साधना / देवलोक गमन

मूल–तएणं अरहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइं बारवईओ नयरीओ जाव बहिया जणवयविहारं विहरइ। निसढे कुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ। तएणं से निसढे कुमारे अण्णया कयाइं जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव दब्भसंथारोवगए विहरइ। तएणं निसढस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्त० धम्मजागरियं जागर-माणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए० धन्ना णं ते गामागर जाव संनिवेसा जत्थणं अरहा अरिट्ठनेमी विहरइ। धन्ना णं ते राईसर जाव सत्थवाहप्पभईओ जे णं अरिट्ठनेमिं वंदंति नमंसंति जाव पज्जुवासंति, जइ णं अरहा अरिट्ठनेमी पुव्वाणुपुव्विं० नंदणवणे विहरेज्जा तएणं अहं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदिज्जा जाव पज्जुवासिज्जा।

तएणं अरहा अरिट्ठनेमी निसढस्स कुमारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता अट्ठारसहिं समणसहस्सेहिं जाव नंदणवणे उज्जाणे समोसढे। परिसा निग्गया।

तएणं निसढे कुमारे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ० चाउग्घंटेणं

आसरहेणं निग्गए, जहा जमाली, जाव अम्मापियरो आपुच्छित्ता पव्वइए, अणगारे जाए जाव० गुत्तबंभयारी। तएणं से निसढे अणगारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूइं चउत्थछट्ठ जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं नव वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ. बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए ॥ ११॥

छाया—ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमिरन्यदा कदाचित् द्वारावत्यां नगर्या यावत् बहिर्जनपदविहारं विहरति। निषधः कुमारः श्रमणोपासक्रो जातः, अभिगतजीवाजीवो यावद् विहरति। ततः खलु स निषधः कुमारः अन्यदा कदाचित् यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य यावद् दर्भसंस्तारोपगतो विहरति। ततः खलु तस्य निषधस्य कुमारस्य पूर्वरात्रापररात्रकाले धर्मजागरिकां जाग्रतोऽयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः०—धन्याः खलु ते गामाकर यावत् सन्निवेशाः, यत्र खलु अर्हन् अरिष्टनेमिर्विहरति, धन्याः खलु ते राजेश्वर यावत् सार्थवाहप्रभृतिकाः, ये खलु अरिष्टनेमिं वन्दन्ते नमस्यन्ति यावत्० पर्युपासते, यदि खलु अर्हन् अरिष्टनेमिः पूर्वानुपूर्वी नन्दनवने विहरेत् ततः खलु अहमर्हन्तमरिष्टनेमिं वन्देयं नमस्येयं यावत् पर्युपासेयं। ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमिः निषधस्य कुमारस्य इममेतद्रूपमाध्यात्मिकं यावद् विज्ञाय अष्टादशभिः श्रमणसहस्त्रयावद् नन्दनवने उद्याने समवसृतः, परिषद् निर्गता। ततः खलु निषधः कुमारः अस्याः कथाया लब्धार्थः, सन् हृष्ट० चातुर्घण्टेन अश्वरथेन यावद् निर्गतः यथा जमालिः यावद् अम्बापितरौ आपृच्छ्य प्रव्रजितः, अनगारो जातो यावद् गुप्तब्रह्मचारी।

ततः खलु स निषधोऽनगारः अर्हतोरिष्टनेमेस्तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीते, अधीत्य बहूनि चतुर्थ षष्ठ यावद् तपः-कर्मभिरात्मानं भावयन् बहुप्रतिपूर्णानि नव वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, चत्वारिंशद् भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, आलोचितप्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः आनुपूर्व्या कालगतः ॥ ११ ॥

पदार्थान्वयः—तएणं अरहा अरिट्ठनेमी—तदनन्तर किसी समय अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमि जी, **अण्णया कयाइं**—एक बार, **बारवईओ नयरीओ जाव बहिया**—द्वारिका नगरी से बाहर, **जणवयविहारं विहरइ**—अनेक प्रदेशों मे विचरण करने लगे। **निसढे**

कुमारे समणोवासए जाए–निषध कुमार श्रमणोपासक बन कर, **अभिगयजीवाजीवे**–जीव-अजीव आदि तत्त्वों को जानकर, **जाव विहरइ**–विचरते रहते थे, **तएणं से निसढे कुमारे**–तदनन्तर श्रमणोपासक निषध कुमार, **अण्णया कयाइं**–एक समय, **जेणेव पोसहसाला**–जहां पर पौषधशाला थी, **तेणेव उवागच्छइ**–वहीं पर आता है, **उवागच्छित्ता**–और वहां आकर, **जाव दब्भसंथारोवगए विहरइ**–कुशा के आसन पर बैठकर (धर्म-ध्यान करते हुए) समय व्यतीत करने लगे, **तएणं निसढस्स कुमारस्स**–तदनन्तर निषध कुमार, **पुव्वरत्तावरत्त० धम्मजागरियं जागरमाणस्स**–रात्रि के अन्तिम प्रहर में धर्म-जागरण करके जागते हुए, **इमेयारूवे अज्झत्थिए०**–इस प्रकार का धार्मिक संकल्प (उसके मन में) उत्पन्न हुआ कि, **धन्ना णं ते गामागर जाव संनिवेसा**–वे ग्रामो, आकरो एव सन्निवेशो के निवासी धन्य हैं, **जत्थणं अरहा अरिट्ठनेमी विहरइ**–जहां पर अरिहन्त प्रभु अरिष्टनेमि विचरण कर रहे है, **धन्ना णं ते राईसर जाव सत्थवाहप्पभईओ जे णं अरिट्ठनेमिं वंदंति नमंसंति**–धन्य हैं वे राजा ईश्वर एवं सार्थवाह आदि जो भगवान् श्री अरिष्टनेमि जी को वन्दना-नमस्कार करते है, **जाव पज्जुवासंति**–और उनकी सेवा-भक्ति करते हैं, **जइ णं अरहा अरिट्ठनेमी पुव्वाणुपुव्विं० नंदणवणे विहरेज्जा**–यदि अरिहन्त प्रभु अरिष्टनेमि जी ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए द्वारका नगरी के नन्दन वन में आकर विहरण करें, **तएणं अहं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदिज्जा जाव पज्जुवासिज्जा**–तब मैं भी भगवान श्री अरिष्टनेमि जी को वन्दना-नमस्कार कर उनकी सेवा करूं, **तएणं अरहा अरिट्ठनेमी**–तदनन्तर अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमि जी, **निसढस्स कुमारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता**–उस निषध कुमार के अन्त:करण में उठे आध्यात्मिक भाव को जानकर, **अट्ठारसहिं समणसहस्सेहिं**–अठारह हजार श्रमणो के साथ, **जाव नंदणवणे उज्जाणे समोसढे**–उस नन्दन वन उद्यान में पधारे, **परिसा निग्गया**–श्रद्धालु श्रावक उनके दर्शनों एवं प्रवचनों को सुनने के लिए अपने-अपने घरो से निकल पड़े।

तएणं निसढे कुमारे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे–निषध कुमार भगवान के आगमन की सूचना प्राप्त करते ही, **हट्ठ**–अत्यन्त प्रसन्न हो गए, **चाउंग्घटेणं आसरहेणं निग्गए**–(और) वे भी चार घण्टों वाले अश्व-रथ पर चढकर भगवान के सान्निध्य में पहुंचने के लिए महल से निकल पड़े, **जहा जमाली**–ठीक वैसे ही जैसे जमाली घर से निकले थे, **जाव अम्मापियरो आपुच्छित्ता**–और वे भी माता-पिता से पूछकर (उनकी आज्ञा लेकर), **पव्वइए**–प्रव्रजित हो गए, **अणगारे जाए जाव० गुत्तबंभयारी**–और वे अणगार यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन गए।

तएणं–तदनन्तर, **से निसढे अणगारे**–वे अणगार निषध कुमार, **अरहओ अरिट्ठ-नेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए**–अर्हत् श्री अरिष्टनेमि जी के तथारूप स्थविरों के

पास, **सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ**—(रहते हुए उनसे) सामायिक आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, (और), **अहिज्जित्ता**—अध्ययन करके, **बहूइं चउत्थछट्ठ जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे**—बहुत प्रकार के चतुर्थ भक्त आदि विचित्र (अद्वितीय) तप रूप कर्मों द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए, **बहुपडिपुण्णाइं नव वासाइं**—परिपूर्ण नौ वर्षों तक, **सामण्णपरियागं पाउणइ**—श्रामण्य (साधुत्व) पर्याय का पालन करते हैं, (और अब वे), **बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ**—बयालीस भक्तों (भोजनों) का अनशन द्वारा छेदन कर देते हैं, **आलोइय-पडिक्कंते**—पाप स्थानो की आलोचना एव प्रतिक्रमण करते हैं, (और), **समाहिपत्ते**—समाधि पूर्वक, **आणुपुव्वीए कालगए**—क्रमशः मृत्यु को प्राप्त हुए।

मूलार्थ—तदनन्तर किसी समय अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमि जी एक बार द्वारका नगरी से बाहर अनेक प्रदेशों में विचरण करने लगे। उस समय निषध कुमार श्रमणोपासक बन कर जीव-अजीव आदि तत्त्वों को जान कर विचरते रहते थे। तदनन्तर श्रमणोपासक निषध कुमार एक समय जहा पर पौषधशाला थी, वहां पर आते हैं और वहां आकर कुशा के आसन पर बैठकर (धर्म-ध्यान करते हुए) समय व्यतीत करने लगे। तदनन्तर निषध कुमार के मन में रात्रि के अन्तिम प्रहर में धर्म-जागरण करके जागते हुए इस प्रकार का धार्मिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि उन ग्रामों, आकरों एवं सन्निवेशों के निवासी धन्य है—जहां पर अरिहन्त प्रभु श्री अरिष्टनेमि विचरण करते हैं, धन्य हैं वे राजा, ईश्वर एव सार्थवाह आदि जो भगवान श्री अरिष्टनेमि जी को वन्दना-नमस्कार करते है और उनकी सेवा-भक्ति करते हैं। यदि अरिहंत प्रभु अरिष्टनेमि जी ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए द्वारका नगरी के नन्दन वन में आकर विहरण करें, तब मैं भी भगवान श्री अरिष्टनेमि जी को वन्दना-नमस्कार कर उनकी सेवा करूं। तदनन्तर अरिहंत प्रभु श्री अरिष्टनेमि जी उस निषध कुमार के अन्तःकरण में उठे आध्यात्मिक भाव को जान कर अठारह हजार श्रमणों के साथ उस नन्दन वन उद्यान में पधारे, श्रद्धालु श्रावक उनके दर्शनों एवं प्रवचनों को सुनने के लिए अपने-अपने घरों से निकल पड़े।

निषध कुमार भगवान के आगमन की सूचना प्राप्त करते ही प्रसन्न हो गए, (और वे भी) चार घण्टों वाले अश्व-रथ पर चढ़ कर भगवान के सान्निध्य में पहुंचने के लिए महल से निकल पडे, ठीक वैसे ही जैसे जमाली घर से निकले थे, और वे भी माता-पिता से पूछकर (उनकी आज्ञा लेकर) प्रव्रजित हो गए और वे गुप्त ब्रह्मचारी बन गए।

तदनन्तर वे अणगार निषध कुमार अर्हत् श्री अरिष्टनेमि जी के तथारूप स्थविरों के पास (रहते हुए उनसे) सामायिक आदि ग्यारह अंग शास्त्रों का अध्ययन करते हैं (और) अध्ययन करके बहुत प्रकार के चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त आदि विचित्र (अद्वितीय) तप-रूप कर्मों द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए परिपूर्ण नौ वर्षों तक श्रामण्य-(साधुत्व) पर्याय का पालन करते हैं। (और अब वे) बयालीस भक्तों (भोजनों) का उपवास तपस्या द्वारा छेदन कर देते हैं, पाप स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण करते हैं, और वे समाधि-पूर्वक क्रमशः मृत्यु को प्राप्त हुए।

निषध अणगार के संबंध में वरदत्त अणगार की जिज्ञासा

मूल—तएणं से वरदत्ते अणगारे निसढं अणगारं कालगयं जाणित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए, से णं भंते ! निसढे अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए? कहिं उववन्ने ? वरदत्ताइ ! अरहा अरिट्ठनेमी वरदत्तं अणगारं एवं वयासी—एवं खलु वरदत्ता! ममं अंतेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभद्दे जाव विणीए ममं तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं नववासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता बाया-लीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिमसूरियगहनक्खत्ततारारूवाणं सोहम्मीसाण जाव अच्चुते तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्जविमाणावाससए वीइवयित्ता सव्वट्ठसिद्धविमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमा ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं निसढस्स वि देवस्स तेत्तीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ १२ ॥

छाया—ततः खलु स वरदत्तोऽनगारो निषधमनगारं कालगतं ज्ञात्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य यावद् एवमवादीत्—एवं खलु-देवानु-प्रियाणामन्तेवासी निषधो नाम अनगारः प्रकृतिभद्रको यावद् विनीतः। स खलु भदन्त! निषधोऽनगारः कालमासे कालं कृत्वा क्व गतः ? क्व उपपन्नः ? वरदत्त ! इति अर्हन् अरिष्टनेमि वरदत्तमनगारमेवमवादीत्—एवं खलु वरदत्त ! ममान्तेवासी निषधो नाम अनगारः प्रकृतिभद्रो यावद् विनीतो मम तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके

सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीत्य बहुप्रतिपूर्णानि नव वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा द्विचत्वारिंशद् भक्तानि अनशनेन छित्वा आलोचितप्रतिक्रान्तः समाधि-प्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा ऊर्ध्वं चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारारूपाणां सौधर्मे-शान० यावद् अच्युतं त्रीणि च अष्टादशोत्तराणि ग्रैवेयकविमानावासशतानि व्यतिवर्त्य सर्वार्थसिद्धविमाने देवत्वेनोपपन्नः। तत्र खलु देवानां त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाः स्थितिः प्रज्ञप्ता। तत्र खलु निषधस्यापि देवस्य त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ १२ ॥

पदार्थान्वयः–तएणं से वरदत्ते अनगारे–तदनन्तर वे अनगार वरदत्त, **निसढं अणगारं कालगतं जाणित्ता**–निषध अनगार को कालगत हुआ जानकर, **जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी**–जहां पर अर्हत् भगवान् अरिष्टनेमि विराजमान थे, **तेणेव उवागच्छइ**–वही पर आते हैं, **उवागच्छित्ता**–वहां आकर, **जाव एवं वयासी**–हाथ जोड़कर इस प्रकार निवेदन किया, **एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी निसढे नामं अणगारे**–भगवन् ! आपके प्रिय शिष्य निषध अनगार, **पगइभद्दए**–जो कि प्रकृति से अत्यन्त भद्र थे, **जाव विणीए**–और जो अत्यन्त विनीत थे, **से णं भंते ! निसढे अणगारे**–भगवन्! वे निषध अनगार, **कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ?**–वे कालमास में काल करके कहां गए ? **कहिं उववन्ने ?**–कहां उत्पन्न हुए है ? **वरदत्ताइ ! अरहा अरिट्ठनेमी वरदत्तं अणगारं एवं वयासी– एवं खलु वरदत्ता**–भगवान् अरिष्टनेमि जी ने "वरदत्त" यह सम्बोधन कर उससे कहा–आयुष्मन् वरदत्त, **ममं अतेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभद्दे**–प्रकृति से भद्र मेरे शिष्य निषध अणगार, **जाव विणीए**–जो कि अत्यन्त विनीत थे, **ममं तहारूवाणं थेराणं अंतिए**–मेरे तथारूप स्थविर सन्तो के पास, **सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता**–सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, **बहुपडिपुण्णाइं**–प्रतिपूर्ण, **नववासाइं**–नौ वर्षो तक, **सामण्णपरियागं पाउणित्ता**–श्रामण्य पर्याय (साधुत्व) पालन करके, **बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता**–बयालीस भक्तों (प्रातः-सायं के भोजनों) का उपवास व्रत द्वारा छेदन करके, **आलोइय-पडिक्कंते**–पाप स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण करते हुए, **समाहिपत्ते**–समाधि पूर्वक, **कालमासे कालं किच्चा**–मृत्यु का समय आने पर प्राणों को त्याग कर, **उड्ढ चंदिमसूरियगहनक्खत्ततारारूवाणं**–ऊर्ध्व लोक में चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र एवं तारा रूप ज्योतिष्क देव विमानों, **सोहम्मीसाण जाव अच्चुए**–सौधर्म, ईशान आदि अच्युत देवलोकों का, **तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्जविमाणावासए वीइ-वइत्ता**–तथा तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानों का अतिक्रमण करके, **सव्वट्ठ-सिद्ध-विमाणे**–सर्वार्थ-सिद्ध विमान मे, **देवत्ताए उववण्णे**–देवता के रूप में उत्पन्न हुआ है, **तत्थ णं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता**–वहा पर उत्पन्न देवों की तेंतीस

सागरोपम की स्थिति कही गई है, **निसढस्स वि देवस्स जाव पण्णत्ता**–अत: निषध देव की भी वहां पर तेंतीस सागरोपम की स्थिति है।

मूलार्थ–तदनन्तर वरदत्त अनगार, निषध अनगार को कालगत हुआ जानकर जहां पर अर्हत् भगवान अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहीं पर आते है, वहां आकर (उन्होंने) हाथ जोड़कर इस प्रकार निवेदन किया–भगवन् ! आपके प्रिय शिष्य निषध अनगार जो कि प्रकृति से अत्यन्त भद्र थे और जो अत्यन्त विनीत थे, भगवन ! वे निषध अनगार काल मास में काल करके कहां गए हैं ? कहां उत्पन्न हुए हैं ? भगवान् अरिष्टनेमि जी ने "वरदत्त" यह सम्बोधन कर उससे कहा–प्रकृति से भद्र मेरे प्रिय शिष्य निषध कुमार जो कि अत्यन्त विनीत थे, मेरे तथारूप स्थविर सन्तों से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके नौ वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय (साधुत्व) का पालन करके बयालीस भक्तों (प्रात:सांय के भोजनों) का उपवास व्रत द्वारा छेदन करके पाप-स्थानों की आलोचना एवं प्रतिक्रमण करते हुए, समाधि-पूर्वक मृत्यु का समय आने पर प्राणों को त्याग कर ऊर्ध्व लोक में चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र एवं तारा रूप ज्योतिष्क देव विमानों, सौधर्म-ईशान आदि अच्युत देवलोकों तथा तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानों का अतिक्रमण करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवता के रूप में उत्पन्न हुआ है। वहां पर उत्पन्न देवों की तेंतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है (अत: निषध देव की भी वहां पर तेंतीस सागरोपम की स्थिति है)।

टीका–निषध कुमार अनेक वर्षों तक श्रावक-धर्म का पालन करता है, फिर माता- पिता की आज्ञा से भगवान अरिष्टनेमि से प्रव्रज्या ग्रहण करता है। अन्तिम समय मे समाधि-मरण धारण करता है। भगवान् अरिष्टनेमि उनके सर्वार्थ-सिद्ध नामक देव-लोक में पैदा होने का कथन करते हैं, जहां उनकी आयु ३३ सागरोपम है।

निषध का भविष्य

मूल–से णं भंते ! निसढे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भव-क्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उव-वज्जिहिइ ? वरदत्ता ! इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उन्नाए नयरे विसुद्धपिइवंसे रायकुले पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ, तएणं से उम्मुक्कबालभावे विण्णयपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते तहारूवाणं थेराणं अंतिए केवल-बोहिं बुज्झिहिइ, बुज्झित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वज्जिहिइ। से णं तत्थ अणगारे भविस्सइ इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी। से णं तत्थ बहूहिं

चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणिस्सइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसिहिइ, झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदिहिइ। जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे मुंडभावे अण्हाणए जाव अदंतवणए अच्छत्तए अणोवाहणए फलहसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे पिंडवाओ लद्धावलद्धे उच्चावया य गामकंटया अहियासिज्जंति, तमट्ठं आराहिस्सइ, आराहित्ता चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिइ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं जाव निक्खेवओ ॥ १३ ॥

॥ पढमं अज्झयणं समत्तं ॥ १ ॥

छाया—स खलु भदन्त ! निषधो देवस्तस्माद् देवलोकाद् आयु-क्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं चयं च्युत्वा क्व गमिष्यति ? क्व उपपत्स्यते ? वरदत्त ! इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे उन्नाते नगरे विशुद्धपितृवंशे राजकुले पुत्रतया प्रत्यायास्यति। ततः खलु स उन्मुक्तबालभावः विज्ञातपरिणतमात्रः यौवनक्रममनु-प्राप्तस्तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके केवलबोधिं बुद्ध्वा अगाराद् अनगारतां प्रव्रजिष्यति। स खलु तत्राऽनगारो भविष्यति, ईर्यासमितो यावद् गुप्तब्रह्मचारी। स खलु तत्र बहूनि चतुर्थषष्ठाष्टम-दशमद्वादशैर्मासार्द्धमासक्षपणैः विचित्रैः तपःकर्मभिरात्मानं भावयन् बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयिष्यति, पालयित्वा मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयिष्यति, जोषयित्वा षष्ठि भक्तानि अनशनेन छेत्स्यति। यस्यार्थः क्रियते नग्नभावो, मुण्डभावो, अस्नानको, यावद् अदन्तवर्णकः, अच्छत्रकः, अनुपानत्कः, फलकशय्या, काष्ठशय्या, केशलोचो, ब्रह्मचर्यवासः, परगृहप्रवेशः, पिण्डपातः, लब्धापलब्धः, उच्चावचाश्च ग्रामकण्टका अध्यास्यन्ते, तमर्थमाराधयिष्यति, आराध्य चरमैरुच्छ्वासैः निःश्वासैः सेत्स्यति भोत्स्यति, यावत् सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति। एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेणं यावत्संप्राप्तेन् यावत् निक्षेपकः ॥ १३ ॥

॥ प्रथममध्ययनं समाप्तम् ॥ १ ॥

पदार्थान्वयः—से णं भंते !—तदनन्तर अनगार वरदत्त ने पुनः प्रश्न किया कि भगवन्! **निसढे देवे ताओ देवलोगाओ**—वह निषध देव उस देवलोक से, **आउक्खएणं भवक्खएणं**

ठिइक्खएणं अणंतरं—निषध देव आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय होने के पश्चात्, **चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ ?**—वहां से च्यवन करके कहां जाएगा ?, **कहिं उववज्जिहिइ**—कहा उत्पन्न होगा ?

वरदत्ता !—(भगवान अरिष्टनेमि जी ने कहा—) वरदत्त ! **इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उन्नाए नयरे**—वह इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेहक्षेत्र के उन्नात (उन्नाक) नामक नगर मे, **विसुद्धपिइवसे**—विशुद्ध-पितृ-वश में, **रायकुले पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ**— एक राजकुल में पुत्र के रूप में लौटेगा (उत्पन्न होगा), **तएणं से उम्मुक्कबालभावे**—तब वह बाल्यावस्था बीत जाने पर, **विण्णयपरिणयमित्ते**—समझदार होकर, **जोव्वण- गमणुप्पत्ते**—युवावस्था को प्राप्त होकर, **तहारूवाणं थेराणं अंतिए**—तथारूप स्थविरों द्वारा, **केवलबोहिं बुज्झिहिइ**—केवल-बोधि अर्थात् सम्यक् ज्ञान का ज्ञाता बनेगा, **बुज्झित्ता**—ज्ञान प्राप्त करके, **अगाराओ अणगारियं पव्वज्जिहिइ**—गृहस्थ जीवन को छोड़कर अनगार जीवन स्वीकार करेगा, **से णं तत्थ अणगारे भविस्सइ**—जब वह अनगार बन जाएगा तो, **इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी**—ईर्यासमिति आदि का पालन करते हुए पूर्ण ब्रह्मचारी बन जाएगा, **से णं तत्थ बहुइं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम दुवालसेहिं**—तब वह वहीं पर चतुर्थ, षष्ठम, दशम, द्वादश आदि उपवासों द्वारा, **मासद्धमासखमणेहिं**—मासार्ध एव मासखमण रूप, **विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं**—विचित्र (अद्वितीय) तपस्याओं द्वारा, **अप्पाणं भावेमाणे**—अपनी आत्मा को भावित करते हुए, **बहूइं वासाइं**—बहुत वर्षों तक, **सामण्ण-परियागं पाउणिस्सइ**—श्रमण-पर्याय का पालन करेगा, **पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं**—श्रमण-पर्याय का पालन करके वह एक मास की संलेखना द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करेगा, **झूसिहिइ, झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदिहिइ**—अपनी आत्म-शुद्धि करके (साठ समयो के) भोजनों का उपवास तपस्या द्वारा छेदन करेगा, **जस्सट्ठाए कीरइ**—वह जिस मोक्ष रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनगार साधु, **णग्गभावे**—नग्न भाव (नग्नता), **मुडभावे**—द्रव्य भाव से मुण्डित होगा, **अण्हाणए**— स्नान न करना, **जाव अदंतवणए**—अगुली अथवा दातुन आदि से दांतों को साफ न करना, **अच्छत्तए**—छत्र धारण न करना, **अणोवाहणए**—जूते-चप्पल आदि का त्याग करना, **फलहसेज्जा**—पाट पर सोना, **कट्ठसेज्जा**—काष्ठ-तृण आदि पर शयन करना, **केसलोए**— केशलोच, **बभचेरवासे**—ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण रूप से पालन करना, **परघरपवेसे**—दूसरों के घरों मे भिक्षार्थ प्रवेश करना, **पिंडवाओ**—यथाप्राप्त भिक्षा से निर्वाह करना, **लद्धाव-लद्धे**—लाभ-अलाभ में समता रखना, **उच्चावया य गामकंटया अहियासिज्जंति**—ऊंच-नीच अर्थात् अच्छे या बुरे शब्दो द्वारा होने वाले ग्रामकटकों अर्थात् अनजान ग्रामीणों के द्वारा दिए जाने वाले कष्टों को सहन करना, **तमट्ठं आराहिस्सइ**—इत्यादि नियमों की

आराधना करेगा, **आराहित्ता**–आराधना करके, **चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं**– अन्तिम श्वास-प्रश्वासों में अर्थात् जीवन के अन्तिम क्षणों में वह, **सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ**– सिद्ध-बुद्ध हो जाएगा, **जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिइ**–जीवन-मरण सम्बन्धी सभी दु:खों का वह अन्त कर देगा।

एवं खलु जंबू–(सुधर्मा स्वामी कहते हैं) वत्स जम्बू ! **समणेणं भगवया महावीरेणं**– श्रमण भगवान महावीर स्वामी जी ने, **जाव संपत्तेणं**–जो मुक्त हो चुके है उन्होंने, **जाव निक्खेवओ०**–वृष्णिदशा नामक इस प्रथम अध्ययन का उपर्युक्त भाव फरमाया है।

मूलार्थ–तदनन्तर अनगार वरदत्त ने पुन: प्रश्न किया भगवन् ! वह निषध देव उस देवलोक से आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति-क्षय होने के पश्चात् वहां से च्यवन करके कहां जाएगा ? कहां उत्पन्न होगा ?

(भगवान अरिष्टनेमि जी ने कहा–) वह इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र के उन्नात (उन्नाक) नामक नगर में विशुद्ध पितृ-वंश में एक राज-कुल में पुत्र के रूप मे लौटेगा (उत्पन्न होगा), तब वह बाल्यावस्था बीत जाने पर समझदार होकर युवावस्था को प्राप्त होकर तथारूप स्थविरों द्वारा केवल-बोधि अर्थात् सम्यक् ज्ञान का ज्ञाता बनेगा। ज्ञान प्राप्त करके गृहस्थ जीवन को छोड़कर वह अनगार जीवन स्वीकार करेगा, जब वह अनगार बन जाएगा तो ईर्या-समिति आदि का पालन करते हुए पूर्ण ब्रह्मचारी बन जाएगा। तब वह वहां पर चतुर्थ, षष्ठम, दशम, द्वादश आदि उपवासों द्वारा मासार्ध एवं मासखमण रूप विचित्र (अद्वितीय) तपस्याओं द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षो तक श्रमण-पर्याय का पालन करेगा, श्रमण-पर्याय का पालन करके वह एक मास की संलेखना द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करेगा, अपनी आत्म-शुद्धि करके (साठ समयो के) भोजनों का उपवास तपस्या द्वारा छेदन करेगा, जिस मोक्ष रूप प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनगार साधु–नग्न-भाव (नग्नता) द्रव्य भाव से मुण्डित होना, स्नान न करना, अंगुली अथवा दातुन आदि से दांतों को साफ न करना, छत्र धारण न करना, जूते चप्पल आदि का त्याग करना, पाट पर सोना, काष्ठ-तृण आदि पर शयन करना, केशलोच, ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण रूप से पालन करना, दूसरों के घरों में भिक्षार्थ प्रवेश करना, तथाप्राप्त भिक्षा मात्र से निर्वाह करना, लाभ-अलाभ में समता रखना, ऊंच-नीच अर्थात् अच्छे या बुरे शब्दों द्वारा होने वाले ग्राम-कंटकों अर्थात् अनजान ग्रामीणों के द्वारा दिए जाने वाले कष्टों को सहन करना इत्यादि नियमों की आराधना करेगा, आराधना करके अन्तिम

श्वास-प्रश्वासों में अर्थात् जीवन के अन्तिम क्षणों में वह सिद्ध-बुद्ध हो जाएगा, और जीवन-मरण सम्बन्धी सभी दु:खों का अन्त कर देगा।

(सुधर्मा स्वामी कहते हैं-) वत्स जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी जी ने जो मुक्त हो चुके हैं, वृष्णिदशा नामक इस प्रथम अध्ययन का उपर्युक्त भाव फरमाया है ।। १३ ।।

मूल-एवं सेसा वि एक्कारस अज्झयणा नेयव्वा संगहणीअणुसारेण, अहीणमइरित्तं एक्कारससु वि। त्तिबेमि ।। १४ ।।

।। बारस अज्झयणा समत्ता ।।

।। वण्हिदसा नामं पंचमो वग्गो समत्तो ।। ५ ।।

।। निरयावलिया सुयक्खंधो समत्तो ।।

।। समत्ताणि उवंगाणि ।। १४ ।।

छाया-एवं शेषाण्यपि एकादशाध्ययनानि ज्ञेयानि संग्रहण्यनुसारेण, अहीनाऽतिरिक्तम् एकादशस्वपि। इति ब्रवीमि ।। ३ ।।

।। द्वादशाध्ययनानि समाप्तानि ।। १४ ।।

।। वृष्णिदशानामा पञ्चमो वर्गः समाप्ताः ।। ५ ।।

।। निरयावलिकाश्रुतस्कन्धः समाप्तः ।।

।। समाप्तानि उपांगानि ।।

पदार्थान्वयः-एवं सेसा वि एक्कारस अज्झयणा नेयव्वा-इसी प्रकार शेष ग्यारह अध्ययनों को भी जानना चाहिए, **संगहणीअणुसारेण**-सग्रहणी गाथा के अनुसार, **अहीणमइरित्त**- न्यूनाधिक भाव से रहित, **एक्कारससु वि। त्तिबेमि**-शेष ग्यारह अध्ययनों का वर्णन भी जानना चाहिए, जम्बू ! जैसा मैने भगवान से सुना है वही कहा है।

।। वृष्णिदशा नामक पंचम वर्ग समाप्त ।।

मूलार्थ-इसी प्रकार शेष ग्यारह अध्ययनों का भी संग्रहणी गाथा के अनुसार न्यूनाधिक भाव से रहित वर्णन जानना चाहिए। जम्बू ! जैसा मैंने भगवान से सुना वैसा ही मैंने कहा है।

उपसंहार

मूल—निरयावलिया-उवंगे णं एगो सुयक्खंधो, पंच वग्गा, पंचसु दिवसेसु उद्दिस्संति, तत्थ चउसु वग्गेसु दस दस उद्देसगा, पंचमवग्गे बारस उद्देसगा ॥ १५ ॥

॥ निरयावलियासुत्तं समत्तं ॥

छाया—निरयावलिकोपांगे खलु एकः श्रुतस्कन्धः, पञ्च वर्गाः, पञ्चसु दिवसेसु उद्दिश्यन्ते, तत्र चतुर्षु वर्गेषु दश दश उद्देशकाः, पञ्चमवर्गे द्वादशोद्देशकाः ॥ १५ ॥

॥ इति निरयावलिकासूत्रं समाप्तम् ॥

पदार्थान्वयः—निरयावलिया-उवंगे णं—निरयावलिका नामक उपांग में, **एगो सुयक्खंधो**—एक ही श्रुतस्कन्ध है, **पंच वग्गो**—पाच वर्ग हैं, **पंचसु दिवसेसु उद्दिस्संति**—इसका पांच दिनो मे निरूपण किया जाता है, **तत्थ चउसु वग्गेसु**—यहां पहले चार वर्गो में, **दस दस उद्देसगा**—दस-दस उद्देशक हैं, **पंचमवग्गे बारस उद्देसगा**—पांचवें वर्ग में बारह उद्देशक है।

मूलार्थ—निरयावलिका नामक उपांग मे एक ही श्रुतस्कन्ध है, पांच वर्ग है, इसका पाच दिनों में निरूपण किया जाता है। यहां पहले चार वर्गों में दस-दस उद्देशक हैं, पाचवें वर्ग में बारह उद्देशक है।

टीका—प्रस्तुत सूत्र मे भगवान अरिष्टनेमि जी द्वारा महाविदेह क्षेत्र से निषध कुमार द्वारा दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष जाने का वर्णन है। शेष अध्ययनो का अर्थ निषध कुमार की तरह समझना चाहिए। संग्रहणी गाथा वर्तमान मे उपलब्ध नहीं है।

॥ निरयावलिका सूत्र समाप्त ॥

परिशिष्ट

श्री निरयावलिका-सूत्रवृत्तिः

श्रीचन्द्रसूरिविरचिता

पार्श्वनाथं नमस्कृत्य प्रायोऽन्यग्रन्थवीक्षिता।
निरयावलिश्रुतस्कंध-व्याख्या काचित्प्रकाश्यते ॥

तत्र निरयावलिकाख्योपांगग्रन्थस्यार्थतो महावीरनिर्गतवचनमभिधित्सूराचार्यः सुधर्म-स्वामी सूत्रकारः 'तेण कालेण' इत्यादिग्रन्थ तावदाह-अत्र 'णं' वाक्यालकारार्थः। तस्मिन् कालेऽवसर्पिण्याश्चतुर्थभागलक्षणे तस्मिन् समये-तद्विशेषरूपे यस्मिन् तन्नगरं राजगृहाख्यं राजा च श्रेणिकाख्यः सुधर्म (श्री वर्धमान) स्वामी च 'होत्थ' त्ति अभवत्-आसीदित्यर्थः। अवसर्पिणीत्वात्कालस्य वर्णकग्रन्थवर्णितविभूतियुक्तमिदानी नास्ति। 'रिद्धत्थिमियसमिद्धं' भवनादिभिर्वृद्धिमुपगतं, भयवर्जितत्वेन स्थिरं, समृद्धं-धनधान्यादियुक्तं, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः। ''पमुइयजणजाणवय'' प्रमुदिताः प्रमोदकारणवस्तूनां सद्भावात् जना नगरवा-स्तव्यलोकाः जानपदाश्च-जनपदभवास्तत्रायाताः सन्तो यस्मिन् तत्तु प्रमुदितजनजानपदम्। ''उत्ताणनयणपेच्छणिज्ज'' सौभाग्यातिशयात् उत्तानैः अनिमिषैः नयनैः लोचनैः प्रेक्षणीयं यत्तत्तथा ''पासाइयं'' चित्तप्रसत्तिकारि। ''दरिसणिज्जं'' यत् पश्यच्चक्षुः श्रमं न गच्छति। 'अभिरूव' मनोज्ञरूपम् 'पडिरूवं' द्रष्टार द्रष्टारं प्रतिरूपं यस्य तत्तथेति।

तस्मिन् ''उत्तरपुरिच्छिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था'' चैत्यं व्यन्तरायतनम्। 'वण्णओ' त्ति चैत्यवर्णको वाच्यः-''चिराईए पुव्वपुरिसपन्नत्ते'' चिरः-चिरकालः आदिः-निवेशो यस्य तत् चिरादिकम्, अत एव पूर्वपुरुषैः-अतीतनरैः प्रज्ञप्तम्-उपादेयतया प्रकाशितं पूर्व पुरुषप्रज्ञप्तम्। 'सच्छत्ते सज्झए सघंटे सपडागे कयवेयद्दीए'' कृतवितर्दिकं-

रचितवेदिकं 'लाउल्लोइयमहिए'' लाइयंयद्भूमेश्छगणादिना उपलेपनम्, उल्लोइयं-कुडयमालानां सेटिकादिभि: समृष्टीकरणं, ततस्ताभ्यां महितमिव महितं पूजित यत्तत्थेति।

तत्र च गुणशिलकचैत्ये अशोकवरपादप:-समस्ति। ''तस्स णं हेट्ठा खंधासन्ने, एत्थ णं महं एगे पुढविसिलापट्टए पन्नत्ते, विक्खंभायामसुप्पमाणे आईणगरुयबूरनवणी-यतुल्लफासे'' आजिनक-चर्ममयं वस्त्र,-रुतं-प्रतीतं, बूरो-वनस्पतिविशेष:, नवनीत-म्रक्षणं, तूलम्-अर्कतूलं, तद्वत् स्पर्शो यस्य स तथा कोऽर्थ: ? कोमलस्पर्शयुक्त:। पासादीए जाव पडिरूवे 'त्ति।' तेणं कालेणं' इत्यादि, जाइसंपन्ने' उत्तममातृकपक्षयुक्त इति बोद्धव्यम्, अन्यथा मातृकपक्षसंपन्नत्वं पुरुषमात्रस्यापि स्यात् इति नास्योत्कर्ष: कश्चिदुक्तो भवेत्, उत्कर्षाभिधानार्थं चास्य विशेषणललामोपादानं चिकीर्षितमिति।

एव ''कुलसंपन्ने,'' नवरं कुल पैतृक: पक्ष:। 'बलसपन्ने'' बलं-संहननविशेष-समुत्थ: प्राण:। जहा केसि' त्ति केसि (शि) वर्णको वाच्य:, स य ''विणयसपन्ने'' लाघवं द्रव्यतोऽल्पोपधित्वं भावतो गौरवत्रयत्याग: एभि: संपन्नो य: स तथा। ''ओयंसी'' ओजो-मानसोऽवष्टम्भ: तद्वान् ओजस्वी, तेज:शरीरप्रभा तद्वान् तेजस्वी, वयो-वचनं सौभाग्याद्युपेत यस्यास्तीति वर्चस्वी, ''जसंसी'' यशस्वी-ख्यातिमान्, इह विशेषण चतुष्टयेऽपि अनुस्वार: प्राकृतत्वात्। ''जियकोहमाणमायालोभे'' नवरं क्रोधादिजय: उदय-प्राप्त-क्रोधादिविफलीकरणतोऽवसेय:। 'जीवियासामरणभयविप्पमुक्के' जीवितस्यप्राण-धारणस्य आशा-वाञ्छा मरणाच्च यद्भयं ताभ्यां विप्रमुक्तो जीविताशामरणभयविप्रमुक्त: तदुभयोपेक्षक इत्यर्थ:।

'तवप्पहाणे' तपसा प्रधान:-उत्तम: शेषमुनिजनापेक्षया तपो वा प्रधानं यस्य तप-प्रधान:। एवं गुणप्रधानोऽपि, नवरं गुणा:-संयमगुणा:। 'करणचरणप्पहाणे' चारित्रप्रधान:। निग्गहप्पहाणे' निग्रहो-अनाचार-प्रवृत्तेर्निषेधनम्। 'घोरबंभचेरवासी' घोरं च तत् ब्रह्मचर्य च अल्पसत्वैर्दु:खेन यदनुचर्यते तस्मिन् घोरब्रह्मचर्यवासी। 'उच्छूढसरीरे' 'उच्छूढ' ति उज्झितमिव उज्झितं शरीरं तत्सत्कार प्रति नि:स्पृहत्वात् (येन) स तथा। 'चोद्दसपुव्वी चउनाणोवगए' चतुर्ज्ञानोपयोगत: केवलवर्जज्ञानयुक्त:। केसि (शि) गणधरो मतिश्रुता-वधिज्ञानत्रयोपेत इति दृश्यम्।

आचार्य: सुधर्मा पञ्चभिरनगारशतै: सार्धं-सह संपरिवृत: समन्तात्परिकलित: पूर्वानुपूर्व्या न पश्चानुपूर्व्या चेत्यर्थ: क्रमेणेति हृदयं चरन्-संचरन् एतदेवाह-गामाणुगामं दुइज्जमाणे' त्ति ग्रामानुग्रामश्च विवक्षितग्रामादनन्तरग्रामो ग्रामानुग्रामं तत् द्रवन्-गच्छन्-एकस्माद् ग्रामादनन्तरग्राममनुल्लङ्घयन्नित्यर्थ:, अनेनाप्रतिबद्धं विहारमाह। तत्राप्यौ-त्सुक्याभावमाह-'सुहंसुहेणं विहरमाणे' सुखंसुखेन-शरीरखेदाभावेन संयमाऽऽबाधाभावेन

च विहरन् ग्रामादिषु वा तिष्ठन्। 'जेणेव' त्ति यस्मिन्नेव देशे राजगृह नगरं यस्मिन्नेव प्रदेशे गुणशिलक चैत्यं तस्मिन्नेव प्रदेशे उपागत्य यथाप्रतिरूप–यथोचितं मुनिजनस्य अवग्रहम् आवासम् अवगृह्य - अनुज्ञापनापूर्वकं गृहीत्वा संयमेन तपसा चात्मानं भावयन् विहरति– आस्ते स्म।

'परिसा निग्गय' त्ति परिषत्–श्रेणिकराजादिको लोक: निर्गता–निसृता सुधर्मस्वामि-वन्दनार्थम्। धर्मश्रवणानन्तर ''जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगय'' त्ति यस्या: दिश: सकाशात् प्रादुर्भूता–आगतेत्यर्थ: तामेव दिश प्रतिगता इति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्यसुधर्मणोऽन्तेवासी आर्यजम्बूनामाऽनगार: काश्यपगोत्रेण 'सत्तुस्सेहे' सप्तहस्तो-च्छ्रय:, 'समचउरससंठाणसंठिए' यावत्करणादिक दृश्यं 'वज्जरिसहनारायणसघयणे कणगपुलगनिघसपम्हगोरे' कनकस्य–सुवर्णस्य 'पुलग' त्ति य: पुलको–लव: तस्य यो निकष:-कषपट्टरेखालक्षण: तथा 'पम्हेति' पद्मगर्भ: तद्वत् यो गौर: सा तथा, वृद्धव्याख्या तु-कनकस्य न लोहादेर्य. पुलक:-सारो वर्णातिशय: तत्प्रधानो यो निकषो-रेखा तस्य यत् पक्ष्म-बहुलत्व तद्वद्यो गौर: स कनकपुलकनिकषपद्मगौर:। तथा 'उग्गतवे' उग्रम् अप्रधृष्य तपोऽस्येति कृत्वा। 'तत्ततवे' तप्त–तापितं तपो येन स तप्ततपा: एव तेन तपस्तप्तं येन कर्माणि संताप्य तेन तपसा स्वात्माऽपि तपोरूप: संतापित इति। तथा दीप्त तपो यस्य स दीप्ततपा:, दीप्त तु हुताशन इव ज्वलत्तेजा: कर्मवनदाहकत्वात् 'उराले' उदार:–प्रधान: 'घोरे' घोर–निर्घृण परीषहेन्द्रियकषायाख्याना रिपूणां विनाशे कर्त्तव्ये। तथा 'घोरव्वए' घोराणि–अन्यैर्दुरनुचराणि व्रतानि यस्य स तथा घोरैस्तपोभिस्तपस्वी घोरतपस्वी। ''सखित्त-विउलतेयलेस्से'' संक्षिप्त–शरीरान्तर्निलीना विपुला–अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रितवस्तुदहन-समर्था तेजोलेश्या विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्रभावा तेजोलेश्या (यस्य स:) एव गुणविशिष्टो जम्बूस्वामी भगवान् आर्यसुधर्मण: स्थविरस्य ''अदूरसामते'' त्ति दूरं–विप्रकर्ष: सामन्त समीपम्, उभयोरभावोऽदूरसामन्तं (तस्मिन्) नातिदूरे नातिसमीपे उचिते देशे स्थित इत्यर्थ:। कथं ? उड्ढंजाणू शुद्धपृथिव्यासनवर्जनात् औपग्रहिकनिषद्याभावाच्च उत्कटुकासन: सन्नपदिश्यते ऊर्ध्वे जानुनी यस्य स ऊर्ध्वजानु:, अध:शिरो अधोमुख: नोर्ध्वं तिर्यग्वा निक्षिप्त–दृष्टि: किंतु नियतम् भागनियमितदृष्टिरिति भावना।

यावत्करणात् ''झाणकोट्ठोवगए'' ध्यानमेव कोष्ठो ध्यानकोष्ठस्तमुपगतो ध्यान-कोष्ठोपगत:, यथा हि कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तमविप्रकीर्णं भवति एवं स भगवान् धर्मध्यानकोष्ठमनुप्रविश्य इन्द्रियमनांस्यधिकृत्य सवृतात्मा भवतीति भाव:। संवरेण तपसा ध्यानेन आत्मानं भावयन्–वासयन् विहरति–तिष्ठति। 'तए णं से' इत्यादि, तत इत्यानन्तर्ये तस्माद् ध्यानादनन्तर, णं इति वाक्यालकारे, स आर्यजम्बूनामा उत्तिष्ठतीति सबन्ध:, किम्भूत: सन्नित्याह–'जायसड्ढे'- इत्यादि जाता प्रवृत्ता श्रद्धा–इच्छा यस्य प्रष्टु: स जातश्रद्ध:,

यद्वा जाता श्रद्धा इच्छा वक्ष्यमाणवस्तुतत्त्वपरिज्ञानं प्रति यस्य स जातश्रद्धः, तथा जातः संशयोऽस्येति जातसंशयः, तथा जातकुतूहलः–जातौत्सुक्य इत्यर्थः विश्वस्यापि वस्तुव्यतिकरस्यांगेषु कोऽन्योऽर्थो भगवताऽभिहितो भविष्यति कथं च तमहमवभोत्स्ये ? इति 'उट्ठाए उट्ठेइ' उत्थानमुत्था–ऊर्ध्वं वर्तनं तया उत्तिष्ठति, उत्थाय च 'अज्जसुहम्मं थेरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ' त्ति त्रिःकृत्वा–त्रीन् वारान् आदक्षिणप्रदक्षिणा–दक्षिणपार्श्वादारभ्य परिभ्रमणतः (पुनः) दक्षिणपार्श्वप्राप्तिः आदक्षिणप्रदक्षिणां तां करोति–विदधाति, कृत्वा च वन्दते–वाचा स्तौति, नमस्यति–कायेन प्रणमति, 'नच्चासन्ने नाइदूरे' उचिते देशे इत्यर्थः। 'सुस्सूसमाणे' श्रोतुमिच्छन्। 'नमंसमाणे' नमस्यन्–प्रणमन्। अभिमुखं 'पंजलिउडे' कृतप्राञ्जलिः। विनयेन उक्तलक्षणेन 'पज्जुवासमाणे' पर्युपासनां विदधान एवं इति वक्ष्यमाणप्रकारं 'वदासी' ति अवादीत्।

भगवता उपागानां पञ्च वर्गाः प्रज्ञप्ताः, वर्गोऽध्ययनसमुदायः, तद्यथेत्यादिना पञ्च वर्गान् दर्शयति "निरयावलियाओ कप्पवडिंसियाओ पुप्फियाओ पुप्फचूलियाओ वण्हि-दसाओ" त्ति प्रथमवर्गो दशाध्ययनात्मकः प्रज्ञप्तः, अध्ययनदशकमेवाह–'काले सुकाले' इत्यादिना, मातृनामभिस्तदपत्यानां पुत्राणां नामानि, यथा काल्या अयमिति कालः कुमारः, एवं सुकाल्याः महाकाल्याः कृष्णायाः सुकृष्णायाः महाकृष्णायाः वीरकृष्णायाः रामकृष्णायाः पितृसेनकृष्णायाः महासेनकृष्णायाः अपत्यमित्येवं पुत्रनाम वाच्यम्। इह काल्याअपत्यमित्याद्यर्थे प्रत्ययो नोत्पाद्यः, काल्यादिशब्देष्वपत्येऽर्थे एयण् प्राप्त्या कालसुकालादिनासिद्धेः। एवं चाद्यः १ कालः, २. तदनु सुकालः, ३. महाकालः, ४ कृष्णः, ५ सुकृष्णः, ६ महाकृष्णः, ७. वीरकृष्णः, ८. रामकृष्णः, ९. पितृसेनकृष्णः, १०. महासेनकृष्णः, दशमः। इत्येव दशाध्ययनानि निरयावलिकानामके प्रथमे वर्गे इति।

'एवं खलु जंबू तेणं काले णं' मित्यादि, 'इहेव' त्ति इहैव देशतः प्रत्यक्षासन्नेन पुनरसंख्येयात्वाज्जम्बूद्वीपानाम यत्रेति भावः। भारते वर्षे क्षेत्रे चम्पा एषा नगरी अभूत्। रिद्धेत्यनेन 'रिद्धत्थिमियसमिद्धे' इत्यादि दृश्यं, व्याख्या तु प्राग्वत्। तत्रोत्तरपूर्वदिग्भागे पूर्ण-भद्रनामकं चैत्य व्यन्तरायतनम्। कूणिए नाम राय' त्ति कूणिकनामा श्रेणिकराजपुत्रो राजा 'होत्थ' त्ति अभवत्। तद्वर्णको महयाहिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारेत्यादि पसंतडिंबडमरं रज्ज पसाहेमाणे विहरइ" इत्येतदन्तः, तत्र महाहिमवानिव महान् शेषराजापेक्षया, तथा मलयः–पर्वतविशेषो, मन्दरो–मेरुः, महेन्द्रः शक्रादिदेवराजः, तद्वत्सारः–प्रधानो यः स तथा। प्रशान्तानि डिम्बानि विघ्नः डमराणि च–राजकुमारादिकृता विड्वरा यस्मिंस्तत्तथा (राज्यं) प्रसाधयन्–पालयन् विहरति–आस्ते स्म। कूणिकदेव्याः पद्मावतीनाम्न्या वर्णको यथा 'सोमाला जाव विहरइ' यावत्करणादेवं दृश्यम् "सुकुमालपाणिपाया अहीणपंचिंदिय-सरीरा" अहीनानि–अन्यूनानि लक्षणतः स्वरूपतो वा पञ्चापीन्द्रियाणि यस्मिंस्तत् तथाविधं

शरीरं यस्या सा तथा। ''लक्खणवंजणगुणोववेया'' लक्षणानि-स्वस्तिकचक्रादीनि व्यञ्जनानि-मषितिलकादीनि तेषां यो गुण:-प्रशस्तता तेन उपपेता युक्ता या सा तथा, उप अप इता इतिशब्दत्रयस्य स्थाने शकन्ध्वादिदर्शनात् उपपेतेति स्यात्। ''माणुम्माणप्प-माणपडिपुन्नसुजायसव्वगसुंदरंगी'' तत्र मानंजलद्रोणप्रमाणता, कथं ? जलस्यातिभृते कुण्डे पुरुषे निवेशिते यज्जल नि:सरति तत्तर्हि द्रोणमानं भवति, तदा स पुरुषो मानप्राप्त उच्यते, तथा उन्मानम्-अर्धभारप्रमाणता, कथं ? तुलारोपित: पुरुषो यद्यर्धभार तुलयति सदा स तन्मानप्राप्त उच्यते, प्रमाण तु स्वाङ्गुलेनाष्टोत्तरशतोच्छ्रायिता, ततश्च मानोन्मानप्रमाणै: प्रतिपूर्णानि-अन्यूनानि सुजातानि सर्वाणि अगानि शिर:प्रभृतीनि यस्मिस्तत् तथाविध सुन्दरम् अंगं-शरीर यस्या: सा तथा। ''ससिसोमाकारकतपियदंसणा' शशिवत्सौम्याकारं कान्तं च-कमनीयम् अतएव प्रियं द्रष्टृणां दर्शनं-रूपं यस्या: सा तथा। अतएव सुरूपा स्वरूपत: सा पद्मावती देवी 'कूणिएण सद्धिं उरालाइं भोगभोगाइं भुंजेमाणी विहरइ' भोगभोगान् अतिशयवद्भोगान्।

'तत्थ ण' इत्यादि। 'सोमालपाणिपाया' इत्यादि पूर्ववद्वाच्यम्। अन्यच्च ''कोमुइरयणि-वरविमलपडिपुन्नसोमवयणा' कौमुदीरजनीकरवत्-कार्तिकीचन्द्र इव विमल प्रतिपूर्ण सौम्य च वदन यस्या: सा तथा। 'कुंडलुल्लिहियगंडलेहा' कुण्डलाभ्यामुल्लिखिता-घृष्टा गण्डलेखा-कपोल विरचितमृगमदादिरेखा यस्या: सा तथा। 'सिंगारागारचारुवेसा' शृंगारस्य-रसविशेषस्य अगारमिव अगारं तथा चारु: वेषो-नेपथ्यं यस्या: सा तथा तत: कर्मधारय:। ''काली नामं देवी'' श्रेणिकस्यभार्या कूणिकस्य राज्ञश्चुल्लजननी-लघुमाताऽभवत्। सा च काली ''सेणियस्स रन्नो इट्ठा'' वल्लभा कान्ता काम्यत्वात् 'पिया' सदा प्रेमविषयत्वात् 'मणुन्ना' सुन्दरत्वात् 'नामधिज्जा' प्रशस्तनामधेयवतीत्यर्थ: नाम वा धार्य-हृदि धरणीयं यस्या: सा तथा, 'वेसासिया' विश्वसनीयत्वात्, 'सम्मया' तत्कृतकार्यस्य संमतत्वात्, 'बहुमता' बहुशो बहुभ्यो वाऽन्येभ्य: संकाशात् बहुमता बहुमानपात्रं वा, 'अणुमया' प्रियकरणस्यापि पश्चान्मताऽनुमता। 'भडकरडगसमाणा' आभरणकरण्डकसमाना उपादेय-त्वात् सुरक्षितत्वाच्च। 'तेल्लकेला इव सुसंगोविया' तैलकेला सौराष्ट्रप्रसिद्धो मृण्मयस्तैलस्य भाजनविशेष:, स च भगभयात् लोचनभयाच्च सुष्ठु संगोप्यते, एवं साऽपि तथोच्यते। 'चेलापेडा इव सुसंपरिग्गहिया' वस्त्रमञ्जूषेवेत्यर्थ:।

'सा काली देवी सेणिएणं रन्ना सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरइ'। कालनामा च तत्पुत्र: 'सोमालपाणिपाए' इत्यादि प्रागुक्तवर्णकोपेतो वाच्य:, यावत् 'पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे' इति पर्यन्त:। सेणियस्स रज्जे दुवे रयणा अट्ठारसवंको हारो १, सेयणगे गंधहत्थी य २। तत्थ किर सेणियस्स रन्नो जावइयं रज्जस्स मुल्लं तावइयं देवदिन्नहारस्स सेयणगस्स य गधहत्थिस्स। तत्थ हारस्स उप्पत्ती पत्थावे कहिज्जिस्सइ। कूणियस्स य

एत्थेव उप्पत्ती वित्थरेण भणिस्सइ, तत्कार्येण कालादीना मरणसंभवात् आरम्भसङ्ग्रामतो नरकयोग्यकर्मोपचयविधानात्। नवरं कूणिकस्तदा कालादिदशकुमारान्वितश्चम्पायां राज्यं चकार। सर्वेऽपि च ते दोगुन्दुगदेवा इव कामभोगपरायणास्त्रयस्त्रिंशाख्या देवा: फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वरतरुणिसप्पणिहिएहिं बत्तीसइपत्तनिबद्धेहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणा भोगभोगाइं भुंजमाणा विहंरति। हल्लविहल्लनामाणो कूणियस्स चिल्लणादेवीअंगजाया दो भायरा अन्नेऽवि अत्थि। अहुणा हारस्स उप्पत्ती भन्नइ–इत्थ सक्को सेणियस्स भगवतं पइ निच्चलभत्तिस्स पसंसं करेइ। तओ सेडुयस्स जीवदेवो तब्भत्तिरंजिओ सेणियस्स तुट्ठो संतो अट्ठारसवंकं हारं देइ, दोन्नि य वट्टगोलके देइ। सेणिएणं सो हारो चेल्लणाए दिन्नो पिय त्ति काउं, वट्टदुगं सुनदाए अभयमंतिजणणीए। ताए रुट्ठाए किं अहं चेडरूवं ति काऊण अच्छोडिया भग्गा तत्थ एगम्मि कुंडलजुयलं एगम्मि वत्थजुयल तुट्ठाए गहियाणि। अन्नया अभओ सामिं पुच्छइ–'को अपच्छिमो रायरिसि, त्ति। सामिणा उद्दायणो वागरिओ, अओ परं बद्धमउडा न पव्वयंति। ताहे अभएण रज्जं दिज्जमाणं न इच्छियं ति पच्छा सेणिओ चिंतेइ 'कोणियस्स दिज्जिहि' त्ति हल्लस्स हत्थी दिन्नो सेयणगो विहल्लस्स देवदिन्नो हारो। अभएण वि पव्वयंतेण सुनंदाए खोमजुयलं कुंडलजुयलं च हल्लविहल्लाणं दिन्नाणि। महया विहवेण अभओ नियजणणीसमेओ पव्वइओ। सेणियस्स चेलणादेवी अंगसमुब्भूया तिन्नि पुत्ता कूणिओ हल्लविहल्ला य। कूणियस्स उप्पत्ती एत्थेव भणिस्सइ। कालीमहाकालीपमुहदेवीण अन्नासिं तणया सेणियस्स बहवे पुत्ता कालपमुहा संति। अभयम्मि गहियव्वए अन्नया कोणिओ कालाइहिं दसहिं कुमारेहिं समं मंतेइ–'सेणियं सेच्छाविग्घकारयं बंधित्ता एक्कारसभाए रज्जं करेमो' त्ति। तेहिं पडिस्सुयं। सेणिओ बद्धो। पुव्वन्हे अवरन्हे य कससय दवावेइ सेणियस्स कूणिओ पुव्वभवे वेरियत्तणेण। चेल्लणाए कयाइं भोयणं न देइ भत्त वारियं पाणियं न देइ। ताहे चेल्लणा कह वि कुम्मासे बालेहिं बधित्ता सयवारं सुरं पवेसेइ। सा किर धोव्वइ सयवारे सुरा पाणियं सव्वं होइ। तीए पहावेण सो वेयणं न वेएइ। अन्नया तस्स पउमावईदेवीए पुत्तो एव पिओ अत्थि। मायाए सो भणिओ–''दुरात्मन् ! तव अंगुली किमिए वमंती पिया मुहे काऊण अत्थियाओ, इयरहा तुमं रोयंतो चेव चिट्ठेसु''। ताहे चित्तं मणागुवसंतं जायं। मए पिया एवं वसणं पाविओ। तस्स अधिई जाया। भुंजंतओ चेव उट्ठाय परसुहत्थगओ, अन्ने भणंति लोहदंडं गहाय, 'नियलाणि भंजामि' त्ति पहाविओ। रक्खवालगो नेहेण भणइ–एसो सो पावो लोहदडं परसुं वा गहाय एइ' त्ति। सेणिएणं चिंतियं–'न नज्जइ केण कुमारेण मारेहिइ ?' तओ तालपुडगं विसं खाइयं। जाव एइ ताव मओ। सुट्ठुयरं अधिई जाया। ताहे मयकिच्चं काऊण घरमागओ रज्जधुरामुक्कतत्तीओ तं चेव चिंततो अच्छइ। एवं कालेण विसोगो जाओ। पुणरवि सयणआसणाईए पिइ संतिए दट्ठूण अधिई होइ। तओ रायगिहाओ निग्गंतुं चंपं रायहाणि करेइ। एवं चंपाए कूणिओ

राया रज्ज करेइ नियगभायपमुहसयणसजोगओ। इह निरयावलिया- सुयक्खंधे कूणिक-वक्तव्यता आदावुत्क्षिप्ता। तत्साहाय्यकरणप्रवृत्ताना कालादीनां कुमाराणां दशानामपि सङ्ग्रामे रथमुशलाख्ये प्रभूतजनक्षयकरणेन नरकयोग्यकर्मोपार्जनसपादनान्नरकगामितया 'निरयाउ' त्ति प्रथमाध्ययनस्य कालादिकुमारवक्तव्यताप्रतिबद्धस्य एतन्नाम।

अथ रथमुशलाख्यसङ्ग्रामस्योत्पत्तौ किं निबन्धनम्। अत्रोच्यते—एवं किलायं सङ्ग्रामः संजातः—चम्पायां कूणिको राजा राज्यं चकार। तस्य चानुजौ हलविहल्लाभिधानौ भ्रातरौ पितृदत्तसेचनकाभिधाने गन्धहस्तिनि समारूढौ दिव्यकुण्डलदिव्यवसनदिव्यहारविभूषितौ विलसन्तौ दृष्ट्वा पद्मावत्यभिधाना कूणिकराजस्य भार्या कदाचिद्दन्तिनोऽपहाराय तं कूणिकराजं प्रेरितवती—"कर्णविषलग्नकृतोऽतोऽयमेव कुमारो राजा तत्त्वतः, न त्वं, यस्येदृशा विलासाः"। प्रज्ञाप्यमानाऽपि सा न कथञ्चिदस्यार्थस्योपरमति। तत्प्रेरितकूणिकराजेन तौ याचितौ। तौ च तद्भयाद्वैशाल्या नगर्यां स्वकीयमातामहस्य चेटकाभिधानस्य राज्ञोऽन्तिके सहस्तिकौ सान्तः पुरपरिवारितौ गतवन्तौ।

कूणिकेन च दूतप्रेषणेन तौ याचितौ। न तेन प्रेषितौ, कूणिकस्य तयोश्च तुल्यमातृकत्वात्। ततः कूणिकेन भणितं—'यदि न प्रेषयसि तदा युद्धसज्जो भव'। तेनापि भणितम्—'एष सज्जोऽस्मि'। ततः कूणिकेन सह कालादयो दश स्वीया भिन्नमातृका भ्रातरो राजानश्चेटकेन सह सङ्ग्रामाय याताः। तत्रैकैकस्य त्रीणि-त्रीणि हस्तिनां सहस्राणि, एवं रथानामश्वानां च, मनुष्याणां च प्रत्येकं तिस्रस्तिस्रः कोट्यः। कूणिकस्याप्येवमेव। तत्र एकादशभागीकृत-राज्यस्य कूणिकस्य कालादिभिः सह निजेन एकादशाशेन सङ्ग्रामे काल उपगतः। एतमर्थं वक्तुमाह—'तए ण से काले' इत्यादिना। एनं च व्यतिकरं ज्ञात्वा चैटकेनाप्यष्टादश गणराजानां मेलिताः, तेषा चेटकस्य च प्रत्येकमेवमेव हस्त्यादिबलपरिमाण, ततो युद्ध सप्रलग्नम्। चेटकराजस्य तु प्रतिपन्नव्रतत्वेन दिनमध्ये एकमेव शर मुञ्चति अमोघबाणश्च सः। तत्र च कूणिकसैन्ये गरुडव्यूहः चेटकसैन्ये (च) शकटव्यूहो विरचितः।

१. ततश्च कूणिकस्य कालो दण्डनायको निजबलान्वितो युध्यमानस्तावदन्तो यावच्चेटकः, ततस्तेन एकशरनिर्घातेनासौ निपातितः। २. भग्न च कूणिकबलं। गते च द्वे अपि बले निजानिजमावासस्थानम्। द्वितीयेऽह्नि सुकालो नाम दण्डनायको निजबलान्वितो युद्धमान-स्तावद् गतो यावच्चेटकः एवं सोऽप्येकशरेण निपातितः। ३. एवं तृतीयेऽह्नि महाकालः, सोऽप्येवम्। ४. चतुर्थेऽह्नि कृष्णकुमारस्तथैव, ५ पञ्चमे सुकृष्णः, ६. षष्ठे महाकृष्णः, ७. सप्तमे वीरकृष्णः, ८ अष्टमे रामकृष्णः, ९. नवमे पितृसेनकृष्णः, १०. दशमे पितृमहा-सेनकृष्णः चेटकेनैकैकशरेण निपातितः। एवं दशसु दिवसेषु चेटकेन विनाशिता दशापि कालादयः। एकादशे तु दिवसे चेटकजयार्थं देवताराधनाय कूणिकोऽष्टमभक्तं प्रजग्राह। ततः शक्रचमरावागतौ।

ततः शक्रो बभाषे–"चेटकः श्रावक इत्यह न तं प्रति प्रहरामि, नवरं, भवन्तं सरक्षामि'। ततोऽसौ तद्रक्षार्थं वज्रपतिरूपकमभेद्यकवचं कृतवान्। चमरस्तु द्वौ सङ्ग्रामौ विकुर्वितवान् महाशिलाकण्टकं रथमुशल चेति। तत्र महाशिलेव कण्टको जीवितमेदकत्वान्महाशिला-कण्टकः ततश्च यत्र तृणशूकादिनाऽप्यभिहतस्याश्वहस्त्यादेर्महाशिलाकण्टकेनेवास्याहतस्य वेदना जायते स सङ्ग्रामो महाशिलाकण्टक एवोच्यते। 'रहमुसले' त्ति यत्र रथो मुशलेन युक्तः परिधावन् महाजनक्षयं कृतवान् अतो रथमुशलः।

'ओयाए' त्ति उपयातः–संप्राप्तः। 'किं जइस्सइ' त्ति जयश्लाघां प्राप्स्यति। पराजेष्यते–अभिभविष्यति परसैन्यं परानभिभविष्यति उत नेति कालनामानं पुत्र जीवन्तं द्रक्ष्याम्यह न वेत्येवम् उपहतो मनःसकल्पो युक्तायुक्तविवेचनं यस्याः सा उपहतमनःसंकल्पा। यावत्करणात् "करयलपल्हत्थियमुही अट्टज्झाणोवगया ओमंथियवयणनयणकमला" ओमथिय–अधोमुखीकृतं वदनं च नयनकमले च यथा सा तथा। 'दीणविवन्नवयणा' दीनस्येव विवर्णं वदन यस्याः सा तथा। 'झियाइ' त्ति आर्तध्यान ध्यायति, 'मणोमाणसिएणं दुक्खेण अभिभूया' मनसि जातं मानसिकं मनस्येव यद्वर्तते मानसिकं दुःख वचनेनाप्रकाशितत्वात् तन्मनो–मानसिकं तेन अबहिर्वर्तिनाऽभिभूता। 'ते ण काले ण' इत्यादि। 'अयमेयारूवे' त्ति अयमेतद्रूपो वक्ष्यमाणरूपः 'अज्झत्थिए' त्ति आध्यात्मिकः–आत्मविषयः चिन्तितः–स्मरणरूपः प्रार्थितः लब्धुमाशसितः, मनोगतः–मनस्येव वर्तते यो न बहिः प्रकाशितः संकल्पो–विकल्पः समुत्पन्नाः–प्रादुर्भूतः। तमेवाह–'एवंमि' त्यादि। यावत्करणात्।

"पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे इहमागए इह सपत्ते इह समोसढे, इहेव चपाए नयरीए पुन्नभद्दे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ"।

'तं महाफल खलु भो देवाणुप्पिया ? तहारूवाणं अरहताणं, भगवताणं, नामगोयस्स वि सवणयाए, किमग पुण अभिगमणवदणनमसणपडिपुच्छणपज्जुवासणाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स वयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए 'गच्छामि णं' अह समण भगवं महावीर वदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मंगल देवय चेइय पज्जुवासामि, एवं नो पेच्चभवे हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ 'इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एव संपेहेइ' संप्रेक्षते–पर्यालोचयति। सुगमम्। नवरं 'इहमागए' त्ति चम्पाया 'इह संपत्ते' त्ति पूर्णभद्रे चैत्ये, 'इह समोसढे' त्ति साधूचितावग्रहे, एतदेवाह–इहेव चंपाए इत्यादि। 'अहापडिरूव' त्ति यथाप्रतिरूपम् उचितमित्यर्थः। 'तं' इति तस्मात्, 'महाफलं' ति महत्फलमायत्यां भवतीति गम्यं। 'तहारूवाणं' ति तत्प्रकारस्वभावानां–महाफलजननस्वभावानामित्यर्थः। 'नामगोयस्स' त्ति नाम्ना–यादृच्छिकस्याभिधानस्य, गोत्रस्य-गुणनिष्पन्नस्य 'सवणयाए'

त्ति श्रवणेन, 'किमग पुण' त्ति किंपुनरिति पूर्वोक्तार्थस्य विशेषद्योतनार्थम् अंगेत्यामन्त्रणे यद्वा परिपूर्ण एवायं शब्दो विशेषणार्थ अभिगमनं, वन्दनं-स्तुतिः, नमनं-प्रणमनं, प्रतिपृच्छनं-शरीरादिवार्ताप्रश्नं, पर्युपासनं-सेवा, तद्भावस्तत्ता तया, एकस्यापि आर्यस्य आर्यप्रणेतृ-कत्वात्, धार्मिकस्य धर्मप्रतिबद्धत्वात्, वन्दामि-वन्दे, स्तौमि, नमस्यामि-प्रणमामि, सत्कारयामि-आदरं करोमि वस्त्राद्यर्चनं वा, सन्मानयामि उचितप्रतिपत्येति-कल्याणं कल्याणहेतुं, मंगलं दुरितोपशमनहेतुं, देव चैत्यमिव चैत्यं, पर्युपासयामि-सेवे, एतत् नोऽस्माक, प्रेत्यभवे-जन्मान्तरे, हिताय पथ्यान्नवत्, शर्मणे, क्षमाय-संगतत्वाय, निःश्रेयसाय मोक्षाय, आनुगामिकत्वाय-भवपरम्परासु सानुबन्धसुखाय, भविष्यति, इति कृत्वा-इति हेतोः, संप्रेक्षते पर्यालोचयति सप्रेक्ष्य चैवमवादीत्-

शीघ्रमेव 'भो देवाणुप्पिया' धर्माय नियुक्त धार्मिकं, यानप्रवरं, चाउग्घंट आसरहं' ति चतस्रो घण्टा· पृष्टतोऽग्रतः पार्श्वतश्च लम्बमाना यस्य स चतुर्घण्टः, अश्वयुक्तो रथोऽश्वरथस्तमश्वरथं, युक्तमेवाश्वादिभिः, उपस्थापयत-प्रगुणीकुरुत, प्रगुणीकृत्य मम समर्पयत।

'ण्हाय' त्ति कृतमज्जना, स्नानान्तर 'कयबलिकम्म' त्ति स्वगृहे देवतानां कृतबलिकर्मा, 'कयकोउयमंगलपायच्छित्त' त्ति कृतानि कौतुकमंगलान्येव प्रायश्चित्ता नीव दुःस्वप्नादिव्यपो-हायावश्यकर्त्तव्यत्वात् प्रायश्चित्तानि यया सा तथा। तत्र कौतुकानि-मषीपुण्ड्रादीनि मगलादीनि सिद्धार्थदध्यक्षतदूर्वाङ्कुरादीनि, 'सुद्धप्पावेस्साइ वत्थाइ परिहिया' 'अप्पमहग्घाभरणा-लंकियसरीरा' (इति) सुगमम्।

बहूहिं खुज्जाहिं जावे' त्यादि, तत्र कुब्जिकाभिः-वक्रजङ्घाभिः, चिलातीभिः-अनार्य-देशोत्पन्नाभिः वामनाभि-ह्रस्वशरीराभिः, वटभाभिः-मडहकोष्ठाभिः, बर्बरीभिः-बर्बरदेश-सभवाभि, बकुशिकाभिः यौनकाभिः पण्हकाभिः इसिनिकाभिः वासिनिकाभिः लासिकाभिः लकुसिकाभिः द्रविडीभिः सिंहलीभिः आरबीभिः पक्वणीभिः बहुलीभिः मुसण्डीभिः शबरीभिः पारसीभिः नानादेशाभिः-बहुविधानार्यदेशोत्पन्नाभिरित्यर्थः।

विदेशस्तदीयदेशापेक्षया चम्पानगरी विदेशः तस्य परिमण्डिकाभिः, 'इंगियचिंतियपत्थि-यवियाणियाहिं' तत्र इंगितेन-नयनादिचेष्टाविशेषेण चिन्तितं च परेण हृदि स्थापितं। प्रार्थितं च विजानन्ति यास्तास्तथा ताभिः स्वस्वदेशे यन्नेपथ्यं परिधानादिरचना तद्वद्गृहीतो वेषो यकाभिस्तास्तथा ताभिः। निपुणनामधेयकुशला यास्तास्तथा ताभिः अत एव विनीताभिः युक्तेति गम्यते, तया चेटिकाचक्रवालेन अर्थात् स्वदेशसंभवेन वृन्देन परिक्षिप्ता या सा तथा। 'उवट्ठाणसाला' उपवेशनमण्डपः। 'दुरूहइ' आरोहति। यत्रैव श्रमणो भगवान् तत्रैवोपागता -सप्राप्ता, तदनु महावीरं त्रिःकृत्वो वन्दते-स्तुत्या, नमस्यति प्रणमति, स्थिता

चैव ऊर्ध्वस्थानेन, कृताञ्जलिपुटा अभिसंमुखा सती पर्युपासते। धर्मकथाश्रवणानन्तर 'त्रिः-कृत्वो' वन्दयित्वा (वन्दित्वा) एवमवादीत्–'एवं खलु भंते' इत्यादि सुगमम्।

अत्र कालीदेव्याः पुत्रः कालनामा कुमारो हस्तितुरगरथपदातिरूपनिजसैन्यपरिवृतः कूणिकराजनियुक्तश्चेटकराजेन सह रथमुशलं सङ्ग्रामयन् सुभटैश्चेटकसत्कैर्यदस्य कृत तदाह–'हयमहियपवरवीरघाइयनिवडियचिंधज्झयपडागे' (हत) सैन्यस्य हतत्वात्, मथितो मानस्य मन्थनात्, प्रवरवीराः–सुभटा घातिताः–विनाशिता यस्य, तथा निपातिताश्चिह्न-ध्वजाः–गरुडादिचिह्नयुक्ताः केतवः पताकाश्च यस्य स तथा, ततः पदचतुष्टयस्य कर्म-धारयः। अत एव 'निरालोयाओ दिसाओ करेमाणे' त्ति निर्गतालोका दिशः कुर्वन् चेटकराजः (स्य) 'सपक्ख सपडिदिसिं, ति सपक्षं–समानपार्श्वं समानवामेतरपार्श्वतया, सप्रतिदिक्–समानप्रतिदिक्तयाऽत्यर्थमभिमुख इत्यर्थः अभिमुखागमने हि परस्परस्य समाविव दक्षिणवामपार्श्वौ भवतः, एवं विदिशावपीति। इत्येवं स कालः चेटकराजस्य रथेन प्रतिरथं 'हव्वं' शीघ्रम् आसन्न–संमुखीनम् आगच्छन्तं दृष्ट्वा चेटकराजः त प्रति 'आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चडिक्किए मिसिमिसेमाणे' त्ति, तत्र आशु–शीघ्रं रुष्टः–क्रोधेन विमोहितो यः स आशुरुष्टः, आसुर वा आसुरसत्क कोपेन दारुणत्वात् उक्त–भणितं यस्य स आसुरोक्तः रुष्टो–रोषवान् 'कुविए' त्ति मनसा कोपवान् चण्डिक्किये–दारुणीभूतः 'मिसिमिसेमाणे' त्ति क्रोधज्वालया ज्वलन् तिवलिय भिउडिं निडाले साहट्टु त्ति त्रिवलिकां भृकुटिं–लोचनविकारविशेष ललाटे सहृत्य–विधाय धनुः परामृशति, बाण परामृशति, विशाखस्थानेन तिष्ठति, 'आययकण्णायतं' ति आकर्णान्त बाणमाकृष्य 'एगाहच्च' ति एकयैवाहत्या आहननं प्रहारो यत्र जीवतव्यपरोपणे तदेकाहत्यं यथा भवति एव, कथमित्याह–'कूडाहच्चं' कूटस्येव–पाषाणमयमहामारणयन्त्रस्येव आहत्या आहनन यत्र तत्कूटाहत्यं। 'भगवतोक्तेयं व्याख्या'।

'अप्फुण्णा समाणी' व्याप्ता सती। शेष सुगमं यावत् 'सोल्लेहि य' त्ति पक्वैः 'तलिएहि' त्ति स्नेहेन पक्वैः, 'भज्जिएहि' भष्ट्रैः 'पसन्न च द्राक्षादिद्रव्यजन्यो मनःप्रसत्तिहेतुः 'आसाएमाणीओ' त्ति ईषत्स्वादयन्त्यो बहु च त्यजन्त्य इक्षुखण्डादेरिव, 'परिभाएमाणीओ' सर्वमुपभुञ्जानाः (परस्पर ददन्त्यः) 'सुक्क' त्ति शुष्केव शुष्काभा रुधिरक्षयात् 'भुक्ख' त्ति भोजनाकरणतो बुभुक्षितेव, 'निम्मंसा' मांसोपचयाभावतः, 'ओलुग्ग' त्ति अवरुग्णा–भग्नमनोवृत्तिः, 'ओलुग्गसरीरा' भग्नदेहा, निस्तेजा–गतकान्तिः दीना विमनोवदना, पाण्डुइयमुही–पाण्डुरीभूतवदना, 'ओमंथिय' त्ति अधोमुखीकृतं, उपहतमनःसंकल्पा–गतयुक्तायुक्तविवेचना 'करयल० कट्टु' त्ति 'करयलपरिग्गहिय दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अजलिं कट्टु सेणियं रायं एव वयासी, स्पष्टम्। एनमर्थं नाद्रियते–अत्रार्थे आदरं न कुरुते, न परिजानीते–नाभ्युपगच्छति, कृतमौना तिष्ठति।

'धन्नाओ णं कयलक्खणाओ ण सुलद्धे णं तासिं जम्मजीवियफले' 'अविणिज्ज-माणंसि' त्ति अपूर्यमाणे 'जत्तिहामि' त्ति यतिष्ये, 'इट्ठाहिं' इट्ठाहीत्यादीनां व्याख्या प्रागिहैवोक्ता।

'उवट्ठाणसाला' आस्थानमण्डपः। 'ठिइं वा स्थानं 'अविंदमाणे' अलभमानः। अंत-गमनं पारगमनं तत्संपादने।

'सूणाओ' घातस्थानात्। 'वत्थिपुडगं' उदरान्तर्वर्ती प्रदेशः। 'अप्पकप्पियं' आत्म-समीपस्थम् सपक्ष–समानपार्श्वं समवामेतरपार्श्वतया। सप्रतिदिक्–समानप्रतिदिक्तया अत्यर्थमभिमुख इत्यर्थः, अभिमुखावस्थानेन हि परस्परस्य समावेव दक्षिणवामपार्श्वे भवतः एवं विदिशावपि।

'अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए, सकप्पे समुप्पज्जित्था'। सातनं पातनं गालनं विध्वसनमिति कर्तुं सप्रधारयति, उदारान्तर्वर्तिनीः औषधैः सातनम्–उदराद्ब-हिःकरणं, पातन–गालन रुधिरादितया कृत्वा, विध्वंसन सर्वगर्भपरिशाटनेन, न च शाटनाद्यवस्था अस्य भवन्ति। 'संता तंता परितंता' इत्येकार्थाः खेदवाचका एते ध्वनयः। 'अट्टवसट्टदुहट्टा।' (आर्त्तवश-आर्त्तध्यानवशतामृता–गता दुःखार्त्ता च या सा)।

उच्चाभिराक्रोशनाभिः आक्रोशो निर्भर्त्सना उद्धर्षणा (एते समानार्थाः)। 'लज्जिया विलिया विड्डा' (एतेऽपि समानार्थाः)।

स्थितिपतितां–कुलक्रमायातं पुत्रजन्मानुष्ठानम्।

'अंतराणि य' अवसरान्, छिद्राणि–अल्पपरिवारादीनि, विरहो–विजनत्वम्। तुष्टिः उत्सवः हर्षः आनन्दः प्रमोदार्थाः एते शब्दाः।

'मम घातेउकामेण' घातयितुकामः ण वाक्यालकारे मां श्रेणिको राजा घातनं मारण बन्धनं निच्छुभण' एते पराभवसूचका ध्वनयः।

निष्प्राणः–निर्गतप्राणः निश्चेष्टः जीवितविप्रजढः प्राणापहारसूचकाः एते। अवतीर्णो–भूमौ पतितः। 'अप्फुण्णे' व्याप्तः सन्। 'रोयमाणे त्ति रुदन् 'कंदमाणे' वैक्लव कुर्वन् 'सोयमाणे' शोकं कुर्वन् 'विलवमाणे' विलापान् कुर्वन् 'नीहरणं' ति परोक्षस्य यन्निर्गमा-दिकार्यम्। 'मणोमाणसिएणं' ति मनसि जात मानसिक मनस्येव यद्वर्तते वचनेनाप्रकाशितत्वात् तत् मनोमानसिकं तेन अबहिर्वर्तिना अभिभूतः। 'अतेउरपरियालसपरिवुडे'। 'चंपं नगरिं मज्झंमज्झेणं' इत्यादि वाच्यम् 'अक्खिविउकामेण' ति स्वीकर्तुकामेन, एतदेव स्पष्टयति–'गिण्हिउकामेण' इत्यादिना। 'तं जाव ताव न उद्दालेइ ताव मम कूणिए राया' इत्यादि सुगमम्। 'अज्जगं' ति मातामहम्। 'सपेहेइ' पर्यालोचयति। 'अंतराणि' छिद्राणि प्रतिजाग्रत्–

परिभावयन् विचरति आस्ते। 'अंतरं' प्रविरलमनुष्यादिकम्। 'असंविदितेण' ति असंप्रति (असं विदितेन)। हव्वं ति शीघ्रम्।

'जहा चित्तो' त्ति राजप्रश्नीये द्वितीयोपांगे यथा श्वेताम्बीनगर्याश्चित्रो नाम दूतः प्रदेशिराज्ञाः प्रेषितः श्रावस्त्यां नगर्यां जितशत्रुसमीपे स्वगृहान्निर्गत्य गतः तथाऽयमपि। कोणिकनामा राजा यथा एवं विहल्लकुमारोऽपि। 'चाग्घट' ति चतस्रो घण्टाश्चतसृष्वपि दिक्षु अवलम्बिता यस्य स चतुर्घण्टो रथः।

'सुभेहिं वसहीहिं पायरासेहिं' ति प्रातराशः आदित्योदयादावाद्यप्रहरद्वयसमयवर्ती भोजनकालः निवासश्च-निवसनभूभागः तौ द्वावपि सुखहेतुकौ न पीडाकारिणौ ताभ्यां सप्राप्तौ नगर्या दृष्टश्चेटककोणिकराजः 'जयविजएण वद्धावित्ता' एवं दूतो यदवादीत्त-द्दर्शयति–'एवं खलु सामी' त्यादिना। 'अलोवेमाण' त्ति एवं परंपरागतां प्रीतिमलोपयन्तः। जहा पढमं' ति रज्जस्स य जणवयस्स य अद्ध कोणियराया जइ वेहल्लस्स देइ तोऽह सेयणग अट्ठारसवंकं च हार कूणियस्स पच्चप्पिणामि च कुमारं पेसेमि, न अन्नहा।

तदनु द्वितीयदूतस्य समीपे एनमर्थं श्रुत्वा कोणिकराज 'आसुरुत्ते' इत्येतावद्रूप- (ताकोप) वशसपन्नः।

यदसौ तृतीयदूतप्रेषणे न कारयति मानयति च तदाह–'एव वयासी' त्यादिना हस्तिहारसमर्पणकुमारप्रेषणस्वरूपम् यदि न करोषि तदा युद्धसज्जो भवेति दूतप्राह इमेणं कारणेणं ति तुल्यताऽत्रकसंबन्धेन। दूतद्वयं कोणिकराजप्रेषितं निषेधितं, तृतीयदूतस्तु असत्कारितोऽपद्वारेण निष्कासितः। ततो यात्रा सग्रामयात्रां गृहीतुमुद्यता वयमिति, 'तए ण से कूणिए राया' कालादीन् प्रति भणितवान्।

तेऽपि च दशापि तद्वयोविनयेन प्रतिशृण्वन्ति। 'एव वयासि' त्ति एवमवादीत्तान्प्रति–गच्छत यूयं स्वराज्येषु निजनिजसामग्र्या सनह्य समागन्तव्य मम समीपे।

तदनु कूणिकोऽभिषेकार्ह हस्तिरत्न निजमनुष्यरूपस्थापयति–प्रगुणीकारयति, प्रतिकल्पयते त्ति पाठे सन्नाहवन्त कुरुतेत्याज्ञां प्रयच्छति। 'तओ दूय' त्ति त्रयो दूताः कोणिकेन प्रेषिताः।

'मंगतिएहि' त्ति हस्तपाशितैः, फलकादिभिः, 'तोणेहिं' ति इषुधिर्भिः, 'सजीवेहिं' ति सप्रत्यञ्चः धनुर्भिः नृत्यद्भिः कबन्धैः वारैश्च हस्तच्युतैः भीम रौद्रम्। शेषं सर्वं सुगमम् ॥

॥ इति निरयावलिकाख्योपाङ्गव्याख्या ॥

कप्पवडिंसिया ॥ २ ॥

श्रेणिकनप्तृणा कालमहाकालाद्यड्गजानां क्रमेण व्रतपर्यायाभिधायिका। दोण्हं च पञ्च इत्यादिगाथा, अस्या अर्थः—दससु मध्ये द्वयोराद्ययोः कालसुकालसत्कयोः, पुत्रयोर्व्रतपर्यायः पञ्च वर्षाणि, त्रयाणा चत्वारि, त्रयाणा त्रीणि द्वयोर्द्वे द्वे वर्षे व्रतपर्यायः।

तत्राद्यस्य यः पुत्रः पद्मनामा स कामान् परित्यज्य भगवतो महावीरस्य समीपे गृहीतव्रत एकादशागधारी भूत्वाऽत्युग्र बहुचतुर्थषष्ठाष्टमादिकं तपःकर्म कृत्वाऽतीव शरीरेण कृशीभूतश्चिन्ता कृतवान्—यावदस्ति मे बलवीर्यादिशक्तिस्तावद्भगवन्तमनुज्ञया मम पादपोपगमन कर्तु श्रेय इति तथैवासौ समनुतिष्ठति, ततोऽसौ पञ्चवर्षव्रतपालनपरो मासिक्या संलेखनया कालगतः सौधर्म देवत्वेनोत्पन्नो द्विसागरोपमस्थितिकस्ततश्च्युत्वा महाविदेह उत्पद्य सेत्स्यते (ति) इति कल्पावतसकोत्पन्नस्य प्रथममध्ययनम्।

एवं सुकालसत्कमहापद्मदेव्याः पुत्रस्य महापद्मस्यापीयमेव वक्तव्यता स भगवत्समीपे गृहीतव्रत· पञ्चवर्षव्रतपर्यायपालनपर एकादशांगधारी चतुर्थषष्ठाष्टमादिबहुतपःकर्म कृत्वा ईशानकल्पे देवः समुत्पन्नो द्विसागरोपमस्थितिकः सोऽपि ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति द्वितीयमध्ययनम्।

तृतीये महाकालसत्कपुत्रवक्तव्यता, चतुर्थे कृष्णकुमारसत्कपुत्रस्य, पञ्चमे सुकृष्ण-सत्कपुत्रस्य वक्तव्यता इत्येवं त्रयोऽप्येते वर्षचतुष्टयव्रतपर्यायपरिपालनपरा अभवन्। एवं तृतीयो महाकालांगजश्चतुर्वर्षव्रतपर्यायः सनत्कुमारे उत्कृष्टस्थितिको देवो भूत्वा सप्त-सागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति तृतीयमध्ययनम्।

चतुर्थे कृष्णकुमारात्मजश्चतुर्वर्षव्रतपर्यायः माहेन्द्रकल्पे देवो भूत्वा सप्तसागरोप-

माण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति चतुर्थमध्ययनम्।

पञ्चमः सुकृष्णसत्कपुत्रो वर्षचतुष्टय व्रतपर्यायं परिपाल्य ब्रह्मलोके पंचमकल्पे दश सागरानुत्कृष्टमायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति पञ्चममध्ययनम्।

षष्ठाध्ययने महाकृष्णसत्कपुत्रस्य वक्तव्यता, सप्तमे वीरकृष्णसत्कपुत्रस्य अष्टमे रामकृष्णसत्कपुत्रस्य वक्तव्यता। तत्र त्रयोऽप्येते वर्षत्रयव्रतपर्यायपरिपालनपरा अभवन्। एवं च महाकृष्णांगजो वर्षत्रयपर्यायाल्लान्तककल्पे षष्ठ उत्पद्य चतुर्दशसागरोपमाण्युत्कृ-ष्टस्थितिकमायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति षष्ठमध्ययनम्।

वीरकृष्णांगजः सप्तमः वर्षत्रयव्रतपर्यायं परिपाल्य महाशुक्रे सप्तमे कल्पे समुत्पद्य सप्तदशसागराण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो विदेहे सेत्स्यतीति सप्तममध्ययनम्।

रामकृष्णागजोऽष्टमो वर्षत्रयं व्रतपर्यायं परिपाल्य सहस्त्रारेऽष्टमे कल्पेऽष्टादशसागरा-ण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो विदेहे सेत्स्यतीति अष्टममध्ययनम्।

पितृसेनकृष्णांगजो नवमो वर्षद्वयव्रतपर्यायपरिपालनम् कृत्वा प्राणतदेवलोके दशमे उत्पद्य एकोनविंशतिसागरोपमाण्यानुपाल्य ततश्च्युतो विदेहे सेत्स्यतीति नवममध्ययनम्।

महासेनकृष्णांगजश्च दशमो वर्षद्वयव्रतपर्यायपालनपरोऽनशनादिविधिनाऽच्युते द्वादशे देवलोके समुत्पद्य द्वाविंशतिसागरोपमाण्यायुरनुपाल्य ततश्च्युतो महाविदेहे सेत्स्यतीति दशममध्ययनम्।

इत्येवं कल्पावतंसकदेवप्रतिबद्धग्रन्थपद्धतिः कल्पावतंसिकेत्युच्यते। ता एताः परिसमाप्ताः द्वितीयवर्गश्च।

पुप्फिया ॥ ३ ॥

अथ तृतीयवर्गोऽपि दशाध्ययनात्मकः 'निक्खेवओ' त्ति निगमनवाक्यं यथा 'एवं खलु जंबू समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं इत्यादि जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं सपाविउकामेणं तइयवग्गे पढमअज्झयणस्स पुप्फियाभिहाणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते एवमु-त्तरेष्वध्ययनेषु सूरशुक्रबहुपुत्रिकादिषु निगमनं वाच्यं तत्तदभिलापेन।

'केवलकप्प' ति केवलः—परिपूर्णः स चासौ कल्पश्च केवलकल्पः—स्वकार्यक-रणसमर्थः केवलकल्पः तं स्वगुणेन सम्पूर्णमित्यर्थः। 'कूडागारसालादिट्ठंतो' ति कस्मिंश्चिदुत्सवे कस्मिंश्चिन्नगरे बहिर्भागप्रदेशे महती देशिकलोकवसनयोग्या शाला-गृहविशेषः समस्ति। तत्रोत्सवे रममाणस्य लोकस्य मेघवृष्टिर्भवितुमारब्धा, ततस्तदुभयेन त्रस्तबहुजनस्तस्यां शालायां प्रविष्टः, एवमयमपि देवविरचितो लोकः प्रचुरः स्वकार्यं

नाट्यकरणं तत्संहृत्यानन्तरं स्वकीयं देवशरीरमेवानुप्रविष्ट: इत्ययं शालादृष्टान्तार्थ:। 'अड्ढे जाव' त्ति अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिन्नविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइन्ने बहुधण-बहुजायरूवे आओगपओगसपउत्ते विच्छड्डियपउरभत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसग-वेलगप्पभूए इति यावच्छब्दसगृहीतम्। 'जहा आणंदो' त्ति उपासकदशांगोक्त: श्रावक आनन्दनामा स च बहूणं ईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियनगरनिगमसेट्ठिसत्थवाहाणं बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य मतेसु य कुडुंबेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे सव्वकज्जवड्ढावए सयस्स वि य णं कुडुंबस्स मेढीभूए होत्था। 'पुरिसा-दाणीय' त्ति पुरुषैरादीयते पुरुषादानीय:। नवहस्तोच्छ्र–नवहस्तोच्च: अट्ठतीसाए अज्जियासहस्सेहिं सपरिवुडे इति यावत्करणात् दृश्यम्। हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए इत्यादि वाच्यम्। देवाणुप्पियाण अंतिए पव्वयामि। यथा गंगदत्तो भगवत्यंगोक्त:, स हि किंपाक-फलोवमं मुणिय विसयसोक्ख जलबुब्बयसमाण कुसग्गबिंदुचञ्चल जीविय च नाऊणमधुव चइत्ता हिरण्णे विपुलधणकणगरयणमोत्तियसखसिलप्पवग्लरत्तरयणमाइय विच्छड्डइत्ता दाण दाइयाणं परिभाइत्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइओ जहा तहा अंगई वि गिहनायगो परिच्चइय सव्वं पव्वइओ जाओ य पंचसमिओ तिगुत्तो अममो अकिंचणो गुत्तिंदिओ गुत्तबभयारी इत्येवं यावच्छब्दात् दृश्यम्।

चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसमासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणइ। 'विराहियसामन्ने' त्ति श्रामण्यं-व्रतं, तद्विराधना चात्र न मूलगुणविषया, किं तूत्तरगुणविषया, उत्तरगुणाश्च पिण्डविशुद्ध्यादय:, तत्र कदाचित् द्विचत्वारिंशद्दोष-विशुद्धाहारस्य ग्रहणं न कृत कारण विनाऽपि बलग्लानादिकारणेऽशुद्धमपि गृह्णन्न दोषवानिति, पिण्डस्याशुद्धतादौ विराधितश्रमणता ईर्यादिसमित्यादिशोधनेऽनादर: कृत: अभिग्रहाश्च गृहीता:, कदाचिद् भग्ना भवन्तीति शुण्ठ्यादिसन्निधिपरिभोगमगक्षालन-पादक्षालनादि च कृतवानित्यादिप्रकारेण सम्यगपालने व्रतविराधनेति, सा च नालोचिता गुरुसमीपे इत्यनालोचितातिचारो मृत्वा कृतानशनोऽपि ज्योतिष्केन्द्रे चन्द्ररूपतयोत्पन्न:।

'निक्खेवओ' त्ति निगमन, तच्च प्रागुपदर्शितमेव। तच्चे अज्झयणे शुक्रवक्तव्यताऽभी-धियते–'उक्खेवओ' त्ति उत्क्षेप:–प्रारम्भवाक्यं, यथा–जइ ण भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स अज्झयणस्स पुप्फियाण अयमट्ठे पन्नत्ते, तच्चस्स णं अज्झयणस्स भंते ! पुप्फियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेण कालेणं तेण समएण रायगिहे नयरे इत्यादि। 'तहेवागओ' त्ति रायगिहे सामिसमीवे।

'रिउव्वेय जाव' इति ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्वणवेदानाम् इतिहासपञ्चमानाम् इतिहास:–पुराणं निर्घण्टुषष्ठानाम् निर्घण्टुको नाम कोश: सांगोपांगानाम् अंगानि–शिक्षादीनि

उपांगानि–तदुक्तप्रपञ्चनपरा: प्रबन्धा:, सरहस्यानाम्–तात्पर्ययुक्तानां धारक:–प्रवर्तक: वारक: अशुद्धपाठनिषेधक: पारग:–पारगामि षडड्गवित्, षष्ठितन्त्रविशारद: षष्ठितन्त्र–कापिलीयशास्त्र षडड्गवेदकत्वमेव व्यनक्ति, संख्याने–गणितस्कन्धे शिक्षाकल्पे–शिक्षायामक्षरस्वरूपनिरूपके शास्त्रे कल्पे–तथाविधसमाचारप्रतिपादके व्याकरणे–शब्दलक्षणे छन्दसि–गद्यपद्यवचनलक्षणनिरुक्तप्रतिपादके ज्योतिषामयने–ज्योति:शास्त्रे अन्येषु च ब्राह्मणकेषु शास्त्रेषु सुपरिनिष्ठित: सोमिलनामा ब्राह्मण: स च पार्श्वजिनागमं श्रुत्वा कुतूहलवशाज्जिनसमीप गत: सन् 'इमाइ च ण' इति इमान् एतद्रूपान् 'अट्ठाइं' त्ति अर्थान् अर्थ्यमानत्वादधिगम्यानित्यर्थ:। 'हेऊइ' ति हेतून् अन्तर्वर्तिन्यास्तदीयज्ञानसंपदो गमकान्, 'पसिणाइ- ति यात्रायापनीयादीन् प्रश्नान् पृच्छमानत्वात् 'कारणाइ' ति कारणानि विवक्षि-तार्थनिश्चयजनकानि व्याकरणानि–प्रत्युत्तरतया व्याक्रियमाणत्वादेषामिति 'पुच्छिस्सामि' त्ति प्रश्नयिष्ये इति कृत्वा निर्गत:। 'खंडियविहूणो' त्ति छात्ररहित:, गत्वा च भगवत्समीप एवमवादीत्–'जत्ता ते भंते ? जवणिज्ज च भंते ! इति प्रश्न: तथा सरिसवया मासा कुलत्था एते भोजणेण एगे भव दुवे भवं इति च एतेषा च यात्रादिपदानामागमिकगम्भीरार्थत्वे भगवति तदर्थपरिज्ञानमसभावयताऽपभ्राजनार्थम् प्रश्न: कृत इति 'सरिसवय'- त्ति एकत्र सदृशवयसा अन्यत्र सर्षपा·–सिद्धार्थका:, 'मास' त्ति एकत्र माषो–दशार्धगुञ्जामान: सुवर्णादिविषय: अन्यत्र माषा: धान्यविशेष: उडद इति लोके रूढ:, 'कुलत्थ' त्ति एकत्र कुले तिष्ठन्ति इति कुलत्था:, अन्यत्र कुलस्था:–धान्यविशेष:। सरिसवयादिपदप्रश्नश्च छलग्रहणेनोपहासार्थ कृत: इति, 'एगे भवं' ति एको भवान् इत्येकत्वाभ्युपगमे आत्मन: कृते भगवता श्रोत्रादि- विज्ञानानमवयवानां चात्मनोऽनेकश उपलब्ध्या एकत्वं दूषयिष्यामिति बुद्ध्या पर्यनुयोगो द्विजेन कृत: यावच्छब्दात् दुवे भवं' ति गृह्यते द्वौ भवान् इति च द्वित्वाभ्युपगमेऽह- मेकत्वविशिष्टस्यार्थस्य द्वित्वविरोधेन द्वित्व दूषयिष्यामीति बुद्ध्या पर्यनुयोगो विहित:, अत्र भगवान् स्याद्वादपक्ष निखिलदोषगोचरातिक्रान्तमवलम्ब्योत्तरमदायि (मदात्)–एकोऽप्यह, कथ ? द्रव्यार्थतया जीवद्रव्यस्यैकत्वात् न तु प्रदेशार्थतया (प्रदेशार्थतया) ह्यनेकत्वात्, ममेत्यवादीनामेकत्वोपलंभो न बाधक:, ज्ञानदर्शनार्थतया कदाचित् द्वित्वमपि न विरुद्धवित्यत उक्त द्वावप्यहं, किं चैकस्यापि स्वभावभेदेनानेकधात्वं दृश्यते, तथा हि–एको हि देवदत्ता-दिपुरुष एकदैव तत्तदपेक्षया पितृत्वपुत्रत्वभ्रातृत्वमातु-लत्वभागिनेयत्वादीननेकान् स्वभावान् लभते।

तहा अक्खए अव्वए निच्चे अवट्ठिए आय' त्ति यथा जीवद्रव्यस्यैकत्वादेकस्तथा प्रदेशार्थतयाऽसंख्येयप्रदेशतामाश्रित्याक्षय:, सर्वथा प्रदेशाना क्षयाभावात् तथाऽव्यय: क्रिय-तामपि व्ययत्वाभावात्, असंख्येयप्रदेशता हि न कदाचनाप्ययति। अतो व्यवस्थित्वान्नित्यता–

ऽभ्युपगमेऽपि न कश्चिदोष:, इत्येव भगवताऽभिहिते तेनापृष्टेऽप्यात्मस्वरूपे तद्बोधार्थ, व्यवच्छिन्नसंशय: संजातसम्यक्त्व: "दुवालसविहं सावगधम्म पडिवज्जित्ता सट्ठाणमुवगओ सोमिलमाहणो।"

"असाहुदसणेणं" ति असाधव:-कुदर्शनिनो भागवततापसादय:, तद्दर्शनेन साधूना च सुश्रमणा-नामदर्शनेन तत्र तेषा देशान्तरविहरणेनादर्शनत: अत एवोपर्युपासनतस्तदभावात्, अतो मिथ्यात्वपुद्गलास्तस्य प्रवर्धमानतां गता:, सम्यक्त्वपुद्गलाश्चापचीयमानास्त एवैभि: कारणैर्मिथ्यात्व गत:। तदुक्तम्–"मइभेया पुव्वोग्गाहसंसग्गीए य अभिनिवेसेणं। चउहा खलु मिच्छत्तं साहूणऽदंसणेणऽहवा।

अतो अत्र असाहुदसणेण इत्युक्तम्। "अज्झत्थिए जाव" त्ति आध्यात्मिक:- आत्मविषय: चिन्तित: स्मरणरूप: प्रार्थित:-लघुमाशसित: मनोगतो-मनस्येव वर्तते यो न बहि: प्रकाशित· सकल्पो–विकल्प: समुत्पन्न:- प्रादुर्भूत:, तमेवाह-एवमित्यादि 'वयाइं चिण्णाइ' व्रतानि नियमास्ते च शौचसतोषतप:स्वाध्यायादीनां प्रणिधानानि वेदाध्ययनादि कृत च, ततो ममेदानीं लौकिकधर्मस्थानचरणयारामारोपणं कर्तु श्रेय: तेन वृक्षारोपणमिति, अत एवाह–'अंबारामे य' इत्यादि।

कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जलते सूरिए इत्यादि वाच्यम्। "मित्तनाइनियगसम्बन्धि-परियणं पि य आमतित्ता विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं भोयावित्ता सम्माणित्ता" इति अत्र मित्राणि सुहृद: ज्ञातय: समानजातय: निजका:–पितृव्यादय: संबन्धिन:–श्वसुर-पुत्रादय: परिजनो दासीदासादि: तमामत्र्य विपुलेन भोजनादिना भोजयित्वा सत्कारयित्वा वस्त्रादिभि: संमानयित्वा गुणोत्कीर्तनत: ज्येष्ठपुत्र कुटुम्बे स्थापयित्वाऽधिपतित्वेन गृहीतलोहकटाहाद्युपकरणा:। 'वाणपत्थ' त्ति वने भवा वानी प्रस्थानं प्रस्था–अवस्थिति: वानी प्रस्था येषां ते वानप्रस्था: अथवा 'ब्रह्मचारी गृहस्थश्च, वानप्रस्थो यतिस्तथा।' इति चत्वारो लोकप्रतीता आश्रमा एतेषां च तृतीयाश्रमवर्तिनो वानप्रस्था: 'होत्तिय' त्ति अग्नि-होत्रिका: 'पोत्तिय' त्ति वस्त्रधारिण:, कोत्तिया जन्नई सद्दुई घालई हुबउट्ठा दंतुक्खलिया उम्मज्जगा सम्मज्जगा निम्मज्जगा संपक्खालगा दक्खिणकूलगा उत्तरकूलगा संखधम्मा कूलधम्मा मियलुद्धया हत्थितावसा उद्दंडगा दिसापोक्खिणो वक्कवासिणो विलवासिणो जलवासिणो रुक्खमूलिया अंबुभक्खिणो वायुभक्खिणो सेवालभक्खिणो मूलाहारा कंदाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फाहारा फलाहारा बीयाहारा परिसडियकंदमूलतयपत्तपुप्फफलाहारा जलाभिसेयकढिणगाया आयावणेहिं पचग्गीतावेहिं इंगालसोल्लियं कंदुसोल्लियं।

तत्र 'कोत्तिय' ति भूमिशायिन:, 'जन्नइ' त्ति यज्ञयाजिन:, 'सड्ढइ' त्ति श्राद्धा: 'घालइ' त्ति गृहीतभाण्डा: 'हुबउट्ठ ति हुंडिकाश्रमणा:, 'दंतुक्खलिय' त्ति फलभोजिन:

'उम्मज्जग' त्ति उन्मज्जनमात्रेण ये स्नान्ति 'सम्मज्जग' त्ति उन्मज्जनस्यैवासकृत्करणेन ये स्नान्ति 'निम्मज्जग 'त्ति स्नानार्थम् ये निमग्ना एव क्षण तिष्ठन्ति, 'सपक्खालग' त्ति मृत्तिकाघर्षणपूर्वक येऽड्ग क्षालयन्ति, 'दक्खिणकूलग' त्ति यैर्गड्गादक्षिणकूल एव वस्तव्य, 'उत्तरकूलग' त्ति उक्त विपरीता:, 'सड्खधम्म' त्ति शड्ख घ्मात्वा ये जेमन्ति यद्यन्य: कोऽपि नागच्छति, 'कूलधमग' त्ति ये कूले स्थित्वा शब्दं कृत्वा भुञ्जते, 'मियलुद्धय' त्ति प्रतीता एव, 'हत्थितावस' त्ति ये हस्तिन मारयित्वा तेनैव बहुकाल भोजनतो यापयन्ति, 'उद्दडग त्ति ऊर्ध्वकृतदण्डा ये सचरन्ति, 'दिसापोक्खिणो' त्ति उदकेन दिश: प्रोक्ष्य ये फलपुष्पादि समुच्चिन्वति, 'वक्कवासिणो' त्ति वल्कलवासस:, विलवासिणो त्ति व्यक्तम्, पाठान्तरे 'वेलवासिणो' त्ति 'समुद्रवेलावासिन: 'जलवासिणो' त्ति ये जलनिषण्णा एवासते, शेषा: प्रतीता: नवरं, 'जलाभिसेयकढिणगाय' त्ति ये स्नात्वा न भुञ्जते स्नात्वा स्नात्वा पाण्डुराभूतगात्रा इति वद्धा. क्वचित् 'जलाभिसेयकढिणगायभूय' त्ति दृश्यते तत्र जलाभिषेक-कठिनगात्रभूता: प्राप्ता ये ते तथा, 'इगालसोल्लिय ति अड्गाररिव पक्वम्, 'कदुसोल्लिय' त्ति कन्दुपक्वमिवेति। 'दिसाचक्कवालएणं तवोकम्मेणं' त्ति एकत्र पारणके पूर्वस्या दिशि यानि फलादीनि तान्याहृत्य भुड्क्ते, द्वितीये तु दक्षिणस्यामित्येवं दिक्चक्रवालेन तत्र तप:कर्मणि पारणककरण तत्तप:कर्म दिक्चक्रवालमुच्यते तेन तप: कर्मणेति।

'वागलवत्थनियत्थे' त्ति वल्कलं–वल्क: तस्येदं वाल्कलं तद्वस्त्र निवसित येन सा वाल्कलवस्त्रनिवसत:। 'उडए' त्ति उटज·–तापसाश्रमगृहम्। 'किढिण' त्ति वशमयस्ताप-सभाजनविशेष: ततश्च तया: साकायिकं–भारोद्वहनयन्त्रं किढिणसांकायिकम्। 'महाराय' त्ति लोकपाल:। 'पत्थाणे 'पत्थियं' प्रस्थाने परलोकसाधनमार्गे प्रस्थित-प्रवृत्त फलाद्याह-रणार्थ, गमने वा प्रवृत्तम्। सोमिलद्विजऋषिम्। 'दब्भे य' त्ति समूलान् कुसे य' दर्भानेव निर्मूलान्। 'पत्तामोड च' त्ति: तरुशाखमोटितपत्राणि। 'समिहाउ' त्ति, समिध: काष्ठिका:, 'वेइं वड्ढेइ' त्ति वेदिकां देवार्चनस्थानं वर्धनीबहुकारिका ता प्रयुक्ते इति–वर्धयति–प्रमार्जयतीत्यर्थ:। 'उवलेवणंसमज्जण' (ति) जलेन समार्जनं वा शोधनम्। 'दब्भकलस-हत्थगए त्ति दर्भाश्च कलशकश्च हस्ते गता यस्य स तथा, 'दब्भकलसाहत्थगए' त्ति क्वचित्पाठ: तत्र दर्भेण सहगतो य: कलशक: स हस्तगतो यस्य स तथा। 'जलमज्जण' ति जलेन बहि:शुद्धिमात्रम्। 'जलकीड' ति देहशुद्धावपि जलेनाभिरतिम्। 'जलाभिसेय' ति जलक्षालनम्। 'आयन्ते' त्ति जलस्पर्शात् चोक्खे' त्ति अशुचिद्रव्यापगमात् किमुक्त भवति ? 'परमसुइभूए' त्ति 'देवपिउकयकज्जे' ति देवाना पितृणां च कृत कार्य जलाञ्जलिदानं येन स तथा। 'सरएण अरणिं महेइ' त्ति शरकेण–निर्मन्थकाष्ठेन अरणिं–निर्मन्थनीय-काष्ठं मथ्नाति घर्षयति।

अग्गिस्स दाहिणे इत्यादि सार्धश्लोक: तद्यथा शब्दवर्ज, तत्र च 'सत्तंगाइ समादहे'

त्ति सप्तड्गानि समादधाति–सन्निधापयाति सकथं १ वल्कल २ स्थानं ३ शय्याभाण्डं ४ कमण्डलुं ५ दण्डदारु ६ तथात्मानमिति। तत्र सकथं–तत्समयप्रसिद्धउपकरणविशेषः स्थान ज्योतिःस्थानम् पात्रस्थानं वा, शय्याभाण्डं–शय्योपकरणं, कमण्डलु-कुण्डिका, दण्डदारु दण्डकः, आत्मा प्रतीतः। 'चरुं साहेइ' त्ति चरुः–भोजनविशेषः तत्र पच्यमानं द्रव्यमपि चरुरेव त चरु बलिमित्यर्थः साधयति रन्धयति। 'बलिवइस्सदेव करेइ' त्ति बलिना वैश्वानरं पूजयतीत्यर्थः। 'अतिहिपूय करेइ' त्ति अतिथेः–आगन्तुकस्य पूजा करोतीति 'जाव गहाय' कडुच्छयंतंबियभायणं गहाय दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइए प्रव्रजितेऽपि षष्ठादितपःकरणेन दिशः प्रोक्षितत्वादिविधिं च कृत्वा पारणादिकमाचरितवान्। इदानीं च इदं मम श्रेयः कर्तु, तदेवाह–

'जाव जलते सूरिए' दृष्टान् आभाषितान् आपृच्छ्य, बहूनि सत्वशतानि समनुमान्य सभाष्य गृहीतनिजभाण्डोपकरणस्योत्तरदिगभिमुखं गन्तु मम युज्यते इति सप्रेक्ष्यते चेतसि, 'कट्ठमुद्दाए मुह बधइत्ता' यथा काष्ठ काष्ठमयः पुत्तलको न भाषते एव सोऽपि मौनावलम्बी जातः यद्वा मुखरन्ध्राच्छादकं काष्ठखण्डमुभयपार्श्वच्छिद्रद्वयप्रेषितदवरकान्वितं मुखबन्धन काष्ठमुद्रा तया मुख बध्नाति। जलस्थलादीनि सुगमानि, एतेषु स्थानेषु स्खलितस्य प्रतिपतितस्य वा न तत उत्थातु मम कल्पते। महाप्रस्थान पद ति मरणकालभावि कर्तु ततः प्रस्थितः- कर्तुमारब्धः। 'पुव्वावरण्हकालसमयसि' त्ति पाश्चात्यापराण्हकालसमयः दिनस्य चतुर्थप्रहर-लक्षणः। पुव्वारत्तावरत्तकालसमयंसि त्ति पूर्वरात्रो–रात्रेः पूर्वभागः, अपररात्रो–रात्रेः पश्चि-मभागः तल्लक्षणो यः कालसमयः-कालरूपसमयः स तथा तत्र रात्रिमध्याह्ने (मध्यरात्रे) इत्यर्थः। अन्तिक–समीपं, प्रादुर्भूत· इत ऊर्ध्व सर्व निगदसिद्धं जाव निक्खेवओ त्ति। नवरं विराधितसम्यक्त्व । अनालोचिताप्रतिक्रान्तः। शुक्रग्रहदेवतया उत्पन्नः।

बहुपुत्तियाध्ययने 'उक्खेवओ' त्ति उत्क्षेपः प्रारम्भवाक्य यथा–जइ णं भंते समणेण सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामेण तच्चवग्गस्स पुप्फियाण तइयज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, चउत्थस्स ण अज्झयणस्स पुप्फियाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

एतेन सा 'दिव्वा देविड्ढी पुच्छ' त्ति, किण्णा लद्धा–केन हेतुनोपार्जिता ? किण्णा पत्ता–केन हेतुना प्राप्ता उपार्जिता मती प्राप्तिमुपगता ? किण्णाभिसमण्णागय त्ति प्राप्तापि सता केन हेतुनाऽऽभिमुख्येन सागत्येन च उपार्जनस्य च पश्चाद्भोग्यतामपुगतेति ? एवं पृष्टे सत्याह 'एवं खलु' इत्यादि। वाणारस्या भद्रनामा सार्थवाहोऽभूत। 'अड्ढे' इत्यादि अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइण्णे बहुधणजाइआययण-आओगपओगसपउत्ते विच्छड्डियपउरभत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूए बहुजणस्स अपरिभूए, सुगमान्येतानि। नवरं आढ्यऋद्ध्यां परिपूर्णः, दृप्तः–दर्पवान्, वित्तो–विख्यातः। भद्रसार्थवाहस्य भार्या सुभद्रा सुकुमाला। 'वझ' त्ति अपत्यफलापेक्षया निष्फला, 'अवियाउरि'

'त्ति प्रसवानन्तरमपत्यमरणेनापि फलतो वन्ध्या भवति अत उच्यते–'अवियाउरि' त्ति अविजननशीलाऽपत्यानाम्, अत एवाह–जानुकूर्पराणामेव माता–जननी जानुकूर्परमाता, एतान्येव शरीरांशभूतानि तम्या: स्तनौ स्पृशन्ति नापत्यमित्यर्थ: अथवा जानुकूर्पराण्येवमात्रा परप्राणादिसाहाय्यसमर्थ: उत्सङ्गनिवेशनीयो वा परिकरो यस्या: न पुत्रलक्षण: स जानुकूर्परमात्र:। इमेयारूवे' त्ति इहैव दृश्य ''अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था'' तत्रायं एतद्रूप: आध्यात्मिक:–आत्माश्रित. चिन्तित:–स्मरणरूप: मनोगतो–मनोविकाररूप: सकल्पो–विकल्प: समुत्पन्न:। 'धन्नाओ ण ताओ' इत्यादि धन्या–धनमर्हन्ति लप्स्यन्ते वा यास्ता धन्या: इति यासामित्यपेक्षया, अम्बा:–स्त्रिय: पुण्या:–पवित्रा: कृतपुण्या:–कृतसुकृता: कृतार्था:–कृतप्रयोजना: कृतलक्षणा:–सफलीकृतलक्षणा.। सुलद्धे ण तासिं अम्मगाण मणुयजम्मजीवियफले' सुलब्धं च तासा मनुजजन्मजीवितफलं च। 'जासिं' त्ति यासां मन्ये इति वितर्कार्थो निपात:। निजकुक्षिसभूतानि डिम्भरूपाणीत्यर्थ: स्तनदुग्धे लुब्धानि यानि तानि तथा। मधुरा: समुल्लापा येषां तानि तथा। मन्मनम्–अव्यक्तमीषल्ललितं प्रजल्पितं येषा तानि तथा। स्तनमूलात् कक्षा-देशभागमभिसरन्ति मुग्धकानि–अव्यक्तविज्ञानानि भवन्ति। पण्हयन्ति–दुग्ध पिबन्ति। पुनरपि कोमलकमलोपमाभ्या हस्ताभ्या गृहीत्वा उत्सङ्गे निवेशितानि सन्ति। ददति समुल्लापकान्, पुन: पुन: मञ्जुलप्रभणितान् मञ्जुलं–मधुरं प्रभणितं–भणितिर्येषु ते तथा तान्, इह सुमधु-रानित्यभिधाय यन्मञ्जुलप्रभणितानीत्युक्तं तत्पुनरुक्तमपि न दुष्ट सभ्रमभणितत्वादस्येति। 'एत्तो' त्ति विभक्तिपरिणामादेषाम्–उक्तविशेषणवतां डिम्भानां मध्यादेकतरमपि–अन्यतरविशेषणमपि डिम्भ न प्राप्ता इत्युपहतमन: सकल्पा भूमिगतदृष्टिका करतल-पर्यस्तितमुखी ध्यायति। अथानन्तरं यत्सपन्नं तदाह–तेण कालेण' मित्यादि।

गृहेषु समुदानं–भिक्षाटनं गृहसमुदान भैक्षं, तन्निमित्तमटनम्। साध्वीसंघाटको भद्रसार्थ-वाहगृहमनुप्रविष्ट·। तद्भार्या चेतसि चिन्तितवती (एवं वयासी) यथा–विपुलान्–समृद्धान् भोगान् भोगभोगान्–अतिशयवत: शब्दादीन् उपभुञ्जाना विहरामि–तिष्ठामि केवल तथापि डिम्भादिकं न प्रजन्ये–न जनितवती अहं, केवल ता एव स्त्रियो धन्या यासां पुत्रादि सपद्यत इति खेदपरायणा 'भवति' (ऽहं वर्ते)। तदत्रार्थे यूयं किमपि जानीध्वे न वेति ? यद्विषये परिज्ञानं संभावयति तदेव विद्यामन्त्रप्रयोगादिक वक्तुमाह। केवलिप्रज्ञप्तधर्मश्च–''जीवदयसच्चवयणं, परधणपरिवज्जण सुसीलं च। खती पचिंदियनिग्गहो य धम्मस्स मूलाइं। इत्यादिक:।

'एवमेयं' ति एवमेतदिति साध्वीवचने प्रत्या (त्यया) विष्करणम्। एतदेव स्फुटयति–'तहमेय भंते !' तथैवैतद्यथा भगवत्य: प्रतिपादयन्ति यदेतद्यूय वदथ तथैवैतत्। 'अवितहमेयं' ति सत्यमेतदित्यर्थ:'असंदिद्धमेयं' ति संदेहवर्जितमेतत्। एतान्येकार्थान्यत्यादर-

प्रदर्शनायोक्तानि सत्योऽयमर्थो यद्यूय वदथ इत्युक्त्वा वन्दते-वाग्भि: स्तौति, नमस्यति कायेन प्रणमति वंदित्ता नमंसित्ता सावगधम्मं पडिवज्जइ देवगुरुधर्मप्रतिपत्तिं कुरुते।

यथासुखं देवानुप्रिये ! अत्रार्थे मा प्रतिबन्धं-प्रतिघातरूपं प्रमादं मा कृथा:।

'आघवणाहि' त्ति आख्यापनाभिश्च सामान्यत· प्रतिपादनै:। 'पण्णवणाहि य' त्ति प्रज्ञा-पनाभिश्च-विशेषत: कथनै:। सण्णवणाहि य' त्ति सज्ञापनाभिश्च संबोधनाभि: 'विण्णवणाहि य' त्ति विज्ञापनाभिश्च-विज्ञप्तिकाभिश्च सप्रणयप्रार्थनै:। चकारा समुच्चयार्था:।

'आघवित्तए' त्ति आख्यातु वा प्रज्ञापयितुं वा सज्ञापयितुं वा विज्ञापयितुं वा न शक्नोतीति प्रक्रम सुभद्रा भार्या व्रतग्रहणान्निषेधयितु' 'ताहे' इति तदा 'अकामए चेव' अनिच्छन्नेव सार्थवाहो निष्क्रमण-व्रतग्रहणोत्सव अनुज्ञप्तवान् (अनुमतवान्) इति ! किं बहुना ? मुडा भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयइ त्ति। इत ऊर्ध्वं सुगमम्।

'जाव पाडियक्कं उवस्सय' ति सुव्रतार्थिकोपाश्रयात् पृथक् विभिन्नमुपाश्रयं प्रतिपद्य विचरति-आस्ते। 'अज्जाहिं अणोहट्टिय' त्ति यो बलाद्धस्तादौ गृहीत्वा प्रवर्तमानं निवारयति सोऽपघट्टिक: तदभावादनपघट्टिका, अनिवारिता-निषेधकरहिता, अतएव स्वच्छन्दमतिका। ज्ञानादीनां पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्वस्था इत्यादि सुप्रतीतम्।

'उवत्थाणिय करेइ' त्ति उपस्थान-प्रत्यासत्तिगमनं तत्र प्रेक्षणककरणाय यदा विधत्ते।

'दिव्वं देविड्ढि' त्ति देवर्द्धि:-परिवारादिसपत्, देवद्युति:-शरीराभरणादीना दीप्तियोग:, देवानुभाग:-अद्भुत-वैक्रियशरीरादिशक्तियोग:, तदेतत्सर्वं दर्शयति-। 'विन्नयपरिणयमेत्त-ति विज्ञका परिणतमात्रोपभोगेषु अत एव यौवनोद्गममनुप्राप्ता। 'रूवेण व' त्ति रूपम्-आकृति: यौवनं-तारुण्य लावण्य चेह स्पृहणीयता चकारात् गुणग्रह: गुणाश्च मृदुत्वौदार्यादय:, एतैरुत्कृष्टा-उत्कर्षवती शेषस्त्रीभ्य:, अत एव उत्कृष्टमनोहरशरीरा चापि भविष्यति। 'विन्नयपरिणयमित्तं पडिकुविएणं सुक्केण' ति प्रतिकूजित-प्रतिभाषित यत् शुक्ल द्रव्य तेन कृत्वा प्रभूतमपि वाञ्छितं देयद्रव्यं दत्त्वा प्रभूताभरणादिभूषित कृत्वाऽनुकूलेन विनयेन प्रियभाषणतया भवद्योग्येयमित्यादिना 'इट्ठा' वल्लभा' 'कंता' कमनीयत्वात् 'प्रिया' तदा प्रेमविषयत्वात् 'मणुण्णा' सुंदरत्वात् एवं 'संमया अणुमया' इत्यादि दृश्यम्। आभरण-करण्डकसमानोपादेयत्वादिना। तैलकेला सौराष्ट्रप्रसिद्धो मृन्मयस्तैलस्य भाजनविशेष:, स च भगभयाल्लोठनभयाच्च सुष्ठु संगोप्यते एवं साऽपि तथोच्यते। 'चेलपेडा इवे' ति वस्त्रमञ्जूषेवेत्यर्थ:। 'रयणकरडग' इति इन्द्रनीलादिरत्नाश्रय: सुसरक्षित: सुसगोपितश्च क्रियते।

'जुयलग' दारकदारिकादिरूपं प्रजनितवती। पुत्रकै: पुत्रिकाभिश्च वर्षदशकादिप्रमाणत:

कुमारकुमारिकादिव्यपदेशभाक्त्व डिम्भडिम्भिकाश्च लघुतरतया प्रोच्यन्ते। अप्येके केचन 'परगणेहिं' ति नृत्यद्भि:। 'परक्कममाणेहिं' ति उल्ललयद्भि:। 'पक्खोलणएहिं' ति प्रस्खल- द्भि:। हसद्भि:, रुषद्भि: 'उक्कूवमाणेहिं' ति बृहच्छब्दै: पूत्कुर्वद्भि:। पुव्वड (दुब्बल)' त्ति दुर्बला। 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' त्ति पूर्वरात्रश्चासावपररात्रश्चेति पूर्वरात्रापररात्र: स एव कालसमय: कालविशेषस्तस्मिन् रात्रे: पश्चिमे भाग इत्यर्थ: अयमेतद्रूप: आध्यात्मिक:-आत्माश्रित:, चिन्तित: स्मरणरूप: प्रार्थित:-अभिलाषरूप: मनोविकाररूप: संकल्पो-विकल्प: समुत्पन्न:।

इह ग्रन्थे प्रथमवर्गो दशाध्ययनात्मक:, निरयावलिकाख्यनामक:। द्वितीयवर्गो दशाध्ययनात्मक:, तत्र च कल्पावतसिका इत्याख्या अध्ययनानाम् तृतीयवर्गोऽपि दशाध्ययनात्मक: पुष्पिका शब्दाभिधेयानि च तान्यध्ययनानि, तत्राद्ये चन्द्रज्योतिष्केन्द्रवक्तव्यता १। द्वितीयाध्ययने सूर्यवक्तव्यता २। तृतीये शुक्रमहाग्रहवक्तव्यता ३। चतुर्थाध्ययने बहुपुत्रिकादेवीवक्तव्यता ४। पञ्चमेऽध्ययने पूर्णभद्रवक्तव्यता ५। षष्ठे माणिभद्रदेववक्तव्यता ६। सप्तमे प्राग्भविकचन्दनानगर्या दत्तनामकदेवस्य द्विसागरोपमस्थितिकस्य वक्तव्यता ७। अष्टमे शिवगृहपति (ते:) मिथिलावास्तव्यस्य देवत्वेनोत्पन्नस्य द्विसागरोपमस्थितिकस्य वक्तव्यता ८। नवमे हस्तिनापुरवास्तव्यस्य द्विसागरोपमायुष्कतयोत्पन्नस्य देवस्य बलनामकस्य वक्तव्यता ९। दशमाध्ययनेऽणाढियगृहपते: काकन्दीनगरीवास्तव्यस्य द्विसागरोपमायुष्कतयोत्पन्नस्य देवस्य वक्तव्यता १०। इति तृतीयवर्गाध्ययनानि।

पुप्फचूला ॥ ४ ॥

चतुर्थवर्गोऽपि दशाध्ययनात्मक: श्री-ह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मीइलादेवीसुरादेवीरसदेवीगन्धदेवीतिवक्तव्यताप्रतिबद्धाध्ययननामक:। तत्र श्रीदेवी सौधर्मकल्पोत्पन्ना भगवतो महावीरस्य नाट्यविधिं दारकविकुर्वणया प्रदर्श्य स्वस्थान जगाम। प्राग्भवे राजगृहे सुदर्शनगृहपते: प्रियाया भार्याया अंगजा भूतानाम्नी अभवत् न केनापि परिणीता। पतितपुतस्तनी जाता। वरग (पक्खेज्जिया) परिवज्जिया' वरयितृप्रखेदिता भर्त्राऽपरिणीताऽभूत्। सुगमं सर्वं यावच्चतुर्थवर्गसमाप्ति:।

वन्हिदसा ॥ ५ ॥

पञ्चमवर्ग वन्हिदशाभिधाने द्वादशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि निसढे इत्यादीनि। प्राय: सर्वोऽपि सुगम: पञ्चमवर्ग: नवरं : चिराईए' त्ति चिर:-चिरकाल आदिनिवेशो यस्य तच्चिरादिकम्। 'महया हिमवतमलयमंदरमहिदसारे' इत्यादि दृश्यम् तत्र महाहिमवदादय: पर्वतास्तद्वत्सार: प्रधानो य:।

नगरनिगमसिट्ठिसेणावइसत्थवाहपभितिओ जिणं भगवंतं वंदेति। तदनु नन्दनवने उद्याने भगवान् समवसृत:।

'बायालीसं भत्ताइं' ति दिनानि २१ परिहत्यानशनया। 'निसढे ताओ देवलोगाओ आउ-क्खएण' ति आयुर्दलिकनिर्जरणेन, 'भवक्खएणं' ति देवभवनिबन्धनभूतकर्मणां गत्यादीनां निर्जरणेन, स्थितिक्षयेण—आयु:कर्मण: स्थितेर्वेदनेन, 'अनतर चयं चइत्त' त्ति देवभवसम्बन्धिन चयं—शरीर त्यक्त्वा, यद्वा च्यवनं कृत्वा क्व यास्यति? गतोऽपि क्वोत्पत्स्यते ?

'सिज्झिहिइ'—सेत्स्यति निष्ठितार्थतया, भोत्स्यते केवलालोकेन, मोक्ष्यते सकलकर्मांशै:, परिनिर्वास्यति स्वस्थो भविष्यति सकलकर्मकृतविकारविरहितया, तात्पर्यार्थमाहसर्वदु:-खानामन्त करिष्यति।

इति श्रीचन्द्रसूरिविरचितं निरयावलिकाश्रुतस्कन्धविवरणं समाप्तमिति। श्रीरस्तु।। ग्रन्थाग्रम् ६००।।
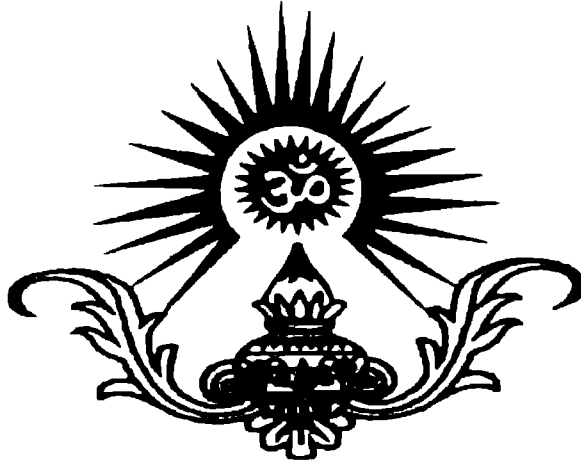
जैन धर्म दिवाकर,
आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म भूमि	राहो
पिता	लाला मनसारामजी चौपडा
माता	श्रीमती परमेश्वरी देवी
वश	क्षत्रिय
जन्म	विक्रम स 1939 भाद्र सुदि वामन द्वादशी (12)
दीक्षा	वि स 1951 आषाढ शुक्ला 5
दीक्षा स्थल	बनूड (पटियाला)
दीक्षा गुरु	मुनि श्री सालिगराम जी महाराज
विद्यागुरु	आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज (पितामह गुरु)
साहित्य सृजन	अनुवाद, सकलन-सम्पादन-लेखन द्वारा लगभग 60 ग्रन्थ
आगम अध्यापन	शताधिक साधु-साध्वियो को ।
कुशल प्रवचनकार	तीस वर्ष से अधिक काल तक ।
आचार्य पद	पजाब श्रमण सघ, वि स 2003, लुधियाना ।
आचार्य सम्राट् पद	अ भा श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ सादडी (मारवाड) 2009 वैशाख शुक्ला
सयम काल	67 वर्ष लगभग ।
स्वर्गवास	वि स. 2019 माघवदि 9 (ई 1962) लुधियाना ।
आयु	79 वर्ष 8 मास, ढाई घटे।
विहार क्षेत्र	पजाब, हरियाणा, हिमाचल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि ।
स्वभाव	विनम्र-शान्त-गभीर प्रशस्त विनोद ।
समाज कार्य	नारी शिक्षण प्रोत्साहन स्वरूप कन्या महाविद्यालय एव पुस्तकालय आदि की प्रेरणा।

जैनभूषण, पंजाब केसरी, बहुश्रुत, महाश्रमण, गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म भूमि	साहोकी (पजाब)
जन्म तिथि	वि स 1979 वैशाख शुक्ल 3 (अक्षय तृतीया)
दीक्षा	वि स 1993 वैशाख शुक्ल 13
दीक्षा स्थल	रावलपिडी (वर्तमान पाकिस्तान)
गुरुदेव	आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज
अध्ययन	प्राकृत, सस्कृत उर्दू, फारसी, गुजराती, हिन्दी, पजाबी, अग्रेजी आदि भाषाओ के जानकार तथा दर्शन एव व्याकरण शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित, भारतीय धर्मो के गहन अभ्यासी ।
सृजन	हेमचन्द्राचार्य के प्राकृत व्याकरण पर भाष्य, अनुयोगद्वार, प्रज्ञापना आदि कई आगमो पर बृहद् टीका लेखन तथा तीस से अधिक ग्रन्थो के लेखक।
प्रेरणा	विभिन्न स्थानको, विद्यालयो, औषधालयो, सिलाई केन्द्रो के प्रेरणा स्रोत ।
विशेष	आपश्री निर्भीक वक्ता, सिद्धहस्त लेखक एव कवि थे। समन्वय तथा शान्तिपूर्ण क्रान्त जीवन के मगलपथ पर बढने वाले धर्मनेता, विचारक, समाज सुधारक एव आत्मदर्शन की गहराई मे पहुचे हुए साधक थे। पजाब तथा भारत के विभिन्न अचलो मे बसे हजारो जैन-जैनेतर परिवारो मे आपके प्रति गहरी श्रद्धा एव भक्ति है। आप स्थानकवासी जैन समाज के उन गिने-चुने प्रभावशाली सतो मे प्रमुख थे जिनका वाणी-व्यवहार सदा ही सत्य का समर्थक रहा है। जिनका नेतृत्व समाज को सुखद, सरक्षक और प्रगति पथ पर बढ़ाने वाला रहा है ।
स्वर्गारोहण	मण्डी गोविन्दगढ (पजाब) 23 अप्रैल, 2003 (रात 11 30 बजे)

आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनि जी महाराज : शब्द चित्र

जन्म स्थान	मलौटमडी, जिला-फरीदकोट (पजाब)
जन्म	18 सितम्बर, 1942 (भादवा सुदी सप्तमी)
माता	श्रीमती विद्यादेवी जैन
पिता	स्व श्री चिरजीलाल जी जैन
वर्ण	वैश्य ओसवाल
वश	भाबू
दीक्षा	17 मई, 1972, (समय—12 00 बजे)
दीक्षा स्थान	मलौटमण्डी (पजाब)
दीक्षा गुरु	बहुश्रुत, जैनागमरत्नाकर, राष्ट्रसत श्रमणसघीय सलाहकार श्री ज्ञानमुनि जी महाराज
शिष्य-सपदा	श्री शिरीष मुनि जी, श्री शुभममुनि जी श्री श्रीयशमुनि जी, श्री सुव्रतमुनि जी एव श्री शमितमुनि जी
प्रशिष्य	श्री निशात मुनि जी श्री निरजन मुनि जी श्री निपुण मुनि जी
युवाचार्य पद	13 मई, 1987 पूना, महाराष्ट्र
आचार्य पदारोहण	9 जून, 1999 अहमदनगर, महाराष्ट्र
चादर महोत्सव	7 मई, 2001, ऋषभ विहार, दिल्ली मे
अध्ययन	डबल एम ए., पी-एच डी , डी लिट् आगमो का गहन गंभीर अध्ययन, ध्यान-योग-साधना मे विशेष शोध कार्य

श्रमणश्रेष्ठ कर्मठयोगी, मंत्री
श्री शिरीष मुनि जी महाराज : शब्द–चित्र

जन्म स्थान	नाई, उदयपुर, (राजस्थान)
जन्मतिथि	19 फरवरी, 1964
माता	श्रीमती सोहनबाई
पिता	श्रीमान ख्यालीलाल जी कोठारी
वश, गौत्र	ओसवाल, कोठारी
दीक्षार्थ प्रेरणा	दादीजी मोहन बाई कोठारी द्वारा
दीक्षा तिथि	7 मई, 1990
दीक्षा स्थल	यादगिरी (कर्नाटक)
गुरु	श्रमण सघ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य सम्राट् श्री शिवमुनिजी महाराज
शिक्षा	एम ए (हिन्दी साहित्य)
अध्ययन	आगमो का गहन गभीर अध्ययन, जैनेतर दर्शनो मे सफल प्रवेश तथा हिन्दी, सस्कृत, अग्रेजी, प्राकृत, मराठी, गुजराती भाषाविद्।
उपाधि	श्रमण सघीय मत्री, साधुरत्न, श्रमणश्रेष्ठ कर्मठयोगी
शिष्य सम्पदा	श्री निशात मुनि जी श्री निरजन मुनि जी श्री निपुण मुनि जी
विशेष प्रेरणादायी कार्य	ध्यान योग साधना शिविरो का सचालन, बाल-सस्कार शिविरो और स्वाध्याय-शिविरो के कुशल सचालक । आचार्य श्री के अनन्य सहयोगी ।

: आत्म-शिव साहित्य :

आगम संपादन

* श्री उपासकदशाग सूत्रम् (व्याख्याकार आचार्य श्री आत्माराम जी म)
* श्री उत्तराध्ययन सूत्रम् (भाग एक) ''
* श्री उत्तराध्ययन सूत्रम् (भाग दो) ''
* श्री उत्तराध्ययन सूत्रम् (भाग तीन) ''
* श्री अन्तकृद्दशाग सूत्रम् ''
* श्री अन्तकृद्दशाग सूत्रम् (सक्षिप्त सस्करण) ''
* श्री दशवैकालिक सूत्रम् ''
* श्री अनुत्तरौपपातिक सूत्रम् ''
* श्री आचाराग सूत्रम् (भाग एक) ''
* श्री आचाराग सूत्रम् (भाग दो) ''
* श्री नन्दीसूत्रम् ''
* श्री निरयावलिका सूत्रम् ''
* श्री विपाक सूत्रम् ''
* श्री जैन तत्व कलिका विकास ''

साहित्य (हिन्दी)–

* भारतीय धर्मो मे मोक्ष विचार (शोध प्रबन्ध)
* ध्यान एक दिव्य साधना (ध्यान पर शोध-पूर्ण ग्रन्थ)
* ध्यान-पथ (ध्यान सम्बन्धी चिन्तनपरक विचारबिन्दु)
* योग मन सस्कार (निबन्ध)
* जिनशासनम् (जैन तत्व मीमासा)
* पढम नाण (चिन्तनपरक निबन्ध)
* अहासुह देवाणुप्पिया (अन्तगडसूत्र प्रवचन)
* शिव-धारा (प्रवचन)
* अन्तर्यात्रा ''
* नदी नाव सजोग ''
* अनुश्रुति ''

* मा पमायए ,,
* अमृत की खोज ,,
* आ घर लौट चले ,,
* सबुज्झह कि न बुज्झह ,,
* सद्गुरु महिमा ,,
* प्रकाशपुञ्ज महावीर (सक्षिप्त महावीर जीवन-वृत्त)
* अध्यात्म-सार (आचाराग सूत्र पर एक बृहद् आलेख)

साहित्य (अंग्रेजी)–

* दी जैना पाथवे टू लिब्रेशन
* फण्डामेन्टल प्रिसीपल्स ऑफ जैनिज्म
* दी डॉक्ट्रीन ऑफ द सेल्फ इन जैनिज्म
* दी जैना ट्रेडिशन
* दी डॉक्ट्रीन ऑफ लिब्रेशन इन इडियन रिलीजन्स विथ रेफरेस टू जैनिज्म
* स्परीच्युल प्रक्टेसीज ऑफ लॉर्ड महावीरा